कृषि रसायन

कक्षा 12

कृषि रसायन



माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

कृषि रसायन

कक्षा 12

d'f"k j l k ;u

d{kk 12



ek/;fed f'k{kk ckM+ jkt LFkku] vtesj

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

d`f"k j l k ; u

d{kk 12

l ; k t d ,o a y [k d

डॉ. धीरेन्द्र सिंह

सह–आचार्य, कृषि मृदा विज्ञान विभाग

शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय

सवाईमाधोपुर (राज.)

लेखकगण

gueku f l g jkBkM

अनुसंधान अधिकारी

शैक्षिक प्रौद्योगिकी विभाग,

अजमेर (राज.)

Mk- jfodkUr 'kekZ

सह–आचार्य

मृदा विज्ञान विभाग

कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

Hkojyky dEgkj

प्राध्यापक (कृषि)

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)

टोंक (राज.)

ikB;Øe lfefr

d'f"k j lk;u

d{kk 12

l;kstd

डॉ. धीरेन्द्र सिंह

सह–आचार्य, कृषि मृदा विज्ञान विभाग

शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय

सवाईमाधोपुर (राज.)

lnL;x.k

Mk- ,u- vkj- iokj

वरिष्ठ वैज्ञानिक

काजरी, जोधपुर (राज.)

gjUn flg

प्रधानाचार्य

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, पनेर

अजमेर (राज.)

jfoUn dekj Vkd

प्रधानाचार्य

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,

फलोदरा (सराड़ा), उदयपुर (राज.)

foØe flg

प्राध्यापक (कृषि)

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय कोठीनातमाम,

टोंक (राज.)

y{ehukjk;.k

प्राध्यापक (कृषि)

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,

भीलवाड़ा (राज.)

iLrkouk

प्रस्तुत पुस्तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर की नई शिक्षा नीति के अर्न्तगत कक्षा–12 हेतु कृषि रसायन विज्ञान विषय के निर्धारित नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार लिखी गई है। पुस्तक में विषय वस्तु को सरल हिंदी भाषा में लिखने का पूर्ण प्रयास किया गया है जिससे यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बन सकें। विषय को यथास्थान चित्रों एवं सारणियों के माध्यम से अधिक स्पष्ट एवं रूचिकर बनाया गया है।

पुस्तक में कक्षा–12 के कृषि रसायन के स्तर, विषय की आवश्यकताएँ एवं समानान्तर प्रतियोगी परीक्षाओं को ध्यान में रखतें हुए विषय सामग्री समायोजित की गई है। पुस्तक में तकनीकी शब्दावली को सरल बनाने के लिए हिंदी के साथ–साथ उनको अंग्रेजी में भी कोष्ठक में लिख दिया गया है जिससे विद्यार्थियों को समझने में सुविधा रहें। प्रत्येक अध्याय के अर्न्तगत यथास्थान विषयानुकूल पर्याप्त आंकिक प्रश्नों को उदाहरण के रूप में देकर विषय वस्तु को स्पष्ट किया गया है। सभी अध्यायों के अंत में महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं, वस्तुनिष्ठ, अतिलघुत्तरात्मक, लघुत्तरात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्नों का समावेश किया गया है।

लेखकगण, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष तथा निदेशक महोदय के आभारी है कि उन्होंने हमें इस पुस्तक लेखन का अवसर प्रदान किया। हम पूर्व में प्रकाशित पुस्तकों तथा लेखों के लेखकों तथा प्रकाशकों और इस पुस्तक के लेखन के दौरान सहायक रहे उन महानुभावों विशेषकर डॉ. एम.के.शर्मा, पादप कार्यिकी विभाग, राजकीय कृषि महाविद्यालय, उदयपुर के आभारी है जिनकी मदद से पुस्तक का जैव रसायन अध्याय लिखा गया। हम कृष्णा ग्राफिक्स, जयपुर का डी.टी.पी कार्य का हृदय से आभार व्यक्त करते है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पूर्ण प्रयासों के बावजूद भी विषय वस्तु में किंचित् त्रुटियों का रह जाना स्वभाविक है जिनके निवारण के लिए हम विद्वान शिक्षकों एवं पाठकों से अनुरोध करते है कि आप अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव हमें तथा बोर्ड को भेजें जिससे कि भविष्य में इस पुस्तक गुणात्मक सुधार कर इसे और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

l;ktd ,oa ys[kdx.k

ikB;Øe (Syllabus)

df"k jlk;u

d{kk 12

समय– 3.15 घंटे पूर्णांक– 56

Ø-l-	le; ¼?kaVs½	i'u i= d fy, vad	l=kad	dkyk'k	vad
सैद्धांतिक	3.15	56	14	155	70
प्रायोगिक	4.00	30	–	32	30

l)kfrd

1.	मृदा, खनिज व चट्टानें एवं उनका अपक्षय – परिभाषा, मृदा के कार्य एवं विशेषताएं, मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड, मृदा पादप वृद्धि का एक माध्यम, मृदा अवयव, मृदा प्रोपाइल, भूमि, चट्टानें एवं खनिजों के प्रकार, चट्टानों का अपक्षय एवं मृदा निर्माण, मृदा निर्माण के कारक	20	4
2.	मृदा जीवांश पदार्थ एवं मृदा सूक्ष्म जीव – परिभाषा, स्रोत, संगठन, विघटन, विघटन को प्रभावित करने वाले कारक, ह्यूमस, परिभाषा, गुण एवं निर्माण, जीवांश पदार्थ का मृदा गुणों एवं उर्वरता पर प्रभाव, मृदा सूक्ष्म जीव, कार्बन नाइट्रोजन अनुपात एवं नाइट्रोजन चक्र, सहजीव व असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण।	20	3
3.	मृदा कोलाइड – परिभाषा, प्रकार एवं महत्व, गुण एवं वर्गीकरण, मृदा में पाये जाने वाले प्रमुख क्ले खनिज, मृदा में क्ले का महत्व	15	4
4.	आयन विनिमय – आयन विनिमय–महत्व, धनायन विनिमय क्रिया विधि, विनिमय आयनों का प्रकार, धनायन विनिमय क्षमता परिभाषा, महत्व व प्रभावित करने वाले कारक, मृदा का प्रतिशत बेस संतृप्ति, धनायन एवं पौधों का पोषण	10	3
5.	मृदा अभिक्रिया (pH), पी–एच स्केल, पी–एच में मुख्य परिवर्तन, मृदा पी–एच का पोषक तत्वों की प्राप्ति से संबंध, मृदा पी–एच का मृदा सूक्ष्म जीवों, पौधों की वृद्धि एवं रोगों पर प्रभाव उभय प्रतिरोधक	15	3
6.	अम्लीय एवं लवणीय प्रभावित मृदाऐं – परिभाषा, विशेषताएं, अम्लीय मृदा बनने के कारण, पौधों पर अम्लता का प्रभाव एवं रासायनिक सुधार, लवण प्रभावित मृदाओं का वर्गीकरण, परिभाषा, लवणीय एवं क्षारीय मृदा बनने के कारण एवं निर्माण, मृदा क्षारता एवं लवणीयता का पौधों पर प्रभाव, लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं की पहचान एवं उनका सुधार, सिंचाई जल की गुणवत्ता एवं लवणीय जल उपचार तथा प्रबंध	20	4

7.	पादपों के आवश्यक पोषक तत्व – वर्गीकरण, मृदा में पोषक तत्वों के उपलब्ध प्रारुप, पोषक तत्वों के पादप द्वारा अधिग्रहण की क्रियाविधि, उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक, पोषक तत्वों के प्रमुख कार्य व कमी के लक्षण	10	4
8.	विभिन्न उर्वरकों की मृदा में अभिक्रिया एवं फसलों पर प्रभाव उर्वरकों की परिभाषा व वर्गीकरण, यूरिया, कैल्शियम, अमोनियम नाइट्रेट (CAN), अमोनियम सल्फेट, डाई अमोनियम फास्फेट (DAP), सिंगल सुपर फास्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश, पोटेशियम क्लोराइड तथा पोटेशियम सल्फेट के गुण, संगठन तथा मृदा एवं फसलों पर प्रभाव	10	4
9.	कृषि रसायन एवं पर्यावरण प्रदूषण– कृषि रसायन–परिभाषा, प्रकार, महत्व, पर्यावरण तथा पर्यावरणीय प्रदूषण की परिभाषा, पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रकार, उनके हानिकारक प्रभाव एवं नियंत्रण के उपाय, कृषि रसायनों के अनियंत्रित प्रयोग का पर्यावरण प्रदूषण (मृदा, जल, वायु) पर प्रभाव एवं उनका नियंत्रण।	10	8
10.	जैव रसायन – परिरक्षक : परिभाषा, प्रकार, उपयोग एवं विशेषताएं। खाद्य रंग : परिभाषा, प्रकार, विशेषताएं एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव, काबोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन्स एवं एन्जाइम्स, परिभाषा, महत्व एवं उपलब्धता के प्रमुख स्रोत।	10	8
11.	जैविक/कार्बनिक खाद एवं जैव उर्वरक – जैविक खाद की परिभाषा, वर्गीकरण, जैविक खाद के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रभाव, गोबर की खाद, केंचुआ खाद, नाडेप कम्पोस्ट, हरी खाद बनाने की विधि, महत्व व मृदा पर प्रभाव, खलियां एवं उनका मृदा में महत्व, जैव उर्वरक–परिभाषा, वर्गीकरण, महत्व तथा लाभ, प्रयोग में सावधानियां, जैविक खाद एवं उर्वरक में भेद।	5	6
12.	दुग्ध रसायन – – दूध एवं खीस : परिभाषा, रासायनिक संगठन, पोषक मान, संगठन को प्रभावित करने वाले कारक। – दुग्ध उत्पादों (दही, मक्खन, घी, पनीर, क्रीम, छैना) का पोषण मान एवं रासायनिक संगठन। – दुग्ध में अपमिश्रण के लिए प्रयुक्त पदार्थ एवं उनका परीक्षण। – दूध प्रसंस्करण की विधियां, स्वच्छ एवं सुरक्षित दुग्ध उत्पादन, विपणन दूध एवं उसके प्रकार।	10	6

df"k jlk;u&ik;kfxd

		dkyk'T	vad
1.	मृदा नमूना लेने की विधि का प्रदर्शन।	2	3
2.	पानी/मृदा अम्लीय व लवणीय की pH एवं EC का मान ज्ञात करना।	4	3
3.	मृदा/सिंचाई जल मे CO_3^{2-} एवं HCO_3^-/Cl^- की उपस्थिति को ज्ञात करना अथवा	6	5
4.	मृदा में जैविक कार्बन/$CaCO_3$ प्रतिशतता ज्ञात करना।	4	
5.	जैविक खाद की परिपक्वता जांच के लिए स्टार्च आयोडीन परीक्षण अथवा	3	5
6.	दुग्ध में अपमिश्रण की जांच (यूरिया/स्टार्च/सिंथेटिक दुग्ध)	3	
7.	साधारण उर्वरकों में ऋणायन (CO_3^{2-}, HCO_3^-, Cl^-) एवं (NH_4^+, Na^+, Ca^{2+}, K^+) धनायन की पहचान।	8	5
8.	प्रादर्श : मृदा नमूने लेने के औजार, प्रयोगशाला में उपयोग होने वाले उपकरण, उर्वरक, कृषि रसायन (पीड़ा नाशक)	2	4
9.	प्रायोगिक अभिलेख	3	
10.	मौखिक परिचय	2	

vuØef.kdk

	v/;k;	i"B
1.	मृदा, खनिज चट्टानों का अपक्षय और मृदा निर्माण (Soil, Minerals, Weathering of Rocks & Soil Formation)	1—16
2.	मृदा जीवांश पदार्थ (Soil Organic Matter)	17—29
3.	मृदा कोलॉइड्स (Soil Colloids)	30—37
4.	आयन विनिमय (Ion-Exchange)	38—43
5.	मृदा अभिक्रिया (Soil Reaction)	44—51
6.	अम्लीय तथा लवण प्रभावित मृदाऐं (Acid and Salt affected soils)	52—73
7.	पादपों के आवश्यक पोषक तत्व (Essential Nutrients of Plants)	74—90
8.	उर्वरकों की मृदा में अभिक्रिया एवं फसलों में प्रभाव (Reaction of Fertilizers in Soil & Availability to Crops)	91—101
9.	कृषि रसायन एवं पर्यावरण प्रदूषण (Agrochemicals and Environmental Pollution)	102—128
10.	जैव रसायन (Bio Chemistry)	129—141
11.	जैविक खाद एवं जैव उर्वरक (Organic Manures and Bio fertilizers)	142—155
12.	दुग्ध रसायन (Dairy Chemistry)	156—184
13.	कृषि रसायन – प्रायोगिक (Agriculture Chemistry - Practical)	185—216

अध्याय – 1

मृदा, खनिज, चट्टानों का अपक्षय और मृदा निर्माण
(Soil, Minerals, Weathering of Rocks & Soil Formation)

मृदा (Soil) :

मृदा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द सोलम (Sloum) से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ फ्लोर अर्थात् फर्श है। मृदा को पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत माना जाता है। मृदा एक त्रिविमियम प्राकृतिक पिण्ड है जिसकी लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई होती है। मृदा पौधों की वृद्धि के लिये यांत्रिक आधार, जल एवं पोषक तत्वों को प्रदान करती है। मृदा भूमि की ऊपरी सतह पर असंगठित खनिज पदार्थ है तथा पादप वृद्धि के लिये प्राकृतिक माध्यम का कार्य करती है। मृदा को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है –

''मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड़ है जो प्राकृतिक पदार्थों पर प्राकृतिक बलों के प्रभाव से विकसित हुई है। प्रायः भिन्न–भिन्न गहराईयों के खनिज एवं कार्बनिक अवयवों के सस्तरों के अनुसार इसके भेद किये जाते हैं। ये संस्तर अपने नीचे स्थित पैतृक पदार्थों से आकारिकी, भौतिक गुण, बनावट, रासायनिक गुणों, संगठन एवं जैविक लक्षणों में विभिन्नता रखते हैं।''

–जोफे एवं मारबट

''मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड़ है जो विच्छेदित एवं अपक्षयित खनिज पदार्थों तथा कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से बने विभिन्न पदार्थों के परिवर्तनशील मिश्रण से परिच्छेदिका (प्रोफाईल) के रूप में विकसित होती है। यह पृथ्वी को एक पतले आवरण के रूप में ढकती है तथा जल एवं वायु की उपयुक्त मात्रा के मिलने पर पौधों को यान्त्रिक आधार पर जीविका प्रदान करती है।''

–बकमेन एवं ब्रेडी

मृदा की विशेषताएं (Characteristics of Soil)–

मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड (Natural body) है, यह पादप वृद्धि के लिए एक प्राकृतिक माध्यम है तथा कृत्रिम रूप से इसका संश्लेषण (synthesise) नहीं हो सकता है।

(1) विभिन्न संस्तरों में विभाजित होती है, पदार्थों के संचार, स्थानान्तरण तथा संचयन के कारण मृदाओं में विभिन्न परतें होती हैं।

(2) मृदाओं में विभिन्न पैतृक पदार्थों एवं जलवायु सम्बन्धी कारकों के कारण अकारकी (Morphologsical), रासायनिक एवं जैविक अंतर पाये जाते हैं।

मृदा के कार्य (Functions of Soil)–

(1) भूपपड़ी (earth crust) एवं वायुमण्डल के मध्य में मृदा एक आन्तरिक सतह (interface) होती है। इस प्रकार यह प्राकृतिक साधनों, जैसे ऊर्जा, जल, गैस एवं पोषक तत्वों का पुनःचक्र (recycling) करती है।

(2) मृदा पौधों की वृद्धि के लिए यांत्रिक आधार, जल एवं पोषक तत्व तथा पादप जड़ों को ऑक्सीजन प्रदाय करती है। मृदा सूर्य ऊष्मा को भण्डार करती है और उसे वृद्धि करते हुए पौधों को प्रदाय करती है।

(3) मृदा को ऊपरी सतह कृषि फसलों के उत्पादन में प्रयोग की जाती है। मृदा विभिन्न जीवों (पादप एवं जन्तु) के लिए प्राकृतिक निवास स्थान (habitat) होती है। मृदा का प्रयोग इमारतों के निर्माण, सड़कें तथा निरर्थक पदार्थों (waste material) को मिलाने में किया जाता है।

मृदा का अध्ययन (Study of Soil)–

मृदा विज्ञान का अध्ययन दो रूपों में किया जाता है–

अ. पैडोलोजी (Pedology)– मृदा को एक प्राकृतिक पिण्ड माना जाता है। यह विज्ञान मृदा के जन्म, निर्माण तथा वितरण से संबंधित है।

ब. मृदा शास्त्र (Edaphology)– मृदा का अध्ययन उच्च पादप समुदाय के दृष्टिकोण से किया जाता है।

मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड (Soil as a natural body)–

मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड है तथा इसका अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। इसके गुण विशेष तथा विभिन्न हैं। मृदा एक प्रकार से जीवित पिण्ड है, क्योंकि जीवित पदार्थों के समान मृदा का धीरे–धीरे विकास होता है। इनका जन्म पैतृक पदार्थों अथवा चट्टानों से होता है और यह परिपक्व अवस्था को पहुँच कर पूर्ण प्रोफाइल के रूप में विकसित हो जाती है। मृदा को एक गतिशील (dynamic) प्राकृतिक पिण्ड कहते हैं। ये जीव एवं सूक्ष्म जीव मृदा के विशेष कार्यों को भी प्रभावित करते हैं।

मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड है क्योंकि यह गहरी होती है और इसमें पृष्ठ क्षेत्रफल भी होता है। यह विनाशकारी एवं संश्लेषित प्रक्रमों से उत्पन्न एक प्राकृतिक पदार्थ है। इस प्रकार मृदा एक प्राकृतिक पदार्थ की सभी विशेषताओं जैसे विनाश संश्लेषण तथा परिवर्तन की पूर्ति करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मृदा, कार्बनिक एवं खनिज पदार्थ का एक प्राकृतिक पिण्ड है।

मृदा, पादप वृद्धि के लिए एक माध्यम (Soil as a medium for plant grwoth)–

पौधों की वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता सकता है :

(i) जलवायु (Climatic) सम्बन्धी कारक

(ii) जीवीय (Biotic) कारक तथा

(iii) मृदीय (Edaphic) कारक।

मृदीय वर्ग में मृदा के सभी भौतिक, रासायनिक और जैविक गुण तथा मृदा में होने वाली सभी प्रक्रम, जो मृदा की पौधों को खनिज तत्व एवं जल प्रदान करने की क्षमता को प्रभावित करती है, सम्मिलित है। मृदा पौधों की वृद्धि के लिए निम्न आवश्यक दशायें प्रदान करती हैं–

(i) आवश्यक खाद्य तत्व (Essential Nutreint)– सभी पौधों को अपने पोषक के लिए कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, गन्धक तथा अन्य सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता होती है। मृदा से पौधों को फॉस्फोरस, पोटेशियम, गन्धक, कैल्शियम, लोहा, बोरोन, मैंगनीज, जस्ता, तांबा, मोलिब्डेनम और क्लोरीन प्राप्त होती है। नाइट्रोजन मृदा तथा हवा दोनों से मिलती है। वायु एवं जल से पौधों को कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलती हैं।

(ii) जल (Water)– यह मृदा का एक प्रमुख अंग है। मृदा से जितने खाद्य पदार्थ पौधे लेते हैं, उनमें पानी का भाग सर्वाधिक होता है। पौधों के लिए पानी की मात्रा कम होने पर कोशिकाओं का विस्तार एवं विभाजन कम हो जाता है। पौधों में प्रकाश संश्लेषण के लिए पानी आवश्यक है तथा इसकी कमी में यह आवश्यक क्रिया धीमी पड़ जाती है। जल एक अच्छा विलायक है और पोषक तत्वों को घोल लेता है तथा स्वयं भी पौधों के लिए पोषक का कार्य करता है। मृदा ताप एवं मृदा वायु भी जल के द्वारा नियंत्रित रहते हैं। खनिज तथा कार्बनिक पदार्थों के चारों ओर जल भ्रमण करता है तथा इनसे अनेकों पदार्थों को विलेय करके मृदा विलयन बनाता है।

(iii) जड़ों के श्वसन के लिए ऑक्सीजन (Supply of Oxygen for root resperation)– सभी जीवित पदार्थों (जन्तु एवं पौधे) के लिए श्वसन अनिवार्य होता है और श्वसन के लिए ऑक्सीजन नितान्त आवश्यक है। पौधों की जड़ों के श्वसन के लिए ऑक्सीजन मृदा वायु से प्राप्त होती है। साधारणतः मृदा वायु से 20.3 प्रतिशत ऑक्सीजन, 79.01 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 0.3 प्रतिशत CO_2 मिलती है। मृदा वायु से उचित मात्रा में ऑक्सीजन न मिलने पर पौधों की जड़ों की वृद्धि नहीं हो पाती, फलतः पौधों की वृद्धि भी रुक जाती है।

(iv) यांत्रिक आधार (Mechanical Support)– कुछ मृदाओं की भौतिक एवं रासायनिक दशायें ऐसी होती है जिनमें पौधों की जड़े आसानी से गहराई तक जा सकती हैं तथा फैल भी सकती है। ये मृदाएं आदर्श होती है क्योंकि इनमें वृद्धि करने वाले पौधे पवन दृढ़ (Wind firm), जलाभाव सह (drought resistant) होते हैं तथा ये मृदा के एक आयतन के पोषकों को शोषित कर सकते हैं। पौधें की जड़ें प्राकृतिक या कृत्रिम कड़ी परतों, अउर्वरा संस्तरों, नमी की अत्यधिक या न्यूनतम मात्रा तथा विषैले विलेय लवणों की उपस्थिति में उचित प्रकार से या बिल्कुल भी वृद्धि नहीं करते।

पौधों की वृद्धि के लिए उपरोक्त आवश्यक दशाओं के अतिरिक्त अनुकूल मृदा ताप का होना आवश्यक है क्योंकि यह पौधों द्वारा मिट्टी से खाद्य पदार्थ प्राप्त करने, जल शोषण तथा जड़ों की वृद्धि को प्रभावित करता है। उपरोक्त सभी दशाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पौधों की वृद्धि के लिए मृदा एक आवश्यक माध्यम है।

मृदा अवयव (Components of Soil)-

मृदा प्रणाली में तीन प्रावस्थायें– ठोस, द्रव एवं गैस पाई जाती है। पौधों को खाद्य तत्व प्रदान करने की दृष्टि से केवल ठोस एवं द्रव अवस्थाएं ही महत्वपूर्ण है। मृदा के ठोस अवयव महीन अवस्था में होते हैं। मृदा आयतन का लगभग 50 प्रतिशत भाग ठोस पदार्थों से घिरा रहता है। शेष भाग में जल एवं वायु उपस्थित रहती है जिसे रध्रांवकाश कहते हैं। मृदा के मुख्य चार अवयव होते हैं –

(i) खनिज पदार्थ (Mineral Matter)

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic Matter)

(iii) जल (Water) व

(iv) मृदा वायु (Soil Air)

अवयवों को निम्न रूप से प्रदर्शित कर सकते हैं –

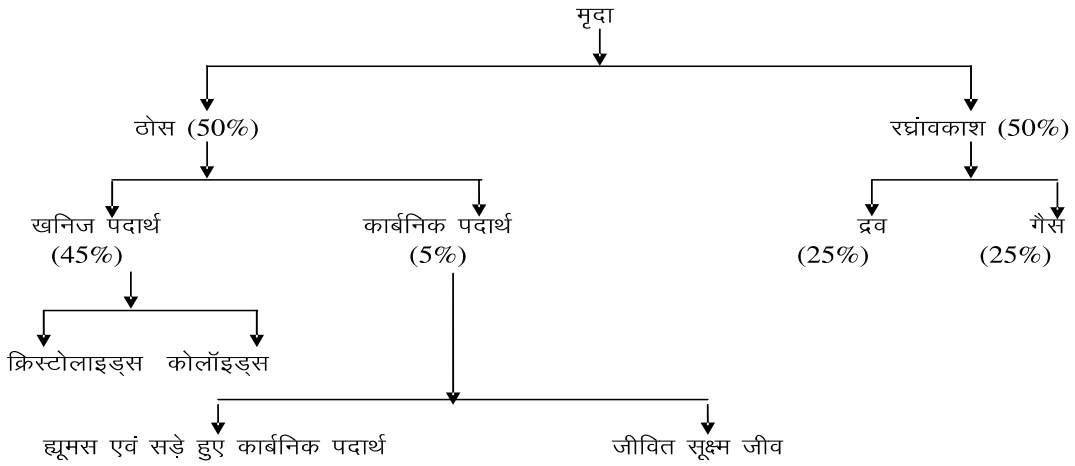

मृदा में जल एवं वायु का अनुपात 50:50 होता है परन्तु मौसम एवं वातावरणीय कारकों के कारण इनका अनुपात घटता–बढ़ता रहता है।

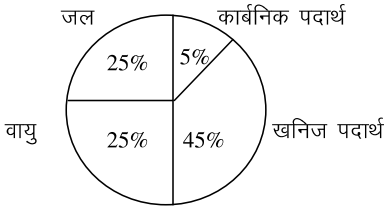

चित्र–1.1 मृदा का आयतनात्मक संगठन

(i) खनिज पदार्थ (Mineral Matter)– मृदा में खनिज पदार्थों का आकार एवं संगठन उनके पैतृक पदार्थों के अनुसार होता है। ये खनिज पदार्थ चट्टानों के अपक्षय से प्राप्त होते हैं। ठोस भाग के 90 प्रतिशत से अधिक भाग में खनिज पदार्थ होते हैं जो कि विभिन्न आकार के कणों में पाये जाते हैं। मृदा में कंकड, पत्थर, बालू, सिल्ट एवं मृतिका में इसका अंश पाया जाता है। मृदा में बालू एवं सिल्ट अंश में अधिक मात्रा में खनिज क्वार्टज एवं फेल्सपार हैं। मृदा में मृतिका अंश में द्वितीयक खनिजों की प्रधानता होती है। मृदा के खनिज पदार्थों में लगभग 90 प्रतिशत सिलिका, एल्यूमिनियम, आयरन एवं ऑक्सीजन होती है।

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic Matter)– मृदा में कार्बनिक पदार्थ, पौधों एवं पशुओं के अवशेषों के सड़ने–गलने के फलस्वरूप 3–5 प्रतिशत भारात्मक भाग के रूप में रहते हैं। मृदा में सूक्ष्मजीवों के निरन्तर विच्छेदन से मृदा की उत्पादकता बनी रहती है। कार्बनिक पदार्थ, मृदा में पौषक तत्वों को प्रदान करता है। मृदा वातन में बढ़ोतरी, जल धारण क्षमता में बढ़ोतरी एवं मृदा संरचना में सुधार आदि इसके कारण होता है। मृदा कार्बनिक पदार्थ प्रायः आंशिक विच्छेदित के रूप में या सड़े–गले पदार्थ (ह्यूमस) के रूप में पाये जाते है।

(iii) मृदा जल (Soil Water)–मृदा जल का हिस्सा आयतानुसार 25 प्रतिशत होता है। जल मृदा रध्रांकाशों में परिवर्तनीय बलों की मात्रा से धारित होता है। पौधों के पोषण के लिए मृदा जल की भूमिका अहम है। यह लवणों एवं पोषक तत्वों के साथ विलयन बनाकर पौधों को पोषित करता है। मृदा संरचना, मृदा गठन, कार्बनिक एवं अकार्बनिक मृदा कोलाईड्स की प्रकृति, रध्रांवकाशों की मात्रा आदि पर मृदा जल निर्भर रहता है।

(iv) मृदा वायु (Soil Air)– रध्रांकाश में मृदा वायु का आयतन 25 प्रतिशत होता है। मृदा वायु रध्रांवकाशों में उपस्थित रहती है। इस कारण इसका वितरण असमान होता है। मृदा में कार्बन डाई ऑक्साईड की मात्रा (0.3 प्रतिशत) वायुमण्डलीय कार्बन डाई ऑक्साईड (0.03 प्रतिशत) से अधिक होती है। यह जल वाष्प से संतृप्त रहती है। इसमें ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन की मात्रा वायुमण्डल से कम होती है। मृदा वायु में कार्बन डाई ऑक्साईड की मात्रा गहराई के साथ बढ़ती है एवं ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है।

पृष्ठ मृदा एवं अवमृदा (Surface Soil and Sub-oil) :

पृष्ठ मृदा– मृदा की ऊपरी परत जिस पर कृषि कार्य करते समय औजार तथा मशीनरी आदि चलाते हैं, पृष्ठ मृदा कहलाती है। यह परत 0–15 सेन्टीमीटर तक होती है एवं उपजाऊ होती है।

अवमृदा– ऊपरी सतह से नीचे की परत जो पैतृक पदार्थ तक गहरी होती है, अवमृदा कहलाती है।

पृष्ठ मृदा एवं अवमृदा में अन्तर

	पृष्ठ मृदा (Surface-soil)	अवमृदा (Sub-soil)
1.	यह पूर्ण रूप से अपक्षयित होती है।	यह मृदा आंशिक अपक्षयित होती है।
2.	इस मृदा में मृदा वातन अच्छा होता है एवं मृदा वायु एवं वायुमण्ड़ल के बीच गैसों का आदान–प्रदान अच्छा होता है।	इसमें मृदा वातन अच्छा नहीं होता है एवं गैसों का आदान–प्रदान भी कम होता है।
3.	इस मृदा में कार्बनिक पदार्थो ं की मात्रा ज्यादा होती है।	इस मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है।
4.	मृदा में सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता अधिक होती है।	इस मृदा में जीवों की संख्या एवं सक्रियता कम होती है।
5.	यह उपजाऊ मृदा है एवं अधिकतम पोषक तत्व पाये जाते हैं।	यह कम उपजाऊ होती है एवं इसमें कम ही पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं।
6.	इस मृदा का रंग गहरा भूरा या भूरा होता है।	इसका रंग हल्का या हल्का पीला होता है।
7.	धनायन विनिमय क्षमता अधिक होती है।	धनायन विनिमय क्षमता कम होती है।

मृदा परिच्छेदिका (Soil Profile) –

मृदा का ऊर्ध्वाघर (खड़ा) काट लगाने पर ऊपरी धरातल से मूल पदार्थ तक विभिन्न परतें मृदा के समानान्तर दिखाई देती हैं जिन्हें संस्तर कहते हैं। मृदा के इसी ऊर्ध्वाघर (खण्ड) काट करने के उपरान्त संस्तर दिखाई देते है। मृदा के ऊर्ध्वाघर अनुभाग में विभिन्न संस्तर दिखाई देते है इन सभी को मृदा परिच्छेदिका कहते हैं। मृदा परिच्छेदिका को ओ, ए, बी एवं सी बड़े अक्षरों से प्रदर्शित किया जाता है। सी संस्तर के नीचे ठोस चट्टान (R-Bed Rock) होती है।

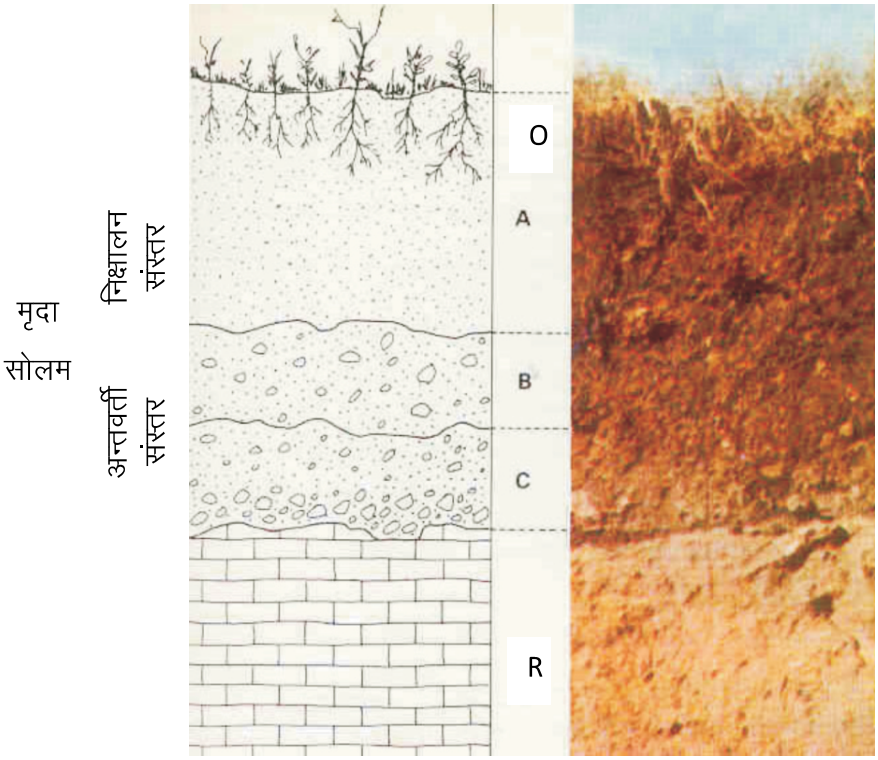

O_1 अल्पविघटित कार्बनिक पदार्थ

O_2 पूर्णरूपेण विघटित कार्बनिक पदार्थ

A_1 ह्यूमस युक्त खनिज पदार्थ संस्तर

A_2 निक्षालित संस्तर

A_3 परिवर्तनीय संस्तर

B_1 परिवर्तनीय संस्तर

B_2 निक्षेपित संस्तर

B_3 अन्तवर्ती संस्तर

C अपक्षयित पैतृक पदार्थ

'R' कठोर चट्टान

चित्र–1.2 पूर्ण विकसित मृदा परिच्छेदिका

मृदा परिच्छेदन में समानान्तर परतें जो एक–दूसरे से गुणों में भिन्न होती है संस्तर कहलाती है। इसका विवरण निम्न प्रकार से है–

O संस्तर (O horiozon)– इसे 'O' संस्तर कहते है। इसमें O_1 उप संस्तर बिना सड़े–गले पदार्थ होते हैं जिन्हें नग्न आंखों से पहचाना जा सकता है। O_2 उप संस्तर में पूर्ण अपघटित पादप एवं जन्तु अवशेष पाये जाते है जिन्हें नग्न आंखों से पहचाना नहीं जा सकता।

A संस्तर (A horiozon)– यह सबसे ऊपरी खनिज संस्तर है। इस संस्तर में A_1 उप संस्तर में कार्बनिक पदार्थों का खनिजों के साथ मिश्रण पाया जाता है जिसके कारण इसका रंग गहरा होता है। A_2 उप संस्तर में मृतिका, लौहा एवं एल्यूमिनियम ऑक्साइड का निक्षालन नीचे के संस्तरों में हो जाता है एवं क्वार्टजस का सान्द्रण बढ़ता है। A_3 संस्तर परिवर्तनशील संस्तर है जिसमें मुख्य गुण A संस्तर के होते है।

B_1 संस्तर (B_1 horiozon) भी परिवर्तनशील संस्तर है जिसमें B संस्तर के गुणों की अधिकता होती है। B_2 संस्तर को निक्षेपित या संचयन संस्तर भी कहते है जिसमें मृतिका, लौहा एवं एल्यूमिनियम के ऑक्साईड निक्षालित होकर जमा हो जाते हैं। B_3 संस्तर B एवं C संस्तर के मध्य अर्न्तवर्ती परत है।

C संस्तर (C horiozon) में कम विघटित एवं अपक्षयित मूल पदार्थ पाये जाते है। सबसे नीचे 'R' संस्तर कठोर चट्टान होती है।

पृथ्वी (Earth)–

पृथ्वी ब्रह्माण्ड का एक अत्यन्त सूक्ष्म भाग है। इसकी ऊपरी सतह मृदा से ढकी होती है। पृथ्वी उन नौ उपग्रहों में से एक है जो सूर्य के चारों ओर घूमती है। पृथ्वी की उत्पत्ति के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि यह प्रारम्भ में तप्त अवस्था में लावा के रूप में थी, जो शीतल होकर वर्तमान ठोस अवस्था में परिवर्तित हुई। पृथ्वी का सतह रुक्ष है, इसे उभरे हुए भाग पर्वत तथा खोखले एवं गढ्डे पानी से भरकर समुद्र एवं झील बनाते हैं। भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी तीन मण्डलों वायुमण्डल, जल मंडल तथा थल मण्डल से मिलकर बनी है।

वायुमण्डल (Atmosphere)–

यह जल मण्डल की अपेक्षा हल्का होता है तथा समुद्र की सतह पर इसका दाब 14.6 पौण्ड प्रति वर्ग इंच होता है। यह भूमि का केवल 0.03 प्रतिशत (भार की दृष्टि से) भाग होता है। इसमें गैसों का मिश्रण, जिसमें नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, CO_2 तथा जल वाष्प मुख्य होती है, पाया जाता है। इसमें निष्क्रिय गैसें (Inert Gases) जैसे हीलियम, ऑर्गन, नियॉन, क्रिप्टन तथा जैनोन आदि पाई जाती है। वायुमण्डल का संगठन (भारात्मक) इस प्रकार हैं– नाइट्रोजन 79.9 प्रतिशत, ऑक्सीजन 20.7, जलवाष्प 0.17, CO_2 0.03, अन्य गैसें 1.33 प्रतिशत।

जल मण्डल (Hydrosphere)–

यह थल–मण्डल को घेरे हुए पानी की परत होती है। जल मण्डल समुद्र के रूप में होता है। यह पृथ्वी का केवल 6.9 प्रतिशत भाग होता है लेकिन जल का कुल आयतन समुद्र सतह से ऊपर जमीन के आयतन का लगभग 15 गुना होता है।

थल–मण्डल (Lithosphere)–

गैसों एवं जलीय आवरणों में जो आन्तरिक ठोस पिण्ड होता है, उसे थल–मण्डल कहते हैं। यह भूमि का 93.2 प्रतिशत भाग होता है। थल–मण्डल के दो भाग होते हैं–(1) बाहरी या ऊपरी ठंडी ठोस सतह तथा (2) आन्तरिक गर्म या पिघला हुआ पदार्थ। यह तीनों मण्डलों (जल, वायु एवं थल) में सबसे अधिक बाहरी होता है। थल मण्डल का घनत्व 5.5 होता है तथा ऊपरी परत का घनत्व 2.5 से 3.0 तक होता है। थल–मण्डल की ऊपरी या बाहरी ठोस परत, इसे भू–पपड़ी (Earth crust) भी कहते हैं, की मोटाई लगभग 10 से 20 मील आंकी गई है।

भू–पपड़ी (Earth crust)–

भू–पपड़ी (Earth crust) मुख्य रूप खनिजों की बनी होती है। थल–मण्डल की ऊपरी परत भू–पपड़ी कहलाती है। भू–पपड़ी का ऊपरी स्तर ऐसे शैलों से मिलकर बना है जिनके संघटक एल्यूमिनियम सिलिकेट खनिज है। इस स्तर को सिएल (sial) भी कहते हैं। इसका औसत घनत्व 2.65 ग्राम/घ. सेमी. है। सिएल के ठीक नीचे मुख्यतः मैग्नीशियम सिलिकेट खनिजों से बनी, स्तर 'समै' (sima) होती है। भू–पपड़ी में निष्क्रिय गैसों के अतिरिक्त लगभग सभी तत्व पाए जाते हैं।

चट्टानें (Rocks)

एक या एक से अधिक पदार्थों से बनी हुई ठोस पिण्ड को चट्टान कहते हैं। चट्टानों का भौतिक तथा रासायनिक संगठन उसमें पाये जाने वाले खनिजों के गुणों पर निर्भर करता है। एक खनिज से बनी चट्टान का उदाहरण लाइम स्टोन है जो कैल्साइट खनिज से मिलकर बनी है। ग्रेफाइट कई खनिजों से मिलकर खनिज चट्टान है। प्रत्येक चट्टान की निश्चित विशेषताएं जैसे–संरचना, रंग, आपेक्षिक घनत्व, टूटना तथा खनिज संगठन होती है।

चट्टानों का वर्गीकरण (Classification of Rocks) :

चट्टानों को उत्पत्ति एवं संरचना के आधार पर तीन वर्गों में बांटा गया है।

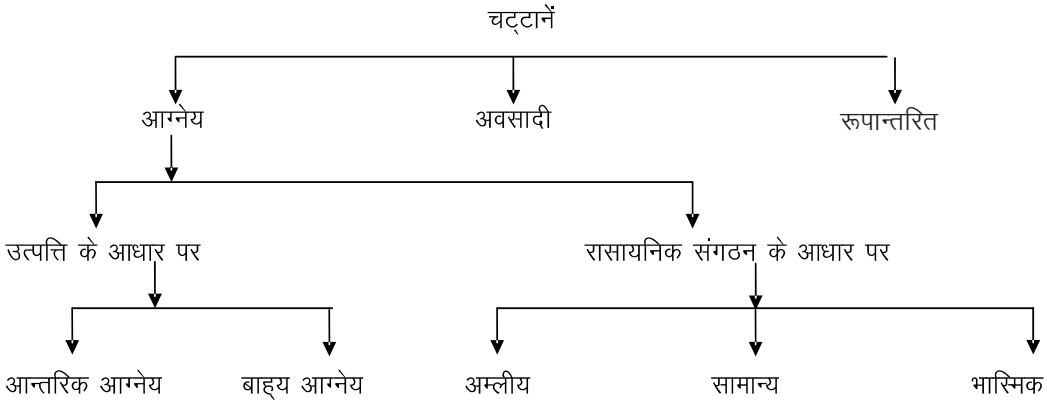

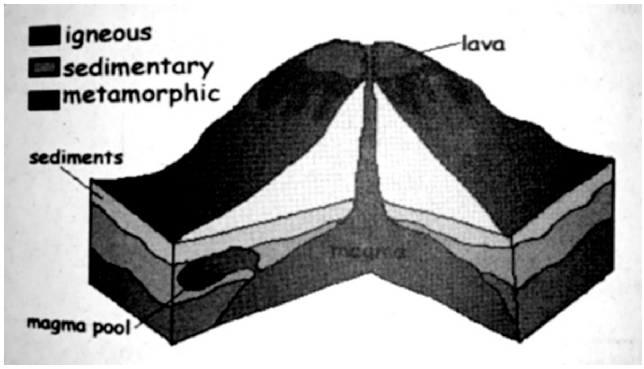

चित्र द्वारा मृदा निर्माण करने वाली चट्टानों का प्रदर्शन

1. आग्नेय चट्टानें (Igneous Rocks) :

ताप के कारण पिघले हुए लावा के पृथ्वी की सतह या सतह के अन्दर ठोस रूप में एकत्रित होने से बनी चट्टान को आग्नेय चट्टान कहा जाता है। ये चट्टानें सबसे पुरानी एवं अन्य चट्टानों की जन्मदात्री मानी जाती हैं इसलिए इन्हें प्राथमिक चट्टानें भी कहते हैं। थल मण्ड़ल पर लगभग 95 प्रतिशत भाग इन्हीं चट्टानों का बना होता है।

उत्पत्ति के आधार पर आग्नेय चट्टानों को दो भागों में विभक्त किया गया है–

(i) आन्तरिक आग्नेय चट्टानें (Instrusive or plutonic rocks)– ज्वालामुखी के उद्‌गार का लावा, पृथ्वी के अन्दर ही ठण्ड़ा होकर चट्टान का रूप धारण कर लेता है तो उन्हें आन्तरिक आग्नेय चट्टान कहा जाता है। यह चट्टान धीरे–धीरे ठण्डी होकर क्रिस्टलीय रूप धारण कर लेती है। उदाहरणार्थ– ग्रेनाईट, क्वार्टस, डायोराइट, सिएनाइट।

(ii) बाह्य आग्नेय चट्टानें (Extrusive or volcanic rocks)– ज्वालामुखी के फटने के फलस्वरूप लावा सतह के बाहर आता है एवं ठण्ड़ा होकर शीघ्र ही ठोस पिण्ड़ का रूप धारण कर लेता है, बाह्य आग्नेय चट्टान कहलाती है। उदाहरणार्थ– बेसाल्ट, रायोलाइट।

रासायनिक संगठन के आधार पर आग्नेय चट्टानों को तीन भागों में विभक्त किया गया है–

- **अम्लीय आग्नेय चट्टानें (Acidic igneous rocks)**– इन चट्टानों में सिलिका की मात्रा 65–85 प्रतिशत होती है, जैसे– ग्रेनाईट, सेण्डस्टोन।
- **माध्यमिक आग्नेय चट्टानें (Intermediate igneous rocks)**– इन चट्टानों में सिलिका की मात्रा 55–65 प्रतिशत होती है। जैसे– एण्डीसाइट, डायोराइट, सिएनाइट।
- **भास्मिक आग्नेय चट्टानें (Basic igneous rocks)**– इन चट्टानों में सिलिका की मात्रा 45–55 प्रतिशत तक पाई जाती है। जैसे– बेसाल्ट, लाईमस्टोन।

आग्नेय चट्टानों की विशेषताएं (Characteristics of Igneous Rocks)–

- इन चट्टानों में परतों का अभाव रहता है अर्थात् ये स्तरहीन होती है।
- ये क्रिस्टलीय होती हैं परन्तु क्रिस्टलों की संख्या एवं स्वरूप अनिश्चित होता है।
- इनमें गोल कणों का अभाव रहता है परन्तु अपक्षय के दौरान टूटने से गोलकण का निर्माण होता है।
- ये चट्टानें सघन, अति कठोर एवं संगठित होती हैं।

मुख्य आग्नेय चट्टानें (Main Igneous Rocks) :

(i) ग्रेनाइट (Granite)– ये चट्टानें कठोर, क्रिष्टलीय, मोटे दाने वाली, अम्लीय तथा संपुजित होती है। इनका रंग हल्का होता है। इनके दाने चमकदार होते हैं। ये अम्लीय प्रवृति की होती है। ये फेल्सपार, माइका, क्वार्ट्ज, हार्नब्लैड एवं आर्थोक्लेज

चट्टानों से बनती हैं।

(ii) बेसाल्ट (Basalt)– ये चट्टानें सूक्ष्म, क्रिष्टलीय गठन वाली होती हैं। इनका रंग गहरा होता है एवं अधिक गहरे रंगों में गहरे हरे से लेकर काले रंग में पाई जाती हैं। आमतौर पर इसका रंग गहरा भूरा या काला होता है। कुछ हरे, भूरे एवं नीले रंग में भी पाई जाती हैं। बेसाल्ट कठोर तथा दानेदार होती हैं। ये भास्मिक प्रवृति की होती है।

2. अवसादी या परतदार चट्टानें (Sedimentary Rocks) :

आग्नेय चट्टानों के अपक्षय के फलस्वरूप प्राप्त सामग्री तलछट (Sediment Rocks) को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जमा होने से जिन चट्टानों का निर्माण होता है, अवसादी चट्टानें कहलाती हैं। इन चट्टानों का निर्माण जल एवं वायु द्वारा होता है। इन्हें जलज चट्टाने (Shale Rocks) भी कहते हैं। उदाहरणर्थ– सेण्डस्टोन, शैल, डोलोमाइट, चूना पत्थर।

विशेषताएं–

- ! ये चट्टानें परतों के रूप में पाई जाती हैं।
- ! पौधे एवं जीव–जन्तु के अवशेष पदार्थ मूलरूप में पाये जाते हैं एवं कठोर होते हैं।
- ! सूक्ष्म कण ऊपर की परत में एवं बड़े कण नीचे की परतों में पाये जाते हैं।
- ! अन्य चट्टानों की अपेक्षा ये छिद्रदार एवं कोमल होती हैं।

मुख्य अवसादी चट्टानें (Main Sedimentary Rocks) :

(i) चूना पत्थर (Lime Stone)– यह एक महत्वपूर्ण अवसादी चट्टान है ये चट्टानें सीप, घोंघा, मूँगा एवं पौधों से बनती हैं। खनिजों के मिश्रित होने के कारण इसका रंग सफेद से लेकर भूरे एवं धूसर से लेकर काले रंगों में पाया जाता है। इसमें कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा 40 प्रतिशत से 98 प्रतिशत तक होती है। इसलिये नमक अम्ल के साथ क्रिया करके कार्बन–डाई–ऑक्साइड बनाती हैं।

(ii) बालू पत्थर (Sand Stone)– यह पत्थर बालू से बनता है इसमें मुख्यरूप से क्वार्ट्ज खनिज के कण, सिलिका, लोहा, ऑक्साइड और चूने से संयोजित होते हैं। इन चट्टानों की सतह खुरदरी होती है। इसका रंग काला, पीला, गुलाबी, धूसर और लाल में मिलता है। यह चट्टानें स्तरित होती हैं, इनकी मोटाई सेन्टीमीटर से मीटरों तक पाई जाती है।

3. रूपान्तरित चट्टानें (Metamorphic Rocks) :

आग्नेय एवं अवसादी चट्टानों के मूल रूप में रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन के उपरान्त बनी चट्टानों को रूपान्तरित चट्टानें कहा जाता है। चट्टानों में यह परिवर्तन जल, दाब एवं ताप के प्रभाव के कारण होता है। इस कारण इन्हें जलीय, तापीय एवं दाब रूपान्तरण कहा जाता है, उदाहरणार्थ–स्लेट, संगमरमर, शिष्ट ।

रूपान्तरित चट्टाने दो प्रकार की होती है:–

(अ) शल्कित चट्टानें (Foliated Rocks)– इन चट्टानों में होने वाली इस शल्किन (foliation) एक भौतिक दशा होती है। इसके अन्तर्गत खनिज, प्लेटनुमा, समान्तर रूप में व्यवस्थित होते हैं। ये दानेदार शल्कित चट्टानें होती हैं। इनके उदाहरण नीस, मैग्नेटाइट, शिष्ट इत्यादि है।

(ब) अशल्कित चट्टानें (Non-Foliated Rocks)– इसमें पाये जाने वाले सभी खनिजों के अवयव प्रायः समान विमाओं वाले होते है। इनमें डोलोमाइट के अतिरिक्त क्वाट्जाइट अत्यन्त कठोर एवं संगमरमर मध्यम कठोर, अशल्कित चट्टानों के उदाहरण है।

विशेषताएं (Characteristics of Metamorphic Rocks)–

- ! ये चट्टानें प्रायः अत्यन्त कठोर एवं आग्नेय चट्टानों की भांति रवेदार होती हैं।
- ! ये शल्कित एवं अशल्कित दोनों प्रकार की होती है।
- ! ये चट्टानें क्रिस्ट्रलीय होती है।

मुख्य रूपान्तरित चट्टानें (Main Metamorphic Rocks) :

(i) शिष्ट (Schist)– इनकी उत्पति आग्नेय और अवसादी चट्टानों से होती है। दाब और ताप के प्रभाव के कारण उनके रूपान्तरण होने से शिष्ट का निर्माण होता है। जैसे– फेल्सपार के ऊपर क्वार्ट्ज, क्वार्ट्ज के ऊपर माइका की परत आदि। ये दानेदार चट्टानें होती हैं क्योंकि इनके कण क्रिस्ट्रलीय होते है। चट्टानों के तोड़ने के बाद उसके स्तर अलग–अलग हो जाते है। इनको पतली होने के कारण विभेदित करना कठिन है।

(ii) संगमरमर (Marble)– संगमरमर का निर्माण चूना पत्थर से होता है। इसका प्रमुख खनिज कैल्साइट ($CaCO_3$) होता है। शुद्ध कैल्साइट चूने पत्थर से बना संगमरमर बिल्कुल सफेद होता है। दूसरे खनिजों से कुछ रंग भी विकसित हो जाते हैं। राजस्थान के नागौर जिले में मकराना तथा किशनगढ़ (अजमेर) का संगमरमर उत्तम माना जाता है।

मृदा उत्पादक खनिज पदार्थ (Soil Forming Minerals)–

चट्टानों के विघटन से खनिजों का निर्माण होता है। खनिज पदार्थ प्रकृति में पाए जाने वाले समांग अकार्बनिक पदार्थ है जिनका रासायनिक संगठन निश्चित होता है। प्रायः इनकी निश्चित आकृति या रूप भी होता है। खनिज पदार्थ दो या दो से अधिक तत्वों के रासायनिक योग से बनते हैं।

निश्चित संगठन के ऐसे रासायनिक यौगिकों को जो दो या दो से अधिक तत्वों से मिलकर बनते हैं, खनिज कहलाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक खनिज एक रासायनिक यौगिक होता है।

खनिज पदार्थों के गुण (Characteristics of Minerals)–

(1) खनिज पदार्थों के विभिन्न रंग होते हैं, जैसे नीले, हरे, पीले आदि।

(2) खनिजों में विभिन्न प्रकार की चमक होती है, जैसे–स्वर्ण, कॉपर, आदि में एक निश्चित धात्विक चमक होती है। इसी प्रकार काँच, डायमण्ड आदि में अधात्विक चमक होती है।

(3) खनिज पदार्थों का अपना अलग–अलग विशेष आकार होता है, जिसे रवा कहते हैं। ये घनाकार चतुष्कोणीय, ट्राइमेट्रिक, मोनोक्लीनिक, ट्राइक्लीनिक षटभुजाकार आकार के होते हैं।

(4) खनिज पदार्थ बहुत कठोर होते हैं, जैसे–हीरा।

(5) कुछ खनिज पूर्ण पारदर्शी, कुछ अल्पपारदर्शी तथा कुछ अपारदर्शी होते हैं।

(6) कुछ खनिज अधिक भारी, कुछ मध्यम भार के तथा कुछ हल्के होते हैं। खनिजों के भार को आपेक्षिक घनत्व से प्रकट करते हैं।

खनिजों का वर्गीकरण (Classification of Minerals)–

(1) उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण (Classification on the basis of genesis)–

उत्पत्ति के आधार पर खनिजों को दो भागों में विभाजित किया गया है

(1) प्राथमिक खनिज (Primary Minerals)– जब खनिज पदार्थों का निर्माण चट्टानों के निर्माण के समय, पिघले द्रव पदार्थ के ठण्डा होकर ठोस अवस्था में जमने से होता है, तो ऐसे खनिज पदार्थों को प्राथमिक खनिज कहते हैं। ये खनिज चट्टानों के आवश्यक संघटक होते हैं इसलिए इन्हें आवश्यक खनिज भी कहते हैं। इनके कणों का आकार 2μ या 0.002 मिमी. से अधिक होता है। द्वितीयक खनिजों का निर्माण इन्हीं से होता है। उदाहरणार्थ– क्वार्टज, आर्थोक्लेज, मस्कोवाइट, बायोटाइट, हार्नब्लैंडे, औगाइट, ओलीवायन, माइका, फेल्सपार, चूना–पत्थर, मैगनीसाइट।

(2) द्वितीयक खनिज (Secondary Minerals)– मूल प्राथमिक खनिजों या चट्टानों के ऊपर जलवायु एवं रासायनिक सम्बन्धी कारकों की अभिक्रिया होने से ये खनिज बनते हैं। इनके कणों का आकार 2μ से कम होता है। उदाहरणार्थ– पाइराइट्स (FeS_2), गिब्बसाइट, जिप्सम, एपेटाइट, हीमेटाइट, केओलिनाइट, इलाइट, मान्टमोरियोलाइट, जिओलाइट।

(2) रासायनिक संघनट के आधार पर वर्गीकरण (Classification on the basis of chemical composition)–

(1) तत्व– हीरा, गन्धक आदि खनिज तत्व समूह में आते हैं।

(2) ऑक्साइड– इसके अन्तर्गत क्वार्टज, हीमेटाइट, मैग्नेटाइट, लाइमोनइट आदि आते हैं।

(3) कार्बोनेट वर्ग– इसके अन्तर्गत केल्साइट, डोलोमाइट, मैग्नेसाइट, साइडेसाइट आदि आते हैं।

(4) फेल्सपार वर्ग– ये खनिज अधिक महत्वपूर्ण है। इन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है–

(i) आर्थोक्लेज फेल्सपार– यह अम्लीय चट्टानों का विशेष अंग माना जाता है। मृदा से प्राप्त होने वाला पोटाश इसी के अपक्षय से प्राप्त होता है। आर्थोक्लेज फेल्सपार के जल विश्लेषण से क्ले खनिजों का निर्माण होता है, जो चिकनी मिट्टी के मुख्य अवयव होते हैं।

(ii) प्लेजियोक्लेज फेल्सपार– कैल्शियम फेल्सपार, सोडियम फेल्सपार, सोडा लाइम फेल्सपार

(5) माइका वर्ग– इनकी रचना अति संकीर्ण होती है। यह पोटैशियम, हाइड्रोजन, आयरन, मैग्नीशियम तथा लीथियम आदि के हाइड्रेटिड एल्युमिनियम आर्थोसिलिकेट होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

(i) मस्कोवाइट (सफेद माइका)– यह पोटैशियम, एलुमिनियम सिलिकेट होता है।

(ii) बायोटाइट (काली माइका)– यह पोटैशियम, एल्युमिनियम, मैग्नीशियम, आयरन के सिलिकेट होते हैं।

(6) एपेटाइट वर्ग– यह क्रिस्टलीय कैल्शियम फॉस्फेट है। मृदा फॉस्फेट का स्रोत है।

(7) हार्नब्लेंडे वर्ग– इसके अन्तर्गत एलुमिनियम सिलिकेट, कैल्शियम सिलिकेट, मैग्नीशियम सिलिकेट, आयरन सिलिकेट आते हैं।

चट्टानों का अपक्षय (Weathering of Rocks) :

अपक्षय वह क्रिया है जिसके फलस्वरूप मृदा के पैतृक पदार्थ का निर्माण होता है। चट्टानों का अपक्षय तीन प्रकार का होता है–

1. भौतिक या यान्त्रिक अपक्षय
2. रासायनिक अपक्षय
3. जैविक अपक्षय

1. भौतिक या यान्त्रिक अपक्षय (Physical

Weathering)– विभिन्न भौतिक शक्तियों द्वारा ठोस एवं स्थूल चट्टानों का टूटकर छोटे–छोटे टुकड़ों में विघटन होने की प्रक्रिया को भौतिक अपक्षय कहा जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप बनने वाले पदार्थ का रासायनिक संगठन नहीं बदलता है। यह प्रक्रिया निम्न भौतिक कारकों से होती है–

(i) तापक्रम (Temperature)– तापक्रम के बढ़ने के साथ–साथ चट्टानों की ऊपरी परत धीरे–धीरे गर्म होकर फैलने लगती है एवं तापक्रम कम होने पर सिकुडती है। इस प्रकार तापक्रम के बढ़ने एवं घटने से चट्टानें प्रसार एवं संकुचन से कमजोर होकर खंडित हो जाती है तथा बाद में छोटे–छोटे टुकड़ों में विघटित हो जाती है। इसके अतिरिक्त चट्टानों में पाये जाने वाले खनिज पदार्थों की ताप के साथ फैलने एवं सिकुड़ने की दरें भिन्न–भिन्न होती हैं। खनिजों की इस प्रवृति के कारण वे टूटकर अलग हो जाते है।

(ii) जल (Water)– वेग से प्रवाहित वर्षा जल के कारण चट्टानों का कुछ अंश टूटकर अलग हो जाता है। वर्षा जल जब इन टूटे–फूटे टुकड़ों को लेकर बहता है तो टुकड़ों के आपसी टकराव एवं घर्षण के कारण वे छोटे–छोटे भागों में विभक्त हो जाते हैं।



चित्र–नदी के जल द्वारा चट्टानों का अपक्षय का प्रदर्शन

(iii) बर्फ (Ice)– चट्टानों की दरारों में फंसा जल, ठण्डक के कारण बर्फ के रूप में जम जाता है तो उसका आयतन 9 प्रतिशत बढ़ जाता है। आयतन बढ़ने के कारण चट्टानें टूटने लगती हैं।



चित्र–बर्फ के जमने से चट्टानों के अपक्षय का प्रदर्शन

(iv) हिमजल (Glacier)– हिमजल अपने साथ चट्टानों के टुकड़े लेकर बहते हैं जिससे ये दाब एवं रगड़ से छोटे–छोटे टुकड़ों में परिवर्तित हो जाते हैं।

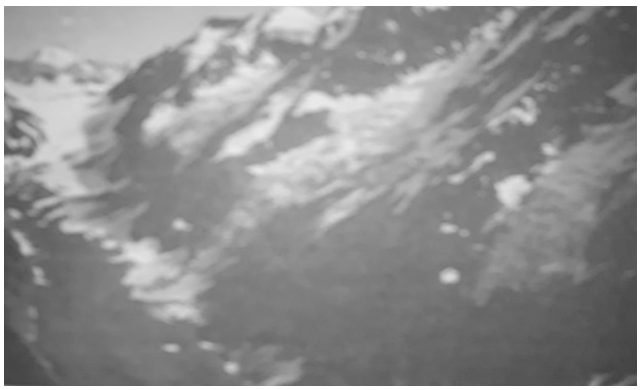

चित्र–हिमजल द्वारा चट्टानों का अपक्षय का प्रदर्शन

(v) हवा (Wind)– तेज वायु अपने साथ बालू एवं पत्थर के छोटे–छोटे कण उड़ा कर ले जाती हैं जिसके फलस्वरूप चट्टानों की ऊपरी परत का कुछ अंश टूट जाता है।



चित्र–हवा द्वारा चट्टानों का अपक्षय का प्रदर्शन

(vi) आकाशीय बिजली का कड़कना (Environmental Lightening)– वर्षा के मौसम में आकाशीय बिजली के कड़कने के फलस्वरूप चट्टानों में दरारें पड़ जाती है एवं बाद में ये टूटकर विखण्डित हो जाती हैं।

रासायनिक अपक्षय (Chemical Weathering) :

चट्टानों एवं खनिज पदार्थों के मूल रूप में रासायनिक संगठन में परिवर्तन के फलस्वरूप नये पदार्थों के बनने की प्रक्रिया को रासायनिक अपक्षय कहा जाता है। रासायनिक अपक्षय में जल की उपस्थिति होने के कारण यह प्रक्रिया तेज होती है। उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में यह गति मरू प्रदेशों की अपेक्षा अधिक होती है। रासायनिक अपक्षय निम्नलिखित प्रकार से होता है–

(i) जल अपघटन (Water Hydrolysis)– चट्टानों के खनिजों का सम्पक्र जब जल के साथ होता है तो जल का हाईड्रोजन आयन खनिजों के धन आयनों के साथ स्थानान्तरित

होने के कारण रासायनिक संगठन बदल जाता है। इस प्रक्रिया में जल अणु, हाइड्रोजन अणु (H^+) एवं हाइड्रोक्सिल अणु में टूट जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान चट्टानें निर्बल होकर टूटने लगती हैं। यह जल के अणु चट्टानों एवं खनिज पदार्थों के साथ मिलकर नये यौगिकों का निर्माण करते है। जल अपघटन एक दोहरा अपघटन प्रक्रम है–

$$\underset{\text{(आर्थोक्लेज)}}{KAlSi_3O_8} + \underset{\text{(जल)}}{HOH} \longrightarrow \underset{\text{(अम्लीय सिल्केट मृतिका)}}{HAlSi_3O_8} + \underset{\text{(पोटेशियम हाइड्रोक्साईड)}}{KOH}$$

आर्थोक्लेज फैल्सपार खनिज, जल योजन के फलस्वरूप अम्लीय सिल्केट मृतिका का यौगिक बनाती हैं जो अधिक विलेय होता है। यह पुनः संयोजन से बॉक्साईट का निर्माण करती है–

$$2HAlSi_3O_8 + 8\,HOH \longrightarrow \underset{\text{(बॉक्साईट)}}{Al_2O_3 \cdot 3H_2O} + \underset{\text{(सिलिसिक अम्ल)}}{6H_2SiO_3}$$

(ii) जलयोजन (Hydration)– जल योजन का अर्थ खनिजों के साथ जल के अणुओं का रासायनिक संयोग होता है। चट्टानों में पाये जाने वाले मृदा निर्माणक खनिजों में जल नहीं होता है। अतः नमी के वातावरण में जल योजन होने लगता है। यह क्रिया नम प्रदेशों में शुष्क प्रदेशों की तुलना में अधिक होती है। फैल्सपार, पाइरोक्सिन, एम्फीबोल्स आदि खनिजों में यह अभिक्रिया आसानी से होती है। उदाहरणार्थ–

$$\underset{\text{लाल हीमेटाईट}}{2Fe_2O_3} + 3\,H_2O \longrightarrow \underset{\text{पीला लाइमोनाइट}}{2Fe_2O_3.3H_2O}$$

$$\underset{\text{केल्शियम सल्फेट}}{CaSO_4} + \underset{\text{जल}}{2\,H_2O} \longrightarrow \underset{\text{जिप्सम}}{CaSO_4.2H_2O}$$

(iii) विलयन (Solution)– जल एक अच्छा विलायक है। इसमें कार्बन–डाई–ऑक्साईड, कार्बनिक एवं अकार्बनिक अम्ल एवं लवणों के संयोग से इसकी विलायक शक्ति बढ़ जाती है। सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम आदि आयन जल में घुलकर मूल खनिजों से पृथक हो जाते हैं। विलयन द्वारा अपक्षय यद्यपि बहुत कम होता है परन्तु अपक्षयित पदार्थ को मूल स्थान से हटा देता है। उदाहरणार्थ–

$$\underset{\text{विलय लवण}}{NaCl} + \underset{\text{जल}}{HOH} \longrightarrow \underset{\text{विलयन}}{Na^+, Cl^-, H_2O}$$

(iv) ऑक्सीकरण (Oxidation)– विभिन्न खनिजों के साथ ऑक्सीजन का संयोग, ऑक्सीकरण कहलाता है। आयरन, मैगनीज तथा सल्फाईड युक्त खनिजों का ऑक्सीकरण नमी की उपस्थिति में अधिक होता है। उदाहरणार्थ–

$$\underset{\text{फैरस ऑक्साइड}}{4\,FeO} + \underset{\text{ऑक्सीजन}}{O_2} \rightleftharpoons \underset{\text{फैरिक ऑक्साइड}}{2\,Fe_2O_3}$$

ऑक्सीकरण के कारण यौगिकों की घुलनशीलता एवं आयतन बढ़ने से अपक्षय सरल होता है।

(v) अपचयन (Reduction)– खनिजों से ऑक्सीजन का निकलना अपचयन कहलाता है। पानी की अधिकता के कारण ऑक्सीजन की कमी होती है जिसके कारण अपचयन की क्रिया होने लगती है। जैसे–

$$\underset{\text{फैरिक ऑक्साइड}}{2\,Fe_2O_3} \rightleftharpoons \underset{\text{फैरस ऑक्साइड}}{4\,FeO} + O_2$$

(vi) कार्बोनीकरण (Carbonation)– कार्बन डाई ऑक्साइड का क्षारों के साथ जुड़ना, कार्बोनीकरण कहलाता है। मृदा में जीवांश पदार्थ के अपघटन से कार्बन–डाई–ऑक्साइड बनती है जो जल से संयोग करके कार्बनिक अम्ल बनाती है। कार्बनिक अम्ल एक दुर्बल अम्ल है। इस प्रक्रिया के कारण कार्बोनेट एवं बाई–कार्बोनेट बनते हैं। उदाहरणार्थ–

$$\underset{\text{कार्बन–डाई–ऑक्साइड}}{CO_2} + \underset{\text{जल}}{H_2O} \longrightarrow \underset{\text{कार्बोनिक अम्ल}}{H_2CO_3}$$

$$\underset{\text{केल्शियम कार्बोनेट}}{CaCO_3} + \underset{\text{कार्बोनिक अम्ल}}{H_2CO_3} \longrightarrow \underset{\text{कैल्शियम बाइ कार्बोनेट}}{Ca(HCO_3)_2}$$

जैविक अपक्षय (Biological Weathering)–

भौतिक एवं रासायनिक अपक्षय के अलावा जीव भी चट्टानों को विखण्डित करते हैं। यह निम्न प्रकार से होता है :

(i) मनुष्य एवं जानवर (Effects of Man and Animals)– मनुष्य द्वारा रेल, सड़कें, बांध, नदी इत्यादि के लिए चट्टानों को चूर्ण–चूर्ण कर देता है। इस कारण बड़ी चट्टानें छोटे–छोटे टुकडों में विखण्डित हो जाती हैं। इसी प्रकार चिड़ियां और कीड़े आदि चट्टानों में छिद्र बना लेते है जिससे चट्टानें कमजोर होकर टूट जाती हैं।



चित्र– जानवरों द्वारा चट्टानों के अपक्षय का प्रदर्शन

(ii) पौधों का प्रभाव (Effect of Plants)– पौधों की जड़े, जब चट्टानों में प्रवेश करती है तो उन पर दाब के फलस्वरूप चट्टानें टूट जाती है। इन चट्टानों की दरारों में उपस्थित जड़ों द्वारा कार्बनिक अम्ल का निर्माण होता है जिससे चट्टाने अपघटित हो जाती है।

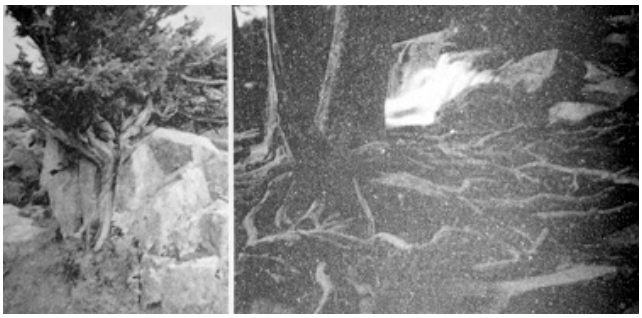

चित्र–पौधों की जड़ों द्वारा चट्टानों के अपक्षय का प्रदर्शन

(iii) सूक्ष्म जीवाणु (Effect of Microbes)– बैक्टिरिया, फंगस, एक्टिनोमाईसिटिज आदि चट्टानों एवं खनिजों से भोजन संश्लेषण के लिए पौषक तत्वों को ले लेते हैं जिससे चट्टानें दुर्बल हो जाती है। इसके अलावा पेड़–पौधों को सड़ा–गला कर कार्बनिक अम्ल और कार्बन–डाई–ऑक्साइड प्रदान करते हैं जिससे खनिजों एवं चट्टानों का विघटन हो जाता है।



चित्र–सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा चट्टानों के अपक्षय का प्रदर्शन

अपक्षय को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting the Weathering)–

खनिजों के अपक्षय को मुख्यतयाः निम्न कारक प्रभावित करते हैं –

(i) जलवायुवीय कारक (Climatic Factors)– यह कारक अपक्षय के प्रकार एवं दर को प्रभावित करते हैं। शुष्क दशाओं में भौतिक अपक्षय अधिक होता है जिसके कारण खनिजों का आकार घट जाता है तथा उनकी सतह का क्षेत्रफल बढ़ जाता है। नमी की मात्रा बढ़ने से रासायनिक अपक्षय अधिक होता है। आर्द्र क्षेत्रों में रासायनिक अपक्षय अधिक होता है।

(ii) भौतिक गुण (Physical Properties)– खनिज का आकार, कठोरता, सीमेन्टीकरण आदि अपक्षय को प्रभावित करते हैं। महीन आकार के खनिजों का अपक्षय मोटे खनिजों की अपेक्षा अधिक होता है। एक कठोर खनिज जैसे कि क्वार्टजाईट का भौतिक अपक्षय मन्दगति से होता है। फलस्वरूप रासायनिक अपक्षय भी कम क्षेत्रफल के कारण धीरे होता है।

(iii) रासायनिक एवं संरचनात्मक गुण (Chemical and Structural Properties)– एक खनिज के अपक्षय की दर उनके आकार, रासायनिक एवं क्रिस्टलाभ गुणों पर निर्भर करता है। कठोर क्रिस्टलाभ धीरे–धीरे अपक्षयित होते है।

मृदा निर्माण (Soil Formation) :

''मृदा उत्पत्ति मृदा पिण्ड का उद्भव (Evolution) है जो भू–पपड़ी के अपक्षय कटिबन्ध में होने वाले अनेक भू–रासायनिक चक्रीय प्रक्रमों द्वारा सम्पन्न होता है।'' चट्टानों का भौतिक, रासायनिक तथा जैविक शक्तियों द्वारा मृदा रूप में बदलना ही मृदा उत्पत्ति (soil genesis) कहलाता है। चट्टानें, जिनसे भू–पपड़ी बनी होती है, वायुमण्डल की क्रिया द्वारा टूटने लगती है, इनके टूटने से असंगठित पैतृक पदार्थ बनते हैं। इन मूल पदार्थों को रिगोलिथ (regolith) कहते है। रिगोलिथ के नीचे ठोस चट्टानें रहती हैं। परिवहन शक्तियों की अनुपस्थिति में रिगोलिथ की मोटाई बढ़ती जाती है। परिवहन शक्तियाँ जैसे गुरुत्व बल, बहता पानी, बहती बर्फ, वायु आदि चट्टानों के टूटने से प्राप्त हुए पदार्थों को भूमि सतह पर लगाकर वितरित करती रहती है। इस प्रकार परिवहन शक्ति के द्वारा धीरे–धीरे मृदा निर्माण की क्रिया चलती रहती है। मृदा उत्पत्ति प्रायः दो प्रकार के प्रक्रमों द्वारा होती है–(1) अपक्षय (weathering) तथा (2) प्रोफाइल का विकास (profile development)। इस प्रकार मृदा निर्माण में दो प्रावस्थायें होती हैं–

1. मूल चट्टानों से कच्चे पदार्थ (raw material) का निर्माण,
2. इस कच्चे पदार्थ का मृदा पिण्ड में रूपान्तरण।

पहली प्रावस्था विखण्डन (disintrigration) तथा विच्छेदन (decomposition) की विनाशकारी प्रावस्था है, जबकि बाद की प्रावस्था संश्लेषण (Synthesis) तथा उद्भव (evolution) की निर्माणकारी प्रावस्था है। मृदा निर्माण की दोनों प्रावस्थाएं भौतिक, रासायनिक तथा जैविक कारकों द्वारा सम्पन्न होती है। इन अपक्षय प्रक्रमों के फलस्वरूप मृदा की भौतिक संरचना परिवर्तित हो जाती है और मृदा संहति में समस्त परतों (horizontal layers) का विकास होता है। इसे मृदा प्रोफाइल कहते है। इसलिए मृदा प्रोफाइल का विकास ही मृदा उत्पत्ति है।

मृदा निर्माणकारी प्रक्रियाएं (Soil Forming Processes)-

मृदा निर्माण प्रक्रियाएं दो प्रकार की होती हैं–(अ) प्राथमिक (ब) विशिष्ट प्रक्रियाएं। इन्हें पैडोजेनिक प्रक्रियाएं भी कहते हैं। मृदा निर्माण की प्राथमिक प्रक्रियाओं से मृदा में विशेष प्रकार के संस्तर बनते है जबकि गौण प्रक्रियाओं से विशेष प्रकार की मृदा परिच्छेदिका (प्रोफाइल) का विकास होता है।

मृदा निर्माणकारी प्रक्रियाओं में निम्न उल्लेखनीय है–

(1) ह्यूमिफिकेशन (Humification)– मृदा कार्बनिक पदार्थों का स्रोत इसकी ऊपरी सतह पर एकत्रित पत्तियाँ तथा पौधों के अन्य भाग एव मृतक जन्तु हैं। इन कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन तथा नवीन कार्बनिक पदार्थों के संश्लेषण की संयुक्त प्रक्रिया को ह्यूमिफिकेशन कहते हैं। यह प्रक्रिया मृदा की सतह पर ह्यूमस परत, जिसे 'ओ' संस्तर कहते हैं, बनाने में सहायक होती है। नम उष्ण प्रदेश में सूक्ष्म जीवों की अत्यधिक सक्रियता के कारण कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन शीघ्र होता है और ह्यूमस एकत्रित नहीं होता है। जब पानी इस संस्तर से होकर गुजरता है तो उसमें उपस्थित कुछ कार्बनिक अम्लों को विलेय कर नीचे की सतहों में ले जाता है और 'अ' तथा 'ब' संस्तर के विकास को प्रभावित करता है।



चित्र द्वारा ह्यूमिफिकेशन प्रक्रिया का प्रदर्शन

(2) निक्षालन (Eluviation)– ऊपरी सतहों के अवयवों का अन्तः स्राव द्वारा निचली सतहों में आने की क्रिया को निक्षालन कहते है। निक्षालन का अर्थ धुलाई होने से है। ऊपरी सतहों का निक्षाली संस्तर भी कहा जाता है। आर्द्र जलवायु वाले स्थानों में सिलिका (SiO_2) निक्षालित होकर निम्न संस्तरों में निक्षालित हो जाती है। क्ले 'अ' संस्तर से 'बी' संस्तर में एकत्रित होती है।

(3) निक्षेपण (Illuviation)– कार्बनिक व अकार्बनिक अवयवों का निचले संस्तरों में पहुँच कर जमा होने को निक्षेपण कहते हैं। निक्षेपण का अर्थ धुला हुआ से है। इस संस्तर को निक्षेपण संस्तर भी कहते है। इस प्रक्रिया में क्ले, Al, Fe इत्यादि बी संस्तर में एकत्रित हो जाते हैं।

(4) पोडजोलीकरण (Podzolisation)– इस प्रक्रम में ह्यूमस तथा सेस्क्वी–ऑक्साइड ऊपरी संस्तरों से बहकर नीचे के संस्तरों में आकर जमा हो जाते हैं। यह ठण्डे तथा नम प्रदेशों में होता है। इस प्रक्रम में पोडजोल शब्द जो कि रूसी भाषा का शब्द पोडजोला से लिया गया है इसका अर्थ राख जैसा है। इसमें सम्पूर्ण सोलम का निक्षालन होने से पूरे क्षार निष्काासित हो जाते हैं और मृदायें अम्लीय बन जाती हैं। यह प्रक्रम ठण्ड़े तथा नम प्रदेशों में होता है।

(5) लेटराइजेशन (Laterisation)– इस प्रक्रम में Fe और Al ऊपरी संस्तरों में रहते है तथा सिलिका नीचे के संस्तरों में चली जाती है। इसमें बनने वाली मृदायें अम्लीय होती हैं। लैटराइट शब्द का अर्थ लैटिन भाषा में ईंट के समान लाल एवं कठोर होना है। यह लाल रंग 'अ' संस्तर में फैरिक ऑक्साइड (हीमेटाइट) की अधिकता के कारण होता है।

यह मृदायें उष्ण तथा अर्धउष्ण प्रदेशों में पाई जाती हैं। जहां उच्च तापमान एवं भारी वर्षा निरन्तर होती है। वहाँ की मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ एवं मौलिक चट्टानों का अपक्षय एवं निक्षालन अत्यधिक होता है जिसके परिणामस्वरूप सिलिका एवं क्षारीय पदार्थ निक्षालित होकर निम्न संस्तर में चले जाते हैं और 'अ' संस्तर में सेस्क्वी ऑक्साइड की अधिकता हो जाती है जिससे इन मृदाओं का रंग लाल से बादामी हो जाता है।

(6) कैल्सीकरण (Calcification) – मृदा के ऊपरी संस्तरों में कैल्शियम कार्बोनेट के संचलन अथवा अवक्षेपण की प्रक्रिया को कैल्सीकरण कहते है। इसमें $CaCO_3$ के संचयन से कैल्सी संस्तर का निर्माण होता है । जब जड़ों के पास CO_2 ज्यादा होती है तो पानी के साथ Ca से क्रिया कर $CaCO_3$ बनाती है –

$$CO_2 + H_2O \longrightarrow H_2CO_3$$

$$2H_2CO_3 + Ca^{++} \longrightarrow Ca(HCO_3)_2 + H_2$$

$$Ca(HCO_3)_2 + CO_2 \longrightarrow \underset{\text{कैल्शियम कार्बोनेट}}{CaCO_3} + H_2O + 2CO_2$$

इन मृदाओं का निर्माण अधिक शुष्क एवं कम वर्षा वाले स्थानों से हो होता है जहां घुलनशील भस्म निक्षालित होकर नीचे के संस्तरों में चले जाते हैं।

(7) डीकैल्सीकरण (Decalcification)– मृदा संस्तरों में से $CaCO_3$ का पूर्ण रूप से निष्कासन हो जाना डीकैल्सीकरण कहलाता है। यह ज्यादातर आर्द्र क्षेत्रों में देखने को मिलता है, जैसे –

$$CaCO_3 + H_2O + CO_2 \longrightarrow Ca(HCO_3)_2 \text{ (घुलनशील)}$$

(8) लवणीकरण (Salinization)– इस प्रक्रम में मृदा के ऊपरी संस्तर अथवा पृष्ठ संस्तर में घुलनशील लवण विशेष रूप से सोडियम के क्लोराइड एवं सल्फेट एकत्रित हो जाते हैं। ये लवण सफेद परत के रूप में मृदा के ऊपर रहते हैं। ये मृदा में जलस्तर का ऊँचा होना, जल निकास का उपयुक्त न होना तथा सिंचाई जल में घुलनशील लवणों की अधिकता के कारण होता हैं। इसी कारण लवणीय मृदा बनती है।

(9) पेडोटर्बेशन (Pedoturbation)– मृदा के विभिन्न विकसित संस्तरों का आपस में मिश्रण होकर मृदा का निर्माण होता है तो यह क्रिया पेडोटर्बेशन कहलाती है। सभी मृदाओं में विभिन्न संस्तरों का समिश्रण होता है। यह क्रिया जन्तुओं द्वारा जैसे– दीमक, केंचुऐं, चींटी एवं गाद बनाने वाले जन्तु, वनस्पतियों व क्ले के संकुचन तथा फूलने के कारण मिश्रण होता है।

मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting the Soil Formation) :

मृदा निर्माण एक संश्लेषणात्मक एवं विघटन प्रक्रम है। इसके अन्तर्गत असंगठित चट्टाने अपक्षयित होकर मृदा निर्माण करती है। वर्षा की प्रकृति, प्रचण्डता, आवृति तथा वितरण का मृदा निर्माण पर सीधा असर पड़ता है। चट्टानों और खनिजों के अपक्षय के परिणामस्वरूप मूल पदार्थ का निर्माण होता है। इन प्रक्रियाओं के उपरान्त मृदा परिच्छेदिका का निर्माण होता है। वी. वी. डोकुचैव (1900) जिन्हें मृदा विज्ञान का जनक जाना जाता है, उनके अनुसार मृदा निर्माण के लिए पैतृक पदार्थ जलवायु एवं जीवमण्ड़ल उत्तरदायी था। इसके उपरान्त जेनी (1941) द्वारा इन कारकों के मृदा निर्माण में परस्पर सम्बन्धों को एक सूत्र द्वारा व्यक्त किया गया, जो निम्नलिखित है–

$$S = f(cl, b, r, p, t)$$

जहां S = मृदा, f = कार्य, cl = जलवायु, b = जीवमण्डल, r = स्थलाकृति, p = पैतृक पदार्थ, t = समय

इस प्रकार मृदा निर्माण को पांच कारक प्रभावित करते हैं। जोफे (1949) ने उपरोक्त कारकों को दो मुख्य भागों में विभक्त किया है–

(अ) सक्रिय कारक (Active factors)– सक्रिय कारक उर्जा प्रदान करते है; जो द्रव्यमान पर मृदा निर्माण का कार्य करते हैं। सक्रिय कारकों में जलवायु तथा जीवमंडल आते हैं।

(ब) निष्क्रिय कारक (Passive factors)– वे कारक जो मृदा निर्माण कार्य द्रव्यमान के स्त्रोत एवं उसको प्रभावित करने वाली दशाओं को प्रतिनिधित्व करते है; निष्क्रिय कारक कहलाते है। ये सक्रिय कारको को मृदा निर्माण के लिये आधार प्रदान करते है। निष्क्रिय कारक स्थलाकृति, पैतृक पदार्थ एवं समय है।

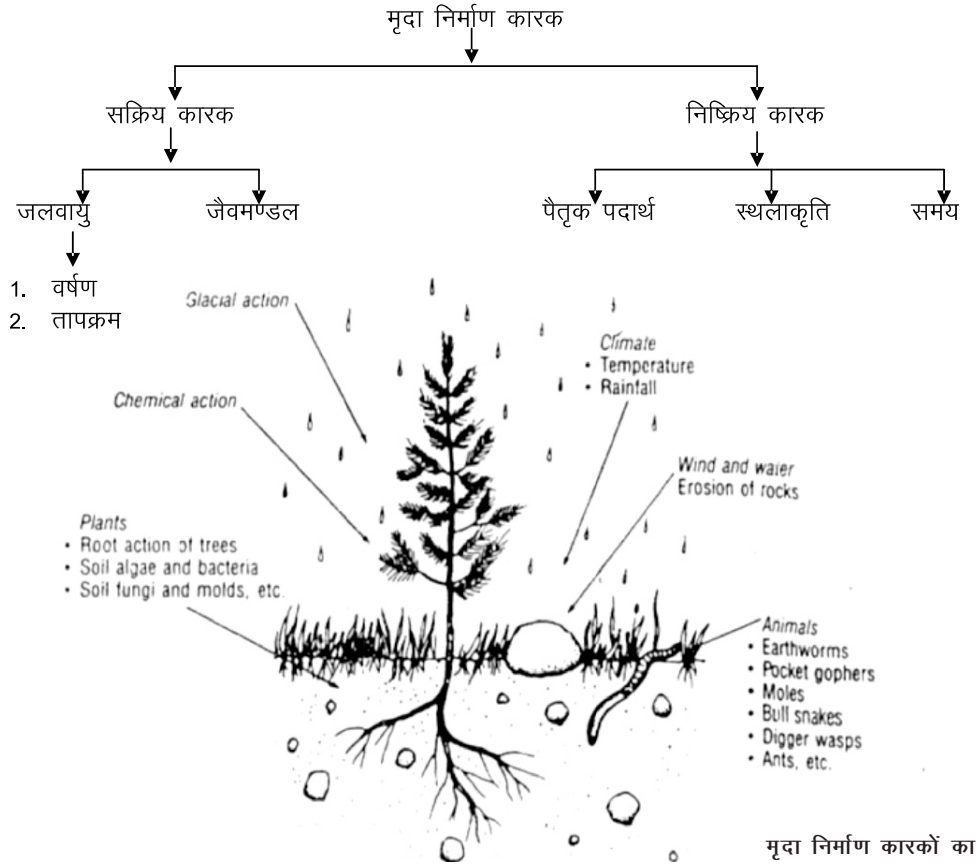

मृदा निर्माण कारकों का चित्र द्वारा प्रदर्शन

1. जलवायु (Climate)– जलवायु मृदा निर्माण का सक्रिय कारक है। जलवायु के प्रमुख तत्व वर्षा एवं तापक्रम है। जल की मात्रा अपरदन तथा अन्तःस्रवण दोनों को ही प्रभावित करती है। अन्तःस्रवण द्वारा निक्षालन तथा निक्षेपण प्रक्रम होते है जो संस्तरों के विकास को प्रभावित करते है। शुष्क तथा उपार्द्र क्षेत्रों की मृदाओं में उपस्थित जल का वाष्पन एवं वाष्पोर्त्सजन द्वारा ह्रास हो जाता है जिसके फलस्वरूप खनिजों का अपक्षय भी होता है। मृदा में घुलनशील पदार्थ सीमित वर्षा के कारण बाहर नहीं जा पाते एवं पोषक तत्वों से परिपूर्ण होती है परन्तु न्यून आर्द्रता की दशा में जैविक अंश कम पाया जाता है जबकि आर्द्र क्षेत्रों में जैविक क्रियाएं अधिकाधिक होने के फलस्वरूप जीवांश पदार्थ की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है। आर्द्र क्षेत्रों की मृदाओं में अपक्षय प्रक्रिया एवं पौधों की वृद्धि के लिए जल की उपलब्धता होती है। अतः ऐसे क्षेत्रों में वर्षा की अधिकता एवं अपक्षय में वृद्धि के कारण मृतिका का निर्माण होता है।

मृदा निर्माण प्रक्रम तापक्रम द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है। इसके द्वारा मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाएं प्रभावित होती हैं। चट्टानों एवं खनिजों के आयतन के प्रसार एवं संकुचन तापक्रम द्वारा प्रभावित होता है। तापक्रम में प्रत्येक 10^0C वृद्धि होने पर रासायनिक अभिक्रियाओं की दर लगभग दुगुनी हो जाती है। मृदा तापमान वृद्धि से अपक्षय में भी वृद्धि होती है तथा मृदा में क्ले की मात्रा भी प्रभावित होती है। आर्द्रता एवं दूसरे कारक के यथावत रहने की दशा में जब औसत वार्षिक तापक्रम में बढ़ोतरी होती है तो शीत प्रदेशों में जीवांश पदार्थ की कमी हो जाती है। शुष्क एवं अर्द्र शुष्क प्रदेशों में आर्द्रता की कमी के कारण कैल्शियम, मैग्नेशियम और सोडियम के कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट, सल्फेट तथा क्लोराइड मृदा में एकत्रित हो जाते हैं ऐसे कम वर्षा वाले क्षेत्रों में क्षारीय मृदाओं का निर्माण होता हैं। इसके विपरीत आर्द्र प्रदेशों की मृदाओं में पर्याप्त नमी होने के कारण अपक्षय एवं निक्षालन ज्यादा होता है। इस कारण कैल्शियम निक्षालित हो जाता है एवं एल्यूमिनियम तथा लौहा, मृदा सतह पर इकट्टा होने के कारण अम्लीय मृदाओं का निर्माण होता है। ये मृदाऐं कम उपजाऊ होती हैं एवं ऐसी मृदाओं में फॉस्फोरस तथा पोटाश की कमी पाई जाती है। तापमान के उच्च होने के फलस्वरूप कार्बनिक विघटन तीव्र होता है जिसके कारण मृदा में जीवांश कम हो जाता है। शीत प्रदेशों में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक पाई जाती है।

2. जैव मण्डल (Biosphere)– मृदा निर्माण में पौधों एवं जन्तुओं की क्रिया, जैविक अवशेष एवं अपशिष्ट का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मृदा में छोटे एवं बड़े पौधों पर जन्तुओं की उपस्थिति से जीवांश पदार्थ की मात्रा, इसका वितरण, स्थूल घनत्व आदि को प्रभावित करते हैं। पौधों की जड़ें, चट्टानों तथा खनिजों पर यांत्रिक रूप से क्रिया करती हैं। ये अनेकों प्रकार के अम्लीय पदार्थ तथा कार्बन डाई ऑक्साइड उत्पन्न करती हैं जो अपक्षय की क्रिया में सहायक है। वन क्षेत्रों में विकसित मृदा में कई संस्तर पाये जाते हैं। इन मृदाओं की ऊपरी सतह अत्यधिक निक्षालित होती है तथा सतह पर जीवांश पदार्थ, घास वाली वनस्पति से विकसित मृदाओं की अपेक्षा कम अपघटित दशा में पाया जाता है। सूक्ष्म जीव, जीवांश पदार्थ का अपघटन धीरे–धीरे करते है जिससे अम्ल निर्मित होता है। यह अम्ल जल की अपेक्षा खनिजों को तीव्र रूप से घोलते है। सूक्ष्म जीवों की सक्रियता खनिज तथा कार्बनिक पदार्थो के विच्छेदन को प्रभावित करती है। वायुमंडल से स्थिर की गई नाइट्रोजन, मृदा में नाइट्रीकृत या विनाइट्रीकृत होती है। सल्फर का ऑक्सीकरण तथा फास्फेट युक्त ऐपेटाइट का विच्छेदन भी सूक्ष्म जीवों द्वारा होता है। मृदा को खोदने वाले प्राणी जैसे– केंचुआ, चींटियां, चूहे, दीमक इत्यादि मृदा को खोदकर महीन बनाकर एक संस्तर को दूसरे संस्तर में मिलाने का कार्य करते है। मृदा निमार्ण में मनुष्य भी एक कारक है जो कि चट्टानों को विघटित करके चूर्ण कर देता है तथा इस प्रकार मृदा निर्माण में सहयोग करता है।

3. पैतृक पदार्थ (Parent Material)– पैतृक पदार्थ चट्टानों की प्रकृति मृदा निर्माण में कणाकार, क्ले की मात्रा व प्रकृति, पोषक तत्व, सरन्ध्रता, रंग आदि को प्रभावित करते हैं। निर्मित मृदा, पैतृक पदार्थ पर निर्भर रहती है, जैसे बालू पत्थर, बलुई पदार्थ जबकि बेसाल्ट व चूना पत्थर, मृतिका पदार्थ पैदा करते हैं। ग्रेनाईट का अपक्षय मन्द गति से होता है। इसमें पोषक तत्व की मात्रा बहुत कम होती है। ग्रेनाईट से बनी मृदा, बलुई मृदाऐं होती हैं। ग्रेनाईट से बनी मृदा, कम उपजाऊ होती है जबकि चूना पत्थर से बनी दोमट मृदा अच्छी उर्वरता वाली होती है। पैतृक पदार्थ निष्क्रिय होने के कारण एक ही मृदा का निर्माण विभिन्न स्थानों की जलवायु के परिवर्तन के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की मृदाओं का निर्माण होता है। हल्के या बालू पत्थर पर विकसित मृदा, भारी पैतृक पदार्थ पर विकसित मृदा के बजाय गहरी होती है। मृदाओं के रंग, पैतृक पदार्थों से सम्बन्धित होते हैं।

4. स्थलाकृति (Topography or Relief)– पृथ्वी की अनियमित सतह, स्थलाकृति कहलाती है। यह एक निष्क्रिय कारक है जो जल एवं तापमान के प्रभाव से मृदा निर्माण को प्रभावित करता है। पहाड़ी क्षेत्रों में एकदम ढलान वाले क्षेत्रों में जल के तीव्र गति से प्रवाह के कारण मृदा कम विकसित एवं कम गहरी होती है। समतल स्थानों पर जल प्रवाह धीरे–धीरे होता है एवं मृदा के अन्दर रिसता रहता है; परिणामस्वरूप मृदा गहराई

युक्त होती है। स्थलाकृतिक दशाऐं भूतल क्षरण को सीधे नियन्त्रित करती हैं। क्षरण जितना अधिक होता है मृदा उतनी ही कम गहरी होती है एवं मृदा विकास कम होता है।

अधिक गहराई वाली मृदा परिच्छेदिका में पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अच्छी होती हैं तथा जीवांश पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। ऐसी मृदा निरन्तर नम बनी रहती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में वानस्पतियाँ अधिक पाई जाती हैं लेकिन मृदा में जीवांश पदार्थ का मन्द गति से विच्छेदन होने के कारण वानस्पतिक पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं। यदि वर्ष में कई महीनों तक क्षेत्र आर्द्र बना रहता है तो पीट एवं मक मृदाओं का निर्माण होता है। पीट मृदा में जीवांश पदार्थ को आंशिक विघटन के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है जबकि मक मृदा में जीवांश पदार्थ पूर्णतः अपघटित होता है एवं पौधों के अवशेषों को आसानी से नहीं पहचाना जा सकता है। यदि आस–पास मृदा से निचले स्थानों पर लवण संग्रह हो जाते है तो ऐसे स्थानों पर लवणीय दलदली मृदा का निर्माण होता है।

5. समय (Time)– समय मृदा निर्माण का एक निष्क्रिय कारक है। पूर्ण विकसित मृदा में पूर्णतः विकसित मृदा परिच्छेदिकायें होती हैं जिनका विकास मृदा निर्माण करने वाले विभिन्न कारकों द्वारा लम्बे समय तक किये जाने वाली प्रक्रियाओं का परिणाम है। अविकसित मृदा धीरे–धीरे समय के साथ पूर्ण विकसित हो जाती हैं। मृदा परिच्छेदिका के संस्तरों को विकसित होने में समय लगता है। संस्तरों का विकास समय के साथ–साथ जलवायु, पैतृक पदार्थ की प्रकृति, जीवमण्ड़ल तथा स्थलाकृति के पारस्परिक कारकों पर निर्भर करती है। उष्ण, आर्द्र वन सम्पदा वाले स्थानों पर जल एवं जीवांश पदार्थ की अधिकता के कारण, संस्तरों का विकास द्रुतगति से होता है।

अनुकूल दशाओं के अन्तर्गत एक पूर्ण विकसित मृदा परिच्छेदिका के विकसित होने में 200 वर्ष लग सकते हैं। कम अनुकूल परिस्थितियों में इसको विकसित होने में हजारों वर्ष लग सकते हैं। समतल, अपरदन रहित, अधिक वर्षा वाले सरलता से अपक्षयित पैतृक पदार्थ की उपस्थिति में उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु वाले क्षेत्रों में समय के साथ–साथ मृदा निर्माण तीव्र गति से होता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड़ है। यह पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जो वनस्पतियों को पोषण प्रदान करती है।
2. खनिज मृदा में 45% खनिज पदार्थ, 5% जीवांश पदार्थ, 25% जल तथा 25% वायु पाई जाती है।
3. चट्टानें तीन प्रकार की होती है– आग्नेय, अवसादी एवं कायान्तरित।
4. चट्टानों एवं खनिजों के विखण्डन एवं विघटन को अपक्षय कहा जाता है।
5. मृदा का ऊर्ध्वाघर काट जिसमें विभिन्न संस्तर दिखाई देते है, मृदा परिच्छेदिका कहलाती है।
6. मृदा परिच्छेदिका में अ तथा ब संस्तर का संयुक्त रूप मृदा सोलम कहलाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. खनिज मृदा में खनिज पदार्थ का प्रतिशत पाया जाता है –
   (अ) 50 (ब) 40
   (स) 45 (द) 35
2. मृदा निर्माण में सक्रिय कारक है –
   (अ) पैतृक पदार्थ (ब) जलवायु
   (स) समय (द) धरातल
3. चट्टानों का अपक्षय किस प्रकार होता है ?
   (अ) भौतिक (ब) रासायनिक
   (स) जैविक (द) उपर्युक्त सभी
4. अपक्षय के द्वारा खनिजों के साथ जल अणुओं के रासायनिक संयोग को कहते हैं –
   (अ) जल विश्लेषण (ब) ऑक्सीकरण
   (स) अपचयन (द) जल योजन
5. कायान्तरित चट्टान का उदाहरण हैं –
   (अ) स्लेटी पत्थर (ब) पीट
   (स) संगमरमर (द) अभ्रक
6. वायुमण्डल (भारात्मक) में सबसे अधिक प्रतिशतता होती है–
   (अ) नाइट्रोजन (ब) कार्बन डाइऑक्साइड
   (स) जल वाष्प (द) ऑक्सीजन
7. कैल्साइट खनिज से निर्मित चट्टान है–
   (अ) डायोराइट (ब) लाइम स्टोन
   (स) बेसाल्ट (द) ग्रेनाइट
8. भू–पपड़ी में ऑक्सीजन एवं सिलिकॉन कुल तत्वों के कितने प्रतिशत भाग होते हैं–
   (अ) 60 प्रतिशत (ब) 80 प्रतिशत
   (स) 75 प्रतिशत (द) 90 प्रतिशत

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. मृदा प्रणाली की कितनी प्रावस्थाऐं होती है ?
2. मृदा में ठोस पदार्थों का आयतन कितना होता है ?
3. पृष्ठ मृदा कितने सेन्टीमीटर तक पाई जाती है ?
4. चट्टानें कितने प्रकार की होती हैं ?
5. अम्लीय आग्नेय चट्टान का उदाहरण दीजिए।
6. चूना पत्थर चट्टान में कैल्शियम कार्बोनेट की कितने प्रतिशत मात्रा होती है ?
7. पोडजोलीकरण प्रक्रम किस क्षेत्र में पाया जाता है ?
8. निक्षालित संस्तर किस संस्तर को कहते हैं ?
9. मृदा विज्ञान का जनक किसे माना जाता है ?
10. मृदा अवयव बताईये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. चट्टानों के प्रकार बताईये।
2. चट्टानों को कितने भागों में बांटा गया है उदाहरण के साथ समझाईये।
3. मृदा निर्माण के सक्रिय एवं निष्क्रिय कारक लिखिए।
4. भौतिक अपक्षय किन–किन कारकों से होता है।
5. मृदा को परिभाषित कीजिए।
6. चट्टानों को परिभाषित कीजिए।
7. मृदा परिच्छेदिका को परिभाषित कीजिए।
8. मृदा शास्त्र को परिभाषित कीजिए।
9. पेडोलोजी को परिभाषित कीजिए।
10. पृष्ठ मृदा एवं अवमृदा में अन्तर लिखिए।
11. खनिज की परिभाषा दीजिए।
12. जल–मण्डल पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. चट्टानों के अपक्षय के बारे में विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. मृदा निर्माण प्रक्रमों की विवेचना कीजिए।
4. चट्टानों के वर्गीकरण की विस्तृत रूप से विवेचना कीजिए।
5. मृदा परिच्छेदिका का सचित्र वर्णन कीजिए।
6. प्राथमिक एवं द्वितीयक खनिजों की परिभाषा दीजिए। मृदा में पाए जाने वाले प्राथमिक एवं द्वितीयक खनिजों का वर्गीकरण कीजिए।

उत्तरमाला–

1. (स) 2. (ब) 3. (द) 4. (द) 5. (स)
6. (अ) 7. (ब) 8. (स)

अध्याय – 2

मृदा जीवांश पदार्थ
(Soil Organic Matter)

परिभाषा (Definition)

मृदा में पाये जाने वाले वानस्पतिक एवं जन्तुओं के अवशेषों को मृदा जीवांश पदार्थ कहते हैं। मृदा जीवांश पदार्थ में पेड़–पौधों की पत्तियां, जड़, तना, टहनियां तथा जीव–जन्तुओं के ताजे एवं अपघटित अवशेष, मृदा जीवों की कोशिकाऐं, उत्तक तथा उनके द्वारा संश्लेषित विभिन्न पदार्थ आते हैं। इन पदार्थों के सड़ने–गलने के फलस्वरूप विभिन्न सरल पदार्थ बनते हैं। इन सरल पदार्थों में पेड़–पौधों हेतु आवश्यक पोषक तत्व पाये जाते हैं। खनिज मृदा में सामान्यतया 0.1 से 5 प्रतिशत जीवांश (कार्बनिक) पदार्थ पाया जाता हैं। जीवांश पदार्थों के पूर्ण विच्छेदन तथा अपघटन के बाद गहरे भूरे या काले रंग का कोलॉइडल पदार्थ ह्यूमस कहलाता है।

मृदा जीवांश के स्रोत (Source of Soil Organic Matter) :

मृदा जीवांश के दो प्रमुख स्रोत है– (i) पादप स्रोत (ii) जन्तु स्रोत।

(i) पादप स्रोत– इस समूह में निम्न स्रोत मुख्य हैं–

(अ) पेड़–पौधों एवं फसलों के अवशेष– पेड़–पौधों की पत्तियों, टहनियों, जड़ों एवं विभिन्न भागों के मृदा में मिलने पर जीवांश पदार्थ प्राप्त होता है। फसलों के कटने के उपरान्त उनकी जड़ें मृदा में मिलकर जीवांश पदार्थ में वृद्धि करती हैं।

(ब) हरी खाद– सनई, ढैचा, मूंग व अन्य फसलें हरी खाद के रूप में जुताई कर मृदा में मिलाई जाती हैं जिससे मृदा के जीवांश पदार्थ में बढ़ोतरी होती है।

(ii) जन्तु स्रोत– जीव–जन्तु, कीड़े–मकोड़े तथा जन्तु जो मृदा में रहते हैं, मरने के बाद उनके अवशेष मृदा में विच्छेदित एवं अपघटित होकर जीवांश पदार्थ बनाते हैं। गोबर की खाद, कम्पोस्ट, पशुओं का मल–मूत्र, मृदा में पाये जाने वाले केचुऐं, सूक्ष्म जीवाणु इत्यादि जीवांश पदार्थ के स्त्रोत हैं।

जीवांश पदार्थ का संगठन (Composition of Organic Matter) :

मृदा जीवांश पदार्थ पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तु के अवशेषों से बना एक जटिल पदार्थ होता है। जीवांश पदार्थ में 90 प्रतिशत से अधिक कार्बन, हाईड्रोजन एवं ऑक्सीजन होती हैं। इसके अतिरिक्त नत्रजन, फॉस्फोरस, पौटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, जस्ता, लोहा, मैगनीज, तांबा इत्यादि तत्व होते हैं, जो पौधों की वृद्धि में सहायक है।

मृदा जीवांश पदार्थ में दो प्रकार के यौगिक पाये जाते हैं– (अ) कार्बनिक (ब) अकार्बनिक, जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

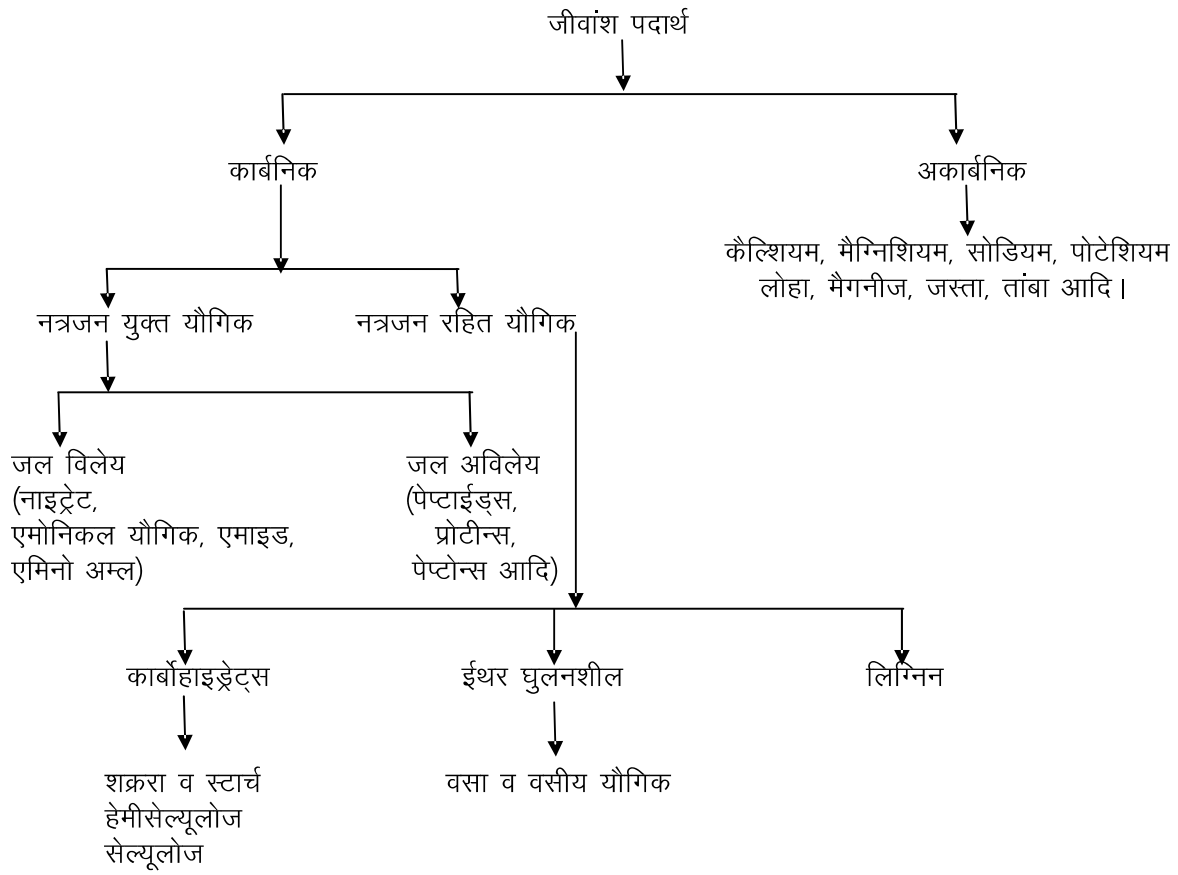

सामान्यतः जीवांश पदार्थ का संगठन निम्न रूप में होता है–

1. कार्बोहाइड्रेट्स
   (i) स्टार्च – 1-5%
   (ii) सेल्यूलोज – 10-28%
   (iii) हेमीसेल्यूलोज – 20-50%
2. वसा एवं वसीय यौगिक – 1-8%
3. लिग्निन – 10-30%
4. प्रोटीन – 1-15%

जीवांश पदार्थ का विच्छेदन (Decomposition of Organic Matter) :

जीवांश पदार्थ का विच्छेदन वह प्रक्रिया है जिसमें मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न सूक्ष्म जीवों जैसे बैक्टीरिया, फंजाई, एक्टिनोमाईसिटीज इत्यादि द्वारा जीवांश पदार्थों का विच्छेदन कर सरल यौगिकों में परिवर्तित कर देते हैं, इसे विच्छेदन कहा जाता है।

मृदा में नमी एवं वायु की अनुकूल परिस्थितियों में जीवांश पदार्थ का विघटन होता है। कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन में जीवांश पदार्थों का ऑक्सीकरण होता है। यह कार्य वायुजीवी जीवाणुओं द्वारा होता है। विच्छेदन की प्रक्रिया आरम्भ में जल्दी होती है लेकिन धीरे–धीरे कम होती जाती है।

मृदा जीवांश पदार्थ में कई पदार्थों का समावेश होता है जिनमें से कुछ मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों द्वारा विच्छेदित हो जाते हैं परन्तु कुछ पदार्थों का विघटन धीरे–धीरे होता है। जीवांश पदार्थों के विच्छेदन की गति निम्न विवरण द्वारा स्पष्ट है–

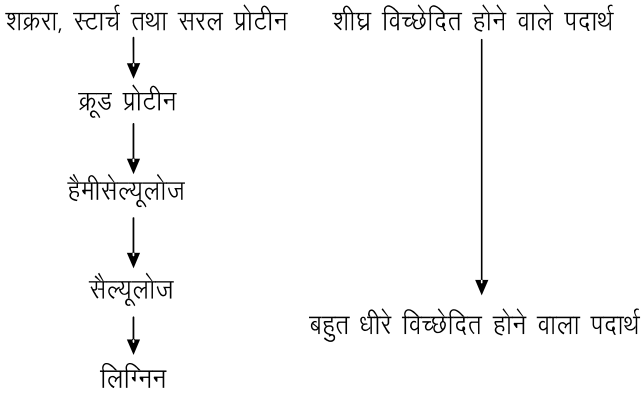

कार्बोहाइड्रेट्स का विच्छेदन (Decomposition of Carbohydrates) :

(i) सरल शक्करायें (Simple Sugars)– सरल शक्करायें शीघ्र विच्छेदित हो जाती है। इनका कुछ भाग पूर्ण रूप से कार्बन डाई ऑक्साईड तथा जल में ऑक्सीकृत हो जाता है और कुछ भाग अपूर्ण रूप से विघटित होकर विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल तथा एल्कोहल पैदा करते हैं। कुछ फंजाई, शक्राओं को विच्छेदित करके ग्लूकुरोनिक, साईट्रिक, ऑक्जेलिक, फ्यूमेरिक आदि अम्ल बनाती है प्रतिक्रिया निम्न प्रकार होती है :

$$C_6H_{12}O_6 + 1\frac{1}{2}O_2 \longrightarrow \underset{\text{साईट्रिक अम्ल}}{C_6H_8O_7} + 2H_2O$$

$$C_6H_{12}O_6 + 4\frac{1}{2}O_2 \longrightarrow \underset{\text{ऑक्जेलिक अम्ल}}{3(COOH)_2} + 3H_2O$$

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \longrightarrow 6CO_2 + 6H_2O$$

अवायुजीवी बैक्टीरिया तथा यीस्ट द्वारा शक्रा के विच्छेदन पर लैक्टिक, ब्यूटिरिक, एसिटिक, प्रोपियोनिक, फार्मिक अम्ल व मीथेन और हाइड्रोजन पैदा होते हैं –

$$\underset{\text{ग्लूकोज}}{C_6H_{12}O_6} \longrightarrow \underset{\text{लैक्टिक अम्ल}}{2C_3H_6O_3}$$

$$C_6H_{12}O_6 \longrightarrow \underset{\text{ब्यूटिरिक अम्ल}}{C_4H_8O_2} + 2CO_2 + 2H_2$$

(ii) स्टार्च (Starch)– कुछ सूक्ष्म जीव विशेषकर अवायुजीवी बैक्टीरिया, स्टार्च को विभिन्न कार्बनिक अम्ल, एल्कोहल, एसीटोन, H_2 तथा CO_2 में बदल देते हैं। अधिकतर जीवाणु डायस्टेज एन्जाइम पैदा करते हैं, जो कि स्टार्च को माल्टोज में जल–विश्लेषित कर देते हैं। माल्टेज एन्जाइम, माल्टोज को ग्लूकोज में जल विश्लेषित कर देता है। ग्लूकोज विभिन्न जीवाणुओं द्वारा विच्छेदन से CO_2 तथा H_2O में परिवर्तित हो जाता है।

(iii) हेमीसैल्यूलोज (Hemicellulose)– प्रारंभ में कार्बनिक पदार्थ में उपस्थित हेमीसेलुलोज का अपघटन शीघ्रता से होता है लेकिन धीरे–धीरे अपघटन क्रिया बहुत मन्द हो जाती हैं। हेमीसैलुलोज, हेमीसैलुलेज एन्जाइम द्वारा विभिन्न सरल शक्राओं में जल विश्लेषित हो जाता हैं जो पुनः जल और कार्बन डाई ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाती हैं।

हेमीसेलुलोज ⟶ सरल शर्करा ⟶

पालीयूरोनाइड ⟶ शर्करा और शर्करा अम्ल मिश्रण

(iv) सेल्यूलोज (Cellulose)– स्टार्च की तरह सेलुलोज भी ग्लूकोज का एक बहुलक है। कुछ विशिष्ट बैक्टीरिया, ऐक्टिनोमाइसिटीस एवं कवक इसका अपघटन करते हैं। सेलुलोज एन्जाइम द्वारा जल अपघटित होकर सेलोबायोस बनाता है जो पुनः ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाता है। दूसरे चरण में ग्लूकोज पानी एवं कार्बन डाई ऑक्साइड में परिवर्तित होता है और ऊर्जा उत्पन्न होती है।

(v) लिग्निन (Lignin)– लिग्निन का विच्छेदन संकीर्ण पदार्थ होने के कारण कम होता है। इनकी रचना में विशेषकर बैंजोल चक्र होता है, जिससे विशेष सह–श्रृंखलायें जुड़ी रहती है। फंजाई तथा बैक्टीरिया से लिग्निन का विच्छेदन जल्दी नहीं होता है। बैसिडियोमाइसिटीज के कुछ समूह तथा विशेष एक्टीनोमाइसिटीज ही लिग्निन का विच्छेदन करती हैं।

(vi) प्रोटीन (Protein)– सूक्ष्म जीवों की क्रिया से प्रोटीन पहले पॉलीपेप्डाइड तथा अन्त में एमीनो अम्ल बनाते हैं। एमीनो अम्ल बैक्टीरिया, फंजाई की क्रिया के फलस्वरूप CO_2, NH_3, कार्बनिक अम्ल, एल्कोहल तथा अन्य यौगिक पैदा होते हैं।

जीवांश पदार्थ के विच्छेदन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting the Decomposition of Organic Matter) :

जीवांश पदार्थ के विच्छेदन को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते है–

1. पादप पदार्थों की प्रकृति (Nature of Plant Residues)–

पौधों के संगठन एवं आयु का प्रभाव विच्छेदन की गति पर पड़ता है। पूर्ण परिपक्व पौधों की तुलना में सरस उत्तक वाले पौधों का विच्छेदन शीघ्र होता है। कम उम्र व सरस पौधों में जल विलेय नाईट्रोजन युक्त पदार्थों की मात्रा अधिक होने के कारण विच्छेदन शीघ्र होता है। परिपक्व पौधों में हेमीसेल्यूलोज, सेल्यूलोज तथा लिग्निन की मात्रा बढ़ जाती है जिससे उसका विच्छेदन धीरे–धीरे होता है।

2. मृदा नमी (Soil Moisture)–

मृदा में अत्यधिक नमी एवं शुष्क अवस्था में जीवांश पदार्थों का विच्छेदन कम होता है क्योंकि दोनों ही अवस्था में जीवाणुओं की क्रियाशीलता में कमी आ जाती है। विच्छेदन के लिए उपयुक्त नमी की मात्रा मृदा जल धारण क्षमता की 60 से 80 प्रतिशत होती है। अधिक नमी वाली मृदाओं में ऑक्सीजन की कमी के कारण जीवों की क्रियाशीलता कम हो जाती है जिससे विच्छेदन दर कम हो जाती है।

3. वायु संचार (Aeration)–

मृदा जीवों एवं सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता मृदा में

ऑक्सीजन की मात्रा में निर्भर करती है। ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होने पर विच्छेदन की गति तेज होती है। उचित वायु संचार वाली दोमट मृदा में चिकनी मृदा की अपेक्षा जीवांश पदार्थ का विच्छेदन शीघ्र होता है।

4. मृदा ताप (Soil Temperature)–

जीवाणुओं की क्रियाशीलता पर मृदा ताप का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है। विच्छेदन प्रक्रिया 5^0 सेन्टीग्रेड पर भी होती है, परन्तु ताप के बढ़ने के साथ इसकी गति बढ़ जाती है। विच्छेदन के लिए उपयुक्त तापक्रम 30^0 सेन्टीग्रेड से 40^0 सेन्टीग्रेड होता है। मृदा में 40^0 सेन्टीग्रेड से अधिक तापक्रम होने पर ताप सहने वाले बैक्टीरिया, फंजाई तथा एक्टीनोमाइसिटीज द्वारा ही विच्छेदन होता है।

5. कार्बन–नत्रजन अनुपात (C:N Ratio)–

नत्रजन की मात्रा अधिक होने या कार्बन–नत्रजन अनुपात संकुचित होने पर विच्छेदन प्रक्रिया तीव्र गति से होती है। इसके विपरीत, कार्बन नत्रजन विस्तृत या नत्रजन कम होने पर विच्छेदन गति धीमी हो जाती है।

6. पी.एच. (pH)–

मृदा में जीवांश पदार्थों का विच्छेदन उदासीन पी. एच.(7.0) पर अधिक होता है। अम्लीय एवं क्षारीय मृदाओं में विच्छेदन कम होता है। अम्लीय मृदा में चूना मिलाने पर विच्छेदन की गति बढ़ जाती है।

7. पौषक तत्व (Nutrients)–

मृदा में उर्वरकों द्वारा पौषक तत्व मिलाने पर विच्छेदन की गति तेज हो जाती है।

कार्बन चक्र (Carbon Cycle) :

सभी कार्बनिक पदार्थों का कार्बन एक मुख्य अवयव है, मृदा में उपस्थित सभी प्रकार के जीव अपनी आवश्यक ऊर्जा का अधिकांश भाग कार्बन के ऑक्सीकरण से प्राप्त करते हैं। इसके फलस्वरूप इसके ऑक्साइड लगातार अधिक मात्रा में निकलते हैं। मृदा के अन्दर तथा मृदा के बाहर, कार्बन तत्व में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों के सामूहिक रूप को कार्बन चक्र कहते हैं।

कार्बन डाई ऑक्साइड का मुक्त होना (Release of CO_2) :

पादप अवशेषों के यौगिकों के विच्छेदन से कार्बन डाई ऑक्साइड निकलती है। इस गैस के उत्सर्जन का मृदा एक मुख्य स्रोत है, हालांकि कार्बन डाई ऑक्साइड की अल्प मात्रा जड़ों द्वारा भी निकलती हैं तथा वर्षा जल द्वारा भी मृदा में लायी जाती है। कार्बन डाई ऑक्साइड प्रचुर मात्रा में मृदा से निकलकर वायुमण्डल में मिल जाती है, जहां पुनः पौधों द्वारा प्रयोग कर ली जाती है। इस प्रकार यह चक्र पूरा होता है।

कार्बन डाई ऑक्साइड की थोड़ी मात्रा मृदा में पानी से क्रिया करके कार्बोनिक अम्ल तथा कैल्शियम, पोटेशियम तथा अन्य भस्मों के कार्बोनेट तथा बाईकार्बोनेट बनाती है। ये लवण जल में आसानी से विलेय होते हैं तथा जल निकास द्वारा नष्ट हो जाते हैं या उच्च पौधों द्वारा प्रयोग कर लिया जाता हैं। इस प्रकार कार्बन की अल्प मात्रा पौधों के अन्दर प्रवेश कर जाती है। उच्च पौधों में उपस्थित कार्बन की अधिकांश मात्रा प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा वायुमण्डल से ली जाती है।

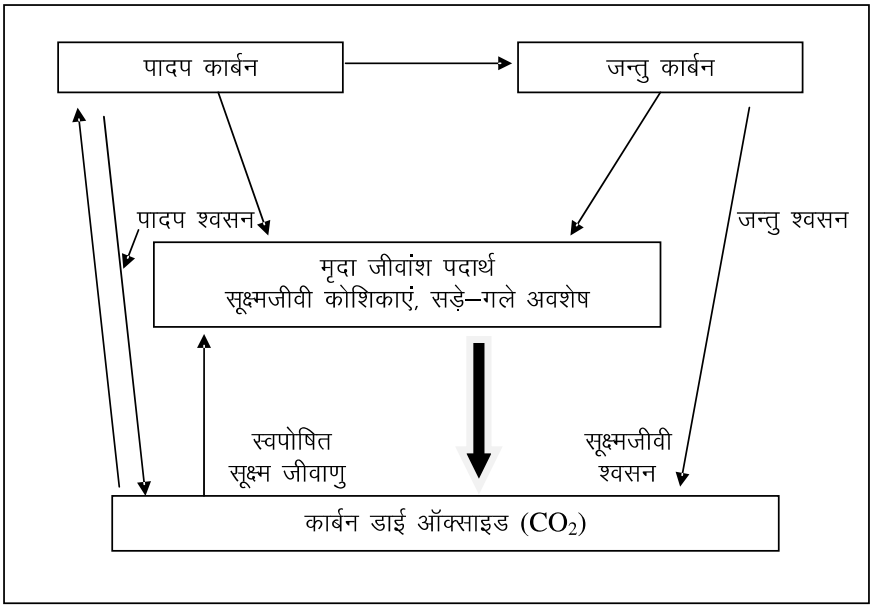

कार्बन चक्र

ह्यूमस (Humus) :

मृदा में जीवांश पदार्थ के विच्छेदन से गहरे भूरे या काले रंग का कोलॉइडी पदार्थ बनता है जिसे ह्यूमस कहते हैं। बेकमेन एवं ब्रेडी के अनुसार ह्यूमस भूरे या गहरे रंग के अक्रिस्ट्रलीय कोलॉइडी पदार्थों का जटिल व रोधक मिश्रण है जो कि मूल उत्तकों से रूपान्तरित या विभिन्न मृदा जीवों द्वारा संश्लेषित होते हैं। इस प्रकार ह्यूमस जटिल यौगिकों का मिश्रण है।

ह्यूमस जीवांश पदार्थों के विच्छेदन में प्रतिरोधी पदार्थ जैसे लिग्निन, जटिल प्रोटीन, वसा, तेल, मोम तथा सूक्ष्म जीवों के उत्तकों से रूपान्तरित व संश्लेषित होकर ह्यूमस का निर्माण करते है।

ह्यूमिक पदार्थ में तीन प्रकार के अंश पाये जाते हैं– (i) फल्विक अम्ल (ii) ह्यूमिक अम्ल तथा (iii) ह्यूमिन। फल्विक अम्ल; जल, अम्ल तथा क्षार में अधिक घुलनशील होता है। यह पीले से भूरे पीले रंग का पदार्थ होता है। ह्यूमिक अम्ल केवल क्षार में घुलनशील होता है, जो कि गहरे भूरे से काले रंग का होता है, ह्यूमिन अम्ल अघुलनशील पदार्थ है।

ह्यूमस के गुण (Properties of Humus) :

(अ) भौतिक गुण (Physical roperties) :

1. यह गहरे भूरे रंग का जटिल पदार्थ है।
2. यह अक्रिस्ट्रलीय तथा कोलॉइडी पदार्थ है।
3. ह्यूमस पर ऋणात्मक आवेश होता है।
4. यह जल में अविलेय रहता है लेकिन कोलॉइडी विलयन बनाता है, परन्तु मन्द अम्लों एवं क्षारों में विलेय होता है।
5. इसमें सुघट्यता तथा ससंजन कम होता है।
6. जल धारण क्षमता अधिक होती है।
7. यह अम्लीय होता है।
8. इसमें फूलनें एवं सिकुड़ने का गुण भी होता है।
9. यह जल ग्राही होता है, संतृप्त वायुमण्डल से 2–6 गुणा अधिक जल शोषित कर लेता है।

(ब) रासायनिक गुण (Chemical Properties) :

1. ह्यूमस में कार्बन 55–60 प्रतिशत, हाइड्रोजन 4–5 प्रतिशत, ऑक्सीजन 35–40 प्रतिशत, नत्रजन 3–6 प्रतिशत तथा फॉस्फोरस, सल्फर, लोहा इत्यादि की मात्राऐं होती हैं।
2. इसका कार्बन नत्रजन अनुपात लगभग 10 : 1 होता है।
3. इसकी औसतन धनायन विनिमय क्षमता 200 (100–300) सेन्टी मोल प्रति किग्रा होती है।
4. इसमें प्रमुखतया कार्बोक्सिल, फिनोलिक तथा इनोलिक समूह पाये जाते हैं।
5. इसकी प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है।
6. हाइड्रोजन पराक्साईड द्वारा ह्यूमस का ऑक्सीकरण आसानी से हो जाता है।

ह्यूमस का निर्माण (Formation of Humus) :

ह्यूमस एक जटिल पदार्थों का मिश्रण है। इसका निर्माण भी बहुत ही जटिल जैविक–रासायनिक प्रक्रमों से होता है। यह मृदा में जीवांश पदार्थ के बहुत अधिक विच्छेदन होने पर बनता है। इसके निर्माण को निम्न भागों में बांटा गया हैं –

1. लिग्नोप्रोटीनेट का निर्माण– जीवांश पदार्थों के विच्छेदन से ह्यूमस बनने की प्रक्रिया में शर्कराएं, स्टार्च हेमीसेल्यूलोज एवं सेल्यूलोज के विच्छेदन होने से पदार्थ धीरे–धीरे कम हो जाते हैं तथा लिग्निन एवं तेल वसा की मात्रा बढ़ जाती है। ये प्रतिरोधी पदार्थ नत्रजन पदार्थ के साथ संयोग करके लिग्नोप्रीटेनेट यौगिक का निर्माण करते हैं।

2. रोधी अणु जीव ऊतक का निर्माण– शर्करा एवं अन्य के विच्छेदन की प्रक्रिया में ऊर्जा निकलती है और अमोनिकल लवण बनते हैं उससे सूक्ष्म जीव अपना अणुजीव ऊति बनाते हैं। कार्बनिक पदार्थ के विच्छेदन के दौरान जीव अणु पोलीयूरोनाइड्स नामक यौगिक का संश्लेषण करते हैं। ये यौगिक अणु जीव उत्तक के साथ मिल जाते हैं। इस कारण सूक्ष्म जीवों के मरने पर इनका विच्छेदन बहुत कम होता है एवं मृदा में इकट्ठा होते रहते हैं।

3. प्रोटीन मृतिका संयोजन– क्ले एक अम्लीय लवण होता है और इसमें अम्लीय गुण पाए जाते हैं। प्रोटीन में क्षारीय गुण भी होते हैं इसलिए क्ले में प्रोटीन का अधिशोषण हो सकता है, दूसरे शब्दों में प्रोटीन क्ले संयोजन हो जाता है।

अंत में ऊपर बताए गए सभी पदार्थों के अर्न्तमिश्रण से ह्यूमस का निर्माण होता है, इसलिए यह संभव है कि इन पदार्थों के अनुसार विभिन्न मृदाओं में अलग–अलग प्रकार का ह्यूमस पाया जा सकता है। जीवाश्म पदार्थ का निर्माण निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

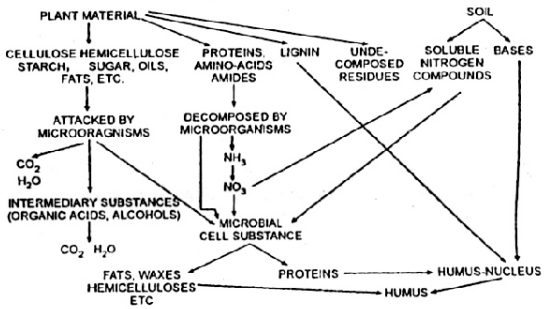

जीवाश्म पदार्थ से ह्यूमस का निर्माण

ह्यूमस का संगठन (Composition of Humus) :

ह्यूमस एक गहरे रंग का जटिल पदार्थ है। मृदा में सदैव परिवर्तनीय होता है। इसका लगभग संगठन इस प्रकार है–

1. कार्बोहाइड्रेट्स
   (i) सैल्यूलोज – 5-12%
   (ii) हेमीसैल्यूलोज –3-5%
2. वसा एवं वसीय यौगिक – 1-5%
3. लिग्निन – 35-55%
4. प्रोटीन – 30-35%

एक खनिज मृदा में ह्यूमस का तत्वों के आधार पर संगठन (भारात्मक दृष्टि से) इस प्रकार है–

(i) कार्बन	–	50%
(ii) ऑक्सीजन	–	35%
(iii) हाइड्रोजन	–	05%
(iv) नाइट्रोजन	–	05%

जीवांश पदार्थ का मृदा गुणों एवं उर्वरता पर प्रभाव (Effect of Organic Matter on Soil Properties and Fertility) :

जीवांश पदार्थ मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को प्रभावित करते हैं। ह्यूमस जीवांश पदार्थ का ही एक भाग है। इसके निम्न प्रकार से मृदा पर प्रभाव पड़ते हैं –

1. मृदा संरचना (Soil Structure)– जीवांश पदार्थ के सड़ने–गलने पर चिपकने वाले संकीर्ण पदार्थ प्राप्त होते हैं, जो मृदा कणों को आपस में बांधकर दानेदार संरचना का निर्माण करते हैं, जिससे मृदा संरचना में सुधार होता है।

2. जल धारण क्षमता (Water Holding Capacity)– मृदा जीवांश पदार्थ ह्यूमस की जल धारण क्षमता अधिक होने के कारण मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है। यह जल संतृप्त वातावरण से 80–90 प्रतिशत जल सोख लेता है। रेतीली एवं दोमट मृदाओं में जीवांश पदार्थ डालने पर उनकी जल धारण क्षमता में बढ़ोतरी होती है।

3. वायु संचार (Aeration)– जीवांश पदार्थ के मृदा में डालने से रन्ध्राकाश प्रतिशतता में बढ़ोतरी होती है। इससे मृदा में वायु संचार की बढ़ोत्तरी होती है।

4. मृदा ताप (Soil Temperature)– मृदा में जीवांश पदार्थों के विच्छेदन से मृदा गहरे रंग की हो जाती है। इससे मृदा के तापमान में बढ़ोतरी होती है। इसके अतिरिक्त जीवांश पदार्थ मृदा की सतह पर आवरण के समान कार्य करते है जिससे सर्दियों में मृदा का तापमान बढ़ने से पौधों की वृद्धि अच्छी प्रकार होती है।

5. मृदा अपरदन (Soil Erosion)– जीवांश पदार्थ को मृदा में डालने से मृदा कण एक–दूसरे से बंध जाते हैं जिसके कारण मृदा अपरदन कम होता है। मृदा सतह से जल का बहाव मृदा कणों के बंधने के कारण कम हो जाता है एवं मृदा कटाव भी कम होता है।

6. भू परिष्करण (Tillage)– जीवांश पदार्थों के मृदा में मिलाने से चिकनी मृदाओं में भू परिष्करण क्रियाएं आसानी से हो जाती है।

7. वाष्पीकरण (Evaporation)– जीवांश पदार्थ मृदा की सतह पर आवरण का कार्य करते हैं, जिससे मृदा से जल वाष्पीकरण कम होता है एवं नमी बनी रहती है जो पौधों की वृद्धि के लिए उपयोगी है।

8. सुघट्यता तथा ससंजन (Plasticity and Cohesion)– बलुई मृदा में ह्यूमस (जीवांश पदार्थ) को मिलाने पर सुघट्यता तथा ससंजन आदि भौतिक गुणों में बढ़ोतरी होती है जबकि चिकनी मृदा में मिलाने पर यह इनके गुणों को कम करता है।

9. धनायन विनिमय क्षमता (Cation Exchange Capacity)– ह्यूमस की धनायन विनिमय क्षमता के अधिक होने के कारण इसको मृदा में मिलाने से धनायन विनिमय क्षमता में वृद्धि होती है। ह्यूमस कणों पर Ca^{2+}, Mg^{2+}, K^{+}, Na^{+} आदि धनायन अवशोषित होते है। उर्वरकों से प्राप्त NH_4^{+} का भी अधिशोषण ह्यूमस द्वारा के करने के कारण निक्षालन द्वारा हानि नहीं होती है।

10. उभय प्रत्यारोधन क्षमता (Buffering Capacity)– जीवांश पदार्थ मृदा की प्रत्यारोधक क्षमता में बढ़ोतरी करते है, जिससे मृदा का पी.एच. अचानक परिवर्तित नहीं होता है।

11. पोषक तत्वों की मात्रा (Amount of Nutrients)– मृदा में जीवांश पदार्थ मिलाने से पौधों के लिये आवश्यक तत्व नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर आदि की मात्रा बढ़ जाती है। मृदा में ये पोषक तत्व जीवांश पदार्थ के विच्छेदन से प्राप्त होते हैं।

12. लवणता में सुधार (Improvement in Salinity)– मृदा में जीवांश पदार्थ को मिलाने से विच्छेदन उपरान्त कार्बनिक अम्लों जैसे सिट्रिक, ब्यूटाइरिक एवं ऐसीटिक अम्लों का निर्माण होता है जिससे मृदा लवणता में सुधार होता है।

13. पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि (Availability of Nutrients)– जीवांश पदार्थ के विच्छेदन से मृदा में कार्बनिक अम्ल बनते हैं। यह अम्ल मृदा में पाये जाने वाले अनुपलब्ध पोषक तत्वों से क्रिया करके उपलब्ध रूप में परिवर्तित कर देते हैं। अविलेय एल्यूमिनियम तथा आयरन फास्फेट से क्रिया करके फास्फोरस को विलय रूप में परिवर्तित कर देते हैं।

14. जैविक प्रभाव (Biological Effect)– जीवांश पदार्थ मृदा जीवाणुओं का भोजन है जिससे जीवाणुओं की क्रियाशीलता में बढ़ोतरी होती है। इससे मृदा की जैविक दशा में सुधार होता है। जीवांश पदार्थ के विच्छेदन के दौरान अमोनीकरण, नाइट्रीकरण तथा विनाइट्रीकरण जैसी लाभप्रद क्रिया होती हैं। ताजा जीवांश पदार्थ केंचुओं, चींटियों आदि को खाद्यांश प्रदान करते हैं। ये जन्तु मृदा को खोदकर रन्ध्रयुक्त बनाते हैं जिससे वायु संचार तथा जल निकास में बढ़ोतरी होती है। मृदा में उपस्थित जीवाणुओं हेतु जीवांश पदार्थ उनके भोजन तथा ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्त्रोत है जिससे जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। फलस्वरूप मृदा उर्वरता में बढ़ोतरी होती है।

15. पौधों की वृद्धि पर प्रभाव (Effect on Plant Growth)– ह्यूमस में वृद्धि कारक हार्मोन्स जैसे इण्डोल एसिटिक एसिड, इण्डोल प्रोपिओनिक अम्ल पाये जाते है। इन हार्मोन्स से पौधों की वृद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त जीवांश पदार्थ के मृदा में कुछ हानिकारक प्रभाव डालते हैं, जो निम्न है–

(i) जीवांश पदार्थ रोग पैदा करने वाले जीवों की ऊर्जा एवं भोजन स्रोत है, जो कि उनकों मृदा में लम्बे समय तक जीवित रखता है।

(ii) मृदा में अत्यधिक जीवांश पदार्थ मिश्रण की समस्या उत्पन्न करता है जिससे पौधरोपण में समस्या होती है।

(iii) विभिन्न जीवांश पदार्थ मृदा में विच्छेदन के दौरान फाइटोटॉक्सिन्स का निर्माण करते हैं जो पौधों के लिए हानिकारक है।

कार्बन : नत्रजन अनुपात (C: N Ratio) :

मृदा जीवांश पदार्थ तथा मृदा में उपस्थित नत्रजन की मात्रा में अधिक संबंध रहता है। कार्बन ऊर्जा प्रदान करने का कार्य करता जबकि नत्रजन एक मुख्य पादप पोषक तत्व है। मृदा में प्राप्त कार्बन की कुल मात्रा का एवं नत्रजन की कुल मात्रा का अनुपात कार्बन : नत्रजन अनुपात कहलाता है–

$$\text{कार्बन नत्रजन अनुपात} = \frac{\text{मृदा में प्राप्त कार्बन की कुल मात्रा}}{\text{मृदा में प्राप्त कुल नत्रजन की मात्रा}}$$

यह अनुपात मृदा में नत्रजन, कुल जीवांश पदार्थ एवं उसकी विच्छेदन की दर को नियन्त्रित रखता है। कार्बन नत्रजन अनुपात काफी परिवर्तनशील है। कृषि योग्य भूमि में इसकी परिसीमा 8:1 से 15:1 तक होते हैं तथा औसत 10 और 12:1 है। कार्बन नत्रजन अनुपात जलवायु कारक जैसे वर्षा एवं ताप से प्रभावित होते हैं। सामान्यतया यह अनुपात शुष्क क्षेत्रों की मृदाओं में आर्द्र क्षेत्रों की मृदाओं से कम होता है।

फलीदार पौधों तथा गोबर की खाद में कार्बन नत्रजन अनुपात 20:1 से 30:1 तक होता है। कुछ फसल अवशेष (भूसा) में यह 100:1 तक होता है। सूक्ष्म जीवाणुओं का कार्बन नत्रजन अनुपात 4:1 से 9:1 तक होता है। बैक्टीरिया के उत्तकों में यह अनुपात 5:1 तथा फंजाई के उत्तकों में इसका अनुपात 10:1 होता है क्योंकि बैक्टीरिया के उत्तकों की मात्रा फंजाई के उत्तकों से ज्यादा होती है। मृदा ह्यूमस में कार्बन नाइट्रोजन अनुपात 10:1 होता है।

मृदा में मिलाये गये जीवांश (कार्बनिक) पदार्थ अवशेषों का कार्बन नत्रजन अनुपात विस्तृत होता है। इसके मृदा में मिलाने पर कार्बन स्रोत को ऊर्जा के रूप में ग्रहण करने वाले परिपोषित जीवों की संख्या में तीव्रता से वृद्धि होती है। इन सूक्ष्म जीवों की क्रिया से मृदा में अधिकांश जीवांश पदार्थ कार्बन डाई ऑक्साइड तथा ऊर्जा में शीघ्रता से विच्छेदित हाने लगते है जिससे जीवांश पदार्थ की मात्रा शीघ्र कम हो जाती है।

सूक्ष्म जीवों को इस दशा में नये उत्तकों के निर्माण हेतु नत्रजन की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार प्रोटीन लिग्निन के साथ मिलकर जटिल पदार्थ बना लेते है। फलस्वरूप कार्बन नत्रजन अनुपात संकुचित हो जाता है। कार्बन नत्रजन अनुपात के संकुचित होने से कार्बन की मात्रा घट जाती है जिसके कारण परिपोषित जीवों की सक्रियता कम हो जाती है। इस कारण नत्रजन की मांग कम हो जाती है। इस अवस्था में नाइट्रीकरण की क्रिया पुनः होने लगती है।

कार्बन : नत्रजन अनुपात का महत्व (Importance of C:N Ratio) :

मृदा में कार्बन नत्रजन अनुपात का महत्व दो कारणों से प्रमुख है–

(i) विस्तृत अनुपात का जीवांश पदार्थ के मृदा में मिलाने पर सूक्ष्म जीवों तथा उच्च पौधों के बीच प्रतिस्पर्धा रखती है। विस्तृत कार्बन नत्रजन अनुपात वाले जीवांश पदार्थ को मृदा में मिलाने सूक्ष्म जीवों की सक्रियता बढ़ जाती है जिसके कारण विच्छेदन अधिक होता है। इस प्रक्रिया के दौरान नाईट्रेट, नत्रजन मृदा में कम हो जाती है। इसके कारण नत्रजन पौधों को प्राप्त नहीं होती है। विच्छेदन

प्रक्रिया के कुछ समय उपरान्त कार्बन नत्रजन अनुपात संकुचित होने लगता है जिससे कार्बन की मात्रा घट जाती है। फलस्वरूप परपोषित जीवों की सक्रियता कम हो जाती है। इस कारण नाइट्रोजन की मांग कम हो जाती है। नाइट्रेट, नत्रजन पौधों को प्राप्त हो जाती है।

(ii) कार्बन नत्रजन अनुपात मृदा में स्थिर रहता है। इसका स्थिर रहना साधारणतः मृदा नत्रजन स्तर पर निर्भर करता है, अतः कार्बन नत्रजन अनुपात की प्रायोगिक उपयोगिता पौधों एवं मृदा में नत्रजन की उपलब्धता के लिए है।

मृदा में नाइट्रोजन चक्र के महत्वपूर्ण जैविक प्रक्रम (Important Biological Process of Nitrogen Cycle Soil)–

मृदा में सदैव ही नाइट्रोजन की अधिक मात्रा का अन्तर्ग्रहण तथा अनेकों रूपान्तरण (Complex transformation) क्रियाओं के साथ निरन्तर चलता रहता है। इस प्रकार के निरन्तर चलने वाले कृमिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मृदा में नाइट्रोजन का लाभ तथा ह्रास होता रहता है। इस प्रकार से होने वाले नाइट्रोजन के संयुक्त परिवर्तन को नाइट्रोजन चक्र कहते हैं। (चित्र)

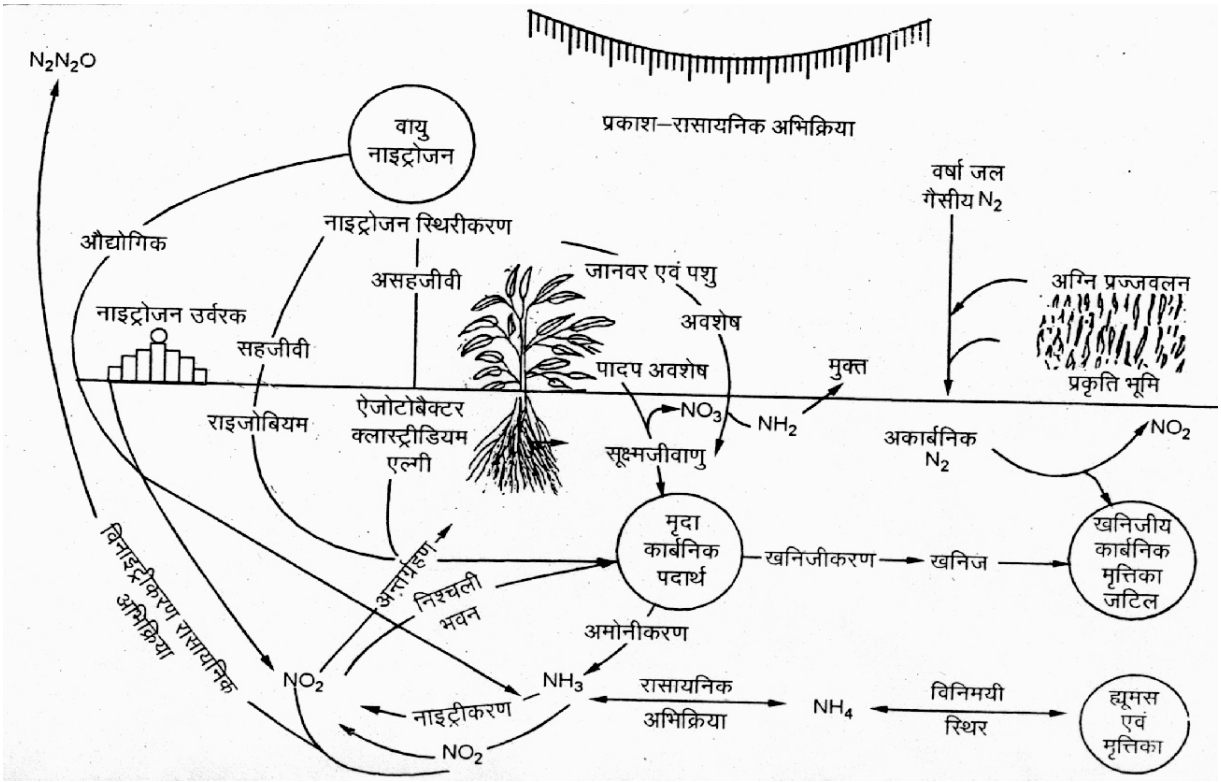

मृदा में नाइट्रोजन चक्र के विभिन्न प्रक्रम

(1) स्थिरीकरण (Immobilization)– मृदा में नाइट्रोजन का अधिकांश भाग कार्बनिक रूप में होता है जो उच्च पौधों को अप्राप्त होता है। वह प्रक्रम जिसके द्वारा नाइट्रोजन कार्बनिक रूप में परिवर्तित होती है, स्थिरीकरण कहलाती है।

{कार्बनिक N रूप} ⟵ खनिजन / स्थिरीकरण ⟶ {अकार्बनिक N रूप}

(2) खनिजन (Mineralization)– खनिजन वह प्रक्रम है जिसमें कार्बनिक नाइट्रोजन का अधिक गतिशील (mobile) अकार्बनिक रूप (अमोनियम एवं नाइट्रेट) में रूपान्तरण होता है। खनिजन के फलस्वरूप कार्बनिक नाइट्रोजन धीरे–धीरे अमोनियम और नाइट्रेट नाइट्रोजन के रूप में परिवर्तित होती है। खनिजन में अमीनीकरण, अमोनीकरण तथा नाइट्रीकरण प्रक्रम सम्मिलित है।

कार्बनिक नाइट्रोजन (प्रोटीन रूप में) ⟶ (एन्जाइमिक, जल विश्लेषण) ⟶ प्रोटियोसस ⟶

पेप्टोन्स ⟶ एमीनो यौगिक ⟶ नाइट्राइट ⟶ नाइट्रेट

(i) अमीनीकरण (Amminization)– वह प्रक्रम जिसमें प्रोटीन्स एवं अन्य संकीर्ण नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक यौगिक

एन्जाइम्स की क्रिया के फलस्वरूप एमीनो अम्लों में परिणित हो जाते हैं, अमीनीकरण कहलाती है।

अमीनीकरण क्रिया में परिपोषित मृदा सूक्ष्मजीव भाग लेते हैं। इन जीवों से संश्लेषित बाह्य कोशिका प्रोटीन, अपघटक एंजाइम्स प्रोटीन तथा नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक यौगिकों को ऐमीनो अम्ल में परिणित कर देते हैं। जिसे निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं–

प्रोटीन एवं अन्य संकीर्ण नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक यौगिक $\xrightarrow[\text{digestion}]{\text{Enzymic}}$ संकीर्ण एमीनो यौगिक $+ CO_2 + E +$ अन्य यौगिक

इस प्रक्रम में प्राप्त ऊर्जा सूक्ष्म जीवों द्वारा उपयोग कर ली जाती है।

अमीनीकरण में प्राप्त ऊर्जा एमीनो यौगिकों का उपयोग दो प्रकार से होता है : (1) मृदा में उपस्थित जीवों एवं सूक्ष्म जीवों के कोशीय पदार्थों के संश्लेषण में तथा (2) सूक्ष्म जीवों की प्रतिक्रिया से एमीनो यौगिकों का सरल अकार्बनिक यौगिकों में परिवर्तन हो जाता है।

अमोनीकरण (Ammonification)

विच्छेदन दशाओं एवं सूक्ष्म जीवों के स्वभाव के आधार पर एमीनो यौगिकों कुछ विशेष संजात यौगिकों में अवकृत होकर अन्त में अमोनिया बनाते है। यह परिवर्तन एमीडेस (amidases) तथा डिएमीनेस एन्जाइम द्वारा होता है।

अतः वह क्रिया जिसमें एमीनो यौगिक मृदा सूक्ष्म जीवों की क्रिया के फलस्वरूप अमोनिया तथा अमोनियम यौगिकों में परिवर्तित हो जाते हैं, अमोनीकरण कहलाती है।

अमीनीकरण क्रिया में संलग्न सूक्ष्म जीव ही अमोनीकरण क्रिया को सम्पन्न करते है। इस क्रिया को निम्न प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं।

$$R - NH_2 + HOH \xrightarrow[\text{Hydrolysis}]{\text{Enzymic}} R - OH + NH_3 + \text{Energy}$$

Amino combination

अमोनीकरण क्रिया में उत्पन्न अमोनिया मृदा की CO_2 से संयुक्त होकर अमोनियम कार्बोनेट तथा बाइकबोंट बनाती है। इन यौगिकों के विलयन से अमोनियम आयन्स प्राप्त होते हैं।

$$2NH_3 + H_2CO_3 \rightarrow (NH_4)_2 CO_3 \leftrightarrows 2NH_4 + CO_3^{--}$$

नाइट्रीकरण (Nitrification)–

नाइट्रीकरण वह प्रक्रम है जिससे मृदा में उपस्थित अमोनियम नाइट्रोजन नाइट्रेट में परिणित हो जाती है। यह एक वायुजीवी प्रक्रम है तथा स्वपोषित बैक्टीरिया द्वारा सम्पन्न होती है। नाइट्रीकरण में भाग लेने वाले बैक्टीरिया को दो वर्गों में बाँटते हैं : (1) वे बैक्टीरिया जो अपनी कोषा संश्लेषण के लिए NH_4 के के ऑक्सीकरण से ऊर्जा प्राप्त करते हैं। (2) दूसरे प्रकार के बैक्टीरिया नाइट्राइट के ऑक्सीकरण से ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

पहले वर्ग का बैक्टीरिया NH_4 को नाइट्राइट में बदलते हैं। नाइट्राइट का उत्पादन नाइट्रोसोमोनास द्वारा होता है। दूसरे वर्ग के बैक्टीरिया जिनके द्वारा नाइट्रेट का उत्पादन होता है। नाइट्रोबेक्टर है। NO_2^- या NO_3^- में परिवर्तन NH_3 के NO_2 से परिवर्तन की अपेक्षा तेज होता है। यह वांछनीय भी है क्योंकि NO_2 का संचय पौधों केलिए वैधिक होता है। नाइट्रोसोमोनास 35–40 मोल अमोनिया ऑक्सीकृत करता है और नाइट्रोबेक्टर 70–100 मोल नाइट्राइट ऑक्सीकृत करता है। ये रासायनिक परिवर्तन निम्न प्रकार होते हैं–

(i) $2NH_2 + 3O_2 \xrightarrow{\text{Nitrosomonas}} 2HNO_2 + 2H_2O + 79$ Calories

(ii) $2NHO_2 + O_2 \xrightarrow{\text{Nitrobacter}} 2HNO_3 + 43$ Calories

विनाइट्रीकरण (Denitrification)–

इस प्रक्रम में मृदा नाइट्रेट का नाइट्रोजन गैस तथा/या नाइट्रस ऑक्साइड में परिवर्तन होता है। यह प्रक्रम अनेक जीवाणुओं की प्रतिक्रिया के सफलस्वरूप होता है।

'नाइट्रेट अवकरण तथा नाइट्रेट स्वांगीकरण की अनेक प्रक्रमों द्वारा मृदा से नाइट्रेट का लुप्त होना प्रायः विनाइट्रीकरण कहलाता है।' अतः विनाइट्रीकरण का अभिप्रायः उस प्रक्रम से है जिसमें मृदा के नाइट्रेट का वायुमण्डलीय नाइट्रोजन तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड में पूर्ण अवकरण होता है, जबकि अन्य प्रक्रमे जिनमें नाइट्रोजन का लोपन (disapearance) होता है, नाइट्रेट अवकरण तथा नाइट्रेट स्वांगीकरण कहलाती है। इस प्रक्रम में बैक्टीरियम, डिनाइट्रीफिकान्स, स्यूडोमोनास, माइक्रोकोकस तथा बेसलस बैक्टीरिया भाग लेते हैं।

$$2HNO_3 \xrightarrow[-2H_2O]{+4H} 2HNO_2 \xrightarrow[-2H_2O]{+4H} H_2N_2O_2 \begin{cases} \xrightarrow{-2H_2O} N_2 \uparrow \xrightarrow{+2H} \\ \xrightarrow{-2H_2O} N_2O \xrightarrow{-H_2O} \end{cases}$$

मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव (Soil Micro Organism)–

भूमि मृत पदार्थों का केवल जड़ पुंज नहीं है। इसमें अनेक प्रकार के जीव निवास करते हैं जिनमें से अधिकांश को नंगी आँख से देखा भी नहीं जा सकता है। इसलिए इन्हें सूक्ष्म जीव (Micro Organism) कहा गया है। इन सूक्ष्म जीवों में से अधिकांश कृषक के लिए मित्र रूप में कार्य करने में निरन्तर संलग्न रहते हैं।

लेकिन कुछ ऐसे भी जीव है जिनके कारण फसलों में अनेक रोग लगते हैं और जो कृषि के लिए अभिशाप हैं। इन सूक्ष्म जीवों को पाँच वर्गों में बाँटा गया है–

1. जीवाणु (Bacteria)– मृदा में सूक्ष्म जीवों में 90 प्रतिशत जीवाणु हैं। ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी में तो प्रति ग्राम 10 करोड़ जीवाणु तक हो सकते हैं। ये एक–कोशिकीय सूक्ष्म जीव हैं और इनमें पर्णहरित नहीं होता। इन जीवाणुओं की सूक्ष्मता का इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि इनमें से शायद ही कोई जीवाणु 1/250 मिलीमीटर से अधिक लम्बा हो। ये लम्बे होकर दो टुकड़ों में बँट जाते हैं। इनकी वृद्धि का ढंग आश्चर्यजनक रूप से तेजी से चलता है और इस विधि द्वारा कुछ ही समय में एक से अनेक होने की क्षमता रखते हैं। इनका भूमि की उर्वरता (Soil fertility) बनाये रखने में भारी हाथ है। ये जीवाणु जैव–पदार्थ की नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में बदलने तथा वायुमण्डल की नाइट्रोजन का भूमि में यौगिकीकरण करने का महान् कार्य करते हैं परन्तु कुछ जीवाणु पौधों में विशेष रोग भी पैदा करते हैं।

2. ऐक्टिनोमाइसिटीज (Actinomycetes)– मृदा सूक्ष्म जीवों में लगभग 9 प्रतिशत ऐक्टिनोमाइसिटीज हैं। आकार में ये जीवाणुओं के ही समान होते हैं और एक–कोशीय हैं यद्यपि इनके विकास के लिए भी नम और वायु–युक्त (Well aerated) भूमि सर्वोत्तम रहती है, लेकिन ये अपेक्षाकृत शुष्क भूमि और निचली तहों में भली प्रकार पनपते हैं। ग्रीष्म ऋतु में जब भूमि धूप से भली प्रकार तप लेती है उसके बाद पहली वर्षा होने पर उस भूमि से सौंधी–सौंधी सुगन्ध आती हैं। यह सुगन्ध ऐक्टिनोमाइसिटीज के पुरुषार्थ का ही फल है। ये जीव भूमि से जैव पदार्थों का विलयन कर उनमें पौधों के विभिन्न पोषक तत्वों को विमुक्त (Liberate) करते हैं। इसके अतिरिक्त ऐक्टिनोमाइसिटीज विभिन्न यौगिकों को सरल रूप में बदल कर पौधों के लिए उपयोगी बनाते हैं।

3. कवक (Fungi)– जो भूमि कुछ–कुछ अम्लीय होती है और जिसमें जैव पदार्थ की अधिकता होती है उसमें कवक अधिकता से पाये जाते हैं। यह बहुकोशीय (Multicellular) जीव हैं लेकिन इनमें भी पर्णहरित नहीं पाया जाता। ये अपनी शक्ति कार्बन और जैव पदार्थ से ग्रहण करते हैं। म्यूकर, पैनीसीलियम, फ्यूजेरियम इत्यादि विभिन्न फफूंदी तथा खमीर एवं कवक इसी वर्ग में सम्मिलित हैं।

जैव पदार्थों की सड़ाव क्रिया में कवक का बड़ा सहयो है। ह्यूमस बनाने में कवक जीवाणुओं से अधिक महत्व रखते हैं। लेकिन ये अमोनियम यौगिकों को नाइट्रेट में बदलने की क्षमता नहीं रखते, ये वायुमण्डल की नाइट्रोजन का भूमि में यौगिकीकरण कर सकते हैं। ये जीव बहुत महीन धागे जैसा आकार उत्पन्न करते हैं जिन्हें माइसीलिया कहते हैं। कुछ कवक पौधों में विशेष रोग भी उत्पन्न करते हैं।

4. शैवाल (Algae)– इस वर्ग में अतिसूक्ष्म से लेकर कुछ–कुछ बड़े पौधे सम्मिलित हैं जिनमें पर्णहरित पाया जाता है। अधिक नम स्थानों में शैवाल अधिकता से पाये जाते हैं। कुछ शैवाल का विशेष महत्व जीवाणुओं को उनके निम्नलिखित कार्यों के सम्पादन में सहायता पहुंचाना है–

(अ) पौधों के ऊतकों का अपघटन (Decomposition of plant tissues)

(ब) पोषक तत्वों का विमुक्तिकरण (Liberation of nutrients)

(स) ह्यूमस का संश्लेषण (Synthesis of humus)

5. प्रोटोजोआ (Protozoa)– ये एक–कोशीय जीव हैं जो बैक्टीरिया की अपेक्षा बड़े होते हैं। इनके जीवन के लिए वायु और भोजन आवश्यक है अतः ये भूमि की ऊपरी सतह में ही पाये जाते हैं। खाद की विघटन क्रिया में इस वर्ग के जीवों का बड़ा सहयोग है।

मृदा जीवाणुओं के कार्य (Functions of Soil Bacteria)–

मृदा जीवाणुओं के मुख्य कार्य निम्नलिखित है–

1. नाइट्रीकरण (Nitrification)
2. नाइट्रोजन यौगिकीकरण (Nitrogen fixation)
3. भूमि के अकार्बनिक घटकों का परिवर्तन (Change in the Inorganic constituents)
4. कार्बोहाइड्रेट का विभंजन अथवा जैव–द्रव्य का खनिज में परिवर्तन (Breaking down of carbohydrates of Mineralisation of organic matter)
5. विनाइट्रीकरण (Denitrification)

नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen Fixation)–

वायुमण्डल में नाइट्रोजन की मात्रा आयतन आधार पर लगभग 78 प्रतिशत तथा भारात्मक आधार पर लगभग 75 प्रतिशत होती है। वायुमण्डल की नाइट्रोजन को जीवाणुओं द्वारा ग्रहण कर भूमि या पौधों को उपलब्ध कराना नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहलाता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण दो प्रकार से होता है तथा इसमें दो प्रकार के जीवाणु संलग्न रहते हैं– (1) सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Symbiotic Nitrogen Fixation) (2) असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Non-symbiotic Nitrogen Fixation)

(1) सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Symbiotic Nitrogen Fixation)– अधिकांश फलीदार पौधों में सनई, ढैचा, बरसीम, मटर, मूँग, चना, अरहर आदि की जड़ों में अनेक

छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ होती है। इन ग्रन्थियों में वायुमण्डल से मृदा में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले बैक्टीरिया निवास करते हैं। बैक्टीरिया दलहनी पौधों से ऊर्जा की आवश्यकता के लिए कार्बोहाइड्रेट्स लेते हैं तथा पौधों को नाइट्रोजन देते हैं, इस प्रकार परस्पर ये एक–दूसरे को लाभ पहुंचाते है इसलिए बैक्टीरिया और दलहनी पौधों के सम्बन्ध को सहजीवन (Symbiosis) कहते हैं तथा इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले जीवों को सहजीवी (Symbionts) कहते हैं। सहजीवी जीवाणु राइजोबियम प्रजाति से सम्बन्धित है और ये दलहनी पौधों के सहजीवन में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं।

ग्रन्थि का निर्माण (Nodule formation)– नाइट्रोजन स्थिरक बैक्टीरिया जड़ों में प्रवेश करके संक्रमण नलिका बनाते हैं। यह संक्रमण नलिका सम्पूर्ण मूल रोम में फैलकर मूलक व कार्टेक्स तक पहुंच जाती है। बैक्टीरिया कार्टेक्स के विभाजन को प्रोत्साहित करते हैं, इस प्रकार जड़ों में ग्रन्थि बन जाती है। पादप वृद्धि की प्रारिम्भक अवस्था में बैक्टीरिया जड़ों पर संक्रमण करते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में बैक्टीरिया पौधों के ऊपर निर्भर करते हैं तथा बाद में पौधों को नाइट्रोजन देकर लाभ पहुंचाते हैं। इस प्रकार ग्रन्थियों में उपस्थित बैक्टीरिया का विकास एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य प्रारम्भ हो जाता है।

सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण बैक्टीरिया (Symbiotic Nitrogen Fixing Bacteria)– ग्रन्थियों में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले बैक्टीरिया की राइजोबियम जाति में वगीकृत करते हैं। प्रायः राइजोबियम की कुछ जातियाँ कुछ निश्चित पौधों की जड़ों पर ग्रन्थियाँ बनाती है। सामान्यतः इन बैक्टीरिया को पोषित पौधों के अनुसार भिन्न–भिन्न जातियों में निम्न तालिका के अनुसार वर्गीकृत करते हैं–

जातियों के नाम	वर्ग के नाम	फसलें
वर्ग 1 रा. मेलीलोटी	रिजका वर्ग	रिजका, स्वीटक्लोवर
वर्ग 2 रा. ट्राइफोली	तिपतिया वर्ग	क्लोवर
वर्ग3 रा.लेगूमिनोसेरम	मटर वर्ग	उद्यान मटर, खेत मटर, स्वीट पी, मसूर
वर्ग 4 रा. फजिओली	फेजिओलस वर्ग	गार्डन बीन और मोठ
वर्ग 5 रा. जेपोनीकम	सोयाबीन वर्ग	सोयाबीन
वर्ग 6 रा. लूपिनी	लुपिन वर्ग	वार्षिक एवं बहुवार्षिक लूपिन
वर्ग 7 रा. (अनामित जातियाँ)	लोबिया वर्ग	लोबिया, लीमा बीन और मूँगफली

(2) असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Non-symbiotic Nitrogen Fixation)–

असहजीवी जीवाणु (Non-symbiotic or free-living bacteria) वायुमण्डल की नाइट्रोजन को बिना किसी पौधे की सहायता से मृदा में स्थापित करते हैं। असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण अनाज वाली फसलों, जैसे–गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि में मुक्तजीवी जीवाणु द्वारा होता है। ये जीवाणु दो प्रकार के होते हैं–

1. वातजीवी जीवाणु (Aerobic Bacteria)– ये जीवाणु एजोटोबैक्टर प्रजाति के हैं और साधारणतया भूमि में बहुतायत से पाये जाते हैं। ये जीवाणु वायुमण्डल की नाइट्रोजन को लेकर अपने शरीर को पुष्ट करते हैं और मरने के उपरान्त इन जीवाणुओं द्वारा एकत्रित नाइट्रोजन भूमि में पौधों के उपयोग के लिए उपलब्ध हो जाते हैं।

इन जीवाणुओं के भूमि में सुचारु रूपेण क्रियाशील बने रहने के लिए उसमें कार्बोहाइड्रेट, फॉस्फेट, चूना, नमी और वायु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होनी चाहिए। इस वर्ग में एजोटोबैक्टर तथा विजेरिंकिया प्रमुख हैं

एजोटोबैक्टर वर्ग में पाँच प्रजातियाँ होती हैं–

(1) एजोटोबैक्टर क्रोकोकम (2) एजोटोबैक्टर विजेरिंकी, (3) एजोटोबैक्टर विनेलेण्डी (4) एजोटोबैक्टर एजल्स (5) एजोटोबैक्टर इण्डीकम।

2. अवातजीवी जीवाणु (Anaerobic Bacteria)– ये जीवाणु वायु की अनुपस्थिति में भूमि में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करते हैं। ये जीवाणु संख्या में एजोटोबैक्टर से अधिक होते हैं। अम्लीय भूमि और पानी निकास के प्रबंध का अभाव दो ऐसी परिस्थितियाँ हैं जहाँ ये जीवाणु बहुत पाये जाते हैं। क्लोस्ट्रीडियम पास्चुरिएनम इस वर्ग के मुख्य जीवाणु हैं

महत्वपूर्ण बिन्दु

(i) साधारणतया मृदा में 0.1 से 5 प्रतिशत तक जीवांश पदार्थ पाये जाते हैं।

(ii) मृदा में जीवांश पदार्थों के मुख्य स्रोत पादप तथा जन्तु हैं।

(iii) लिग्निन का विचछेदन बहुत जटिल है एवं प्रोटीन के साथ मिलकर लिग्नोप्रोटीनेट का निर्माण करते हैं।

(iv) ह्यूमस गहरे भूरे या काले रंग का जटिल यौगिकों से निर्मित अक्रिस्टलीय पदार्थ है।

(v) मृदा का कार्बन नत्रजन अनुपात 10:1 से 12:1 होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. खनिज पदार्थ में जीवांश पदार्थ की मात्रा होती है–
   (अ) 0.5 से 10% (ब) 1 से 5%
   (स) 0.1 से 5% (द) 0.1 से 0.5%
2. सूक्ष्म जीवों के शरीर का कार्बन नत्रजन अनुपात होता है–
   (अ) 4–9:1 (ब) 10–12:1
   (स) 20–100:1 (द) इनमें से कोई नहीं
3. मृदा में जीवांश पदार्थ के प्रमुख स्रोत है –
   (अ) केवल पौधे (ब) पौधे एवं जन्तु
   (स) केवल जन्तु (द) इनमें से कोई नहीं
4. विच्छेदन के लिए उपयुक्त तापक्रम है–
   (अ) 5° से. से कम (ब) 40° से. से कम
   (स) 10–20° से. (द) 30–40° से.
5. जीवांश पदार्थ से मृदा की धनायन क्षमता –
   (अ) घटती है (ब) बढ़ती है
   (स) अपरिवर्तित रहती है (द) इनमें से कोई नहीं
6. जीवांश पदार्थ से मृदा की उभय प्रत्यारोधन क्षमता –
   (अ) बढ़ती है (ब) घटती है
   (स) अप्रभावित (द) इनमें से कोई नहीं
7. प्रोटोजोआ होते हैं–
   (अ) सरलतम एक कोशीय सूक्ष्म जन्तु
   (ब) जटिल एक कोशीय सूक्ष्म जन्तु
   (स) बहुकोशीय सूक्ष्म जन्तु
   (द) इनमें से कोई नहीं
8. फन्जाई के लिए उपर्युक्त पी–एच है–
   (अ) 4–5 (ब) 6–8
   (स) 7 – 7.5 (द) इनमें से कोई नहीं
9. वह प्रक्रम जिससे मृदा में उपस्थित अमोनियम नाइट्रोजन नाइट्रेट में परिणित हो जाती है, कहलाता है–
   (अ) नाइट्रीकरण (ब) विनाइट्रीकरण
   (स) अमोनीकरण (द) इनमें से कोई नहीं
10. नाइट्रेट अवकरण तथा नाइट्रेट स्वांगीकरण की अनेक प्रक्रमों द्वारा मृदा से नाइट्रेट का लुप्त होना प्रायः कहलाता है–
    (अ) विनाइट्रीकरण (ब) नाइट्रीकरण
    (स) अमोनीकरण (द) नाइट्रोजन स्थिरीकरण
11. वायुमण्डलीय नाइट्रोजन मृदा में स्थायी अकार्बनिक या कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों में परिवर्तन कहलाता है–
    (अ) विनाइट्रीकरण (ब) नाइट्रीकरण
    (स) नाइट्रोजन स्थिरीकरण (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. मृदा में जीवांश पदार्थ की कितने प्रतिशत मात्रा पाई जाती है ?
2. मृदा में कार्बन डाई ऑक्साइड की कितने प्रतिशत मात्रा पाई जाती है ?
3. जीवांश पदार्थ में लिग्निन की कितने प्रतिशत मात्रा पाई जाती है ?
4. ग्लूकोज का रासायनिक सूत्र लिखिए।
5. पादप अवशेषों के यौगिकों के विच्छेदन के दौरान कौनसी गैस निकलती है ?
6. मृदा का औसत कार्बन : नत्रजन अनुपात कितना होता है?
7. सूक्ष्म जीवाणुओं का कार्बन : नत्रजन अनुपात कितना होता है ?
8. ह्यूमस का संगठन लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. जीवांश पदार्थ के प्रमुख स्रोत बताईये।
2. कार्बन–नत्रजन अनुपात का मृदा में महत्व बताईये।
3. मृदा जीवांश पदार्थ का संगठन लिखिए।
4. ह्यूमस के कोई चार गुणों को लिखिए।
5. ह्यूमस की परिभाषा लिखिए।
6. कार्बन नत्रजन अनुपात को परिभाषित कीजिए।
7. लिग्नोप्रोटीनेट कैसे बनता है।
8. जीवांश पदार्थ को परिभाषित कीजिए।
9. बैक्टीरिया के कार्य लिखिए।
10. नाइट्रीकरण की परिभाषा दीजिए।
11. अमोनीकरण प्रक्रम की व्याख्या कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. जीवांश पदार्थ के विघटन को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।
2. जीवांश पदार्थों का मृदा गुणों तथा उर्वरता पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।
3. ह्यूमस के गुणों की विवेचना कीजिए।

4. कार्बन : नत्रजन चक्र का सचित्र वर्णन कीजिए।
5. सूक्ष्म जीवों पर एक निबन्ध लिखे।
6. मृदा में नाइट्रोजन के सूक्ष्मजीवी रूपान्तरण का वर्णन कीजिए।
7. सहजीवी और असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण को परिभाषित कीजिए। राइजोबियम प्रजातियों की दलहनी फसलों में भूमिका का वर्णन कीजिए।
8. सहजीविका (Symbiosis) क्या है? सहजीवी बैक्टीरिया मृदा में नाइट्रोजन कैसे स्थिर करती है?

उत्तरमाला–

1. (स) 2. (अ) 3. (ब)
4. (द) 5. (ब) 6 (अ) 7. (अ) 8. (अ)
9. (अ) 10. (अ) 11. (ब)

अध्याय – 3

मृदा कोलॉइड्स
(Soil Colloids)

कोलॉइड्स शब्द का ग्रीक भाषा के शब्द कोला (Kolla) जिसका अर्थ गोंद तथा ऑड्स का अर्थ समान होता है। थॉमस ग्राहम (1861) जो कि कोलॉइड रसायन के जनक माने जाते हैं, ने जल विलेय पदार्थों को जन्तु झिल्ली में विसरण के आधार पर क्रिस्टलाभ एवं कोलॉइड्स में विभक्त किया। वे पदार्थ इस झिल्ली में से आसानी से विसरित होते हैं, क्रिस्टलाभ कहलाते हैं। वे पदार्थ जिनके विलयन का प्रसारण अति मन्द गति से होता है या पूर्ण रूप से विसरित होने में असमर्थ होते है, कोलॉइड्स कहलाते हैं।

परिभाषा (Definition)–

ऐसे मृदा कण जिनका व्यास 1.0 से 100 मिलिमाइक्रोन तक होता है एवं कोलॉइडल गुण रखते हो, मृदा कोलॉइड्स कहलाते है। कणों के व्यास की उच्चतम सीमा 500 मिलिमाइक्रोन होती है। कोलॉइड के कण इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी में ही दिखाई देते हैं।

कोलॉइड्स के गुण (Properties of Colloids) –

(i) विषमांगता (Heterogenity)–कोलॉइड्स वास्तविक विलयन नहीं बनाते हैं। इनका विलयन विषमांगी होता है। इसमें दो प्रावस्थाएं; अपकीर्ण प्रावस्था ठोस एवं अपकीर्ण माध्यम द्रव होता है। इस प्रकार के कोलॉइड विलयन को सोल कहा जाता है। उदाहरणार्थ– अगर माध्यम जल है तो विलयन को हाइड्रोसोल कहा जाता है।

(ii) विसरण (Diffusion)– अर्द्ध पारगम्य झिल्ली में विसरित नहीं होते हैं।

(iii) ब्राउनियन गति (Brownion Movement)– कोलॉइडी कणों के निलम्बन को अल्ट्रासूक्ष्मदर्शी से देखने पर कोलॉइडल कण एक टेढ़े–मेढ़े ढंग से निरन्तर कम्पन्न करते दिखाई देते है। इसको ब्राउनियन गति कहते है। कणों का आकार जितना छोटा होगा उतनी ही गति तीव्र होगी।

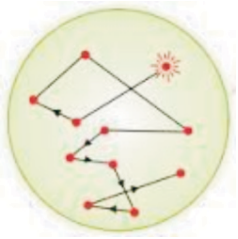

चित्र–3.1 कोलॉइडी कणों की ब्राउनियन गति

(iv) विद्युत आवेश (Electric Charge)– कोलॉइडल कणों पर ऋण आवेश होता है, इस कारण धनायनों को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं।

(v) टिण्डल प्रभाव (Tyndal Effect)– टिण्डल नाम के वैज्ञानिक ने पाया कि प्रकाश की किरणों का रास्ता नीले रंग से प्रकाशित होता है। जैसे ही अन्धेरे कमरे में तीव्र प्रकाश की किरण प्रवेश करती है तो हवा में धूल के कण स्पष्ट दिखाई देते हैं। अतः कोलॉइड्स के विलयन द्वारा प्रसारित प्रकाश को टिण्डल प्रभाव कहते हैं।



चित्र–3.2 टिण्डल प्रभाव

(vi) अधिशोषण (Adsorption)– कोलॉइड कणों पर ऋण आवेश होने के कारण धनायनों को आकर्षित करते है। आकर्षित होने के उपरान्त ये धनायन कण कोलॉइडल कणों पर एकत्रित हो जाते हैं, जिसे अधिशोषण कहा जाता है।

(vii) अवक्षेपण (Precipitation)– कोलॉइडल विलयन में थोड़ी मात्रा में विद्युत अपघट्य डालने से अवक्षेपण हो जाता है।

मृदा कोलॉइड्स के गुण (Properties of Soil Colloids) :

मृदा कोलॉइड्स के गुण, कोलॉइड्स के गुणों के समान होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष गुण मृदा कोलॉइड में पाये जाते है जो निम्नलिखित हैं–

(i) ससंजन एवं आसंजन (Cohesion and Adhesion)– समान गुणों वाले अणुओं के मध्य आकर्षण को ससंजन कहते है जैसे जल के दो अणुओं के मध्य आकर्षण। इसी प्रकार असमान अणुओं जैसे ठोस प्रावस्था का द्रव प्रावस्था के मध्य आकर्षण को आसंजन कहते है। मृदा कोलॉइड्स में यह गुण पाया जाता है।

(ii) सुघट्यता (Plasticity)– सिलिकेट मृदा कोलॉइड्स में यह गुण पाया जाता है। बल लगाने पर मृदा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाती है एवं बल हटाने पर वापस उसी रूप में बने रहते है। सुघट्यता का गुण सबसे अधिक मोन्टमोरीलोनाइट समूह में तथा सबसे कम केओलिनाइट में पाया जाता है।

(iii) उर्णीपिण्डन एवं विउर्णीपिण्डन (Flocculation and Deflocculation)– मृतिका के कणों पर ऋण आवेश रहता है जिसके कारण इसके कण निलम्बन में रहते हैं। यदि इसके निलम्बन में कोई विद्युत अपघट्य मिला दिया जाता है तो मृतिका कणों का ऋणावेश कम या समाप्त हो जाता है और यह कण आपस में मिलकर समुच्चय बनाते हैं, जिसे उर्णीपिण्डन कहा जाता है। इसके विपरीत वह प्रक्रम जिसमें समुच्चय फिर कणों में टूट जाता है, विउर्णीपिण्डन कहलाता है।

(iv) फैलाव एवं संकुचन (Swelling and Shrinkage)– मृदा कोलॉइड्स जल के सम्पर्क में आने पर जल सोखकर फूलने से आयतन में वृद्धि होती है। इसे फैलाव कहते है तथा जल सूखने की दशा में मृदाओं में सिकुड़न होती है उसे संकुचन कहते है। यह गुण मॉन्टमोरीलोनाइट में सबसे अधिक, हाइड्रस माइका में मध्यम तथा केओलिनाइट में सबसे कम पाया जाता है।

मृदा कोलॉइड्स के प्रकार (Types of Soil Colloids)–

मृदा कोलॉइड्स दो प्रकार के होते है–

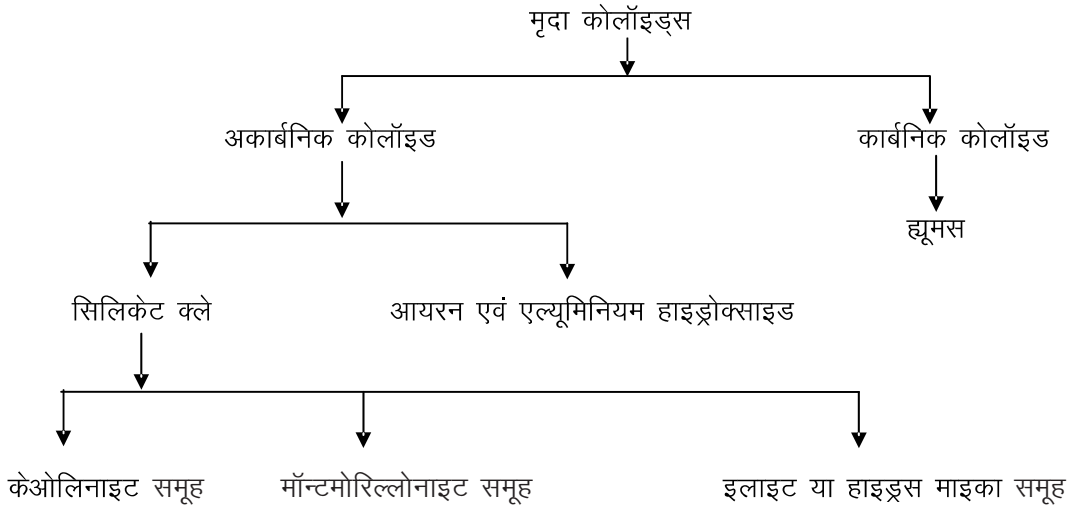

अकार्बनिक कोलॉइड (Inorganic Colloids) –

इनको खनिज कोलॉइड भी कहा जाता है। इसमें मुख्य रूप से मृतिका (क्ले) आती है। मृतिका कणों का व्यास 2 माइक्रोन (0.002 मि. मी.) से कम होता है।

मृतिका कोलॉइड्स को मुख्यतया दो समूह में विभक्त किया गया है–(i) सिलिकेट क्ले एवं (ii) आयरन एवं एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड

सिलिकेट मृतिकाएं (Silicate Clay)– इनका निर्माण समशीतोष्ण प्रदेशों में होता है। इसकी संरचना निम्न प्रकार से होती है –

(i) रूप (Shape)– इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर यह कण प्लेट्स के समान, पुस्तक के पृष्ठों की पतली परतों के

समान, स्तरीय (लेमिनेटेड़) आकार या षट्भुजाकार या अनियमित छड़नुमा पाये जाते है।

(ii) सतह क्षेत्रफल (Surface Area)– मृतिका के कण बहुत बारीक होते है, अतः इसका बाह्य क्षेत्रफल बहुत अधिक होता है।

(iii) विद्युत आवेश (Electric Charge)– इनकें कणों पर ऋण आवेश पाया जाता है इसलिए धनायनों को अपनी ओर आकर्षित करते है। इस प्रकार अन्दर की परत ऋण आवेशित रहती है एवं बाहर की परत धनायन की बन जाती है।

(iv) अधिशोषित आयन (Adsorbed Ions)– मृतिका के कणों पर ऋण आवेश होने के कारण इसकी सतह पर धनायन अधिशोषित होते है। धनायन अस्थिर परत के रूप में अधिशोषित रहने से दूसरे धनायनों द्वारा विस्थापित हो जाते है जिसे धनायन विनिमय कहते है।

सिलिकेट मृतिका का खनिजन एवं रासायनिक संगठन (Chemical & Mineral Composition of Silicate Clay)–

उच्च क्षमता के इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर पता चलता है कि मृतिका के कण क्रिस्टलीय होते है।

खनिजन एवं रासायनिक संगठन की दृष्टि से सिलिकेट मृतिकाओं को तीन भागों में बांटा जा सकता है– 1. केओलिनाइट (Kaolinite Group) 2. मोन्टमोरिलोनाइट समूह (Montmorilonite Group) 3. इलाइट समूह (Illite Group)

केओलिनाइट (Kaolinite Group)– इसमें प्रमुख रूप से केओलिनाइट खनिज पाया जाता है। केओलिनाइट के कण क्रिस्टलीय ईकाईयों से बनते है जिनमें परत एल्युमिना (Al_2O_3) तथा दूसरी परत सिलिका (SiO_2) की होती है। इस प्रकार की मृतिका को संरचना 1:1 टाइप कहते है। एल्यूमिना व सिलिका की परतें आपस में O_2 तथा हाइड्राक्सिल द्वारा जुड़ी रहती है जिससे आपस में मजबूती से जुड़ी रहती है।

केओलीनाइटस् की केवल बाहरी सतह ही क्रियाशील होने से धनायन अधिशोषण क्षमता (Cation Exchange Capicity) बहुत कम होती है। सुघट्यता, संसजन, फैलाव तथा संकुचन के गुण भी कम होते है। सरन्ध्रता (Porosity) व पारगम्यता (Permeability) अत्याधिक होती है। इसका संरचना सूत्र $Al_4Si_4O_{10}(OH)_8$ है।

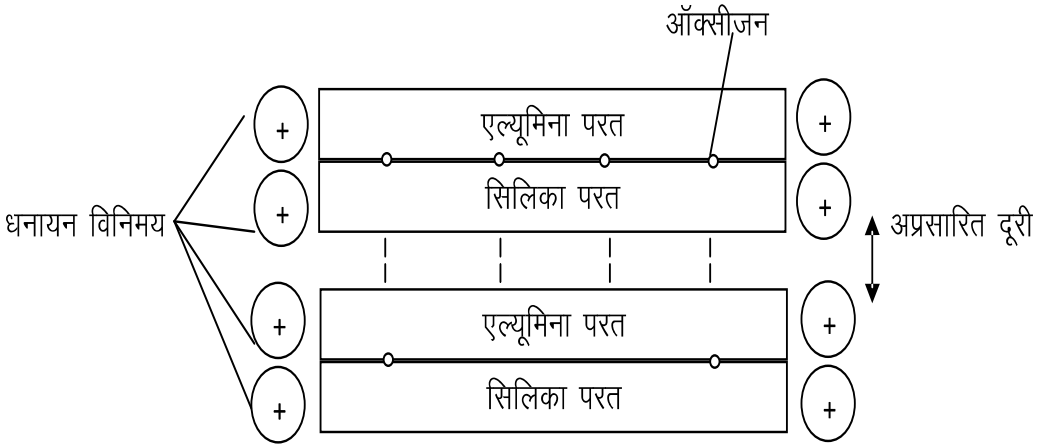

चित्र–3.3 केओलिनाइट समूह की पंक्ति संरचना

2. मॉन्टमोरिलोनाइट समूह (Montmorillonite Capicity)– इसमें प्रमुख रूप से मॉन्टमोरिलोनाइट खनिज पाया जाता है। मॉन्टमोरिलोनाइट के कण भी क्रिस्टलन ईकाईयों से बनते है, जिनमें दो सिलिका (SiO_2) परत तथा एक एलुमिना (Al_2O_3) परत होती है। इस प्रकार की मृतिका संरचना को 2:1 टाइप कहते हैं इसमें एक एल्यूमिना परत बीच में तथा सिलिका परतें इसके दोनों ओर होती है। सिलिका एवं एल्यूमिना परत आपस में ऑक्सीजन परमाणुओं द्वारा जुड़ी रहती हैं। ये आपस में कमजोर बन्धन द्वारा जुड़ी रहती है।

इनमें केओलिनाइट की अपेक्षा धनायन की अधिशोषण क्षमता अधिक होती है, क्योंकि इसकी आन्तरिक व बाहरी सतह अधिक क्रियाशील होती है। इनमें सुघट्यता, संसजन, फैलाव तथा संकुचन के गुण अधिक होते है। सरन्ध्रता तथा पारगम्यता से कम होती है।

इस प्रकार की मृदाएँ पानी देने से फूल जाती है तथा सूखने पर सिकुड़ने से गहरी दरारें पड़ जाती है जिससे जुताई कार्य में कठिनाई आती है। इसकी संरचना सूत्र $Al_4Si_8O_{20}(OH)_4$ है।

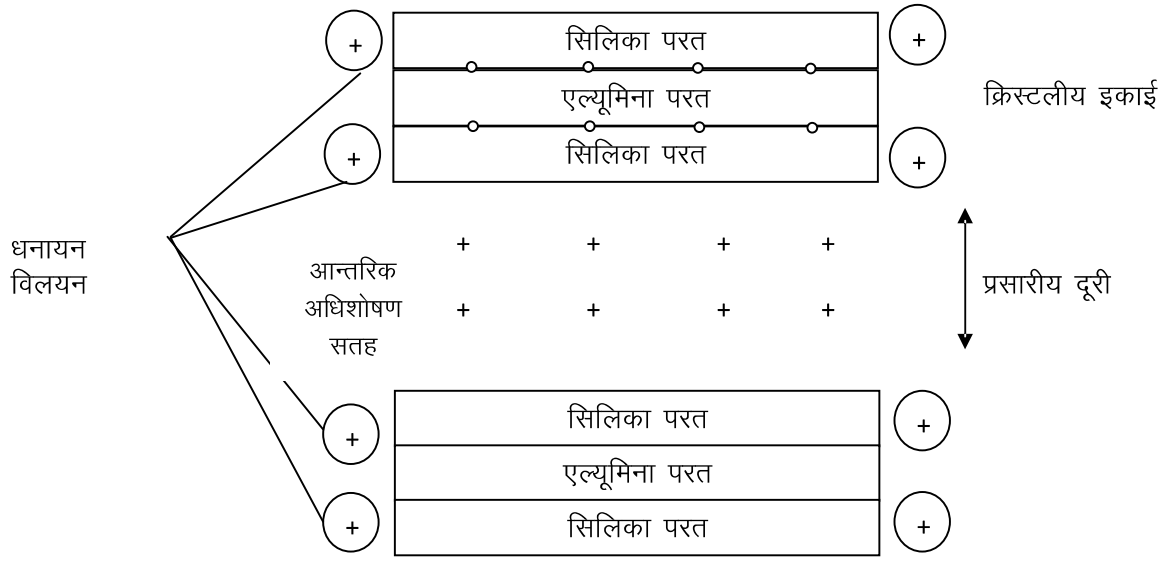

चित्र : 3.4 मॉन्टमोरीलोनाइट समूह की पंक्ति संरचना

3. इलाइट समूह (Illite Group)– इस समूह को हाइड्रस माइका भी कहते है। इस समूह में प्रमुख रूप से इलाइट खनिज पाया जाता है। इस समूह में इलाइट के कण भी क्रिस्टलन इकाइयों से बनते है, इसमें संरचना मोन्टमोरिलोनाइट की तरह 2:1 होती है। इसमें भी दो सिलिका परतें एवं एक एल्यूमिना परत होती है। इसमें एक एल्यूमिना की परत के दोनों ओर सिलिका परतें होती है।

इसमें कण मॉन्टमोरिलोनाइट से बड़े होते हैं। इसकी संरचना में दो इकाइयों के मध्य पोटेशियम पाया जाता है। जिसके कारण यह मॉन्टमोरिलोनाइट की अपेक्षा कम प्रसारीय होती है। अतः सुघट्यता, संसजन, फैलाव एवं संकुचन मॉन्टमोरिलोनाइट से कम तथा केओलिनाइट से अधिक होती है। इसका संरचना सूत्र $KAl_4Si_8O_{20}(OH)_4$ है।

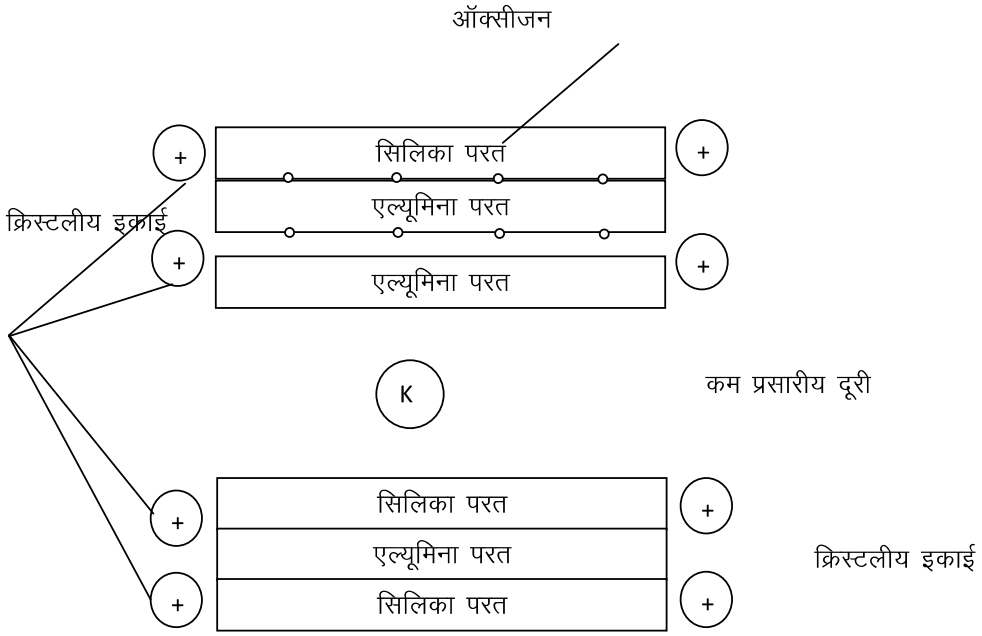

चित्र : 3.5 इलाइट समूह की पंक्ति संरचना

सिलिकेट मृतिका खनिज के तुलनात्मक गुण (Comperative properties of silicate clay minerals) :

क्र.सं.	गुण	मॉन्टमोरिलोनाइट	इलाइट	केओलिनाइट
1	संरचना	2:1 फैलावयुक्त	2:1 कम फैलाव	1:1 स्थिर
2	आकार (माइक्रोन)	0.01–1.0	0.1–2.00	0.1–5.0
3	आकृति	अनियमित परत	अनियमित परत	षट्कोणीय क्रिस्टल
4	सतही क्षेत्र (मी^{2} / ग्राम)	700–800	100–120	5–20
5	आन्तरिक पृष्ठ	अत्यधिक	मध्यम	कोई नहीं
6	ससंजन, सुघट्यता एवं फैलना एवं सिकुड़ना	उच्च	मध्यम	निम्न
7	बाह्य पृष्ठ	उच्च	मध्यम	निम्न
8	धनायन विनिमय क्षमता [(cmol (P^+)/kg)]	60–100	20–40	3–15
9	ऋणायन विनिमय क्षमता	निम्न	मध्यम	उच्च
10	प्रतिस्थापन	एल्यूमिना परत में Mg व Fe द्वारा	सिलिका परत में Al द्वारा	प्रतिस्थापन नहीं

मृतिका खनिज का महत्त्व (Importance of Clay Minerals):

मृदा में मृतिका सक्रिय अवयव हैं। ये भौतिक एवं रासायनिक गुणों को प्रभावित करते है। मृदा में मृतिका उपस्थिति मृदा उर्वरता एवं क्षमता को बढ़ाती है। मृतिका खनिज का महत्त्व निम्न है–

(i) मृदा उर्वरता– मृदा में मृतिका की उपस्थिति से पोषक तत्वों की प्राप्यता में वृद्धि होती है, जिससे मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है।

(ii) जल धारण क्षमता– मृतिका के कण बहुत महीन होते है तथा रन्ध्रों का आकार भी छोटा होता है जिससे मृदा में जल धारण क्षमता बढ़ जाती है। इससे जल का निक्षालन भी कम होता है एवं पौधों के लिए जल की उपलब्धता बढ़ जाती है।

(iii) धनायन विनिमय क्षमता– मृतिका की उपस्थिति से मृदा में धनायन विनिमय क्षमता में वृद्धि होती है। क्ले कणों पर अधिशोषित आयन धनायन विनिमय द्वारा मृदा विलियन में घुलकर पौधों को प्राप्त हो जाते हैं।

(iv) पोषक तत्वों का अधिशोषण– मृतिका के सूक्ष्म कण होने के कारण इनका बाह्य क्षेत्रफल अधिक होता है। इन कणों के ऋण आवेशित होने के कारण धनायन अधिक अधिशोषित होते एवं पौधों को पोषक तत्व प्राप्त हो जाते हैं।

(v) पोषक तत्वों के भण्डारण में वृद्धि– मृतिका की सतह पर Ca^{2+}, Mg^{2+}, Na^+, NH_4^+, K^+ इत्यादि धनायनों का अधिक अधिशोषण होने से पोषक तत्वों के भण्ड़ारण में वृद्धि होती है। पौधों की आवश्यकतानुसार मृदा विलयन में ये तत्व आ जाते हैं एवं पौधों को उपलब्ध होते हैं।

(vi) बन्धक प्रभाव– मृतिका के सूक्ष्म कण आपस में मिलकर बड़े कणों का निर्माण करते हैं साथ ही बालू के कणों को बांधने की क्षमता रखते है, जिससे मृदा की भौतिक दशा सुधरती है।

कार्बनिक मृदा कोलॉइड्स (Organic Soil Colloids) :

मृदा कार्बनिक कोलॉइड ह्यूमस है। ह्यूमस गहरे भूरे रंग या काले रंग का विच्छेदित अक्रिस्टलीय पदार्थ है जो कि जटिल पदार्थों का मिश्रण है। ह्यूमस कणों पर ऋण आवेश होता है जिससे धनायन विनिमय क्षमता मृतिका खनिज से अधिक होती है।

ह्यूमस का निर्माण मुख्यतया C, H तथा O तत्वों से बना होता है। ह्यूमस का कोलॉइडल संगठन सिलिकेट मृतिका के कणों के समान ही होता है। ह्यूमस के मिसिल में दो आयनिक परतें होती है। अन्दर की परत पर ऋण आवेश होता है जबकि बाहरी परत पर धनायनों के समूह अधिशोषित रहते है। मिसिल (आयन परत) पर H^+, Ca^{2+}, Mg^{2+}, K^+, Na^+, NH_4^+ इत्यादि धनायन के रूप में अधिशोषित रहते हैं। ह्यूमस की प्रकृति पी.एच. मान पर आधारित होती है।

मृदा की अत्यधिक अम्लता की अवस्था में ह्यूमस पर H^+ आयन दृढ़तापूर्वक अवस्थित रहते है, जिससे अन्य धनायनों द्वारा

सरलता पूर्वक विस्थापित नहीं किया जा सकता है। मृदा की क्षारीय अवस्था में कार्बोक्सिल समूह में उपस्थित H^+ आयन का आयनीकरण हो जाता है।

अकार्बनिक एवं कार्बनिक कोलॉइड में अन्तर (Difference in Inorganic and Organic Soil Colloids):

	अकार्बनिक मृदा कोलॉइड	कार्बनिक मृदा कोलॉइड
1	इसमें सिलिकेट मृतिका एवं आयरन व एल्यूमिनियम ऑक्साइड होते है।	इसमें ह्यूमस होता है।
2	इसकी संरचना Si, Al, Fe, O तत्वों से बनती है।	इसका C, H, O निर्माण से होता है।
3	ये खनिज पदार्थ होते हैं।	ये कार्बनिक पदार्थ होते हैं।
4	धनायन विनिमय क्षमता एवं जल धारण क्षमता कम होती है।	इसमें धनायन विनिमय एवं जल धारण क्षमता अधिक होती है।
5	ऋणायन स्रोत OH है।	इसमें ऋणयन स्रोत COOH, OH^- एवं फिनोलिक समूह है।
6	धन विनिमय क्षमता 3–100 सेन्टीमोल (p^+)/किग्रा होती है।	इसकी धनायन विनिमय क्षमता 150–300 सेन्टीमोल (P^+)/किग्रा होती है।

ह्यूमस (कार्बनिक कोलॉइड) का मृदा में महत्त्व (Importance of Organic Colloids in Soil) :

ह्यूमस का मृदा गुणों एवं उर्वरता में महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसका वर्णन निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

(i) मृदा संरचना– मृदा कणों को आपस में बांधने से मृदा संरचना में सुधार होता है।

(ii) धनायन विनिमय क्षमता– ह्यूमस की धनायन विनिमय क्षमता 150–300 सेन्टी मोल/किग्रा होती है। ह्यूमस धनायनों का भण्ड़ार है एवं उनका निक्षालन रोकता है।

(iii) मृदा ताप– ह्यूमस के काले रंग के कारण सूर्य की गर्मी को अवशोषित होने से मृदा तापमान में बढ़ोतरी होती है।

(iv) जलधारण क्षमता– ह्यूमस मृदा की जल धारण क्षमता को बढ़ाता है जिससे जल पौधों को उपलब्ध रहता है।

(v) सुघट्यता एवं ससंजन– ह्यूमस से सुघट्यता एवं ससंजन गुणों की कमी होती है।

(vi) उभय प्रतिरोधन क्षमता– ह्यूमस के कारण मृदा प्रतिरोधक क्षमता में बढ़ोतरी होती है, जिससे मृदा में क्षारीय या अम्लीय पदार्थ डालने पर पी.एच. मान में एकदम परिवर्तन नहीं होता है।

(vii) पोषक तत्व उपलब्धता– ह्यूमस पोषक तत्वों का भण्ड़ार गृह होने के कारण पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध हो जाते हैं।

मृतिका कणों पर आवेश की उत्पत्ति (Origin of Charge in Clay Particles) :

मृतिका कणों पर ऋण आवेश पाये जाते है जिनकी उत्पत्ति दो प्रकार से होती है–

खुले क्रिस्टलीय किनारे (Exposed Crystal Edges)–

सिलिका एवं एल्यूमिना परतों के किनारों पर असंतुष्ट संयोगिकताऐं होती हैं तथा बाहरी सतहों पर ऑक्सीजन एवं हाइड्रोक्सिल (OH^-) समूह होते हैं जो ऋण आवेशित स्थान के रूप में कार्य करते हैं। ये समूह सिलिकॉन एवं एल्यूमिना अणुओं से चिपके रहते हैं। उच्च पी.एच. पर इन OH^- मूलकों का H^+ विघटन द्वारा अलग हो जाता है। यह आवेश पी.एच. मान पर निर्भर करते हैं–

$$SiOH + OH^- \rightleftharpoons -SiO^- + H_2O$$

$$AlOH + OH^- \rightleftharpoons -AlO^- + H_2O$$

(i) समाकृतिक प्रतिस्थापन (Isomorphos Substitution) : मृदा कोलॉइड में एक जैसे आकार परन्तु धनात्मक संयोजकता वाले एक आयन द्वारा दूसरे आयन को प्रतिस्थापित करना, प्रतिस्थापन कहलाता है। उदाहरणार्थ मृतिका के Si^{4+} का प्रतिस्थापन Al^{3+} होने से ऋण आवेश रह जाता है –

$O^{--}Si^{++++}O^{--}$	$O^{--}Al^{+++}O^{--}$
सिलिका परत (आवेश रहित)	आयनिक प्रतिस्थापन (ऋणात्मक आवेश)

इसके अतिरिक्त मृतिका में Al^{3+} का प्रतिस्थापन Mg^{2+} से होने के उपरान्त ऋण आवेश पैदा हो जाता है–

एल्यूमिना परत	आयनिक प्रतिस्थापन
$O^{--}Al^{+++}OH^{-}$	$O^{--}Mg^{++}OH^{-}$
(आवेश रहित)	(ऋणात्मक आवेश)

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. मृदा कोलॉइड का व्यास 1.0 से 100 मिलिमाइक्रोन तक होता है।
2. मृदा कोलॉइड्स में ससंजन, आसंजन, सुघट्यता, फैलाव एवं संकुचन, उर्णीपिण्डन इत्यादि गुण पाये जाते हैं।
3. मृदा कोलॉइड्स दो प्रकार–अकार्बनिक एवं कार्बनिक, के होते हैं। मृतिका खनिज मुख्य रूप से दो प्रकार– सिलिकेट मृतिका एवं आयरन व एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड होते हैं।
4. सिलिकेट मृतिका मुख्य रूप से केओलिनाइट, मोन्टमोरिलोनाइट एव इलाइट होती हैं।
5. कार्बनिक कोलॉइड ह्यूमस हैं।
6. मृतिका पर ऋणात्मक आवेश होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. मृदा कोलॉइड कणों का आकार होता है–
   (अ) 200–300 मिलिमाइक्रोन
   (ब) 1–100 मिलिमाइक्रोन
   (स) 1–5 सेमी.
   (द) 600–800 मिलिमाइक्रोन
2. निम्न में से 2:1 टाइप मृतिका खनिज है –
   (अ) केओलिनाइट (ब) क्लोरेट
   (स) मोन्टमोरीलोनाइट (द) उपर्युक्त सभी
3. कोलॉइड रसायन का जनक जाना जाता है–
   (अ) डोकचेव वी.वी. (ब) जेनी
   (स) थामस ग्राहम (द) जोफे
4. मृदा कार्बनिक कोलॉइड है–
   (अ) केओलिनाइट (ब) सेपोनाईट
   (स) ह्यूमस (द) कोई नहीं
5. कार्बनिक कोलॉइड की धनायन विनिमय क्षमता होती है–
   (अ) 3–10 सेन्टी मोल / किग्रा
   (ब) 10–30 सेन्टी मोल / किग्रा
   (स) 150–300 सेन्टी मोल / किग्रा
   (द) 70–80 सेन्टी मोल / किग्रा

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

1. मृदा कोलॉइड पर कौनसा आवेश होता है ?
2. कोलॉइड के कण किस सूक्ष्मदर्शी से दिखाई देते हैं ?
3. संसजन बल किसे कहते हैं ?
4. सिलिकेट क्ले कितने प्रकार की होती है ?
5. मॉन्टमोरिलोनाइट क्ले खनिज का रासायनिक सूत्र लिखिए।
6. केओलीनाइट की धनायन विनिमय क्षमता कितनी होती है ?
7. आयनिक प्रतिस्थापन क्षमता किसे कहते हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

1. मृतिका खनिज के प्रकार उदाहरण के साथ लिखिए।
2. मृदा कोलॉइड के चार गुण बताइये।
3. मृतिका के प्रकार बताइये ।
4. मृतिका में ऋणात्मक आवेश के स्रोत बताइये।
5. मृदा कोलॉइड किसे कहते हैं ?
6. कार्बनिक कोलॉइड किसे कहते हैं ?
7. मृदा कोलॉइड कितने प्रकार के होते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. मृदा कोलॉइड के बारे में आप क्या जानते है? इनके गुणों का वर्णन कीजिए।
2. मृतिका के प्रकार लिखिए एवं विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. सिलिकेट मृदाओं का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
4. कार्बनिक कोलॉइड के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला–

(ब) 2. (स) 3. (स) 4. (स) 5. (स)

अध्याय – 4

आयन विनिमय
(Ion-Exchange)

आयन विनिमय (Ion Exchange)–

आयनिक विनिमय एक उत्क्रमणीय प्रक्रम (Reversible process) है जिसके द्वारा सजातीय आवेश वाले आयनों का परस्पर विनिमय, विलयन प्रावस्था और ठोस प्रावस्था के बीच तथा ठोस प्रावस्थाओं की बीच (यदि वे एक दूसरे के सम्पर्क में हो) होता है। वह प्रक्रम जिसमें आयन्स का विस्थापन होता है, आयनिक विनिमय कहलाता है।

''विनिमयशील प्रावस्थाओं के मध्य सजातीय आवेश वाले आयनों का पारस्परिक अधिशोषण आयन विनिमय कहलाता है''। आयन विनिमय दो प्रकार का होता है–

1. धनायन विनिमय (Cation Exchange)

2. ऋणायन विनिमय (Anion Exchange)

1. धनायन विनिमय (Cation Exchange)– धनायन विनिमय पूर्ण रूप से एक पृष्ठ क्रिया (Surface reaction) है, जो मृदा क्ले क्रिस्टल तथा ह्यूमस कणों के पृष्ठों या किसी अन्य पृष्ठ पर शीघ्र होती है। इस क्रिया में पदार्थों के अणु समान संख्या में भाग लेते हैं, क्ले क्रिस्टल तथा ह्यूमस कण के पृष्ठों पर ऋण आवेश होने के कारण धनायन आकर्षित होते हैं। इसलिए धनायन विनिमय इन दोनो पृष्ठों पर होती है। धनायन का विस्थापन मृदा में निम्न के बीच होता है –

1. पौधों की जड़ों के द्वारा स्वतंत्र हुए धनायनों तथा क्ले क्रिस्टल और ह्यूमस कणों के पृष्ठों पर उपस्थित धनायनों में।
2. मृदा विलयन में उपस्थित धनायनों तथा क्ले क्रिस्टल और ह्यूमस कण की सतह पर उपस्थित धनायनों में।
3. दो क्ले क्रिस्टलों, दो ह्यूमस कणों या एक क्ले क्रिस्टल और एक ह्यूमस क्रिस्टल की सतह पर उपस्थित धनायनों में।

धनायन विनिमय घटना, एक उदाहरण से इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है– जब किसी साधारण मृदा में किसी उदासीन लवण का विलयन जैसे (KCl) विलयन मिलाया जाता है तो विलयन से पोटेशियम की कुछ मात्रा मृदा द्वारा अधिशोषित कर ली जाती है तथा समान मात्रा में केल्शियम मृदा विलयन में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

यह निम्न समीकरण से प्रदर्शित किया जा सकता है –

$$\text{Ca-Soil} + 2\text{KCl} \rightleftharpoons 2\text{K - Soil} + \text{CaCl}_2$$

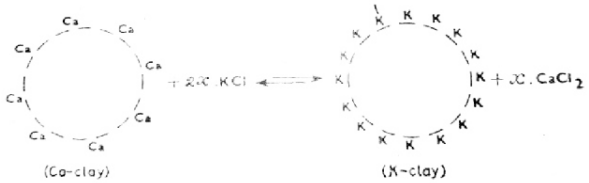

इसी प्रकार अम्लीय मृदा में KCl मिलाने पर समान मात्रा में हाइड्रोजन का स्थानान्तरण मृदा विलयन में हो जाता है जिसे निम्न प्रकार दर्शाते हैं –

$$\text{H-Soil} + \text{KCl} \rightleftharpoons \text{K - Soil} + \text{HCl}$$

इस प्रकार की क्रिया को भस्म विनिमय प्रतिक्रिया कहते हैं और इस क्रिया में भाग लेने वाले धनायनों को विनिमय भस्म या धनायन (Cations) कहते हैं।

''मृदा संकीर्ण द्वारा किसी विलियन अथवा अन्य पृष्ठ से विशेष धनायन का अधिशोषण, साथ ही मूल सतह से मुक्त होने की अभिक्रिया, धनायन विनिमय (Cation exchange) कहलाती है''।

धनायन विनिमय की क्रिया विधि (Mechanism of Cation exchange)–

धनायनों के विनिमय की व्याख्या आयन विनिमय की

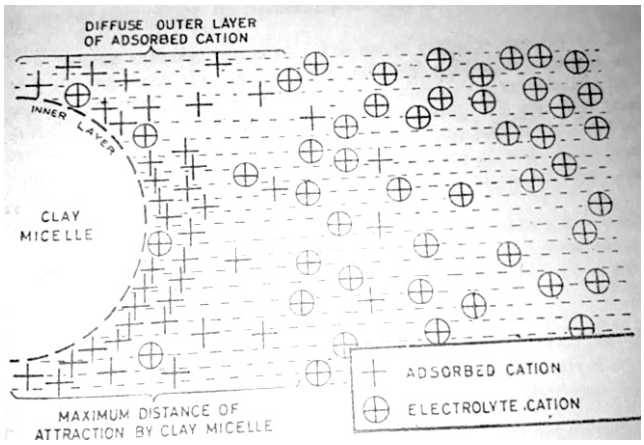

चित्र–धनायन विनिमय एवं विसरित द्वि–पर्त का प्रदर्शन

विद्युत गतिकी सिद्धान्त (Electrokinetic theory of ion exchange) के आधार पर की जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिशोषित धनायन जो आयनिक द्विपर्त की बाहरी पर्त (Shell) बनाते है, जल में निलम्बित करने पर दोलन की अवस्था में होते हैं तथा एक विसरित द्विपर्त (Diffuse double layer) भी बनाते हैं। इन दोलनों के कारण कुछ धनायन क्ले मिसिल की सतह से दूर हट जाते हैं। एक विद्युत अपघट्य (Electrolyte) के विलयन की उपस्थिति में मिलाये गये विद्युत अपघट्य का धनायन आन्तरिक ऋणात्मक पर्त तथा दोलन करते हुऐ धनायनों की बाहरी पर्त के बीच में चला जाता है। अब यह विद्युत अपघट्य धनायन मिसिल के ऊपर अधिशोषित हो जाता है तथा मिसिल की सतह पर उपस्थित धनायन विलयन में विस्थापित आयन के रूप में चला जाता है। इस प्रकार धनायनों का विनिमय होता रहता है।

विनिमय आयनों के प्रकार (Kinds of Exchangeable Cations)–

मृदा में अधिकांश पाये जाने वाले धनायन Ca^{++}, Mg^{++}, H^{+}, Na^{+} तथा NH_4^{+} है। इनमें Ca^{++} की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। अत्यधिक अम्लीय मृदा में $Al(OH)_2^{+}$ धनायन की प्रधानता होती है तथा इसका अनुपात पी.एच. कम होने पर बढ़ता है। क्षारीय मृदाओं में Na^{+} की मात्रा अधिक होती है।

प्रायः मृदा में पाये जाने वाले ऋणायन SO_4^{--}, Cl^{-}, NO_3^{-}, $H_2PO_4^{-}$, HPO_4^{--}, HCO_3^{-} तथा ह्यूमिक अम्लों के ऋणायन है, हालांकि इनमें से कुछ ऋणायन सदैव विनिमय आयनों के रूप में कार्य नहीं करते परन्तु वे मृदा विलियन में उपस्थित रहते हैं। सल्फेट मृदाओं में SO_4^{--}, की मात्रा बहुत अधिक होती है।

काली मृदाओं में जलोढ़ (alluvial) तथा लेटराइट मृदाओं की अपेक्षा कुल विनिमय धनायनों की मात्रा अधिक होती है तथा काली मृदा में विनिमय Ca^{++} की मात्रा भी इन दोनों मृदाओं की अपेक्षा अधिक होती है। क्ले में बालू तथा बलूई मृदा की अपेक्षा कुल विनिमय धनायनों की मात्रा अधिक होती है। विनिमय धनायनों की मात्रा क्ले की मात्रा तथा क्ले की प्रकार पर निर्भर होती है।

2. ऋणायन विनिमय (Anion Exchange)–

ऋणायन विनिमय को अम्ल विनिमय भी कहते हैं। फास्फेट आयन्स के जिस अंश ने Fe एवं Al के योगिकों एवं सिलिकेट मृदा के साथ प्रतिक्रिया की है, उसके स्थान पर अन्य ऋण आयन्स जैसे OH^{-} आयन्स आ जाते हैं, ऐसे विस्थापन को ऋण आयन विनिमय कहते हैं।

ऋणायन विनिमय की क्रिया विधि की व्याख्या निम्न प्रकार की जाती है– मृदा घटने पर भास्मिक समूहों की सक्रियता उनकी प्रोटोन्स की स्वीकृति में वृद्धि द्वारा बढ़ जाती है, उदाहरणार्थ –

$$R\text{-}OH + H_2SO_4 \rightleftharpoons ROH_2^{+} + SO_4^{-}$$

$$R\text{-}NH_2 + HCl \rightleftharpoons RNH_3^{+} + Cl^{-}$$

इस स्थिति में ऋणायन मृदा विलियन में अन्य ऋणायनों के बदले में विनिमय करेगा, इस प्रकार मृदा में ऋणायन की घटना होती है। ऋणायन विनिमय मुख्य रूप से एक pH- परतन्त्र (pH-dependent) का कार्य होता है। धनायन विनिमय के विपरित ऋणायनों को रखने की क्षमता अम्लता के साथ बढ़ती है। उदासीन मृदा के निश्चित आयन्स जैसे Cl^{-} तथा NO_3^{-} का अधिशोषण बहुत कम या नहीं होता है, जबकि PO_4^{---} तथा ASO_4^{---} का अधिशोषण कम तथा अधिक दोनों pH वाली मृदाओं में होता है।

मृदा की धनायन विनिमय क्षमता (Cation Exchange Capacity of Soil) –

मृदा की धनायन विनिमय क्षमता, मृदा संकीर्ण की उस क्षमता का द्योतक है जिससे मृदा संकीर्ण पर अधिशोषित धनायनों की सम्पूर्ण मात्रा कम प्रकट होती है। धनायन विनिमय क्षमता (CEC) को सेन्टी मोल प्रति किग्रा (cmol Kg^{-1}) इकाई द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

इसकी परिभाषा के अनुसार "एक किलोग्राम शुष्क मृदा द्वारा अधिशोषित H^{+} आयन्स अथवा इसके समतुल्य किसी अन्य धनायन की अधिशोषित मात्रा, उस मृदा की धनायन विनिमय क्षमता कहलाती है"। जिस मृदा की जितनी अधिक धनायन विनिमय क्षमता होती है वह उतना ही अधिक धनायन धारण कर सकती है। धनायनों को धारण करने की क्षमता विभिन्न मृदाओं में भिन्न–भिन्न होती है।

किसी मृदा की धनायन विनिमय क्षमता (CEC) 10 cmol Kg^{-1} है तो उस मृदा के 1 किलोग्राम में 10 cmol H^{+} आयन्स

अधिशोषित करने की क्षमता होती है। मिली तुल्यांक प्रति 100 ग्राम (meq /100g) इकाई के स्थान पर अब अन्तर्राष्ट्रीय मानक (International Standard) के अनुसार cmol Kg^{-1} का प्रयोग किया जाता है। दोनों ही इकाईयों का मान एक दूसरे के बराबर होता है अर्थात 1 मिलि तुल्यांक प्रति 100 ग्राम (1meq $100g^{-1}$ soil) 1 सेन्टीमोल / किग्रा मृदा (cmol Kg^{-1} Soil) के बराबर होता है।

कुछ मृदा क्ले एवं ह्यूमस की धनायन विनिमय क्षमता निम्न सारणी में दी गई है –

सारणी– मृदा क्ले एवं ह्यूमस की धनायन विनिमय क्षमता (Cation Exchange Capacity of clays and humus)

	सी.ई.सी. (cmol Kg^{-1})	
	औसत मान (Average Value)	परिसर (Range)
केओलिनाइट	8	3–15
इलाइट	30	20–40
मॉन्टमोरिलोनाइट	80	60–100
वर्मीकुलाइट	150	100–200
क्लोराइट	30	20–40
एलोफैन	100	50–200
ऑक्साइड एण्ड हाइड्रोक्साइड	4	3–10
ह्यूमस	200	100–300

धनायन विनिमय क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting Cation Exchange Capacity) :

1. मृदा कणाकार (Soil texture)– महीन कणाकार वाली मृदाओं की धनायन विनिमय क्षमता मोटे कणाकार वाली मृदाओं से अधिक होती है। बलूई दोमट मृदा की CEC 5-10 जबकि मटियार दोमट की CEC 15-20 cmol Kg^{-1} मृदा होती है।

2. क्ले की मात्रा एवं प्रकार (Types and amount of Clay)– मृदा में क्ले की मात्रा अधिक होने पर धनायन विनिमय क्षमता अधिक होती है। जिन मृदाओं में मॉन्टमोरिलोनाइट क्ले की मात्रा अधिक होती है उन मृदाओं की अपेक्षा जिनमें इलाइट तथा केओलिनाइट क्ले पायी जाती है, की धनायन विनिमय क्षमता कम होती है।

3. मृदा पीएच (Soil pH)– क्षारीय मृदाओं की धनायन विनिमय क्षमता प्रायः अम्लीय मृदाओं से अधिक होती है pH में वृद्धि के साथ–साथ आयनित आयनों की संख्या में वृद्धि होती है, अतः CEC, pH के बढ़ने पर क्रमिक रूप से बढती है।

4. कार्बनिक पदार्थ (Organic Matter)– मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के साथ–साथ धनायन विनिमय क्षमता बढ़ती है क्योंकि ह्यूमस की धनायन विनिमय क्षमता (200 Cmol Kg^{-1})अधिक होती है।

धनायन विनिमय तथा पौधों का पोषण–

अधिशोषित धनायन पौधों और सूक्ष्म जीवों को आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। यह ऐसी क्रिया विधि है जो अधिशोषित धनायन की प्राप्यता को आसान कर देता है। इस सम्बन्ध में विनिमय स्पष्टः दो प्रकार से कार्य करता है–

1. पहले यह पोषक तत्वों को स्वतंत्र करता है जो मृदा विलियन में चले जाते है विलयन में यह मूल रोमों या सूक्ष्म जीवों में सम्पर्क में आते हैं, जो उनका शोषण कर लेते हैं या फिर ये जल निकास द्वारा नष्ट हो जाते हैं।
2. यदि मूलरोमों और सूक्ष्म जीव मृदा कोलइडी सतह के निकट सम्पर्क में होते हैं, तो मृदा कोलॉइड और मूल रोमों या सूक्ष्म जीवों के धनायनों के बीच एक सीधा विनिमय भी हो जाता है। इसमें मूल रोमों या सूक्ष्म जीवों में पृष्ठ पर पैदा हुये H^+ आयन्स और अधिशोषित पोषक धनायन में विनिमय होता है। इससे पोषक तत्वों का जल निकास द्वारा नष्ट होने का भी भय नहीं रहता है।

धनायन विनिमय से पौधों को पोषक तत्वों की प्राप्यता निम्न बातों पर निर्भर होती है –

1. धनायन संतृप्ति (Cation Saturation)– विशेष पोषक का मृदा की धनायन विनिमय क्षमता में क्या अनुपात है, का

उल्लेखनीय योगदान होता है। उदाहरण के लिए यदि मृदा की कैल्शियम संतृप्त प्रतिशतता अधिक है तो इसका विस्थापन तुलानात्मक आसान और शीघ्र होगा।

2. संगुणित आयनों का प्रभाव (Influence of Asssociated Ions)– एक धनायन के पास जो दूसरे धनायन संगुणित होते हैं वे पौधों के लिए पोषक तत्व की प्राप्यता को प्रभाावित करते हैं। उदाहरणार्थ– केल्शियम के आधिक्य से पोटेशियम की प्राप्यता कम हो जाती है, इसी प्रकार पोटेशियम की अधिक मात्रा भी मैग्नीशियम की प्राप्यता को कम कर देती है।

3. कोलॉइड के प्रकार (Types of Colloids)– विभिन्न कोलॉइड मिसिलों की विशेष धनायनों को धारण करने की शक्ति भिन्न भिन्न होती है जैसे मॉन्टमोरिलोनाइट में केओलिनाइट की अपेक्षा केल्शियम अधिशक्ति (Tenacity) से धारित होता है। इसलिए मॉन्टमोरिलोनाइट से केल्शियम प्राप्त करने के लिए उसमें चूना मिलाकर कम से कम उसकी प्रतिशत बेस संतृप्त 70 कर लेनी चाहिए, दूसरी ओर केओलिनाइट इससे कम प्रतिशत बेस संतृप्त पर (Ca^{++}) को स्वतंत्र कर देती है।

धनायन विनिमय क्षमता और मृदा उर्वरता–

सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र में प्रकाश संश्लेषण के पश्चात धनायन विनिमय क्षमता सबसे महत्वपूर्ण होती है। अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार मृदा उर्वरता का एकमात्र सर्वोत्तम सूचक मृदा की धनायन विनिमय क्षमता होती है। किसी मृदा के विनिमय भस्मों की प्रकार और मात्रा का मृदा के सामान्य गुणों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उच्च केल्शियम बेस संतृप्त वाली मृदाऐं सबसे सन्तोषजनक भौतिक और पोषक स्थिति में होती हैं। केल्शियम प्रधान मृदाऐं सरन्ध्री और दानेदार संरचना की होती हैं। केल्शियम प्रधान क्ले में वातन और जल निकास अच्छा होता है, जिसके फलस्वरूप अधिक क्ले अंश के कारण होने वाले प्रतिकूल प्रभाव कम हो जाते हैं।

बेस असंतृप्त मृदाओं में विनिमय हाइड्रोजन तथा एल्युमिनियम के कारण अधिक अम्लता होती है। हालॉकि ये मृदाऐं भुरभुरी होती हैं, लेकिन जब बेस असंतृप्ति की प्रतिशतता 30 से अधिक होती है तो इन मृदाओं में पौधों की वृद्धि अच्छी नहीं होती ऐसी स्थितियों में चूने का प्रयोग किया जाता है।

जब विनिमय सोडियम की मात्रा कुल विनिमय धनायनों की 10–15 प्रतिशत से अधिक होती है तो मृदा क्षारीय होती है तथा ऐसी मृदाओं का पी.एच. मान प्रायः 8 से अधिक होता है। जब विनिमय सोडियम का अनुपात इस सीमा से अधिक हो जाता है या कोलॉइडी संकीर्ण को संतृप्त करता है तो क्ले Na –क्ले में परिवर्तित हो जाती है। यह मृदा अत्यधिक क्षारीय होती है और इसका पी.एच. मान 9–12 तक हो सकता है, ये मृदायें भी उपजाऊ नहीं होती हैं।

सभी सामान्य उपजाऊ मृदाओं में कुल विनिमय भस्मों (Ca^{++}, Mg^{++}, K^{+}, Na^{+}) की मात्रा सी.ई.सी. का लगभग 80 से 90 प्रतिशत तक होती है तथा विनिमय हाइड्रोजन प्रायः 20 प्रतिशत से कम होता है इन मृदाओं में कैल्शियम मुख्य विनिमय भस्म होता है जिसकी मात्रा कुल विनिमय धनायनों की 60 से 80 प्रतिशत तक होती है। विनिमय कैल्शियम की मात्रा अधिक होने पर Ca-क्ले बनती है जिनकी अभिक्रिया उदासीन होती है, इसका पी.एच. मान 6.5 से 7.5 तक होता है।

मृदा का प्रतिशतता बेस संतृप्ति (Percentage base saturation of soil)–

अधिशोषित धनायनों के दो समूहों का मृदा अम्लता एवं क्षारता पर विपरित प्रभाव होता है। अम्लीय मृदाओं में H^{+} तथा Al^{3+} आयनों की प्रधानता होती है तथा दोनों मृदा विलयन में H^{+} आयन्स सान्द्रण बढ़ाते है। अधिशोषित हाइड्रोजन प्रत्यक्ष रूप से मृदा विलियन से H^{+} आयन्स के सान्द्रण में वृद्धि करते हैं जबकि Al^{+++} आयन्स ऐसा अप्रत्यक्ष रूप से जल विश्लेषण द्वारा करते हैं–

$$Al^{+++} + H_2O \rightarrow Al(OH)^{++} + H^{+}$$
$$Al(OH)^{++} + H_2O \rightarrow Al(OH)_2^{+} + H^{+}$$
$$Al(OH)_2^{+} + H_2O \rightarrow Al(OH)_3 + H^{+}$$

अधिकांश अन्य धनायन जिन्हे विनिमय भस्म कहते हैं, मृदा को क्षारीय बनाते हैं। कोलॉइडी संकीर्ण पर अधिशोषित विनिमय भस्मों की प्रतिशत मात्रा को ही प्रतिशत बेस संतृप्त कहते है।

''बेस संतृप्ति कुल विनिमय भस्मों (Ca, Mg, K तथा Na) जिन्हें अधिशोषित कुल धनायनों या धनायन विनिमय क्षमता की प्रतिशतता के रूप में व्यक्त किया जाता है, को प्रदर्शित करती है। यह प्रतिशत बेस संतृप्ति धनायन विनिमय क्षमता की वह प्रतिशतता है जो कोलॉइड संकीर्ण पर विनिमय भस्मों से संतृप्त होती है।''

बेस संतृप्त की निम्न सूत्र से गणना की जा सकती है –

$$\text{प्रतिशत बेस संतृप्ति} = \frac{\text{कुल विनिमयशील भस्म (सें.मोल/किग्रा)}}{\text{धनायन विनिमय क्षमता (सें.मोल/किग्रा.)}} \times 100$$

या

$$V = \frac{100S}{T}$$

यहाँ V = प्रतिशत बेस संतृप्त, S = कुल विनिमय भस्म, T = सी.ई.सी.

सी.ई.सी. तथा कुल विनिमय भस्मों में अन्तर (T-S) असंतृप्ति की सीमा या मृदा में उपस्थित विनिमय हाइड्रोजन की मात्रा को प्रदर्शित करती है।

यदि किसी मृदा की प्रतिशत बेस संतृप्त 80 प्रतिशत है तो इसका अभिप्राय है कि उसकी सी.ई.सी. का 4/5 भाग भस्मों से तथा 1/5 भाग H^+ तथा Al^{+++} आयन्स से संतृप्त है। प्रतिशत भस्म संतृप्ति का मृदा पी.एच. से गहरा सम्बन्ध है, इस प्रतिशतता के अधिक होने से मृदा पी.एच. अधिक हो जाता है। विभिन्न प्रकार की मृदाओं में भस्म संतृप्ति विभिन्न होती है।

उष्ण प्रदेशों की मृदा में कोलॉइडी संकीर्ण पर भास्मिक धनायन अधिक वर्षा के कारण नीचे की ओर चला जाता हैं जिससे कोलॉइडी संकीर्ण पर H^+ आयन अधिशोषित होते हैं और मृदा का पी.एच. कम हो जाता है।

शुष्क प्रदेशों की मृदाओं में कोलॉइडी संकीर्ण भास्मिक आयनों से संतृप्त होता है, इसी कारण इनका पी.एच. अधिक होता है। वे मृदा जिनके कोलॉइडी संकीर्ण विनिमय Ca^{++} आयन्स से परिपूर्ण होते हैं ''भस्म संतृप्त मृदा'' कहलाती है, यह कृषि के लिये उपयुक्त होती है। जब इस संतृप्त मात्रा में कमी आ जाती है तो मृदा को ''भस्म असंतृप्त मृदा'' कहते हैं।

आयन विनिमय का महत्व (Importance of Ion Exchange)–

1. पौधों को पोषक तत्वों जैसे कैल्शियम, मेग्नीशियम, पोटेशियम तथा फॉस्फोरस आदि की प्राप्यता एवं अप्राप्यता को प्रभावित करता है।
2. यह कोलॉइडी क्ले पर उपयुक्त प्रकार के धनायन प्रदान करके मृदा संरचना को नियंत्रित करता है तथा स्थायी संरचना के लिए उत्तरदायी होता है।
3. यह मृदा निर्माण के प्रक्रमों जैसे क्ले खनिजों का विकास तथा क्षेत्रीय (Zonal) एवं अन्तः क्षेत्रीय (Intrazonal) मृदा निर्माण को नियंत्रित करता है।
4. यह अम्लीय एवं क्षारीय मृदाओं के सुधार में महत्वपूर्ण कार्य करता है।
5. यह उर्वरकों के प्रभाव तथा उर्वरक प्रयोग को भी प्रभावित करता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. जिस तत्व पर विद्युत आवेश होता है उसे ''आयन'' कहते हैं।
2. पोटैशियम, सोडियम, कैल्शियम, हाइड्रोजन तथा मेग्नीशियम, धन आवेशित होते है और धनायन कहलाते हैं।
3. नाइट्रेट, फॉस्फेट, क्लोराइड तथा सल्फेट जैसे आयन जिन पर ऋण आवेश होता है, उन्हें ऋणायन कहते हैं।
4. धनायन विनिमय पूर्ण रूप से एक, पृष्ठीय क्रिया (Surface reaction) है।
5. किसी मृदा द्वारा कुल धनायन अधिशोषित करने की क्षमता को ही उस मृदा की धनायन विनिमय क्षमता कहते हैं।
6. जिस मृदा की जितनी अधिक धनायन विनिमय क्षमता होती है वह उतना ही अधिक धनायन धारण करती है।
7. धनायन विनिमय क्षमता मृदा में उपस्थित क्ले तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करती है।
8. धनायन विनिमय क्षमता की मापक इकाई सेन्टी मोल प्रति किग्रा ($Cmol\ Kg^{-1}$) मृदा के रूप में व्यक्त की जाती है।
9. क्ले खनिजों की धनायन विनिमय क्षमता 3 से 150 cmol Kg^{-1} के मध्य होती है।
10. कार्बनिक पदार्थ की सी.ई.सी. प्रायः 200 से 400 Cmol Kg^{-1} के मध्य होती है।
11. कुल धनायन विनिमय क्षमता का जितना मुख्य धनायनों द्वारा गृहित होता है उसे प्रतिशत क्षार संतृप्तता कहते हैं।
12. धनायन विनिमय क्षमता से मृदा धनायनों के बंधन और विनिमय की क्षमता का बोध होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. निम्न में से सबसे अधिक सी.ई.सी. होती है –
   (अ) केओलिनाइट (ब) ह्यूमस
   (स) क्लोराइड (द) इलाहट
2. आयन विनिमय एक प्रक्रम है –
   (अ) उत्क्रमणीय प्रक्रिया (ब) अनुत्क्रमणीय प्रक्रिया
   (स) दोनो प्रक्रम (द) इनमे से कोई नहीं
3. क्षारीय मृदाओं में कौन से आयन्स की प्रधानता होती है –
   (अ) Na^+ (ब) Ca^{++}
   (स) H^+ (द) इनमे से कोई नहीं
4. विलियन में धनायनों का सान्द्रण अधिक होने पर विनियम होगा –
   (अ) कम (ब) अधिक
   (स) बराबर (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
5. धनायन विनिमय के विपरीत ऋणायनों को रखने की क्षमता

बढ़ती है –

(अ) अम्लता के साथ

(ब) क्षारीयता के साथ

(स) अम्लता व क्षारीयता के साथ

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

6. ऋणायन विनिमय को कहते है –

(अ) अम्ल विनिमय (ब) भस्म विनिमय

(स) धनायन विनिमय (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

7. कार्बनिक पदार्थ की औसत धनायन विनिमय क्षमता होती है–

(अ) 200 सेन्टी मोल प्रति किग्रा

(ब) 80 सेन्टी मोल प्रति किग्रा

(स) 30 सेन्टी मोल प्रति किग्रा

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. आयन क्या होते हैं ?
2. आयन विनिमय कितने प्रकार का होता है ?
3. धनायन किसे कहते हैं ?
4. ऋणायन क्या होते हैं ?
5. धनायन विनिमय क्षमता की इकाई क्या होती है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. आयन विनिमय क्या होता है ?
2. धनायन विनिमय को समझाइए।
3. मृदा के बेस संतृप्त के बारे में बताइए।
4. ऋणायन विनिमय के बारे में आप क्या जानते हैं ?समझा कर लिखो।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. धनायन विनिमय क्षमता क्या है? इसको प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करो।
2. आयन विनिमय क्या है ? कितने प्रकार का होता है ?आयन विनिमय का महत्व बताइये।
3. धनायन विनिमय क्या है ? ये ऋणायन विनिमय से कैसे भिन्न है ?
4. मृदा का प्रतिशतता बेस संतृप्त का विस्तृत वर्णन करो।

उत्तरमाला–

(1) ब (2) अ (3) अ (4) ब (5) अ
(6) अ (7) अ

अध्याय – 5

मृदा अभिक्रिया
(Soil Reaction)

प्रस्तावना (Introduction)–

मृदा अभिक्रिया, मृदा विलयन में उपस्थित हाइड्रोजन (H^+) आयन्स एवं हाइड्रोक्सिल (OH^-) आयन्स के मध्य वह सम्बन्ध है, जो यह निर्धारित करता है कि मृदा अम्लीय या क्षारीय अथवा उदासीन है, जो मृदा पी.एच. के द्वारा निर्धारित की जाती है। दूसरे शब्दों मे मृदा अभिक्रिया का अभिप्राय मृदा विलयन की अम्लीयता, क्षारीयता एवं उदासीनता से है। मृदा विलियन में विभिन्न तत्व आयन्स के रूप में होते हैं।

अम्लीय आयन्स H^+, NO_3^-, SO_4^{2-} आदि एवं क्षारीय आयन्स OH^-, Ca^{2+}, Mg^{2+}, Na^+, तथा K^+ आदि मृदा विलियन में होते हैं। जब मृदा कोलाइड पर H^+ आयन्स का साद्रण OH^- आयन्स के साद्रण की अपेक्षा अधिक होता है तो मृदा अभिक्रिया अम्लीय (Acidic) होती है और OH^- आयन्स का सान्द्रण जब H^+ आयन्स के सान्द्रण से अधिक होता है तो मृदा अभिक्रिया क्षारीय (Basic) होती है। H^+ आयन्स और OH^- आयन्स मृदा कोलॉइड पर समान संख्या में होने पर मृदा अभिक्रिया उदासीन (Neutral) होती है।

मृदा पी.एच. (Soil pH)–

शुद्ध जल विद्युत कुचालक होने से एक निर्बल विद्युत विश्लेष्य (electrolyte) होता है। साधारण ताप पर इसका विघटन अल्प मात्रा में होता है, जिसे निम्न प्रकार दर्शाया जाता है–

$$H_2O \xleftrightarrow{\text{Ionisation}} H^+ + OH^-$$

द्रव्य अनुपाती क्रिया के नियमानुसार –

$$\frac{\text{H आयन्स का सान्द्रण x OH आयन्स का सान्द्रण}}{\text{अविघटित } H_2O \text{ का सान्द्रण}} = \text{स्थिरांक}$$

$$\frac{[H^+][OH^-]}{[HOH]} = K$$

कोष्ठक में लिखी उन आयन्स की सान्द्रता को प्रदर्शित करती है। यहाँ पर K एक विघटन स्थिरांक है। एक निश्चित ताप पर अविघटन अणुओं की सान्द्रता स्थिर होती है –

$$K_2[H_2O] = [H^+][OH^-]$$

$$K_w = [H^+][OH^-]$$

दो स्थिरांक का गुणा भी स्थिरांक होता है। जल में उपस्थित H^+ तथा OH^- आयन्स की सान्द्रता के गुणनफल को जल का आयनिक गुणनफल (Ionic product of water) कहते है, जिसे K_w द्वारा व्यक्त करते हैं। निश्चित ताप पर इसका मान स्थिर होता है। प्रयोगों से पता लगाया गया है कि K_w का मान 25^oC पर $1x10^{-14}$ ग्राम आयन्स प्रति लीटर होता है। शुद्ध पानी में H^+ आयन्स तथा OH^- आयन्स की संख्या बराबर होती है, इसलिए दोनों की सान्द्रता $1x10^{-7}$ अथवा 0.0000001 ग्राम आयन्स प्रति लीटर होती है। यदि H^- आयन्स की सान्द्रता 10^{-7} ग्राम आयन्स प्रति लीटर से अधिक है तो विलियन अम्लीय तथा कम होने पर विलियन क्षारीय होता है।

$[H^+][OH^-] = [10^{-7}][10^{-7}] = 10^{-14}$ या 25^oC पर विलियन के 0.000,000,000,000,01 ग्राम आयन्स प्रति लीटर।

वैज्ञानिक S.P.L Sorenson ने (1909) में किसी विलियन के H^+ आयन्स सान्द्रण को ग्राम आयन्स प्रति लीटर में व्यक्त किया। यह 10 की ऋण घात (Negative power) को धन मान (Positive value) देकर प्राप्त किया जाता है। 10^{-n}, यह H^+ ion exponent symbol pH से प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात "किसी विलियन की पीएच उसके एक लीटर में उपस्थिति ग्राम हाइड्रोजन आयन्स सान्द्रण के व्युत्क्रम (reciprocal) का लघुगणक (logarithm) होता है"।

$$pH = \log \frac{1}{[H^+]}$$

या $pH = -\log [H^+]$

जहाँ पर p = Potenz (German Power) को प्रदर्शित करता है जो लघुगुणक (Logarithm) है। दूसरे शब्दों में p = potential को प्रदर्शित करता है जो हमेशा अंग्रेजी के छोटे अक्षर (small letter) में लिखा जाता है। H^+ = हाइड्रोजन आयन सक्रियता (H^+ activity or concentration) को प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत OH^- आयनों की व्युत्क्रम सक्रियता का लघुगणक pOH कहलाता है।

$$pOH = \log \frac{1}{[OH^-]}$$

OH^- सान्द्रण ~~पी.ओ.एच~~. (pOH) स्केल से मापा जाता है, pH तथा pOH एच का योग सदैव 14 होता है।

$$pH + pOH = 14$$

जब pH अधिक होता है तो pOH उसी क्रम में कम हो जाता है। यह संबंध उक्त तालिका से स्पष्ट है–

pH Ldy ¼pH Scale)–

pH मृदा का अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण है, इससे मृदा की अम्लीयता एवं क्षारीयता को माप सकते है। इसका मापन pH

अम्लीय तथा क्षारीय विलयनों की नॉरमेलिटी का पी–एच एवं पी–ओ एच सम्बन्ध

pH	Acidity (normality of H^+)	Alkalinity (normality of OH^-)	pOH
0	1.0	0.00000000000001	14
1	0.1	0.0000000000001	13
2	0.01	0.000000000001	12
3	0.001	0.00000000001	11
4	0.0001	0.0000000001	10
5	0.00001	0.000000001	9
6	0.000001	0.00000001	8
7	0.0000001	0.0000001	7
8	0.00000001	0.000001	6
9	0.000000001	0.00001	5
10	0.0000000001	0.0001	4
11	0.00000000001	0.001	3
12	0.000000000001	0.01	2
13	0.0000000000001	0.1	1
14	0.00000000000001	1.0	0

स्केल के द्वारा किया जाता है। pH स्केल के द्वारा 0 से 14 तक मापी जाती है, जिसमें 7.0 उदासीन बिन्दु होता है। pH स्केल में pH= 0 सक्रिय अम्लता की अधिकतम सीमा तथा pH = 14 क्षारीयता की अधिकतम सीमा को प्रदर्शित करती है। उदासीनता पर pH = pOH= 7 होती है। जब मृदा का pH मान 7 से कम होता है, तो विलियन में H^+ आयन्स की सान्द्रता, OH^- आयनों की सान्द्रता से अधिक होती है, फलस्वरूप मृदा अम्लीय होती है। जब मृदा का pH मान 7 से अधिक होता है, तो मृदा क्षारीय होती है। क्षारीय मृदा विलियन में OH^- आयन्स की सान्द्रता, H^+ आयन्स से अधिक होती है। मृदा विलियन में H^+ आयन एवं OH^-

आयन की मात्राएँ समान होने पर मृदा उदासीन (pH = 7) होती है। आसुत जल (Distilled Water) का pH मान 7 होता है। यह जानना अति आवश्यक होता है कि pH स्केल लघुगणकीय स्केल है न कि अंकगणितीय इसलिए एक pH इकाई का अन्तर हाइड्रोजन आयन सान्द्रता से दस गुणा अन्तर के बराबर होती है।

pH 7 की अपेक्षा pH 6 में H^+ आयन की सान्द्रता 10 गुना अधिक होती है अर्थात उसमें 0.000,001 ग्राम सक्रिय हाइड्रोजन उपस्थित रहता है। इस तरह pH 7 की अपेक्षा pH 6, 10 गुणा अधिक अम्लीय होती है। इसी प्रकार pH 6 की अपेक्षा pH 5 में H^+ आयन की सान्द्रता 10 गुना अधिक होती है और इसी प्रकार निरन्तर कम होने पर अम्लीयता बढ़ती जाती है।

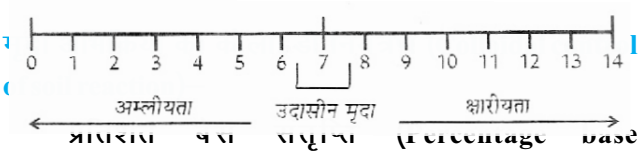

saturation)– कोलाइडी जटिल के विनिमेय भस्म तथा अधिशोषि हाइड्रोजन एवं एल्युमिनियम के आपेक्षिक अनुपातों को प्रतिशत बेस संतृप्ति से दर्शाया जाता है। स्पष्टतः कम बेस संतृप्त प्रतिशतता पर अम्लता अधिक तथा 100 के लगभग बेस संतृप्ति प्रतिशत का अर्थ उदासीनता या क्षारता होता है।

मिसिल की प्रकृति (Nature of micelle)– समान प्रतिशत बेस संतृप्ति पर विभिन्न प्रकार के कोलाइड् के पी–एच मान अलग–अलग होते हैं। यह विभिन्न कोलाइडी पदार्थों की मृदा विलयन को H^+ आयन्स देने की क्षमता अलग–अलग होने के कारण होता है, उदाहरणार्थ बेस संतृप्ति की स्थितियाँ कम होने पर भी कार्बनिक जटिल पर्याप्त प्रबल अम्ल विनिमय स्थितियाँ होने के कारण बहुत कम पी–एच मान देते हैं। इसके विपरीत आयरन एवं एल्युमिनीयम हाइड्रस ऑक्साइड से अधिशोषित हाइड्रोजन का वियोजन अपेक्षाकृत कम होता है। मृदाओं में इस प्रकार के कोलाइड्स की प्रधानता होने से एक दिये गये बेस संतृप्ति पर अपेक्षाकृत अधिक पी–एच होगा। सिलिकेट क्ले से अधिशोषित हाइड्रोजन का वियोजन ह्यूमस और हाइड्रस ऑक्साइड के मध्य स्थित होता है। विभिन्न प्रकार की क्लेज की वियोजन मात्रा (degree of dissociation) अलग–अलग होती है, जैसे सिलिकेट क्ले में मॉन्टमोरिल्लोनाइट क्ले का सबसे अधिक तथा केओलिनाइट का सबसे कम वियोजन होता है। इसलिए 50 प्रतिशत बेस संतृप्ति पर सिलिकेट क्ले का पी–एच 5.2 – 5.8 हाइड्रस ऑक्साइड क्ले का पी–एच 6–7 तथा कार्बनिक कोलाइड्स का पी–एच 4.4 – 5.0 होता है।

अधिशोषित भस्मों की प्रकार (Types of Adsorbed bases)– कोलाइडी जटिल में उपस्थित विशेष अधिशोषित भस्मों की तुलनात्मक मात्रा का भी मृदा पी–एच पर प्रभाव होता है। सोडियम संतृप्त मृदाओं का पी–एच Ca एवं Mg से संतृप्त मृदाओं के पी–एच से अधिक होता है। इस प्रकार यदि प्रतिशत बेस संतृप्त 90 है और Ca, Mg, K तथा Na का अनुपात यदि एक समय 10–3–1–1 है तथा दूसरे समय अनुपात 5–1–1–9 है तो पहले में पी–एच निश्चित रूप से कम होगा।

मृदा पी–एच में मुख्य परिवर्तन (Major changes in soil pH)–

मृदा पी–एच में परिवर्तन लाने वाले कारकों को दो मुख्य समूहों में बाँटा जा सकता है– 1. अम्ल उत्पादक कारक, 2. भस्म उत्पादक कारक।

1. अम्ल उत्पादक कारक (Acid forming factors)–

(i) कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन की प्रक्रम में कार्बनिक एवं अकार्बनिक दोनों प्रकार के अम्ल बनते हैं। विच्छेदन से उत्पन्न CO_2 पानी के साथ क्रिया करके कार्बोनिक अम्ल (H_2CO_3) बनाती है तथा यह अम्ल वियोजन के बाद H^+ आयन देता है जिसके फलस्वरूप पी–एच मान कम होता है।

(ii) अकार्बनिक अम्लें जैसे H_2SO_4 तथा HNO_3 भी मृदा को H^+ आयन्स प्रदान करते हैं। वास्तव में ये अम्ल प्रबल कार्बनिक अम्लों के साथ मिलकर सामान्य से प्रबल अम्लीय दशा के विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं। सल्फूरिक अम्ल तथा HNO_3 सूक्ष्म जीवों द्वारा उर्वरकों जैसे सल्फर तथा अमोनियम सल्फेट से क्रमशः बनते हैं।

(iii) नम प्रदेशों में वर्षा अधिक होने से क्षारों का लीचिंग द्वारा ह्रास होने के कारण अम्लता बढ़ती है।

2. भस्म उत्पादक कारक (Base forming factors)–

मृदा निर्माण का कोई भी प्रक्रम जो मृदा में विनिमेय भस्मों जैसे Ca, Mg, K तथा Na के निर्माण को प्रोत्साहित करती है उनके द्वारा अम्लता में कमी तथा क्षारीय में वृद्धि होती है। इन प्रक्रमों में सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रम अपक्षय की है, जिनके द्वारा ये विनिमेय धनायन खनिजों से मुक्त होते हैं तथा फिर कोलाइड अधिशोषण के लिए प्राप्य रूप में उपस्थित रहते हैं। भस्म युक्त पदार्थों जैसे चूना पत्थर मिलाने से भी मृदा में धात्विक धनायंस की मात्रा में वृद्धि होती है। सिंचाई जल में भी विभिनन प्रकार के लवण होते हैं तथा जिनके धनायन्स मृदा कोलाइड्स पर अधिशोषित होकर मृदा क्षारता पैदा करते हैं। शुष्क तथा अर्द्ध

शुष्क प्रदेशों में जहां वर्षा बहुत कम होती है, वहां क्षार लीचिंग के द्वारा नष्ट नहीं होते बल्कि वहीं पर एकत्रित होने लगते हैं जिसके कारण पी–एच अधिक हो जाता है।

मृदा पी–एच को प्रभावित करने वाले कारक (Factor affecting soil pH)– मृदा पी–एच अनेक कारकों से प्रभावित होता हैं–

(i) पैत्रिक पदार्थ (Parent material)– क्षारीय चट्टानों से निर्मित मृदाओं का पी–एच अम्लीय चट्टानों (ग्रेनाइट) से बनी मृदा की अपेक्षा अधिक होता है।

(ii) अवक्षेपण (Precipitation)– वर्षा के जल से क्षारीय तत्व जैसे कैल्शियम और मैग्नीशियम निक्षालित हो जाते हैं तथा इनके स्थान पर अम्लीय तत्व एल्युमिनियम हाइड्रोजन तथा मैग्नीज आ जाते हैं जिसमें मृदा पी–एच कम हो जाता है।

(iii) कार्बनिक पदार्थों का विघटन (Decomposition of organic matter)– कार्बनिक पदार्थों के विघटन से कार्बनिक अम्ल CO_2 तथा जल का उत्पादन होता है। ये कार्बनिक अम्ल कैल्शियम और मैग्नीशियम के कार्बोनेट्स से क्रिया करके उनके बाइकार्बोनेट्स बनाते हैं जो जल में विलेय होने के कारण निक्षालित हो जाते हैं, फलतः मृदा में अधिक अम्लता हो जाती है।

(iv) मूल वनस्पति (Vegetation)– जंगली वनस्पतियों के अन्तर्गत निर्मित मृदा घासों पर निर्मित मृदा की अपेक्षा अधिक अम्लीय होती है। शंकुधारी पौधे चौड़ी पत्ती वाले पौधों की तुलना में अधिक अम्लता पैदा करते हैं।

(v) फसल की प्रकृति (Nature of crop)– घास वाली फसलें मृदा पी–एच को प्रभावित नहीं करती जबकि दहलनी फसलें पी–एच कम करने में सक्षम होती है।

(vi) मृदा की गहराई (Depth of soil)– शुष्क क्षेत्रों के अतिरिक्त मृदा अम्लता मृदा की गहराई के साथ बढ़ती है। कुछ ऐसे भी क्षेत्र है जहां निचली सतह का पी–एच पृष्ठ सतह की अपेक्षा अधिक होता है।

(vii) नाइट्रोजन उर्वरक (Nitrogenous fertilizers)– नत्रजन उर्वरकों से अम्लता पैदा होती है, कम नाइट्रोजन प्रयोग करने से कम अम्लता पैदा होती है।

(viii) जलमग्नता (Waterloging)– सामान्यतः जलमग्नता के कारण अम्लीय मृदाओं का पी–एच मान बढ़ जाता है और क्षारीय मृदाओं का पी–एच मान घट जाता है।

मृदा pH का महत्व (Significant of soil pH)–

(अ) मृदा पी–एच का पोषक तत्वों की प्राप्यता पर प्रभाव (Effect of soil pH on availability of nutrients)–

मृदा अभिक्रिया बहुत ही महत्वपूर्ण मृदा का गुण है जो पादप वृद्धि को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से प्रभावित करती है। मृदा pH, मृदा के रासायनिक गुणों एवं सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता (microbiological activity) को सबसे अधिक प्रभावित करती है। मृदा में धनायनों (cations) जैसे Ca^{2+}, Mg^{2+}, K^{+}, Na^{+} तथा Al^{3+} का मृदा से सीधा सम्बन्ध होता है। कम pH मान पर Fe, Mn तथा Al अधिक घुलनशील होते हैं तथा pH अधिक होने पर ये हानिकारक होते हैं तथा इनकी कमी (deficiency) हो जाती है। pH मान 5.5 से कम होने पर नाइट्रीकरण धीमा होता है, pH का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पौधो पर यह है कि pH, मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की उपलब्धता (availability) को प्रभावित करती है –

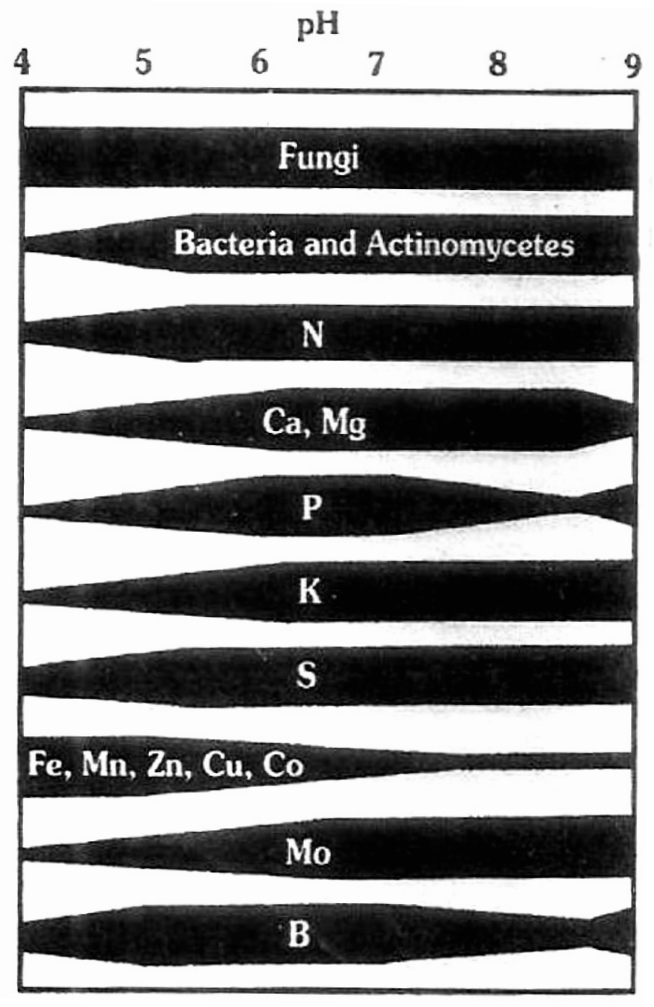

fp=&5-1 **pH** ,oa i"kd rRoksa dh miyC/krk

नाइट्रोजन की अधिक प्राप्यता मृदा में pH 6 तथा 8 के मध्य होती है क्योंकि यह जीवांश पदार्थ में उपस्थित कार्बनिक नाइट्रोजन में खनिजन (mineralize) करने वाले मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए सबसे अधिक उपयोगी है तथा उन सूक्ष्मजीवों के लिए भी उपयोगी है, जो सहजीवी प्रक्रिया (symbiotic process) द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण (fixation) करते हैं।

पौधे फॉस्फोरस को मृदा से अधिकांशतः $H_2PO_4^-$ तथा HPO_4^{2-} आयन्स के रूप में लेते हैं। इनकी प्राप्यता pH पर निर्भर करती है। जब मृदा की pH मान उदासीन और थोड़ी अम्लीय (pH 6.5 तथा 7.5) के मध्य होती है तो इनकी प्राप्यता सबसे अधिक होती है तथा मृदा अधिक अम्लीय (strong acidic) तथा अधिक क्षारीय (strong alkaline) होने पर इनकी प्राप्यता कम हो जाती है।

साधारणतया सूक्ष्म पोषक तत्व जो धनायन के रूप (Cationic form) जैसे Fe^{2+}, Mn^{2+}, Cu^{2+} तथा Zn^{2+} मृदा में पाये जाते हैं उनकी प्राप्यता अम्लीयता बढ़ने पर प्रायः एक सीमा तक बढ़ती है तथा जो ऋणायन के रूप में (Anionic form) में मृदा में पाये जाते हैं उनकी प्राप्यता अम्लीयता बढ़ने पर कम होती है। मोलीब्डेनम तथा बोरॉन की पौधो को मृदा में प्राप्यता अम्लीयता बढ़ने पर कम हो जाती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि प्राथमिक पोषक तत्व (NPK) तथा द्वितीयक पोषक तत्वों (S, Ca, Mg) की मृदा में अधिकतम प्राप्यता pH परास 6.5 से 7.5 के मध्य होती है।

¼c½ enk ih&,p dk l{ethoZ ij çHkko ¼Effect of soil pH on soil micro organisms½&

मृदा pH मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को प्रभावित करती है, जिससे पादप वृद्धि और फसल उत्पादन प्रभावित होता है।

अधिकांश सूक्ष्मजीव, उदासीन या हल्की क्षारीय मृदाओं में सक्रिय रहते हैं। pH 5.5 से कम पर बैक्टिरिया एवं एक्टीनोमाइसिटीज की संख्या एवं सक्रियता तीव्रता से कम होती है। इनके द्वारा कार्बनिक पदार्थ का ऑक्सीकरण इसी pH पर होता है। सहजीवी एवं असहजीवी दोनों प्रकार के नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की क्रियाशीलता के लिए उदासीन या हल्की क्षारीय मृदा अच्छी होती है। pH 5.5 पर या इससे कम पर फंजाई की संख्या में वृद्धि अधिक तीव्रता से होती है। अम्लीय मृदाओं में जैव पदार्थों का विच्छेदन मुख्य रूप से फंजाई द्वारा होता है। सभी सूक्ष्म जीवों के लिए उपर्युक्त पी–एच 6–7 होती है। अधिकतर पौधों की वृद्धि, उदासीन मृदाओं (pH 7) में अच्छी होती है। जब अभिक्रिया बहुत अधिक अम्लीय या क्षारीय होती है तो बहुत से पौधों की वृद्धि रूक जाती है जबकि दूसरी तरफ कुछ पौधों की जातियाँ ऐसी होती हैं जिनकी अच्छी वृद्धि के लिए अम्लीय या क्षारीय अभिक्रिया वाली मृदायें उपयुक्त होती हैं।

सारणी–सूक्ष्म जीवों के लिए उपयुक्त पी–एच

सूक्ष्म जीव	पी–एच सीमा
बैक्टीरिया	6.0 – 7.5
एक्टिनोमाइसिटीस	5.5 – 7.5
कवक	3.0 – 9.0
एल्गी	5.5 – 7.5
एजोटोबैक्टर	6.0 – 7.5
नीली–हरी एल्गी	6.0 – 7.5
क्लास्ट्रीडियम	3.0 – 7.0
विजेरिकिया	3.0 – 9.0
प्रोटोजोआ	6.0 – 8.0

(स) पौधों पर मृदा पी–एच का प्रभाव (Effect of soil pH on plants)–

अम्लीय मृदाओं में पौधों की जड़े पतली एवं संख्या में कम होती है तथा उनकी वृद्धि रुक जाती है। जड़ों के दुर्बल एवं कमजोर हो जाने पर पौधों का विकास एवं उत्पादन अच्छा नहीं होता है। इसी प्रकार क्षारीय मृदाओं में OH^- आयन की बाहुल्यता के कारण जड़ों का विकास रुक जाता है जिससे पौधों की तने, शाखाओं एवं पत्तियों की वृद्धि में कमी आ जाती है। अतः सामान्य पौधों एवं फसलों के लिए उपयुक्त पी–एच 6.5 से 7.5 होता है।

मृदा अभिक्रिया (Soil pH) से पादप पोषकों की प्राप्यता प्रभावित होने के कारण पादप वृद्धि प्रभावित होती है। अत्यधिक कम या अधिक पी–एच मान पर मृदा की भौतिक दशाऐं (Physical conditions) भी खराब हो जाती हैं और पादप वृद्धि को प्रभावित करती हैं। कुछ फसलों के लिए उपयुक्त पी–एच मान तालिका में दिए गए हैं–

फसलें	उपयुक्त मृदा पी–एच परिसर
गेंहू	6.0 – 7.5
जौ	6.0 – 7.5
जई	5.0 – 8.0
बरसीम	6.0 – 8.0
मक्का	6.0 – 7.5
धान	4.5 – 8.5
मूंगफली	5.5 – 6.5

मटर	5.5 – 7.0
चना मसूर	5.5 – 7.0
गन्ना	6.0 – 8.0
कपास	5.5 – 7.0
आलू	4.0 – 6.0
चाय	4.0 – 6.0

(द) पी.एच का पादप रोगों पर प्रभाव (Effect of pH on plant diseases)–

फिंगर और टो (Finger and Toe) रोग जो क्रूसिफेरी परिवार के पौधों को बहुत अधिक प्रभावित करता है, अम्लीय मृदाओं में अधिक होता है। अतः क्रूसिफेरी परिवार के पौधों को अम्लीय मृदा में नहीं उगाना चाहिये। पोटैटो स्कैब (Potato Scab) आलू का चर्म रोग उदासीन एवं क्षारीय मृदाओं में बहुत अधिक फैलता है लेकिन अम्लीय मृदा में गायब हो जाता है। ग्रे फ्लेक (Gray Fleck) भूरा धब्बा रोग जो जई में बहुत होता है, मैंगनीज की कमी के कारण होता है। यह रोग उदासीन मृदा में बहुत अधिक फैलता है। गेहूँ में टेक आल (Take All) रोग कवक द्वारा होता है जो हल्की क्षारीय मृदाओं में अम्लीय मृदाओं की अपेक्षा बहुत तीव्रता से फैलता है। उपर्युक्त सभी बीमारियां केवल मृदा पी–एच में परिवर्तन करके दूर की जा सकती है, क्योंकि उनके फैलने एवं विकसित होने का मुख्य कारक पी–एच है।

(य) पी–एच का मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव (Effect of pH on physical properties of soil)–

पौधों की उचित वृद्धि के लिए मृदा का वातित, दानेदार एवं कार्बनिक पदार्थयुक्त होना नितान्त आवश्यक होता है। अम्लीय मृदा में रन्ध्रावकाश कम हो जाते हैं जिससे वातन रुक जाता है और केंचुएँ, कीड़े–मकोड़ों एवं सूक्ष्म जीवाणुओं का जीवन असम्भव हो जाता है। क्षारीय मृदा में बहुत महीन कण पाये जाते हैं जो दो प्रकार से हानि पहुँचाते हैं–(1) नीचे की मृदा ठोस बन जाती है तथा कभी–कभी 'ब' संस्तर में कड़ी पर्त बन जाती है। (2) पृष्ठ मृदा संरचनारहित हो जाती है जिससे अपरदन होने की अधिक सम्भावना हो जाती है। पी–एच 7 पर मृदा का भौतिक गुण बहुत अच्छा होता है।

(र) पी–एच का घासों पर प्रभाव (Effect of pH on grasses)–

अधिकांश घासें अम्ल के प्रति कुछ अंश तक प्रतिरोधी होती है जिससे अम्लीय मृदा में वे पौधों, वनस्पतियों एवं फसलों को अधिक हानि पहुंचाती है क्योंकि उनकी वृद्धि अम्लीय दशा में बहुत अधिक होती है।

उभय प्रतिरोधक (Buffers)–

उभय प्रतिरोधक वे पदार्थ हैं जिनकी उपस्थिति में किसी विलयन के pH मान को परिवर्तित करने के लिये किसी अम्ल या क्षार की आवश्यकता से अधिक मात्रा प्रयोग में आती है। कोई भी विलयन जब थोड़ी मात्रा में अम्ल या क्षार मिलाने पर के परिवर्तन में प्रतिरोध दिखाता है तो उसके इस कार्य को उभय प्रतिरोधी क्रिया (Buffer action) कहते हैं और जिस विलयन में ऐसे गुण पाये जाते हैं उसे उभय प्रतिरोधी विलयन (Buffer solution) कहते हैं।

विलयनों में यह गुण उनकी निश्चित अम्लता या क्षारता के कारण होता है। विशेषतः ये दुर्बल अम्ल तथा इसका प्रबल क्षार के साथ लवण (e.g. $CH_3COOH + CH_3COONa$) या दुर्बल क्षार तथा इसका प्रबल अम्ल के साथ लवण (e.g. $NH_4OH + NH_4Cl$) होते हैं।

उदाहरणार्थ– यदि हम पोटेशियम क्लोराइड तथा अमोनियम ऐसिटेट के 1 लीटर विलयन में एक–एक मि.ली. 1N HCl मिलायें तो पोटेशियम क्लोराइड विलयन का pH 7 से घटकर केवल 3 रह जाता है, जबकि अमोनियम ऐसीटेट विलयन के pH में, जो पहले 7 थी, बहुत ही थोड़ा अन्तर आता है। इससे स्पष्ट है कि अमोनियम ऐसीटेट एक उभय प्रतिरोधक है, जो pH के परिवर्तन का प्रतिरोध करता है।

उभय प्रतिरोधी विलयन के गुण (Characteristics of buffer solution) :

(1) प्रत्येक उभय प्रतिरोधी विलयन की pH निश्चित होती है और उसके विलयन में प्रबल अम्ल या क्षार की अल्प मात्रा मिलाने पर विलयन का pH अपरिवर्तित रहता है।

(2) उभय प्रतिरोधी विलयन का pH अधिक समय तक स्थिर बना रहता है तथा तनुता (dilution) का भी अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है।

मृदाओं में उभय प्रतिरोधन (Buffering in soil)–

मृदाऐं भी उभय प्रतिरोधन प्रदर्शित करती हैं। मृदा pH में एक निश्चित परिवर्तन लाने के लिए आमतौर पर मृदा निलम्बन (Soil suspension) में उपस्थित H^+ तथा OH^+ आयनों की मात्राओं के कारण जितना अम्ल या क्षार डालना आवश्यक होता है, उससे बहुत अधिक डालना पड़ता है।

यह उभय प्रतिरोधन क्रिया अर्थात pH में परिवर्तन का प्रतिरोध दुर्बल अम्लों और उनके लवणों के प्रभाव के कारण होता है। मृदा की उभय प्रतिरोधी क्रिया को एक कोलॉइडी अम्ल के

विघटन से समझाया जा सकता है–

अधिशोषित H^+ और $(Al)^{3+}$ आयन्स	⟷	मृदा विलियन H^+ और (Al^{3+}) आयन्स
(निश्चित अम्लता)		(सक्रिय अम्लता)

यह दुर्बल अम्ल अल्प मात्रा में ही विघटित होता है, इसके अधिकांश अधिशोषित हाइड्रोजन आयन्स अविघटित ही रहते हैं। यदि इसमें काफी मात्रा में चूना मिलाया जाये तो H^+ आयन्स उदासीन हो जाते हैं। उनकी कमी पूरी करने के लिए अम्ल विघटित होकर H^+ आयन्स मृदा विलयन में देता है, फलतः विलियन के pH में बहुत ही कम अन्तर आता है।

उभय प्रतिरोध क्षमता (Buffering Capacity)–

मृदा में अम्ल या क्षार मिलाने से उसके pH मान में परिवर्तन होता है अर्थात मृदा अम्ल व क्षार दोनों के लिए प्रतिरोध प्रदर्शित करती है, इसलिए ये उभयधर्मी (amphoteric) कहलाती है।

मृदा अम्लीय एवं क्षारीय दोनों गुण प्रदर्शित करती है। मृदा की उभय प्रतिरोधन क्षमता कोलॉइडल पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। जिस मृदा में जितनी अधिक मात्रा में मृतिका (Clay) तथा कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) उपस्थित होते हैं, उतनी ही उसकी उभय प्रतिरोधन क्षमता अधिक होती है।

मृदा की धनायन विनमय क्षमता द्वारा भी मृदा उभय प्रतिरोधन क्षमता प्रभावित होती है। मृदा की धनायन विनमय क्षमता अधिक होने से इसकी उभय प्रतिरोधी क्षमता भी अधिक होती है। 50 प्रतिशत बेस संतृप्त पर मृदा सबसे अधिक प्रतिरोधन प्रदर्शित करती है।

उभय प्रतिरोध का महत्व (Importance of soil buffering) :

उभय प्रतिरोध का महत्व निम्न प्रकार है –

1- enk ih&,p dk LFkk;hdj.k (**Stabilization of Soil pH**)– मृदा pH का अचानक परिवर्तन मृदा वातावरण में एक बड़ा परिवर्तन करता है जिसका प्रभाव पौधों के पोषक तत्वों की प्राप्यता पर पड़ता है। यदि pH में अधिक परिवर्तन होता है तो पेड़–पौधों तथा सूक्ष्मजीवों को बड़ी हानि पहुँचती है, उभय प्रतिरोधन यह कठिनाई दूर करता है।

2- enk l/kkjdksa dh vko';d ek=k (**Necessary Requirement of Amendments**)– मृदा की उभय प्रतिरोधन क्षमता अधिक होने पर pH परिवर्तन के लिए उतनी ही अधिक चूना या गन्धक की आवश्यकता होती है। दिये जाने वाले चूने की मात्रा निश्चित करते समय मृदा में पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थ की मात्रा और उसकी बनावट को भी ध्यान में रखते हैं।

egRoi.kZ fcUnq

1. मृदा का मान मृदा विलियन में उपस्थित H^+ तथा OH^- आयन्स की सान्द्रता पर निर्भर करता है।
2. pH शब्द की खोज डेनिस वैज्ञानिक S.P.L Sorensen ने 1909 में की थी।
3. pH के द्वारा अम्लीयता व क्षारीयता को मापा जाता है।
4. pH स्केल के द्वारा pH मान 0–14 तक मापा जा सकता है।
5. pH 7 पर मृदा उदासीन होती है और 7 से कम होने पर मृदा अम्लीय तथा pH 7 से अधिक होने पर क्षारीय होती है।
6. OH^- आयनों की व्युत्क्रम सक्रियता का लघुगणक pOH कहलाता है।
7. pH तथा pOH का योग सदैव 14 होता है अर्थात pH + pOH = 14 होता है।
8. उभय प्रतिरोधक वे पदार्थ हैं जिनकी उपस्थिति में किसी विलियन के pH मान को परिवर्तित करने के लिए अम्ल या क्षार की आवश्यकता से अधिक मात्रा में प्रयोग में आती है।
9. pH में परिवर्तन का प्रतिरोध करने की यह शक्ति उभय प्रतिरोधी (Buffer action) कहलाती है।
10. जिन मृदाओं में क्ले तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, उनकी उभय प्रतिरोधक क्षमता उतनी ही अधिक होगी।
11. 50 प्रतिशत बेस संतृप्त पर मृदा सबसे अधिक प्रतिरोधन प्रदर्शित करती है।
12. मृदाओं की उभय प्रतिरोधन की क्षमता उपस्थित कोलॉइडी पदार्थों की अभिक्रियाशील मात्राओं और प्रकारों पर निर्भर करती है।

vH;kl lkFk iz'u

oLrfu"B iz'u&

1. pH शब्द किसने दिया–
   (अ) सोरेन्सन (ब) ब्रेडी
   (स) ब्रेमनर (द) नेल्सन एवं टिस्डेल
2. pH स्केल से पी.एच. के पास को मापे हैं, की सीमा होती

है–

(अ) 1 – 14 (ब) 0 – 14

(स) 1–7.0 (द) 7 – 14

3. pH एवं pOH का योग सदैव होता है–

(अ) 10 (ब) 14

(स) 8 (द) 14

4. मृदा का उभय प्रतिरोधन किसके परिवर्तन में प्रतिरोध प्रदर्शित करता है–

(अ) कार्बनिक पदार्थ की मात्रा (ब)अपक्षय

(स) गाढ़ता (द) pH

5. उभय प्रतिरोध क्षमता दर्शाती है–

(अ) अम्लता (ब) क्षारीयता

(स) अ तथा ब दोनों (द) उपयुर्क्त में से कोई नहीं

vfry?kÙkjkÙed i'u&

1. मृदा का मापन किससे किया जाता है ?
2. मृदा शब्द की खोज कब तथा किसने की थी ?
3. उभय प्रतिरोध क्षमता को कौनसे कारक प्रभावित करते हैं ?
4. उभय प्रतिरोध क्या है ?

Yk?kÙkjkRed i'u&

1. मृदा को परिभाषित कीजिए।
2. मृदा का कृषि में क्या महत्व है ?
3. pH स्केल क्या होता है ?
4. pHव पोषक तत्वों की प्राप्यता में क्या सम्बन्ध है ?
5. उभय प्रतिरोध विलियन क्या है ? इसके गुण लिखो।
6. pH तथा pOH में क्या सम्बन्ध है ?
7. मृदा pH का सूक्ष्मजीवों पर क्या प्रभाव होता है ?

fucU/kkRed i'u&

1. मृदा अभिक्रिया को परिभाषित कीजिए। इसका कृषि में क्या महत्व है ?
2. उभय प्रतिरोधन से आप क्या समझते हैं ? मृदा में उभय प्रतिरोधन किस प्रकार होता है ? इसका कृषि में महत्व लिखिए।
3. pH स्केल क्या है ? तथा pOH में क्या सम्बन्ध होता है ? मृदा का पोषक तत्वों की प्राप्यता पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तरमाला–

(1) अ (2) ब (3) ब (4) द (5) स

अध्याय – 6

vEyh; rFkk yo.k izHkkfor e`nk,a
(Acid and Salt affected soils)

izLrkouk (Introduction)–

भारत में कुल कृषि क्षेत्र 159.7 मिलियन हैक्टर है, इसमें से लगभग 90 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में अम्लीय मृदाऐं (शर्मा एवं सरकार 2005) तथा 6.73 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में लवण प्रभावित मृदाऐं (मंडल 2010, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल) पायी जाती है।

वर्तमान समय में लगातार जनसंख्या वृद्धि ने हमारा ध्यान अधिक फसलोत्पादन लेने के उद्देश्य से अम्लीय तथा लवण प्रभावित मृदाओं के सुधार की तरफ आकर्षित किया है। ऐसी समस्याग्रस्त मृदाओं को भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विधियों द्वारा सुधारकर खेती योग्य बनाया जा सकता है।

vEyh; e`nk,a (Acidic soils)–

अम्लीय मृदाऐं प्रायः नम जलवायु के क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इस क्षेत्रों की मृदाओं के कोलॉइडी संकीर्ण पर अधिशोषित भस्मों (Adsorbed Cations) की अधिक मात्रा वर्षा जल के साथ बाहर निकल जाती है और क्ले कोलॉइडी संकीर्ण (clay colloidal complex) पर धनायनों के स्थान पर हाइड्रोजन आयन्स सान्द्रण बढ़ जाने के कारण मृदा अम्लीय बन जाती है।

वे मृदाऐं जिनका pH मान 7.0 से कम होता है तथा जिनमें हाइड्रोजन एवं एल्युमिनियम आयन्स की प्रधानता होती है, अम्लीय मृदायें कहलाती है। इन मृदाओं की धनायन विनिमय क्षमता एवं बेस संतृप्ति (Base saturation) कम होती है। अम्लीय मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक पायी जाती है और इनकी संरचना खराब नहीं होती है। अम्लीय मृदायें मुख्य रूप से आसाम, केरल, मणीपुर, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं उत्तरांचल और उत्तरप्रदेश के तराई क्षेत्र में पायी जाती है।

मृदा अम्लता के प्रकार (Types of Soil acidity) –

मृदा अम्लता दो प्रकार ही होती है–

1. सक्रिय अम्लता (Active Acidity)
2. विनिमय अम्लता (Exchange Acidity)

1- lfØ; vEyrk (**Active Acidity**)– मृदा विलियन में हाइड्रोजन आयन्स के कारण उत्पन्न अम्लता को सक्रिय अम्लता कहते हैं, जो कि pH रूप में मापी जाती है।

2- fofue; vEyrk (**Exchange Acidity**)– वह अम्लता जो मृदा संकीर्ण पर अधिशोषित H^+ आयन तथा Al^{3+} आयन्स के कारण उत्पन्न होती है, सक्रिय अम्लता कहलाती है। मृदा अम्लता को H^+ आयन्स तथा Al^{3+} आयन्स की साम्यावस्था द्वारा निम्न प्रकार से प्रदर्शित करते हैं –

$$\underset{\text{क्ले एवं कार्बनिक पदार्थ}}{Al^{+3}\ Ca^{2+}\ Mg^{2+}\ K^+\ H^+} + \text{Water} \rightarrow \underset{\text{मृदा विलियन सक्रिय अम्लता}}{Ca^{2+}+Mg^{2+}+K^+ \quad Al^{3+}+Al(OH)_3+H^+}$$

विनिमय अम्लता (Al^{+3}, H^+) (H^+)

vEyh; e`nk cuus dh dkj.k
(Causes of Acidic Soil formation) -

अम्लीय मृदाओं के बनने के प्रमुख कारण निम्नलिखित है –

1- izrd inkFkZ dh izdfr (**Nature of parent material**)– चट्टानों में भस्म खनिजों की अपेक्षा क्वार्ट्ज एवं सिलिका की मात्रा अधिक हो जाने पर अम्लीय चट्टान बनती है। इनमें उपस्थित सिलिका जल के संयोग से आर्थोसिलिसिक अम्ल $[(H_2O)SiO_2]$ एवं ट्राई सिलिसिक अम्ल $[(H_2O)_2 3SiO_2]_3$ का निर्माण करती है। अम्लीय चट्टानों से बनी हुई मृदाएं अम्लीय होती हैं।

2- cl dk {kh.k gkuk ¼**Removal of bases**)– अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ मृदा संकीर्ण पर अधिशोषित घुलनशील भास्मिक आयन्स जैसे Ca^{2+}, Mg^{2+}, Na^{+} तथा K^{+} आदि अधिक जल में घुलकर मृदा के निचले संस्तरो में चले जाते हैं और अपेक्षाकृत कम घुलनशील एल्युमिनियम और आयरन के यौगिक मृदा में रह जाते हैं।

इन यौगिकों की प्रकृति अम्लीय होती है और इनके ऑक्साइड एवं हाइड्रोक्साइड जल के साथ अभिक्रिया करके मृदा विलियन में H^{+} आयन्स मुक्त करते हैं, जिससे मृदा अम्लीय हो जाती है।

इसके अलावा जब घुलनशील क्षारों का निक्षालन द्वारा ह्रास हो जाता है, मृदा में कार्बनिक अम्ल एवं अन्य उत्पन्न अम्लों के H^{+} आयन्स मृदा संकीर्ण पर उपस्थित भास्मों का विस्थापन कर देते है। जैसे ही मृदा से विनिमयशील भास्मों का ह्रास होता है, वैसे ही मृदा क्षार असंतृप्त होकर अम्लीय हो जाती है –

$$CO_2 + H_2O \rightarrow H_2CO_3$$

(कार्बोनिक अम्ल)

$$Ca^{2+}\ [Clay] + H_2CO_3 \rightarrow \overset{H^+}{\underset{H^+}{[Clay]}} + CaCO_3$$

(अघुलनशील कैल्शियम कार्बोनेट)

$$CaCO_3 + H_2CO_3 \rightarrow Ca(HCO_3)_2 \downarrow$$

(जल विलेय)

निक्षालन

3- vEyh; moZjdksa dk yxkrkj iz;ksx ¼**Contineous use of acidic fertilizers**)– मृदा में लगातार अम्लीय उर्वरकों के प्रयोग से भी मृदायें अम्लीय हो जाती हैं। यूरिया, अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट आदि के लगातार प्रयोग से नवजात हाइड्रोजन तथा अम्लों का उत्पादन होता है जो धनायनों को प्रतिस्थापन कर मृदा को अम्लीय बनाते हैं। धनायन घुलनशील यौगिक बनकर अपक्षालित हो जाते हैं–

$$Ca^{++}\ [\text{Clay Compex}]\ (NH_4)_2SO_4 \rightarrow \overset{NH_4^+}{\underset{NH_4^+}{[\text{Clay Compex}]}} + CaSO_4 \downarrow \text{(Leachable)}$$

अमोनियम सल्फेट

$$Ca^{++}\ [\text{Clay Compex}] + 2NH_4NO_3 \rightarrow \overset{NH_4^+}{\underset{NH_4^+}{[\text{Clay Compex}]}} + Ca(NO_3)_2 \downarrow \text{(Leachable)}$$

अमोनियम नाइट्रेट

$$CO(NH_2)_2 + 2H_2O \rightarrow (NH_4)_2CO_3$$

(यूरिया उर्वरक)

$$(NH_4)_2CO_3 \rightarrow 2NH_3 + CO_2 + H_2O$$

$$NH_3 + H_2O \rightarrow NH_4OH \rightleftharpoons NH_4^+ + OH^-$$

$$2NH_4^+ + 3O_2 \rightarrow 2HNO_2 + 2H_2O + 2H^+ \text{ (नवजात हाइड्रोजन)}$$

$$Ca^{2+}\ [Clay] + 2H^+ \rightarrow \overset{H^+}{\underset{H^+}{[Clay]}} + Ca^{2+}\ 2HNO_2 + O_2 \rightarrow 2HNO_3$$

$$Ca^{2+}\ [Clay] + 2HNO_3 \rightarrow \overset{H^+}{\underset{H^+}{[Clay]}} + Ca(NO_3)_2 \downarrow \text{(घुलनशील)}$$

4- tho'k inkFk (**Organic matter**)– मृदा में उपस्थित जीवांश पदार्थ की मात्रा जिन मृदाओं में अधिक पाई जाती है उनमें जीवांश पदार्थ के सड़ने–गलने से कार्बन डाइ ऑक्साइड (CO_2) तथा अन्य कार्बोनिक अम्लों (Carbonic acids) का निर्माण होता है। अम्लों के उत्पादन से मृदा अम्लीय होती है साथ ही साथ हाइड्रोजन आयन्स (H^+) द्वारा धनायनों का प्रतिस्थापन कर दिया जाता है –

जीवांश पदार्थ $\xrightarrow{\text{विघटन}}$ CO_2

$CO_2 + H_2O \rightleftharpoons H_2CO_3$ (कार्बोनिक अम्ल)

Ca^{2+} [Clay] $+ 2H_2CO_3 \rightarrow$ H^+ [H^+ Clay] $+ Ca(HCO_3)_2 \downarrow$ (घुलनशील)

5- lw{e tSfod fØ;k (**Microbiological action**)– विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीव मृदा में सक्रिय होते हैं जो कार्बनिक पदार्थ के विच्छेदन (Decomposition) तथा नाइट्रीकरण (Nitrification) आदि क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। सूक्ष्म जीवों (Micro-organisms) की क्रिया के फलस्वरूप अम्ल लगातार बनते रहते हैं। ये अम्ल कोलॉइडी संकीर्ण पर उपस्थित भास्मों (Bases) से उदासीन होते रहते हैं। कोलॉइडी संकीर्ण पर भास्मों की कमी होने पर ये अम्ल उदासीन नहीं हो पाते और अम्लीय मृदा बनाते हैं।

ik/kks ij enk vEyrk dk izHkko (Effects of soil Acidity on plants)–

पौधों पर मृदा अम्लता के अनेकों प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव होते हैं –

(v) izR;{k izHkko (**Direct infuences**)–

1. पौधों की जड़ों के ऊतकों पर H^+ आयन्स का विषैला प्रभाव पड़ता है।
2. पादप झिल्लियों (Plant membranes) द्वारा धनायनों की पारगम्यता (Permeability) पर मृदा अम्लता का प्रभाव पड़ता है।
3. जड़ों द्वारा भास्मिक (Basic) तथा आम्लिक (Acidic) अवयवों (Constituents) के बीच सन्तुलन में विघ्नता (Disturbance) पड़ जाती है।
4. मृदा अम्लता पौधों के एन्जाइम परिवर्तनों को प्रभावित करके पौधों पर बुरा प्रभाव डालती हैं। एन्जाइम एक विशेष pH पर सक्रिय होता है और pH में परिवर्तन होने से यह प्रभावित होता है।

(c) vizR;{k izHkko (**Indirect influences**)–

1. विभिन्न पोषक तत्वों, जैसे फॉस्फोरस, तांबा तथा जिंक की पौधों को प्राप्यता।
2. अधिक मृदा अम्लता के कारण Al, Mn, तथा Fe अधिक विलेय होते हैं और इनकी अधिक प्राप्यता होने पर ये पौधों के लिए वैषिक (Toxic) होते है।
3. मृदा सूक्ष्मजीवों की लाभप्रद सक्रियता (Benetficial Activities) बुरी तरह प्रभावित होती है।
4. पौधों में अनेक रोग हो जाते हैं।
5. अधिक मृदा अम्लता के कारण पौषक तत्वों जैसे Ca तथा K की कमी हो सकती है।

vEyh; enkvksa dk lq/kkj (Reclamation of Acid soils)–

चूना पदार्थ (Liming Material), चूना का 10 प्रतिशत से अधिक $CaCO_3$ होता है। कुछ केल्शियम और मैग्निशियम कार्बोनेट होते हैं और अल्प मात्रा CaO या $Ca(OH)_2$ की होती है।

मुख्य चूना पदार्थ निम्नलिखित हैं–

1- dfY'k;e puk (Calcic lime stone, $CaCO_3$)– यह पिसा हुआ चूना पत्थर होता है, इसमें Ca की मात्रा Mg से अधिक होती है।

2. डोलोमाइट (**Dolomite - $CaMg(CO_3)_2$**)– मैग्नीशियम की प्रचुरता वाले पिसा चूना पत्थर से बनता है।

3- fcuk c>k puk (**Quick lime - CaO**)– यह जला हुआ चूना होता है, चूने के पत्थर को जलाने पर CO_2 निकल जाती है और CaO बचा रहता है।

4- c>k puk (**Hydrated slaked lime - $Ca(OH)_2$**)– जले हुए चूना पत्थर को पानी से बुझाने पर बुझा चूना पैदा होता है।

5- eky (**Marl - $CaCO_3$**)– यह कोमल तथा भुरभुरा केल्शियम कार्बोनेट है।

6- [kfM ; k ¼Chalk - $CaCO_3$)

7- >kdk HkVVh /kkrey ¼Blast Furnace slag - $CaSiO_3$ तथा $CaSiO_4$)– यह आयरन उद्योग का एक उत्पाद है। कुछ धातुमलों में फास्फोरस तथा CaO और $Ca(OH)_2$ का मिश्रण होता है, यह उत्पाद क्षारीय धातुमल (Basic slag) कहलाता है।

vEyh; enk e feyku ij puk d ifjorlu ¼Change of lime added to the acidic soil)–

मृदा परीक्षण के आधार पर आवश्यक चूने को सही प्रकार से पीस कर मृदा की ऊपरी सतह में बिखेर कर मिला देना चाहिए। वैसे तो चूने का प्रयोग कभी भी किया जा सकता है, परन्तु रासायनिक अभिक्रिया पूर्ण होने के लिए फसल की बुआई से कुछ सप्ताह पूर्व खेत में मिलाने से अधिक लाभ मिलता है। अभिक्रिया पूर्ण होने के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी (Moisture) होना आवश्यक है। साधारणतया प्रत्येक 5 वर्ष के बाद मृदा परीक्षण करके चूने का प्रयोग करते हैं, मृदा में चूना मिलाने पर दो प्रकार के परिर्वतन होते हैं –

CO_2 d lkFk ifrfØ;k ¼Reaction with CO_2)–

जब चूना किसी भी रूप में (ऑक्साइड, हाइड्रोक्साइड या कार्बोनेट) अम्लीय मृदा में मिलाया जाता है, तो CO_2 से क्रिया करके बाइकार्बोनेट में बदल जाता है जिससे अम्लीयता कम होती है।

प्रतिक्रिया निम्न प्रकार होती है –

$CaO + H_2O \rightarrow Ca(OH)_2$ (कैल्शियम हाइड्रोक्साइड)

$Ca(OH)_2 + 2H_2CO_3 \rightarrow Ca(HCO_3)_2 + 2H_2O$

$CaCO_3 + H_2CO_3 \rightarrow Ca(HCO_3)_2$ (कैल्शियम बाई कार्बोनेट)

enk dkykbMl d lkFk ifrfØ;k ¼Reaction with soil collaid)–

मृदा में चूना मिलाने पर Ca^{2+} आयन, कोलॉइड कणों पर अधिशोषित होकर H^+ आयन्स को प्रतिस्थापित कर देते हैं जिससे अम्लीयता कम अथवा समाप्त हो जाती है, जैसा कि निम्नलिखित समीकरणों में दर्शाया गया है –

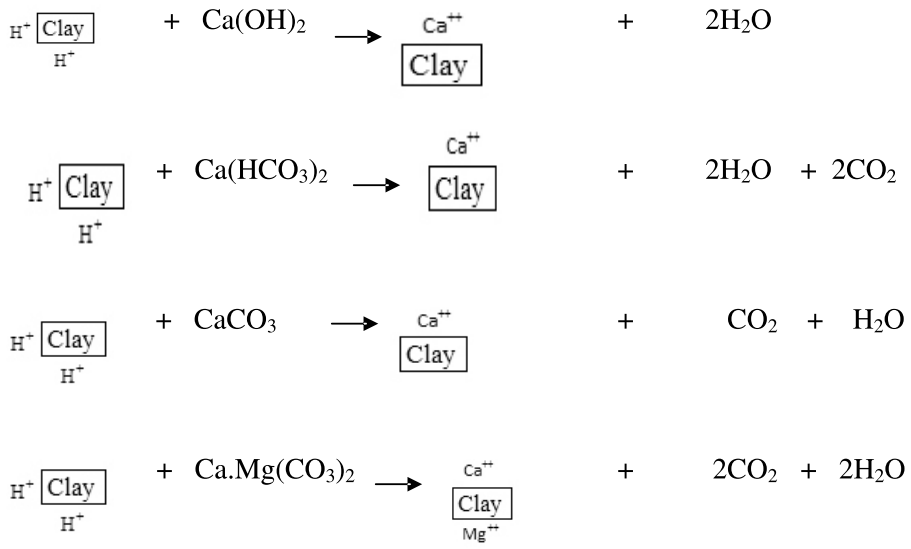

चूने का मृदा पर प्रभाव (Effect of lime on soil)–

चूने का, मृदा में निम्नलिखित भौतिक, रासायनिक एवं जैविक प्रभाव पड़ता है–

1. चूना डालने से भारी मिट्टियों (Heavy soils) की संरचना दानेदार हो जाती है।
2. चूना मृदा का स्थूल घनत्व (Bulk density) घटा कर उसकी अन्तः स्पन्दन क्षमता (Infiltration capacity) बढ़ाता है और पानी की अन्तः श्रवण की दर (Infiltration rate) को बढ़ाता है।
3. मृदा अपरदन में कमी आती है।
4. पौधों की अच्छी वृद्धि होती है।
5. मृदा के वायु एवं जल संचार में सुधार होता है।
6. मृदा में H^+आयन्स के सान्द्रण में कमी आती है।
7. OH^-आयन्स का सान्द्रण बढ़ जाता है।
8. मृदा केpH मान में वृद्धि होती है।
9. Fe, Al तथा Mn की विलेयता (Solubility) कम हो जाती है।

10. विनिमय Ca तथा Mg बढ़ जाते है।
11. Pतथा Mo की उपलब्धता (Availability) बढ़ जाती है।
12. चूना, पोटेशियम को पौधों के पोषण में अधिक प्रभावशाली बनाता है।
13. चूना कार्बनिक पदार्थ का अपघटन (Decomposition) शीघ्र कराकर नाइट्रेट की प्राप्यता बढ़ाता है।
14. अम्लीय मृदाओं में चूना देने से मृदा सूक्ष्म जीवों (Soil micro-organisms) की सक्रियता बढ़ जाती है।
15. वायुजीवी बेक्टरीरिया की कार्य गति बढ़ जाने के कारण जीवांश पदार्थ का विच्छेदन जल्दी होने लगता है।
16. अमीनीकरण, अमोनीकरण, और सल्फर ऑक्सीकरण की गति बढ़ जाती हैं।
17. चूना नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) तथा नाइट्रीकरण (Nitrification) की गति को भी बढ़ाता है।

लवण प्रभावित मृदाऐं (Salt Affected Soils) –

सम्पूर्ण भारत में लवण प्रभावित मृदाऐं विस्तृत रूप से पायी जाती है। ये प्रायः शुष्क (Arid) एवं अर्धशुष्क (Semi-arid) जलवायु वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं। जिन मृदाओं में घुलनशील लवणों की अधिकता होती है, जो पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, ऐसी मृदाऐं लवण प्रभावित मृदाऐं कहलाती हैं। देश के विभिन्न भागों में लवण प्रभावित मृदाऐं विभिन्न क्षेत्रीय नामों से जानी जाती हैं– इन मृदाओं को हरियाणा एवं पंजाब में कल्लर, थर, राकर, बरा, और बरी, उत्तर प्रदेश में ऊसर या रेह, गुजरात में खार, राजस्थान में लूणी खारी, आन्ध्रप्रदेश में उप्पू या चौडू, कनार्टक में चौपान नामों से जाना जाता हैं।

अधिक तापमान एवं शुष्क क्षेत्रों में लवणता एवं क्षारीयता से मृदा की भौतिक संरचना खराब हो जाती है तथा लवणों की अधिकता के हानिकारक प्रभाव से पौधों की मृत्यु हो जाती है, ऐसी लवण प्रभावित मृदाओं में फसलोंत्पादन सम्भव नहीं होता है। भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए प्रति हैक्टर भूमि से अधिक उत्पादन लेना आवश्यक हो गया है, अतः इन समस्याग्रस्त मृदाओं का अध्ययन कर इनको सुधारना आवश्यक है।

इस प्रकार की मृदाऐं भारत में उत्तर प्रदेश, गुजरात, पश्चिम–बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र, उड़ीसा, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक तथा आन्ध प्रदेश राज्यों में अधिक पायी जाती हैं। राजस्थान में, भौगोलिक स्थिति– शुष्क एवं अर्द्धशुष्क जलवायु, कम वर्षा, उच्च तापमान, उच्च वाष्पीकरण एवं भूमिगत जल में लवण व क्षार की उपस्थिति आदि कारणों से यह समस्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। नहरों व तालाबों से सिंचित क्षेत्रों में भूमिगत जल स्तर जमीन की सतह के नजदीक आने के कारण भी समस्याग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। कम वर्षा के कारण भूमि में उपस्थित लवण पानी के साथ घुल कर भूमि की ऊपरी सतह पर एकत्रित होते रहते हैं।

भूमिगत जल में लवण और क्षार होने के कारण कुँओं से सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई करने से भूमि की ऊपरी सतह पर लवणों की मात्रा बढ़ती जा रही है। तालाब एवं नहरों से सिंचित क्षेत्रों में भूमिगत जल की सतह उपर उठ आने, पानी के अधिक रिसाव के कारण ऊपर की मिट्टी में ज्यादा लवण एकत्रित होते रहने से भूमि में लवणीयता व क्षारीयता बढ़ रही है।

राजस्थान में लगभग 3.74 लाख हैक्टर मृदा लवणीयता व क्षारीयता से प्रभावित है (मंडल 2010, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा)। राजस्थान में मुख्य रूप से पाली, जोधपुर, भरतपुर, बाडमेर, नागौर, जयपुर, भीलवाड़ा, अजमेर, कोटा, बूंदी, झालावाड, सवाई माधोपुर, टोंक, अलवर, बीकानेर, जैसलमेर, चूरू, श्रीगंगानगर जिलों में लवण प्रभावित मृदाऐं पायी जाती हैं।

लवणीय मृदा बनने के कारण (Cause of formation of salt affected soils) -

लवणीय प्रभावित मृदा बनने के प्रमुख कारण निम्न हैं–

1. शुष्क जलवायु (Arid climate) - शुष्क क्षेत्रों में जहॉ वर्षा कम होती है और ताप अधिक होता है, वहॉ विलेय लवण मृदा की सतह पर जमा होते रहते हैं। बरसात में ये लवण मृदा परतों में नीचे की और चले जाते हैं, लेकिन वर्षा का मौसम समाप्त होने पर तीव्र वाष्पीकरण द्वारा ये लवण पुनः सतह पर आ जाते हैं। शुष्क क्षेत्रों में भूमिगत जल में विलेय लवणों की प्रायः अच्छी खासी मात्रा होती है। वाष्पीकरण द्वारा मृदा सतह पर लवणों के संचालन में सदैव वृद्धि होती रहती है जिससे मृदा लवणीय बन जाती है।

2. लवणीय जल से सिंचाई (Irrigation with saline water) – जल में लवणों की मात्रा के अनुपात में ही मृदा में लवण संचय होता है। यह मृदा के कणों के आकार, जलवायु एवं जलीय चालकता पर निर्भर करता है। एक ही तरह के जल के उपयोग से लवण संचय महीन कणाकार वाली मृदा में अधिक तथा मोटे आकार के कण वाली मृदा में कम होता है।

3. जल के रिसाव से (Seepage of water) - जल रिसने वाली नहरों और पार्श्व नालियों से, जो कि ऊँची भूमियों पर रहती है, निस्पंदन (Seepage) होता है और भूमि जल स्तर पर उठ जाता है, जिससे लवणीय–क्षारीय मृदाऐं बनती हैं।

4. उच्च भूमि जल स्तर (High water table) - भूमि जल स्तर मृदा सतह के निकट होने पर समुचित जल निकास

नहीं हो पाता फलस्वरूप ऊपरी सतह में अधिक लवण एकत्रित हो जाते हैं। जल स्तर सतह के निकट प्राकृतिक कारणों से अथवा नहर, जलाशय एवं नदी के समीप होने से भी हो सकता है।

5. अपर्याप्त जल निकास (Poor drainage) - जल निकास उचित नहीं होने के कारण आस–पास का जल निचले स्थानों पर एकत्रित हो जाता है और सूखने पर अपने साथ लाये हुऐ विलेय लवणों को वहीं छोड़ देता है। इस प्रकार का क्रम प्रतिवर्ष चलते रहने से कुछ समय बाद मृदा लवणीय व क्षारीय बनती है।

6. मृदा परिच्छेदिका में कड़ी परत (Hard layer in soil profile) - मृदा प्रोफाइल में कड़ी परत होने पर जल नीचे की तहों तक नहीं पहुँच पाता जिससे विलेय लवण कड़ी परत के ऊपर वाले भू भाग में ही रहते हैं। वाष्पीकरण के समय यह लवण मृदा की ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाते हैं, इस प्रकार की कड़ी परतें जल निकास में बाधक होती है।

7. मूल पदार्थों की प्रकृति (Nature of parent material) – चट्टानों की रचना विभिन्न खनिजों से होती है। जिन चट्टानों में अधिक लवण होंगे उनसे निर्मित मृदा में लवण भी अधिक पाये जायेगें। चट्टानों की तोड़–फोड़ के कारण अनेक घुलनशील लवण जल में घुलकर मिट्टी की निचली सतहों में पहुँच जाते हैं। जब ऐसे स्थानों का पानी भाप बन कर उड़ जाता है तो लवण भूमि की सतह पर एकत्रित हो जाते हैं।

8. क्षारीय उर्वरकों का लगातार अनुप्रयोग (Continous use of basic fertilizers) - क्षारीय प्रकृति के उर्वरकों का लगातार प्रयोग करने पर मृदा में क्षारीय आयनों की मात्रा बढ़ जाने से मृदा क्षारीय हो जाती है। सोडियम और केल्शियम युक्त उर्वरकों की प्रकृति क्षारीय होती है, इनके लगातार प्रयोग से मृदा संकीर्ण पर इन आयनों की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे मृदा क्षारीय हो जाती है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदा का निर्माण (Formation of saline and sodic soils) –

डी. सिग्मॉड (1932) का मत है कि नमकीन भूमियों के विकास में चार प्रावस्थायें (phases) होती हैं – पहली प्रावस्था में नमक एकत्रित होते हैं, दूसरी प्रावस्था में नमकों से क्षारीय लवणों का निर्माण होता है, तीसरी प्रावस्था में प्राकृतिक या कृत्रिम निक्षालन द्वारा लवण घुल जाते हैं या भूमि की ऊपरी सतह से नीचे चले जाते हैं तथा चौथी प्रावस्था में लवणों का निम्निकरण होता है। बाद में उन्होने एक पांचवीं प्रावस्था भी बताई, जिसको उन्होनें रिग्रेडिंग कहा।

कैली (1951) के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि क्षारीय भूमि निर्माण में सदैव ये प्रावस्थाऐं इसी क्रम में होती है। उनका मत है कि कभी–कभी ये क्रियाऐं उल्टी दिशा में भी हो सकती है। क्षारीय भूमि के निर्माण में प्रावस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है –

लवणीकरण (Salinization) :

आग्नेय चट्टानों के अपक्षय से मुक्त हुए लवण मिट्टी में पाये जाते हैं। शुष्क क्षेत्रों की मिट्टी में शेल्स (shales), बालू पत्थर, ग्लेशियल तथा हवा द्वारा लाये गये पदार्थों के द्वितीय विक्षेपों (secondary deposits) के कारण भी लवण पाये जाते हैं, इनमें विशेषकर शेल्स में काफी मात्रा में विलेय लवण होते हैं।

ज्वालामुखी के गैसीय उद्गारों के कारण भी मृदा में क्लोराइड़ तथा सल्फेट आते हैं। इस प्रकार जब ये लवण मृदा में एकत्रित होने लगता हैं तो यह क्रिया लवणीकरण कहलाती है। शुष्क क्षेत्रों में (कम वर्षा तथा अत्यधिक वाष्पीकरण के कारण) निक्षालन द्वारा लवण ऊपरी सतह से अधिक नीचे नहीं जा पाते और इस प्रकार लवणीकरण की क्रिया इन दशाओं में बहुत शीघ्र होती है।

इसके अतिरिक्त सिंचित क्षेत्रों में अत्यधिक परन्तु अधिक समय के अन्तर से सिंचाई करने के कारण लवणीकरण होता है। ऊपरी सतह का पानी वाष्पीकरण द्वारा वाष्पित हो जाता है तो वह सतह शुष्क हो जाती है, तब मृदा कोशिकाओं द्वारा नीचे की सतहों से लवणों की पपड़ी भूमि की सतह पर जमने लगती है। लवणीकरण क्रिया के प्रारम्भ में सोडियम के लवण अधिक पाये जाते हैं, $CaCO_3$ तथा $CaSO_4$ कम विलेय होते हैं इसलिए ये धीरे–धीरे संचित होते हैं।

क्षारीयकरण (Alkalization) :

भास्म विनिमय की क्रिया में केल्शियम, मैग्निशियम तथा पोटेशियम आदि विनिमय धनायनों के साथ सोडियम भी मृदा में कोलॉइडी कणों पर अधिशोषित हो जाता हैं, जैसे–जैसे मृदा विलियन में सोडियम का सान्द्रण बढ़ता जाता है, वह कोलॉइडी कणों पर अधिशोषित दूसरे धनायनों को वहाँ से विस्थापित करता रहता है और इस प्रकार मृदा अधिकाधिक क्षारीय होती जाती है –

$$Ca^{++}\boxed{Clay} + 2Na^{+} \rightleftharpoons Na^{2+}\boxed{Clay} + Ca^{++}$$

$$Mg^{++}\boxed{Clay} + 2Na^{+} \rightleftharpoons Na^{2+}\boxed{Clay} + Mg^{++}$$

आधिक्य लवणों का न्यूनीकरण (Desalinization):

इस क्रिया में पूर्व एकत्रित लवणों का आधिक्य निक्षालन द्वारा नीचे की सतहों में चला जाता है, परन्तु क्ले कणों पर अधिशोषित सोडियम ज्यों का त्यों वहीं बना रहता है और मृदा पूर्व की भॉति क्षारीय बनी रहती है। निक्षालन के कारण कोलॉइडी

कणों पर सोडियम की मात्रा अधिक होने से कोलॉइड्स का विक्षेपण (dispersion) हो जाता है, जिसके फलस्वरूप मृदा में जल की प्रवेश्यता मन्द पड़ जाती है।

निम्नीकरण (Degradation of solodization):

आधिक्य लवणों के न्यूनीकरण की क्रिया होने से मृदा में $CaCO_3$ या $CaSO_4$ नहीं रह जाता है। विलेय लवणों के पूर्ण रूप से लीचिंग द्वारा अलग हो जाने से एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जबकी मृदा कोलॉइड से विनिमय सोडियम को विस्थापित करने के लिए भास्म नहीं बचे रहते। इस स्थिति में विनिमय सोडियम, जल विश्लेषित होकर सोडियम हाइड्रॉक्साइड देता है और जो हाइड्रोजन निकलती है, वह क्ले की सतह पर अधिशोषित हो जाती है। इस प्रकार पैदा हुआ सोडियम हाइड्रॉक्साइड मृदा वायु की CO_2 के साथ प्रतिक्रिया करके सोडियम कार्बोनेट में बदल जाता है, इस प्रतिक्रिया को नीचे दर्शाया गया है –

$$Na\text{-}Clay\text{-}Na + Ca + H_2O \rightarrow H\text{-}Clay\text{-}Na + Ca^{++} + NaOH$$

$$2NaOH + CO_2 \rightarrow Na_2CO_3 + H_2O$$

(सोडियम कार्बोनेट)

अधिक लीचिंग के कारण सोडियम कार्बोनेट धीरे–धीरे भूमि की निचली सतह पर चला जाता है। मृदा कोलॉइड पर सोडियम के स्थान को हाइड्रोजन ग्रहण कर लेता है, जिससे मृदा कोलॉइड पर H^+ आयन्स अधिक बढ़ जाते है और मृदा की पी.एच. कम हो जाती है। अधिकांश रूप से इस प्रकार की मृदा में pH 6.0 से कम पाया जाता है।

रिग्रेडेशन (Regradation) :

ऐसी मृदा जिसमें एक बार निम्नीकरण हो चुका है, पुनः क्षार एकत्रित होने लगते हैं और सोडियम लवणों की मात्रा बढ़ने लगती है, तो इस क्रिया को रिग्रेडेशन कहते है। इस क्रिया के फलस्वरूप मृदा का पी.एच. मान फिर अधिक होने लगता है।

लवण प्रभावित मृदाओं का वर्गीकरण (Classification of salt affected soils) -

रासायनिक दृष्टि से लवण प्रभावित मृदाओं का वर्गीकरण यू.एस. लवणता प्रयोगशाला ने इस प्रकार किया है –

(1) लवणीय मृदायें (Saline Soils)– अमेरिकन वैज्ञानिक–हिलगार्ड ने इन्हे "White alkali soil" तथा रूसी वैज्ञानिक–गेदरोइज ने "Solon chak-soils" के नाम से सम्बोधित किया है। "वे मृदाये, जिनमें 24^0C पर मृदा के संतृप्त–निष्कर्ष (Saturation extract) की विद्युत चालकता 4 dS m^{-1} से अधिक होती है, विनिमेय सोडियम (exchangeable sodium) 15% से कम पाया जाता है तथा pH 8.5 से कम होता है। इन मृदाओं में सोडियम (Na^+), केल्शियम (Ca^{2+}) तथा मैग्नीशियम (Mg^{2+}) के जल में धुलनशील क्लोराइड (Cl^-) तथा सल्फेट (So_4^{--}) के लवण होते हैं।

(2) क्षारीय मृदायें (Sodic or Alkali Soils): हिलगार्ड ने इन्हें "Black alkali Soil" तथा गेदरोइज ने "Solonetz के नामों से सम्बोधित किया है। "वे मृदायें, जिनमें 25^0C पर मृदा के संतृप्त–निष्कर्ष की विद्युत चालकता 4 dS m^{-1} से कम होती है। विनिमेय सोडियम 15% से अधिक पाया जाता है और pH 8.5 से 10 तक होता है।

इन मृदाओं में विनिमेय संकीर्ण सोडियम आयन्स से संतृप्त रहता है। इन मृदाओं में सोडियम कार्बोनेट की अधिकता होती है इसलिए ये मृदाएं सोडिक (Sodic) मृदायें भी कहलाती हैं। इन मृदाओं में पर्याप्त मात्रा में विनिमेय सोडियम पाया जाता है जिससे मृदा की pH मान बढ़ जाती है जो भौतिक दशा को खराब करती है, जिससे फसल की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(3) लवणीय–क्षारीय मृदायें (Saline alkaline soils)– "वे मृदायें , जिनमें 25^0C पर मृदा के संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता 4 dS m^{-1} से अधिक होती है। विनिमेय सोडियम भी 15% से अधिक पाया जाता है और मृदा pH 8.5 से अधिक होता है।

इन मृदाओं की विशेषताएं निम्न सारणी में दर्शायी गयी हैं–

सारणी : लवणीय, क्षारीय एवं लवणीय–क्षारीय मृदाओं की EC व ESP सीमायें –

क्र.सं.	लवण प्रभावित मृदायें	विद्युत चालकता EC (dS m^{-1})	विनमयशील सोडियम प्रतिशतता (ESP)	pH मान
1	लवणीय मृदा	>4	<15	<8.5
2	क्षारीय मृदा	<4	>15	>8.5
3	लवणीय–क्षारीय मृदा	>4	>15	>8.5

विद्युत चालकता (Electrical Conductivity)–

ई. सी. (EC) अर्थात् विद्युत चालकता से ज्ञात होता है कि मिट्टी और पानी में घुलनशील लवण की सान्द्रता कितनी है। इसे कंडक्टिविटी ब्रिज से मापा जाता है। इसकी उपयोगिता फसलों के लिए यह है कि भूमि में एक सीमा से अधिक पदार्थ बढ़ जाए तो फसलों की पैदावार अच्छी नहीं हो सकती। इसलिए सामान्य फसलोत्पादन के लिए ई.सी. की जानकारी आवश्यक है।

ई.सी. को डेसीसायमन (Decisemens) प्रति मीटर (dS m^{-1}) में मापा जाता है। इससे पहले ई.सी. को मिलीमहोज प्रति से. मी. (mmhos Cm^{-1}) इसीलिए

1 Siemens (S) = 1 mho = 1000 mmhos, तब

1 dS = 100 mmhos इसीलिए 1 dS m^{-1} = 100 mmhos m^{-1} = 1 mmhos cm^{-1}

विनियमय सोडियम प्रतिशतता (Exchangeable Sodium percentage)–

ई.एस.पी. का तात्पर्य किसी मिट्टी में मिट्टी के कणों के ऊपर चिपकी हुई विनिमय सोडियम की मात्रा है या ई.एस.पी. मृदा विनिमय जटिल से सोडियम संतृप्ति अंश अर्थात् मृदा की सम्पूर्ण धनायन विनिमय क्षमता का कितना प्रतिशत विनिमय सोडियम द्वारा धारित है। अच्छी मृदा में कणों के ऊपर कैल्शियम, मैग्नीशियम, हाइड्रोजन तथा सोडियम आदि लवणों की संतुलित मात्रा होती है, परन्तु ऊसर या क्षारीय मृदा में सोडियम की मात्रा कणों के ऊपर काफी अधिक बढ़ जाती है जिसके कारण पी–एच मान अधिक हो जाता है और मृदा का विनिमय सोडियम 15 या इससे अधिक होने के कारण फसलों का उत्पादन प्रभावित होता है।

$$ESP = \frac{\text{Exchangeable Sodium (cmol Kg}^{-1}\text{) x 100}}{\text{Cation Exchange Capacity (cmol Kg}^{-1}\text{)}}$$

जब ई.एस.पी. का मान 15 होता है तब मृदा पी–एच 8.5 होती है। उच्च ई.एस.पी. का मान मृदा पी–एच को 10 तक बढ़ा देता है।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान (Central Soil Salinity Research Institute), करनाल (हरियाणा) के वैज्ञानिकों के नवीनतम वर्गीकरण के अनुसार लवण प्रभावित मृदायें दो वर्गों में विभाजित की गई हैं :

(1) लवणीय मृदायें (Saline soils) तथा

(2) क्षारीय मृदायें (Sodic soils)

(1) लवणीय मृदायें (Saline Soils) :

ये वे मृदायें है, जिनमें जिप्सम को छोड़कर अन्य विलेय उदासीन लवणों (मुख्यतः सोडियम, कैल्शियम व मैग्नीशियम के क्लोराइड तथा सल्फेट) की प्रचुरता होती है। इनका pH संतृप्तावस्था (Paste in Water) में 8.2 से कम, संतृप्त निष्कर्ष (Saturated extract) की विद्युत चालकता (EC) 4 dS m^{-1} या इससे अधिक तथा विनिमय सोडियम प्रतिशतता 15% से कम होती है।

(2) क्षारीय मृदायें (Sodic Soils)–

वे मृदायें जिनमें विनमेय सोडियम और/या सोडियम बाइकार्बोनेट, सोडियम कार्बोनेट तथा सल्फेट लवणों की प्रचुरता हो, क्षारीय मृदा कहलाती है। इनका pH संतृप्तावस्था में 8.2 या इससे अधिक, संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता सीमा रहित तथा विनमेय सोडियम 15% या इससे अधिक होता है इन मृदाओं में सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम बाइकार्वोनेट के लवणों की अधिकता होती है।

मृदा क्षारता एवं लवणता का मृदा एवं पौधों पर प्रभाव (Effect of Soil Sodicity and Salinity on Soils and Plants)-

(1) सोडियम आयन्स (Na^+) की अधिकता के कारण अनूर्णन (Defloculation) से मृदा संरचना खराब हो जाती है।

(2) थोड़ी सी नमी होने पर कृषि कार्य करते समय कीचड़, थोडा सा सूखने पर ढेले बनने से जुताई में कठिनाई आती है।

(3) लवणों की अधिकता से भौतिक दशा खराब हो जाती है जिससे भूमि बहुत कड़ी हो जाती है जिससे वायु संचार बहुत कम होता है। ऐसी भूमियों में जल सोखने की शक्ति बहुत कम होती है।

(4) अधिक pH मान होने के कारण पोषक तत्वों जैसे फास्फोरस, जिंक, ताँबा, मैग्नीज तथा लोहा आदि की घुलनशीलता एवं प्राप्यता कम हो जाती है।

(5) बोरॉन एवं मोलिब्डेनम की अधिकता के कारण पौधों पर विषैला प्रभाव पड़ता है।

(6) वायु संचार में कमी के कारण सूक्ष्मजीवों की संख्या व क्रियाशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(7) भूमि में जब लवणों की अधिकता होती है तो मृदा घोल का परासरण दाब बढ़ जाता है फलस्वरूप जड़ो से पानी रिस कर मृदा घोल में आने से पौधों की वृद्धि रूक जाती है और वे पीले पड़ कर सूखने लगते हैं।

(8) पोषक तत्वों का अल्प मात्रा में अवशोषण

(9) उच्च लवण सान्द्रण के कारण बीजों के जमाव में कमी आ जाती है और नवीन कल्ले नष्ट हो जाते हैं।

10) मृदा विलयन में लवणों के अधिक सान्द्रण से पौधों की जड़ो द्वारा जल शोषण में बाधा उत्पन्न होती है।

(11) सोडियम की अधिकता से जीवांश पदार्थ नष्ट हो जाता है।

(12) बोरोन के अधिक अवशोषण से पौधों को क्षति होती है।

(13) सोडियम की अधिकता से पौधों के उपायचय एवं पोषण पर प्रभाव पड़ता है तथा उच्च pH के कारण सूक्ष्मजीवों की सक्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(14) पौधों की जड़ों व तने की क्षति भी होती है।

लवण प्रभावित मृदाओं की पहचान (Diagnosis of saline soils)–

लवणीय मृदाओं के चाक्षुष लक्षण (Visual symptoms of Saline Soils) :

(1) गर्मियों में लवण की सफेद या सफेद, भूरी राख के रंग की तह इन मृदाओं पर दिखाई पड़ती है जो वर्षा होने या सिंचाई करने पर विलीन हो जाती है।

(2) कभी–कभी पौधों की पत्तियों का रंग गहरा नीला व किनारे झुलसे हुए दिखाई पड़ते हैं। कुछ पौधों में क्लोरोसिस, ऊतक क्षय (necrosis) एवं विचित्र सुखाव के लक्षण भी दिखाई देते हैं।

(3) मिट्टी में पर्याप्त नमी होते हुऐ भी जल की कमी प्रदर्शित करते हैं तथा पौधे मुरझा जाते हैं अथवा वृद्धि कम होती है।

(4) प्राकृतिक वनस्पति कम अथवा टुकड़ों में होती है। इन मृदाओं में कुछ ही तरह के पौधे सरलतापूर्वक उगते हैं।

क्षारीय मृदाओं के चाक्षुष लक्षण (Visual symptoms of Sodic Soils) :

(1) इन मृदाओं की पहचान लवणीय मृदाओं की अपेक्षा कठिन है।

(2) वर्षा ऋतु में जल काफी समय तक भरा रहता है।

(3) मृदा गीली होने पर चिकनी हो जाती है तथा इसके ऊपर भरा हुआ जल गंदला रहता है और सूखने पर दरारें पड़ जाती है।

(4) कभी–कभी कार्बनिक पदार्थ जल में घुल कर मृदा की ऊपरी सतह को काली बना देता है।

(5) कुछ पौधों की पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है तथा पौधे झुलसे हुए दिखाई देते हैं।

(6) क्षारग्रस्त मृदाओं में पौधों की वृद्धि या तो कम होती है या पौधें बिल्कुल नहीं उगते।

(7) खेत में इस प्रकार की मृदायें विभिन्न स्थानों पर दिखाई दे सकती है।

लवणीय तथा क्षारीय मृदाओं में भेद (Difference between Saline & Sodic Soils)

लवणीय मृदा (Saline Soils)	क्षारीय मृदा (Sodic Soils)
(1) विद्युत चालकता 25^0 से. पर 4 dS m^{-1} से अधिक होती है।	(1) विद्युत चालकता 25^0 से. पर 4 dS m^{-1} से कम होती है।
(2) हानिकारक विलेय लवण 0.2 प्रतिशत से अधिक रहते हैं।	(2) हानिकारक विलेय लवण 0.2 प्रतिशत से कम होती हैं।
(3) विनिमेय सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से कम पायी जाती है।	(3) विनिमेय सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से अधिक पायी जाती है।
(4) मृदा पी–एच 8.5 से कम होती है।	(4) मृदा पी–एच 8.5 से 10 तक रहता है।
(5) यान्त्रिक विधियाँ उपयोग में लाने से मृदा सुधर जाती है।	(5) यान्त्रिक विधियों के साथ–साथ रासायनिक सुधारकों का भी उपयोग करना पड़ता है।
(6) इसमें सोडियम क्लोराइड तथा सल्फेट्स की प्रधानता होती है।	(6) सोडियम कार्बोनेट की प्रधानता होती है।
(7) विद्युत अपघट्य मिलाने पर मृदा कणों का उर्णपिण्डन होता है।	(7) विद्युत अपघट्य मिलाने पर मृदा कणों का प्रकीर्णन होता है।
(8) पादप वृद्धि पर बुरा प्रभाव मृदा विलयन के उच्च परासरण दाब के कारण होता है।	(8) पादप वृद्धि पर बुरा प्रभाव मृदा विलयन की क्षारता के कारण होता है।

लवणीय और क्षारीय मृदाओं के सुधार (Reclamation of Saline and Sodic Soils)–

इन मृदाओं को सुधारनें की विधियों को तीन समूहो में वर्गीकृत किया जाता है :–

1. भौतिक एवं जल तकनीक विधि (Physical and hydro-technical amelioration) 2. रासायनिक सुधार तथा 3. जैविक सुधार।

1. भौतिक एवं जल तकनीक विधि :

यांत्रिक विधियाँ इन मृदाओं के भौतिक गुणों को सुधारने के लिए प्रयोग की जाती है। प्रायः लवणीय मृदाओं के सुधार के लिए इस विधि का उपयोग करते हैं।

ये विधियाँ– (1) गहरी जुताई (Deep ploughing), (2) अवमृदा गहरी जुताई (Sub soiling), (3) बालू भरावन (Sand filling) तथा प्रोफाइल का उलटना–पलटना (Profile inversion) है।

पहली तीन विधियाँ जल अंतःस्पन्दन (infiltration) को सुधारती हैं। मृदा पृष्ठ पर उपस्थित कठोर परत को यान्त्रिक साधनों से तथा अवमृदा में उपस्थित कठोर परतों को अवमृदा की गहरी जुताई से तोड़ा जाता है। जल एवं वायु पारगम्यता को बालू भरावन से सुधारा जाता है। प्रायः जल–तकनीक सुधार विधि सभी सुधार विधियों (जैविक, रासायनिक या भौतिक) का एक आवश्यक भाग है।

(i) मृदा की सतह को खुरच कर (Scraping) : मृदा की ऊपरी सतह पर सफेद परत के रूप में उपस्थित लवणों को खुरचकर हटाया जा सकता है। यह एक सरल उपाय है, परन्तु जितना सरल उपाय है उतना ही खर्चीला है। 15 से 30 से.मी. गहराई तक लवण खुरचते है और खुरची हुई मृदा को खेत से बाहर कर देते हैं। यह तरीका बहुत उपयोगी नहीं है, क्योंकि नीचे से लवण थोडे समय बाद पुनः ऊपर आ जाते हैं।

(ii) निक्षालन (Leaching) : इस क्रिया द्वारा लवणों को जल में विलेय कर पादप जड़ क्षैत्र से नीचे ले जाया जाता है ताकि पौधों पर लवणों का बुरा प्रभाव न हो सके। निक्षालन हेतु इतना जल देना चाहिए जो कि फसलों की जरूरत के साथ–साथ निक्षालन मॉग (Leaching requirements) को भी पूरा कर सके।

निक्षालन मांग, सिंचाई के जल का वह भाग है जो लवणता को निश्चित स्तर पर रखने के लिये जड़ क्षेत्र से नीचे जाना चाहिए। सिंचाई जल जितना अधिक लवणीय होगा उतना ही अधिक निक्षालन मॉग होगी अर्थात् उतना ही अधिक पानी निक्षालन हेतु लगाना पड़ेगा। यह विधि उन मृदाओं में अपनानी चाहिये जिनमें भूमि जल स्तर नीचा हो। ग्रीष्म ऋतु निक्षालन के लिए अति उत्तम होती है।

इस विधि में खेत को छोटे–छोटे टुकड़ों में बाँटकर उसकी मेडबन्दी कर देते हैं जिससे खेत में पानी पर्याप्त मात्रा में रूक सके। इसके बाद खेत में पर्याप्त मात्रा में जल भर दिया जाता है। यदि मृदा के नीचे कडी परत हो तो गहरी जुताई करनी चाहिए, मृदा कणाकार अत्यन्त महीन हो तो जुताई के समय खेत में बालू मिलाना निक्षालन में काफी सहायक होता है।

निक्षालन से लवणों के साथ पोषक तत्व मुख्यतः नाइट्रोजन की हानि होती है, इसलिए निक्षालन के बाद फसलों को उगाने के लिए आवश्यकता से अधिक उर्वरक डालने चाहिये।

(iii) खाई खोदकर (Trenching)– इस विधि में थोड़ी–थोड़ी दूरी पर खाइयॉ खोदते हैं। खाई की चौड़ाई और गहराई निश्चित नहीं होती। खेत के किसी एक किनारे पर खाई खोदकर उसकी मिट्टी को डौली के ऊपर डाल देते हैं और इसके ठीक बगल में कुछ स्थान छोडकर दूसरी खाई खोदते हैं। इसकी मिट्टी को प्रथम खाई में इस प्रकार भरते हैं कि ऊपरी लवण तथा क्षारयुक्त मिट्टी नीचे तथा नीचे वाली मिट्टी ऊपर हो जाये।

इस प्रकार पूरे खेत में खाई खोदते हैं और पूरे खेत की ऊपर की मिट्टी को अनेक खाईयों में भरकर नीचे कर देते हैं और नीचे की मिट्टी को ऊपर ले जाते हैं। नीचे की मिट्टी में विलेय लवणों की मात्रा कम होती है, इसलिये जब यह मिट्टी ऊपर आ जाती है तो कोई भी फसल उगाई जा सकती है। यह

विधि अस्थाई है, क्योंकि निचली तहो के लवण पुनः केशीय क्रिया से ऊपर हो जातें हैं और मिट्टी ऊसर हो जाती है। यह विधि अधिक महंगी तथा परिश्रमी है।

(iv) विलेय लवणों को ऊपरी सतहों से बहाना (Washing out soluble salts) : खेत में पर्याप्त मात्रा में पानी भर दिया जाता है जिससे ऊपर की सतह के लवण पानी में घुल जाते हैं। इसके बाद पानी को खेत से बहा देने पर लवणों की अधिकांश मात्रा पानी के साथ बहकर बाहर निकल जाती है और मृदा की ऊपरी सतह की लवणों की मात्रा कम हो जाती है। यह विधि उन्हीं प्रदेशों में लाभप्रद है जहॉ पानी सस्ता तथा आसानी से अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है।

(v) जल निकास (Drainage) : ''फसल की आवश्यकता से अधिक पृष्ठीय (Surface) या भूमिगत (Underground) फालतू जल को भूमि से बाहर निकाल देना जल–निकास कहलाता है।'' जहॉ भौम जल–स्तर काफी ऊँचा या भूमि में कुछ गहराई पर कड़ी परत हो वहॉ पर लवणों को खेत

से बाहर निकालने हेतु जल–निकास होना अति आवश्यक है।

जल निकास का उचित प्रबन्ध होने से मृदा में लवणों का संचय कम होता तथा वायु संचार भी अच्छा होता है। जल निकास की आवश्यकता भूमि–जल–स्तर, जलवायु, पानी की किस्म तथा मृदा प्रकार पर निर्भर करती है। जल निकास दो तरीकों से किया जाता है –

(अ) खुला जल–निकास : इस प्रकार के जल निकास में खेत में गहरी नाली बनायी जाती हैं। नालियों की संख्या व उनका आपस में अन्तर मृदा प्रकार व अन्य कारकों पर निर्भर करता है। महीन कणाकार की मृदाओं में नालियों का अन्तर 35 से 40 मीटर व मोटे कणाकार की मृदाओं में 70 मीटर रखा जाता है। अन्य सहायक नालियॉ मुख्य नाली से लम्ब रूप में मिलती है। खेत की नालियॉ पानी के रिसनें की दिशा को काटती हुई डालनी चहिये।

(ब) टाइल द्वारा जल निकास : टाइल कंकरीट से बने सिलेण्डर होते है जिनका व्यास 10–25 से.मी. तथा लम्बाई 40–60 से.मी. होती है। इनको खेत में जमाते समय दो टाइलों के मध्य बजरी का छन्ना लगा देते हैं जिससे क्ले कण और कचरा न फंसे। पानी जोड़ों द्वारा ही टाइलों में प्रवेश करता है। टाइलों को मृदा में जमाने की गहराई तथा उनमें मृदा प्रकार एवं पारगम्यता पर निर्भर करता है।

2. रासायनिक सुधार (Chemical amelioration) –

लवण प्रभावित मृदाओं के सुधार हेतु उपयोग किये जाने वाले रासायनिक पदार्थो को रासायनिक मृदा सुधारक (Chemical Amendments) कहते हैं। रासायनिक विधि का मुख्य उद्देश्य सोडियम युक्त मृदाओं को रासायनिक सुधारको का उपयोग करके साधारण केल्शियम मृदा में परिवर्तन करना है।

सुधारकों के रूप में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक पदार्थो को तीन भागो में विभाजित किया जा सकता हैं –

(1) जल विलेय केल्शियम लवण– केल्शियम क्लोराइड, जिप्सम तथा फॉस्फो जिप्सम।

(2) कम विलेय केल्शियम लवण– चूना, पत्थर तथा चूना पदार्थ।

(3) अम्ल एवं अम्ल उत्पादक– गंधक, गंधक का अम्ल, द्रव सल्फर डाई ऑक्साइड, एल्यूमिनयम सल्फेट, फेरस सल्फेट, लाइम सल्फर, पायराइट्स तथा शीरा।

मृदा विश्लेषण द्वारा गणना करके मृदा सुधारक की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। मृदा सुधारक का चयन सुधारक के मूल्य एवं मृदा के गुणों पर निर्भर करता है –

(1) मृदा pH 8.5 से कम होने पर मृदाओं के सुधार हेतु चूना पत्थर के चूर्ण का प्रयोग किया जाता है।

(2) चूना युक्त क्षारीय मृदाओं के सुधार हेतु गंधक का अम्ल एवं अम्ल उत्पादक पदार्थ प्रयोग किये जाते है।

(3) चूना रहित क्षारीय मृदाओं के सुधार हेतु जल विलेय केल्शियम लवण अर्थात जिप्सम का प्रयोग किया जाता है।

जिप्सम के तुल्य सुधारकों की मात्रा (Equivalent quantities of some common amendment for sodic soil reclamation)–

रासायनिक तुल्यांक के आधार पर जिप्सम की तुलना में क्षारीय भूमि सुधार के लिए विभिन्न सुधारको की आवश्यक मात्रा निम्नलिखित सारणी में दी गई है –

सारणी

क्र.सं.	मृदा सुधारक	एक टन जिप्सम के तुल्य अन्य सुधारको की मात्रा (टनों में)
1	जिप्सम ($CaSO_4.2H_20$)	1.00
2	सल्फ्युरिक अम्ल (H_2SO_4)	0.57
3	गंधक चूर्ण (S)	0.186
4	आयरन सल्फेट ($FeSO_4.7H_20$)	1.62
5	एल्यूमिनियम सल्फेट ($Al_2(SO_4)_3.18H_20$)	1.29
6	लाइम स्टोन ($CaCO_3$)	0.58
7	केल्शियम पोली सल्फाइड (CaS_5)	0.756
8	पाइराइट (FeS_2, 20%)	0.93
9	पाइराइट (FeS_2, 30%)	0.63
10	फास्फोजिप्सम	0.95

(ये सभी मात्रायें सुधारक की 100 % शुद्धता पर आधारित है)

क्षारीय मृदा के सुधार हेतु विभिन्न मृदा सुधारकों का प्रयोग निम्न प्रकार किया जा सकता है –

1. जिप्सम (Gypsum)– रासायनिक रूप मे जिप्सम केल्शियम सल्फेट ($CaSO_4.2H_2O$) है जिसमें 23.2 % Ca, 18.6% S तथा 21.0% H_2O होता है।

भारत में जिप्सम का भू–सूधारक (reclaming agent) के रूप में सर्वप्रथम सन् 1942 में जे.डब्ल्यू. लैदर (J.W.Lather) ने उत्तर प्रदेश में किया था। जिप्सम के भण्डार प्राकृतिक रूप से राजस्थान के बीकानेर, जोधपुर, नागौर, जैसलमेर जिलों में उपलब्ध है तथा यह सस्ता मृदा सुधारक हैं और इसका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता।

2. क्षारीय मृदाओं में जिप्सम की अभिक्रिया (Reaction of Gypsum in sodic soils) : क्षारीय मृदाओं में जिप्सम का प्रयोगविनिमेय सोडियम प्रतिशतता (Exchangable Sodium Percentage) को कम करता है तथा विनियम Ca व Mg की मात्रा को बढ़ाता है। यह क्षारीय मृदाओं में निम्न प्रकार क्रिया करता है–

(1) Ca^{++} क्षारीय मृदाओं में से विनिमेय Na^+ को विस्थापित करके Na^+- क्ले को Ca^{++}- क्ले में बदल देते हैं–

$$\boxed{\text{Soil clay micelle}}\ Na^+ + CaSO_4 \rightleftharpoons Ca^{++} \boxed{\text{Soil clay micelle}} + Na_2SO_4\ (\text{Leachable})$$

(2) जिप्सम, सोडियम कार्बोनेट के साथ क्रिया करके उसे $CaCO_3$ में बदल देता हैं, इस क्रिया में सोडियम सल्फेट (Na_2SO_4) बनता है जो घुलनशील होकर अपक्षालन द्वारा पृथक हो जाता है –

$$\underset{\text{सोडियम कार्बोनेट}}{Na_2CO_3} + \underset{\text{जिप्सम}}{CaSO_4} \rightleftharpoons CaCO_3 + Na_2SO_4\ (\text{Leachable})$$

जिप्सम की शुद्धता एवं महीनता (Purity and fineness of Gypsum) :

कृषि कार्य के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले जिप्सम की शुद्धता 80% से कम नहीं होनी चाहिए, खान से प्राप्त जिप्सम बड़े बड़े ढेलों के रूप में होता है। क्षारीय मृदा में डालने से पहले इसको महीन बनाना आवश्यक है।

भारतीय मानक दण्ड के अनुसार जिप्सम की पूरी मात्रा 2.0 मि.मी. की जाली से तथा इसका 50 प्रतिशत 0.25 मि.मी. जाली से छन जानी चाहिऐ।

जिप्सम की आवश्यक मात्रा (Gypsum Requirement) :

जिप्सम की भूमि में मिलाने के लिए आवश्यक मात्रा, क्षारीय भूमि की प्रकृति की सीमा, वांछित सुधार की सीमा तथा भू–सुधार के बाद उगाई जाने वाली फसलों पर निर्भर करती है। क्षारीय मृदा के लिए सुधारक पदार्थ की आवश्यक मात्रा विनियम योग्य सोडियम के अतिस्थापन स्तर और सुधार की जाने वाली मृदा की गहराई तथा मृदा संरचना पर भी निर्भर करती है। कितना सुधारक डालना है इसकी मात्रा का निर्धारण करने के लिए सबसे पहले कितना जिप्सम डालने की आवश्यकता होगी, का निर्धारण किया जाता है, इसको जिप्सम की आवश्यकता (Gypsum requirement) कहा जाता है।

जिप्सम की मात्रा सुधारे जाने वाले खेत की मृदा के विश्लेषण द्वारा निश्चित की जाती है लेकिन साधारणतः 12 से 15 टन प्रति हैक्टर जिप्सम की आवश्यकता होती है।

जिप्सम डालने का समय तथा ढंग (Time and Method of Gypsum application) :

क्षारीय भूमि सुधार के कार्यो को प्रारम्भ करने का सबसे उत्तम समय गर्मी के महीनों में होता है। जिप्सम को क्षारीय मृदाओं में जून के महीने में मानसून वर्षा प्रारम्भ होने से पूर्व प्रयोग करना चाहिए अथवा जिप्सम ढ़ेचा की बुवाई से पूर्व मृदा में मिला देनी चाहिए।

सर्वप्रथम क्षारीय भूमि को भली प्रकार से समतल करने के बाद मेंड़बन्दी करना जरूरी है ताकि खेत में पानी सब जगह बराबर लग सके। जिप्सम की आवश्यक मात्रा को धान की फसल लगाने से 10 से 15 दिन पहले केवल 10 से.मी. ऊपरी सतह में मिला कर पानी भर देना चाहिए। जिप्सम को अधिक गहराई तक नहीं मिलाना चाहिए। क्षारीय भूमि में जिप्सम को बार बार मिलाने की आवश्यकता नहीं है। खेत में लगभग 10–15 दिनों तक 4–5 से.मी. पानी जिप्सम मिलाने के बाद भरा रहना आवश्यक है जिससे सोडियम अपक्षालित हो जाये। इस अवधि में खेत सूखना नहीं चाहिए।

प्रयोगों से पाया गया है कि यदि धान की फसल क्षारीय भूमि में उगाते रहें तो भूमि के क्षारीयपन में लगातार कमी आती है। खेतों को लम्बी अवधि तक खाली नहीं छोडना चाहिए।

पाइराइट (Pyrite)–

पाइराइट एक सस्ता मृदा सुधारक है क्योंकि यह लोहा व कोयला की खदानों से प्राप्त होता है, पाइराइट के मुख्य स्रोत बिहार में अमझोर (जिला रोहतास), राजस्थान में सीकर जिले के सालादिपुर और मैसूर में इनगालडोहल हैं। निम्न स्तर का पाइराइट कोयले की खानों से निकाला जाता है और पीसा जाता है। यह भारत सरकार के उपक्रम पारादीप फास्फोरस एण्ड केमिकल लिमिटेड (PPCL) द्वारा वितरित किया जाता है

पाइराइट आयरन और गन्धक का एक खनिज पदार्थ है

जिसका साधारणतया सूत्र FeS_2 होता है। विभिन्न स्थानों से खनन के कारण पाइराइट में सल्फर के अंश को स्थिर बनाये रखना असम्भव रहता है, लेकिन यह 16 % से कम नहीं होता है।

प्रायः यह अंश 22 से 32 प्रतिशत के बीच में रहता है। कृषि में प्रयुक्त पाइराइट में 22% सल्फर पाया जाता है। इसमें 20-22% Fe, 0-5-0.6% MgO, 0.1% CaO, 6.8% Al, 35-40% Silica, 2-3% Carbon, 0.02% Zn, 0.05% Cu तथा 0.01% Mn होता है।

पाइराइट की आवश्यकता (Pyrite's requirement) :

जिप्सम की एक टन मात्रा की अपेक्षा पाइराइट की केवल 0.63 टन मात्रा ही काफी रहती है। ताजा खनन किये हुए पाइराइट की अपेक्षा कुछ महीने तक नम स्थिति में रखा पाइराइट अधिक उपयोगी होता है क्योंकि उसमें घुलनशील सल्फर की मात्रा अधिक हो जाती है। पाइराइट की मात्रा GR x 0.85 गणना से प्राप्त करते है।

पाइराइट का प्रयोग केल्शियम युक्त मृदाओं में ही प्रभावशाली हो सकता है। पाइराइट जल में घुलनशील नहीं होता लेकिन हवा के सम्पर्क में नम होने के कारण गन्धक के अम्ल में परिवर्तित हो जाता है। यह अम्ल मृदा में उपस्थिति केल्शियम ऊसर भूमि के कणों पर चिपके सोडियम को घटाता है।

पाइराइट प्रयोग की विधि (Method of Pyrite application) :

पाइराइट प्रयोग का उचित समय धान की रोपाई या हरी खाद के लिए बोने वाली फसल ढेंचा की बुवाई से कम से कम सप्ताह पूर्ण मिट्टी की ऊपरी सतह पर बिखेर देना चाहिए तथा लगभग एक सप्ताह तक नमी बनाये रखना आवश्यक है ताकि पाइराइट का आक्सीकरण तेज गति से हो सके। इससे पाइराइट की भूमि सुधार क्षमता में काफी वृद्धि होती है।

यदि पाइराइट डालने के तुरन्त बाद पानी भर दिया जाता है तो पाइराइट का आक्सीकरण घट जाता है जिससे पाइराइट द्वारा क्षारीय मृदा के सुधारने की क्षमता कम हो जाती है। पाइराइट के प्रयोग से भी मृदा pH मान व विनिमय योग्य सोडियम की मात्रा में कमी आती है तथा फसल पैदावार में वृद्धि होती है।

पाइराइट की मृदा में अभिक्रिया (Reaction of Pyrite in soils) :

हल्की नम मृदा में ऊपरी सतह पर पाइराइटस बिखेर कर लगभग 1 सप्ताह तक आक्सीकरण की क्रिया पूरी होने के बाद खेत में लगभग 10–15 दिन तक 4–5 से.मी. पानी भरा रहने देते हैं।

पाइराइट में घुलनशील सल्फर 5.5 से 8.0 प्रतिशत के बीच होना अति आवश्यक है। जब पाइराइट क्षारीय मृदा में प्रयोग किया जाता है तो पाइराइट के रासायनिक एवं जैविक आक्सीकरण से सल्फ्यूरिक अम्ल बनता है जो मृदा के स्वतंत्र केल्शियम कार्बोनेट से क्रिया करके कैल्शियम सल्फेट बनाता है–

$$FeS_2 \longrightarrow FeS + S$$

$$4FeS + 3O_2 \xrightarrow{\text{oxidations}} 2Fe_2O_3 + 4S$$

$$2S + 3O_2 \xrightarrow{\text{bacteria}} 2SO_3$$

$$SO_3 + H_2O \longrightarrow H_2SO_4$$

$$CaCO_3 + H_2SO_4 \longrightarrow CaSO_4 + CO_2 + H_2O$$

$$Na^+ \text{ Clay } Na^+ + CaSO_4 \longrightarrow Ca^{++} \text{ Clay } + Na_2SO_4 \downarrow \text{(Leachable)}$$

फॉस्फोजिप्सम (Phosphogypsum) : फॉस्फोरिक अम्ल निर्मित करने वाले कारखानों से काफी जिप्सम उप–उत्पाद (By-product) के रूप में मिलता है जिसे फॉस्फोजिप्सम कहते हैं।

फॉस्फोजिप्सम, सल्फर (16%) तथा केल्शियम (21%) का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो जिप्सम ($CaSO_4.2H_2O$) के रूप में पाये जाते है। इसमें 1–2 प्रतिशत फ्लोरीन होती है। फ्लोरीन आवश्यकता से अधिक होने पर फसलों पर कुप्रभाव डालती है। अतः फास्फो जिप्सम में फ्लोरीन की मात्रा ज्ञात करके ही प्रयोग करना चाहिए। फॉस्फो जिप्सम की मृदा में जिप्सम की भॉति ही अभिक्रिया होती है।

गन्धक (Sulphur) : गन्धक का प्रयोग चूना युक्त क्षारीय मृदाओं को सुधारने हेतु किया जाता है। सल्फर के ऑक्सीकरण से मृदा में सल्फ्युरीक अम्ल बनता है जो मृदा के अविलेय केल्शियम को विलेय रूप में परिवर्तित करता है और मृदा का pH मान कम कर देता है। मृदा pH मान कम होने पर केल्शियम की विलेयता बढ़ जाती है और यह संचित केल्शियम, सोडियम को क्ले कणों से हटाने के काम में आ जाता है–

$$2S + 3O_2 \xrightarrow[\text{बेक्टीरिया}]{\textit{थायोबेसिलस थायोऑक्सीजन्स}} 2SO_3$$

$$SO_3 + H_2O \longrightarrow H_2SO_4$$

चूना युक्त क्षारीय मृदाओं के साथ H_2SO_4 निम्न अभिक्रिया करता है –

$$H_2SO_4 + CaCO_3 \rightleftharpoons CaSO_4 + CO_2 + H_2$$

$$2Na\text{–}Clay + CaSO_4 \rightleftharpoons Ca\text{–}Clay + Na_2SO_4$$

यदि मृदा कैल्शियम कार्बोनेट से युक्त है तो H_2SO_4 निम्न प्रतिक्रिया करता है –

$$2Na\text{–}Clay + H_2SO_4 \longrightarrow 2H\text{-}Clay + Na_2SO_4$$

गन्धक का अम्ल (Sulphuric Acid) : इसे रसायन में सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) कहते है। गन्धक के अम्ल का प्रयोग चूना युक्त क्षारीय मृदाओं को सुधारने हेतु प्रभावी रूप से किया जा सकता है। लेकिन निम्न कारणों से इसका प्रयोग सिमित मात्रा में किया जाता है–

1. सल्फ्यूरिक अम्ल महंगा होता है।
2. यह अत्यन्त दाहक (Corrosive) अम्ल होता है प्रयोग करने से पहले व्यक्ति की चमडी पर गिरने तथा कपड़ों पर लगने से जला देता है।
3. चूना रहित मृदाओं में प्रयोग करने से उन्हें अम्लीय बना देती है।

द्रव सल्फर डाई ऑक्साइड (Liquid SO_2) :

सिचाईं जल के साथ इसका प्रयोग करते है। यह जल के साथ सल्फ्युरस अम्ल **(H_2SO_3)** बनाता है। सल्फ्युरस अम्ल, आक्सीकृत होकर सल्फ्यूरिक (H_2SO_4) अम्ल बनाता है। इसकी अभिक्रिया मृदा में सल्फ्यूरिक (H_2SO_4) की भॉति ही होती है। यह मंहगा होने के कारण कम प्रयोग मे लाया जाता है।

केल्शियम क्लोराइड ($CaCl_2$) :

इससे भी क्षारीय मृदाओं का सुधार हो सकता है, किन्तु यह जिप्सम की अपेक्षा काफी महंगा पड़ता है।

चूना पत्थर (Lime stone) :

इसे केल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) भी कहते है। इसे 7.5 से कम pH मान वाली मृदाओं में प्रयोग करते हैं। इसpH पर यह अधिक विलेय होता है और इससे अधिकpH पर अविलेय होता है। मृदा विलियन में उपस्थित चूना पत्थर के Ca^{2+}आयन्स से मृदा–विनिमय–जटिल पर अधिशोषित Na^+ आयन्स का विस्थापन होता है और केल्शियम मृदा बनती है।

$$2Na\text{-}Clay + CaCO_3 \longrightarrow Ca\text{-}Clay + Na_2CO_3$$

$$Na\text{-}Clay + H_2O \longrightarrow NaOH + H\text{-}Clay$$

$$2H\text{-}Clay + CaCO_3 \longrightarrow Ca\text{-}Clay + CO_2 + H_2$$

केल्शियम पोली सल्फाइड (Calcium poly sulphide) :

इससे भी मृदा क्षारकता दूर की जाती है, इसके प्रयोग से सल्फ्युरिक अम्ल बनता है –

$$CaS_5 + 8O_2 + 4H_2O \rightarrow CaSO_4 + 4H_2SO_4$$

$$CaCO_3 + H_2SO_4 \rightarrow CaSO_4 + H_2O + CO_2$$

$$\boxed{\overset{Na^+}{\underset{Na^+}{Clay}}} + CaSO_4 \rightarrow \boxed{\overset{Ca^{++}}{Clay}} + Na_2SO_4$$

10. फेरस सल्फेट ($FeSO_4.7H_2O$) : यह अम्लीय लवण है जिससे सल्फ्युरिक अम्ल (H_2SO_4) तथा अविलेय हाइड्रोक्साइड बनता है। सल्फ्युरिक अम्ल की भांति ही क्रिया कर मृदा को सुधारता है –

$$FeSO_4 + 2H_2O \rightarrow Fe(OH)_2 + H_2SO_4$$

$$CaCO_3 + H_2SO_4 \rightarrow CaSO_4 + H_2O + CO_2 \uparrow$$

$$\boxed{\overset{Na^+}{\underset{Na^+}{Clay}}} + CaSO_4 \rightarrow \boxed{\overset{Ca^{++}}{Clay}} + Na_2SO_4 \downarrow$$

एल्युमिनियम सल्फेट [$Al_2(SO_4)_3.18H_2O$] :

यह भी अम्लीय लवण है जो फेरस सल्फेट की भाँति क्रिया करके H_2SO_4 का निर्माण करता है –

$$Al_2(SO_4)_3 + 6H_2O \rightarrow 2Al(OH)_3 + 3H_2SO_4$$

$$CaCO_3 + H_2SO_4 \rightarrow CaSO_4 + H_2O + CO_2 \uparrow$$

$$\begin{matrix} Na^+ \\ \boxed{Clay} \\ Na^+ \end{matrix} + CaSO_4 \rightarrow \begin{matrix} Ca^{++} \\ \boxed{Clay} \end{matrix} + Na_2SO_4$$

रासायनिक मृदा सुधारकों के उपयोग में सावधानियाँ (Precautions in the use of chemical soil amendments)–

1. एक ही प्रकार का रासायनिक मृदा सुधारक सभी प्रकार की मृदाओं में प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
2. मृदा में उचित सुधार हेतु मृदा सुधारक की मात्रा, मृदा विश्लेषण के आधार पर ही प्रयोग करें, आवश्यकता से कम मात्रा डालने से उचित सुधार नहीं होगा।
3. रासायनिक मृदा सुधारकों का प्रयोग उचित विधि, एक समान, व सावधानी पूर्वक किया जाना आवश्यक है।
4. मृदा सुधारकों का बारीक चूर्ण ही उपयोग में लाना चाहिए।

जैविक सुधार (Biological amelioration):

कार्बनिक पदार्थ सड़ने पर CO_2 तथा कार्बनिक अम्ल पैदा करते हैं। ये अम्ल अविलेय केल्शियम लवणों को विलेय करके मृदा क्षारता को कम करते हैं। कार्बनिक पदार्थ मृदा संरचना को सुधारते हैं तथा इनसे मृदा की पारगम्यता भी बढ़ जाती है।

मुख्य रूप से प्रयोग किये जाने वाले कार्बनिक सुधारक हैं –

1. गोबर की खाद
2. सीरा
3. प्रैसमड
4. हरी खाद
5. फसलों के अवशेष तथा विभिन्न खरपतवारों जैसे – कटाली (*Argemone Mexicana*)।

सीरा तथा प्रैसमड (Seera & Pressmud):– डॉ. नीलरतन धर ने ऊसर मृदा के सुधार के लिए सीरा तथा प्रैसमड का प्रयोग किया। वैज्ञानिक धर तथा मुखर्जी के अनुसार सीरा का संगठन इस प्रकार है– कार्बोहाइड्रेट 60–70 %, पोटाश 4.5% , चूना 2%, P_2O_3 0.5%, नाइट्रोजन 0.5%, H_2SO_4 0.5%, Fe_2O_3 तथा Al_2O_3 0.5% तथा शेष मात्रा जल की होती है।

सीरा के मृदा में मिलाने पर इसके विच्छेदन की प्रारम्भिक अवस्था में कार्बोहाइड्रेट्स के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप CO_2 तथा कार्बनिक अम्ल, जैसे एसीटिक, प्रोपियोनिक, ब्युटायरिक तथा लैक्टिक अम्ल पैदा होते हैं। कार्बन डाई ऑक्साइड जल में घुलकर H_2CO_3 बनाती है जो क्षारों को उदासीन करती हैं तथा फॉस्फोरस की प्राप्यता बढ़ाती है। सीरे से स्वतंत्र H_2SO_4 भी बनता है जो क्षारों को उदासीन करता है।

हरी खाद तथा फसल अवशेष (Green manures & Crop residues)–

हरी खाद सड़ने पर क्षारों को उदासीन करने के अतिरिक्त पौधों के प्राप्य पोषकों के भी स्रोत हैं। प्रयोग किये जाने वाली हरी खाद में से ढैंचा या जंतर (jantar) ऊसर मृदाओं पर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। अन्य हरी खाद, ग्वार तथा सनई भी उगाई जाती है।

ढैंचा के कोशिका रस का pH 4.0 होता है और केल्शियम ऑक्साइड (भास्म के आधार पर) 34.2 प्रतिशत होता है। ढैंचा मध्यम लवणीय स्थिति में अच्छी तरह उगता है। यह क्षारता, जल ग्रस्तता व सूखा को काफी हद तक सह सकता है। इसके अपघटन से हाइड्रोजन गैस बनती है जो पानी में घुलकर अम्ल का काम करती है। 125–225 क्विंटल/हैक्टर धान का पुआल डालना भी क्षारीय मृदाओं के सुधार के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

कटाली खरपतवार का प्रयोग (Use of Argemone Mexicana weed)–

बन्थ्रा (लखनऊ के समीप), उत्तर प्रदेश में क्षारीय मृदाओं के उपचार में किया था। यह क्षारीय मृदाओं के लिये कार्बनिक पदार्थ का अच्छा स्रोत है। शुष्क आधार पर इनका संगठन इस प्रकार है – KNO_3 1-8 %, $CaHPO_4$ 0.3 %, $CaSO_4$ 0.4 %, कार्बनिक अम्ल 4.2 % तथा शर्करा 9.8 प्रतिशत। इसे चूर्ण रूप में (2.5 टन प्रति हैक्टर) मृदा में मिलाया जाता है।

वनस्पतियों का प्रभाव (Effect of growing vegetation) :

सभी जीवित पौधे अपनी जड़ों द्वारा CO_2 पैदा करते है जो पानी के साथ मिलकर कार्बनिक अम्ल बनाती है। यह H_2SO_4 के समान मृदा में क्रिया करता है तथा $CaCO_3$ से मिलकर बाइकार्बोनेट बनाती है और Ca–आयन्स मृदा विलियन में आकर विनिमेय Na–आयन्स को विस्थापित करते हैं –

$$H_2CO_3 + CaCO_3 \rightarrow Ca(HCO_3)_2$$

$$Ca(HCO_3)_2 + 2Na\text{–}Clay \rightarrow Ca\text{-}Clay + 2NaHCO_3$$

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का प्रबन्ध (Management of saline & sodic soil) :

इन मृदाओं के सुधारे जाने के पश्चात इनका प्रबन्ध ठीक प्रकार से नहीं किया जाता है जो वह पुनः लवणीय मृदा में परिणित हो जाती हैं, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इनका प्रबन्ध अच्छी प्रकार से किया जाये। ऊसर मृदाओं के प्रबन्ध में वे विशेष यांत्रिक एवं शस्य क्रियायें सम्मिलित होती है जो लवणों एवं क्षारों के हानिकारक प्रभावों को कम करने में सहायक है।

इन मृदाओं के प्रबन्ध में निम्न क्रियाऐं लाभप्रद सिद्ध हुई हैं–

खेत की तैयारी तथा जुताई की विधियाँ– जहाँ तक हो सके खेत को समतल करना चाहिए। समतल खेत में सिंचाई का पानी समुचित रूप से बराबर बंट जाता है। खेत समतल न होने पर उसके ऊँचे स्थानों पर पानी नहीं पहुँच पाता तथा वहाँ लवण लीचिंग द्वारा नीचे नहीं जा पाते। जहाँ भूमि ढालू है वहाँ पर बाँध बनाने चाहिए।

क्षारीय मृदाओं को भौतिक दशा प्रायः बुरी होती है, इसलिए गीली अवस्था में जुताई करने पर कीचड़ तथा सूखी अवस्था में ढेले बन जाते है। इन मृदाओं की जुताई उपयुक्त नमी की मात्रा होने पर ही करनी चाहिए। भारी मशीनों से जुताई गुड़ाई नहीं करनी चाहिए। मिट्टी पलटने वाले हल से 15–20 से.मी. गहरी जुताई करने के पश्चात बीज बोया जाये तो अंकुरण होता है।

क्यारी (Seed bad) की तैयारी तथा रोपण प्रविधि (Planting technique) : इस मृदा में बीजों का अंकुरण एक जटिल समस्या है, क्योंकि अंकुरण पर लवणों का बुरा प्रभाव पड़ता है। क्यारी का आकार पौधों का रोपण तथा सिंचाई की प्रविधि इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे बीज तथा पौधों की जड़ों के आस–पास लवणों की मात्रा कम हो सके।

इन मृदाओं में कूँड सिंचाई वाली फसलों के बीज मेड़ों के ढलान पर बोना चाहिए और उगने से पूर्व एक सिंचाई देनी चाहिए। इससे लवणों का अंकुरण पर कम असर होता है और पौधा अपने आपको जल्दी ही स्थापित कर लेता है। लवण प्रभावित मृदा में कूँड सिंचाई की अपेक्षा प्रवाहित सिंचाई का तरीका अधिक लाभप्रद है।

लवणीय मृदा में मेंडों की दशा पूरब से पश्चिम की ओर होनी चाहिए। फसलों को मेड़ पर उतरी ढलान की ओर बोना चाहिए क्योंकि इस ढलान पर लवणों की सान्द्रता दक्षिणी ढलान की अपेक्षा कम होती है। अधिक लवणीय मृदा में कूँडों वाली फसलों का एक कूँड छोडकर दूसरी कूँड में बोना चाहिए तथा फसल वाली कूँड में ही सिंचाई करनी चाहिए। ऐसा करने से लवणों की अपेक्षाकृत जमाव असिंचित मेड़ तथा कूँड पर अधिक होगा तथा फसल पर कम प्रभाव पडेगा।

सिंचाई (Irrigation)– सिंचाई प्रविधि पौधों की बएवार में कई प्रकार की वृद्धि कर सकती है। जल मृदा में लवण–सान्द्रण को तनु रखता है। सिंचाई से लवण पौधों से नीचे लीचिंग द्वारा चले जाते हैं तथा पौधों को जल शोषण में आसानी होती है।

यदि पानी अधिक मात्रा में उपलब्ध है तो इन मृदाओं में प्रवाहित (Flooding) सिंचाई का तरीका अधिक लाभप्रद होता है, क्योकि सिंचाई की इस विधि से विलेय लवण नीचे चले जाते हैं। इन मृदाओं में सिंचाई जल्दी–जल्दी करनी चाहिए चाहिए तथा प्रत्येक सिंचाई के समय अधिक पानी खेत में लगाना चाहिए।

सस्य सम्बन्धी क्रियायें (Agronomic practices) :

इन मृदाओं में निम्न सस्य सम्बन्धी क्रियायें लाभप्रद पायी जाती हैं –

1. लवण प्रतिरोधी फसलों का चुनाव (Selection of Salt Resistance crops)–

(अ) अंकुरण (Germenation)– फसलों का चुनाव करते समय बीजों के अंकुरण पर ज्यादा जोर देना चाहिए। फसल बाद की अवस्थाओं में लवण प्रतिरोधी होनी चाहिए। उदाहरणार्थ– चुकन्दर बाद की अवस्थाओं में अधिक प्रतिरोधी है परन्तु प्रारम्भ की अवस्था में अंकुरण के समय वह लवणों की उपस्थिति को सहन नहीं कर पाती है।

मोटे धान की जातियॉ महीन धान की जातियों की अपेक्षा अधिक लवण प्रतिरोधी होती है। धान की पछेती किस्में, अगेती किस्मों की अपेक्षा अधिक लवण प्रतिरोधी होती है। बाजरा अंकुरण के समय ज्वार से अधिक लवण प्रतिरोधी होता है।

(ब) लवण सहिष्णु फसलें उगाना (Growing of Salt tolerant crops) – उन लवणीय मृदाओं में जहॉ सुधार का काई तरीका सफलतापूर्वक नहीं अपनाया जा सकता, वहॉ पर लवण सहिष्णु फसलें उगायी जा सकती है। इनको लवण सहिष्णु के आधार पर तीन वर्गों में बॉटा गया है जो सारणी में दिये गये है –

लवण के लिए फसलों की आपेक्षिक सहिष्णुता

फसलें	उच्च लवण सहिष्णु	मध्य लवण सहिष्णु	न्यून लवण सहिष्णु
क्षेत्र फसलें (Field crops)	जौ, ढैंचा, चुकन्दर, तम्बाकू, शलजम, सरसों, कपास	राई, गेहूँ, जई, धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, अरहर	सेम, मूंग, उड़द, चना, मटर, सनई
शाक भाजी वाली फसलें	शलजम, चुकन्दर, पालक, मूली	टमाटर, पातगोभी, फूलगोभी, सलाद, आलू, गाजर, प्याज, मटर, खीरा, लौकी, करेला	सेम, मूली, (इंगलिश किस्में)
चारे की फसलें	खार घास, रोड्स घास	सेंजी, सूडानघास, रिजका, ज्वार, मक्का, बरसीम, चवला, लोविया	ज्वार
फलों वाली फसलें	खजूर, फालसा	अनार, जैतून, अंजीर, अंगूर, अमरूद, आम, केला	नाशपाती, सेब नारंगी, चकोतरा, बेर, बादाम, नींबू, स्ट्राबेरी

2. बीजों का उपचार (Seed Treatment)–

बीजों को बोने से पूर्व लवण विलियन में डुबोने से फसलों की लवण प्रतिरोधकता बढ़ जाती है तथा अंकुरण में वृद्धि होती है। धान के बीजों को 0.1 प्रतिशत लवण विलियन में डुबोने से इनकी प्रतिरोधकता बढ़ती है और वे मृदा में 0.35 प्रतिशत लवण सान्द्रण तक सहन कर सकते हैं।

3. लवणीय मृदा पर फसल चक्र (Crop rotation on saline soils)–

इन मृदाओं में सदैव फसलें उगाना चाहिए, इन्हें 'पड़त' नहीं छोड़ना चाहिए। इन मृदाओं को खाली छोड़ने से ये अपनी अवस्था में वापस आ जाती है। इन मृदाओं के लिए उपयुक्त कुछ फसल चक्र निम्न है:–

(अ) धान – जौ – लोविया,

(ब) धान – सरसों,

(स) ढैंचा – गेंहूँ – धान – आलू,

(द) ढैंचा – धान – बरसीम,

(य) पडती – सरसों – बाजरा – जई,

(र) ढैंचा (हरी खाद) – चुकन्दर – मक्का – जौ,

(ल) कपास – रिजका – मक्का – आलू,

(व) ग्वार – जौ – कपास – मैथी।

फसलों में क्षार सहिष्णुता (Sodic tolerance in crops) :

सुधार के पर्यन्त क्षार सहिष्णु फसलें उगाना चाहिये। फसलों की क्षार सहिष्णुता के बारें में अभी कम ज्ञान है। सारणी में विनिमेय सोडियम प्रतिशतता (ESP) कि विभिन्न मात्राओं के प्रति फसलों की सहिष्णुता दी गयी है –

विनिमेय सोडियम प्रतिशतता के लिए विभिन्न फसलों की सहिष्णुता

वर्ग	ESP	फसलें
अति संवेदनशील (very sencitive)	2-10	नींबू नारंगी
संवेदनशील	10-20	सेम
मध्य सहिष्णु	20-40	चावल, जई, डेलिस घास
सहिष्णु	40-60	गेंहूँ, कपास, रिजका, जौ, टमाटर, चुकन्दर
अति सहिष्णु	60 से अधिक	रोडस घास

4. खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग (Use of manures & fertilizers)–

उर्वरकों को उनकी निर्धारित मात्रा से अधिक देकर फसलों पर लवणता का असर कम किया जा सकता है। नाइट्रोजन की अधिक मात्रा (लगभग 25 प्रतिशत) से फसल अच्छी होती है। अमोनियम सल्फेट का प्रभाव यूरिया तथा किसान खाद से अच्छा होता है। इन मृदाओं में पोटाश तथा फॉस्फोरसमय उर्वरकों का प्रयोग से सोडियम क्लोराइड का पौधों द्वारा शोषण कम हो जाता है।

अकार्बनिक उर्वरकों के साथ कार्बनिक खादों का भी प्रयोग करना चाहिए। अकार्बनिक उर्वरकों की मात्रा एक साथ न देकर कई बार में उचित समय पर देनी चाहिए। विभिन्न परीक्षणों में पता चला है कि क्षारीय मृदाओं में जहाँ निर्धारित जिप्सम की पूरी मात्रा डाली गयी हो, 10–20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर मिट्टी में डालने से भरपूर फसल मिलती है, जो जिंक सल्फेट मृदा में मिलाया जाता है उसका केवल 10–20 प्रतिशत भाग ही पौधे ग्रहण कर पाते हैं, शेष 80–90 प्रतिशत भाग मृदा में स्थिर हो जाता है, जो पौधों के लिए प्राप्य नहीं होता है।

अतः हमें लगातार हर फसल में जिंक उर्वरक डालना चाहिये। यदि मृदा परीक्षण से पता चले कि इसकी मात्रा 0.8 से 1. 0 पी.पी.एम. या इससे अधिक है तो जिंक डालने की आवश्यकता होती है।

लवणीय एवं क्षारीय पानी तथा इसका प्रबन्ध (Saline & Sodic Water and its Managements)–

लवणीय जल (Saline Water)–

वह जल जिसकी विद्युत चालकता 4 dS m^{-1} से अधिक, SAR<10 तथा RSC<2.5 meq L^{-1} होती है। इसमें कुल घुलनशील लवणों (Total dissolve salts) की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसमें सोडियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड व सल्फेट लवण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। ये फसलों की वृद्धि एवं उपज को हानिकारक प्रभाव डालकर प्रभावित करता है।

क्षारीय जल (Sodic Water)–

वह जल जिसमें ई.सी. 4 dS m^{-1}, RSC >2.5 meq L^{-1}, एस. ए.आर. (S.A.R.) की मात्रा 15 प्रतिशत से अधिक होती है तथा इसमें कैल्शियम व मैग्नीशियम आयनों की अपेक्षा सोडियम आयनों की अधिकता होती है। ये जल पादप वृद्धि के लिए अत्यन्त हानिकारक है तथा मृदा के भौतिक गुणों को खराब करता है।

ऊसर भूमि सुधार में सिंचाई के पानी की गुणवत्ता का बहुत महत्व है। सिंचाई का उद्देश्य पौधों की पानी की कमी को पूरा करना है। ऊसर मिट्टी में सिंचाई की आवश्यकता भूमि सुधार तथा बाद में पौधों की सामान्य बढ़वार और उपज प्राप्त करने के लिए पड़ती है। पानी में मौजूद तत्व, उनकी सान्द्रता एवं गठन, सिंचाई के लिए उसकी उपयोगिता निर्धारित करते हैं। लवणीयता और क्षारीयता की समस्या उस स्थिति में और उग्र हो जाती है जब सिंचाई का पानी खारा होता है। शुष्क और अर्द्धशुष्क जलवायु के कारण यह समस्या व्यापक हो जाती है। लवणीय मिट्टियों का सुधार व प्रबन्ध तथा फसलों का उत्पादन, सिंचाई के पानी के गुण तथा उसकी समय पर उपलब्ध मात्रा पर काफी निर्भर करता है। किसी भी सिंचित क्षेत्र में पानी की गुणवत्ता लवणीय तथा क्षारीयता का होना समस्या के निर्धारण में महत्वपूर्ण की लवणीय मिट्टियों का सुधार तेजी से होता है तथा ऐसी भूमि में वर्ष में एक की अपेक्षा दो या तीन फसलें भी ली जा सकती है। सिंचाई जल अगर निम्न कोटि का है तो उसके उपयोग से कुछ चुनी हुई फसलें ही ली जा सकती है।

मिट्टी को उपजाऊ बनाए रखने तथा उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से सिंचाई जल की गुणवत्ता एवं उपयोगिता निम्न घटकों पर निर्भर करती है–

(1) पानी में घुलनशील लवणों की मात्रा (विद्युत चालकता) एवं अभिक्रिया (पी.एच.मान)

(2) सोडियम अधिशोषण अनुपात

(3) अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट

(4) बोरोन तथा अम्ल हानिकारक तत्व

(1) घुलनशील लवण (Soluble Salt)–

सिंचाई के लिए जल की उपयोगिता प्रमुख रूप से इस पर निर्भर करती है कि उसमें लवणों की कुल सिंचाई कितनी मात्रा है तथा किस प्रकार के लवणों की अधिकता है। जल में घुलनशील लवणों की कुल मात्रा को विद्युत चालकता द्वारा मापा जाता है। एक डेसी सायमन/मीटर विद्युत चालकता यह बताती है कि जल में 0.64 ग्राम प्रति लीटर घुलनशील लवण उपस्थित हैं सिंचाई जल में लवणों की मात्रा कम से कम होनी चाहिए अन्यथा सिंचाई के बाद घुलनशील लवण मिट्टी में इकट्ठे होकर मिट्टी को लवणीय बना देते हैं।

विद्युत चालकता के आधार पर सिंचाई जल का वर्गीकरण (Based on electrical conductivity)–

वर्ग	लवणीयता स्तर	विद्युत चालकता (dSm^{-1})
C_1	कम	1.5 से कम
C_2	मध्यम	1.5 – 3.0
C_3	अधिक	3.0 – 5.0

C_4	बहुत अधिक	5.0 – 10.0
C_5	अत्याधिक	10.00 से अधिक

C_1 सामान्य पानी है। सभी फसलों के लिए सभी प्रकार के गठन वाली मिट्टियों में उपयोग में लाया जा सकता है।

C_2 मध्यम लवणीय पानी है। इसका प्रयोग सभी फसलों के लिए हल्के व मध्यम गठन वाली मिट्टियों में किया जा सकता है। भारी गठन वाली मिट्टियों में मध्यम लवण सहनशील फसलों का प्रयोग करना चाहिए।

C_3 अधिक लवणीय पानी है इसका प्रयोग हल्के व मध्यम गठन वाली मिट्टियों में मध्यम सहनशील फसलों के साथ किया जाना चाहिए।

C_4 बहुत अधिक लवणीय पानी है। इसका प्रयोग अच्छे जल निकास की दशा में मध्यम व हल्के गठन वाली भूमियों में लवण सहनशील फसलों के साथ किया जा सकता है।

C_5 अत्याधिक लवणीय जल है। यह पानी सामान्यत सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं हैं परन्तु इसका प्रयोग बहुत विशेष परिस्थितियों में किया जा सकता है।

सोडियम अधिशोषण अनुपात के आधार पर (On the basis of Sodium Adsorption Ratio)–

सिंचाई जल की उपयोगिता सोडियम की मात्रा पर निर्भर करती है क्योंकि मिट्टी के भौतिक गुणों पर सोडियम आयन विपरीत प्रभाव डालते हैं तथा कैल्शियम आयन विपरीत प्रभाव को कम करने में सहायक होते हैं। यदि जल में सोडियम का अनुपात अधिक है तो क्षार संकट अधिक होता है। इससे मिट्टी के भौतिक गुणों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। क्षार संकट निम्न सूत्र द्वारा निकाला जाता है।

$$SAR = \frac{Na^{+}}{\sqrt{\frac{Ca^{++}\ Mg^{++}}{2}}}$$

सोडियम अधिशोषण अनुपात के आधार पर सिंचाई जल को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया है–

वर्ग	क्षारीयता स्तर	सोडियम अधिशोषण अनुपात
एस 1	कम	10 से कम
एस 2	मध्यम	10–20
एस 3	अधिक	20–30
एस 4	बहुत अधिक	30–4
एस 5	अत्याधिक	40 से अधिक

एस 1 सामान्य पानी है, इसका प्रयोग सभी प्रकार की मृदाओं में सभी प्रकार की फसलों के लिए किया जा सकता है।

एस 2 मध्यम क्षारीय पानी है। इसका प्रयोग मध्यम व हल्की मिट्टियों में आसानी से किया जा सकता है। परन्तु भारी गठन वाली मिट्टियों में समस्या पैदा हो जाती है।

एस 3 अधिक क्षारीय पानी है, इसका प्रयोग हल्के गठन वाली मृदाओं में किया जा सकता है, भारी गठन वाली मिट्टियों में प्रयोग करने से अधिक क्षारीयता उत्पन्न होने की संभावना है।

एस 4 बहुत अधिक क्षारीय पानी है, इसका प्रयोग हल्के गठन वाली मिट्टियों में क्षार सहनशील फसलों को लेकर किया जा सकता है। इस पानी के प्रयोग से मध्यम व भारी गठन वाली मृदाओं में क्षारीयता होने की संभावना रहती है।

एस 5 बहुत अधिक क्षारीय पानी है। यह सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं है। इसको जहाँ तक हो सके प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि इसका प्रयोग करना हो तो सुधारकों का प्रयोग आवश्यक है।

अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट के आधार पर (On the basis of Residual Sodium Carbonate)–

सिंचाई जल में बाईकार्बोनेट आयन अधिक होने से मिट्टी में जल सान्द्रीकरण के साथ कैल्शियम आयनों के अवक्षेप के रूप में बदलने की दर बढ़ जाती है। इससे कैल्शियम आयनों की मिट्टी में मात्रा घट जाती है तथा सोडियम आयनों की मात्रा बढ़ जाती है। ईटोन (1950) ने अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट को ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र प्रस्तावित किया है।

$$RSC\ (me\ /\ .\ L) = (CO_3^{--} + HCO_3^{-}) - (Ca^{++} + Mg^{++})$$

प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि–

(1) जल में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा 2.5 मिली तुल्यांक प्रति लीटर से अधिक होती है तो यह सिंचाई के लिए अनुपयुक्त होते हैं।

(2) सिंचाई के लिए उपयुक्त जल में 1.25 मिली तुल्यांक प्रति लीटर से कम अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट होना चाहिए। इसके साथ अच्छे प्रबंध सुधारकों के उपयोग की दशा में अधिक अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट युक्त जल भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

इस आधार पर सिंचाई जल का वर्गीकरण इस प्रकार हैं–

वर्ग	आर.एस.सी. सीमाएं मिली तुल्यांक/लीटर	प्रयोग
I	1.25 से कम	सुरक्षित

II	1.25 से 2.5	सीमान्त
III	2.5 से अधिक	असुरक्षित

बोरोन व अन्य हानिकारक तत्वों की मात्रा के आधार पर (On the basis of Boron and other Toxic elements)–

बोरोन, लीथियम, क्लोरीन, फ्लोरीन आदि तत्व विषैले हैं। सिंचाई जल में इनकी अधिक मात्रा पौधों की बढ़वार और उपज पर विपरीत प्रभाव डालती है। बोरोन, लीथियम, फ्लोरीन/क्लोरीन की अधिकतम स्वीकृत सीमाएं क्रमशः 5, 5 तथा 15 पी.पी.एम. प्रस्तावित की गई है।

खारे पानी का प्रबन्ध (Management of Saline Water)–

शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की अधिक आवश्यकता रहती है, परन्तु भू–जल गुणवत्ता निम्न कोटि की होने के कारण इन क्षेत्रों में सिंचाई जल का समन्वित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

सिंचाई चक्र तैयार करना–

सिंचाई चक्र में सिंचाई का समय, मात्रा एवं अन्तराल को शामिल किया जाता है। बिना पानी की मात्रा घटाए, सिंचाई का अन्तराल कम करने से भूमि में पानी का रिसाव घटता है। लवणीय भूमि में अधिक पानी देने से लवणों के निक्षलन में मदद मिलती हैं परन्तु क्षारीय भूमि में जलमग्नता उत्पन्न हो जाती है अतः सिंचाई से अधिकतम उपज क्षमता प्राप्त करने के लिए ऐसी समय सारणी तैयार की जाए जो भूमि के लिए उपयुक्त हो। इसमें सिंचाई के अन्तराल का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि पौधे की बढ़वार की कुछ अवस्थाओं पर पानी की कमी होने से उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पानी की मात्रा एवं अन्तराल– कम अन्तराल पर, हल्की सिंचाई करने से ऊसर मिट्टियों में ज्यादा लाभ रहता है।

समय– ऊसर भूमि में अधिकतर फसलों की औसत उपज प्राप्त करने के लिए, मिट्टी में 50 प्रतिशत उपलब्ध नमी पहुँचने से पूर्व सिंचाई करना उपयुक्त रहता है।

लवण प्रभावित वृद्धि अवस्थाएं– सभी फसलें वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में एक समान लवणीयता सहन नहीं करती। जहाँ भूमिगत जल लवणीय हो वहां लवण प्रभावित अवस्थाओं पर लवणीय पानी का प्रयोग न करके लवणीयता से होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

सिंचाई की विधि–

ऊसर भूमि के सुधार में सिंचाई के तरीकों का भी प्रभाव पड़ता है। गलत विधि से सिंचाई करने पर जल निकास खराब हो जाने से भूमि और अधिक खराब हो जाती है। क्षारीय मृदाओं में चुकन्दर, शलजम पर फव्वारा सिंचाई व सतही सिंचाई विधि का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर फव्वारा सिंचाई से सतही सिंचाई की अपेक्षा ज्यादा उपज प्राप्त हुई व पानी उपयोग क्षमता में वृद्धि हुई। इसी प्रकार गेहूँ व जौ में बहु अधिक लवणीय जल का फव्वारा विधि से सफलता पूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। इससे पानी उपयोग क्षमता में वृद्धि होती है परन्तु इस पानी का प्रयोग बाजरा व कपास में हानिकारक पाया गया है। अतः ज्यादा संवेदनशील फसलों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए इससे पत्तियों के झुलसने का व विषाक्त होने का खतरा रहता है।

लवणीय जल का उपचार (Treatment of Saline Water)–

1. अच्छी किस्म के जल से तनुकरण (Dillution with good quality water)–

(अ) लवणीय जल को समान अनुपात में अच्छी किस्म के जल (जैसे तालाब, नहर, ट्यूबवैल) के साथ मिलाकर प्रयोग करने से लाभ होता है।

(ब) लवणीय जल एवं अच्छी किस्म के जल को यदि एकांतरित प्रयोग करें तब भी अधिक उपज प्राप्त होती है, जैसे– 1. सिंचाई लवणीय जल + 2 सिंचाई नहर या ट्यूबवैल के जल से।

यदि पोटाशिक खादों जैसे पोटेशियम सल्फेट, पोटेशियम क्लोराइड प्रयोग करें तो भी पानी में उपस्थित सोडियम के हानिकारक प्रभाव को किसी हद तक कम किया जा सकता है।

2. सुधारकों से उपचार (Treatment with amendments)–

ज्यादा अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट युक्त पानी के लगातार प्रयोग से मिट्टी का पी–एच मान तथा सोडियम की मात्रा बढ़ जाती है जिससे मृदा के भौतिक व रासायनिक गुणों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन विकारों को सुधारकों जैसे–जिप्सम, इसके अलावा गंधक का अम्ल, पाइराइट, प्रेसमड, बेसिक स्लेग, गोबर की खाद (जिनमें कैल्शियम पाया जाता है) आदि का प्रयोग करके कम किया जा सकता है।

सिंचाई जल में जब अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा 2.5 मिली तुल्यांक/लीटर से ज्यादा हो तब इसमें जिप्सम का प्रयोग लाभप्रद है।

जल की 1 मि. इ. प्रति लीटर अवशेष सोडियम कार्बोनेट की मात्रा को उदासीन करने के लिए प्रति सिंचाई 25 कि. ग्रा. शुद्ध जिप्सम की आवश्यकता होती है। कृषि के लिए उपयुक्त जिप्सम 70 से 80 प्रतिशत शुद्ध होता है। इस प्रकार जिप्सम क कुल मात्रा फसल में प्रयुक्त सिंचाईयों की संख्या तथा अवशेष सोडियम कार्बोनेट की मात्रा पर निर्भर करती है।

फसल प्रबंध (Crop Management)–

(1) लवणीय जल से सिंचाई करने पर 20 प्रतिशत अतिरिक्त बीज की मात्रा का प्रयोग करें तथा बुवाई के तुरन्त बाद दो या तीन दिन में सिंचाई देने से अच्छा अंकुरण होता है।

(2) कार्बनिक खादों जैसे हरी खाद, गोबर की खाद का अधिकाधिक प्रयोग करें।

(3) पौधे की प्रारम्भिक वृद्धि अवस्थाओं व बुवाई से पूर्व अच्छे किस्म के जल का प्रयोग लाभदायक रहता है।

(4) लवण/क्षार रोधी फसलें एवं किस्में उगाएं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मृदा में हाइड्रोजन (H^+) आयन्स की अधिकता होने पर मृदायें अम्लीय बनती है तथा (OH^-) आयन्स की सान्द्रता अधिक होने पर मृदायें क्षारीय बनती है।
2. अम्लीय मृदाओं का pH मान 7.0 से कम तथा लवण प्रभावित मृदाओं का pH मान 7.0 से अधिक होता है।
3. अम्लीय मृदाओं के रासायनिक सुधार हेतु चूना वाले पदार्थों का मृदा में प्रयोग किया जाता है।
4. लवण प्रभावित मृदायें शुष्क एवं अर्धशुष्क तापमान वाली जलवायु में बनती है।
5. लवण प्रभावित मृदाओं को उनके, EC तथा ESP के आधार पर लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में बांटा जाता है।
6. अम्लीयता का पौधों की वृद्धि एवं विकास पर कुप्रभाव (advrese effect) पड़ता है।
7. लवण प्रभावित मृदाओं को निक्षालन (Leaching) द्वारा, मृदा की सतह को खुरच कर (Scraping), खाई खोदकर (Trenching), विलेय लवणों को उपरी सतह से बहा कर (Washing out of soluble salt), जल निकास (Drainage) जिप्सम, पाइराइट, सीरा एवं प्रेसमड एवं अम्ल तथा अम्ल उत्पाद पदार्थो को मृदा में मिला कर सुधारा जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. लवणीय एवं क्षारीय मृदायें पायी जाती हैं–
   (अ) शुष्क जलवायु में (ब) आर्द्र जलवायु में
   (स) शुष्क एवं आर्द्र जलवायु में (द) इनमें कोई नहीं
2. अम्लीय मृदा का pH मान होता है–
   (अ) 7 से कम (ब) 8.5
   (स) 8.5 से 10.0 (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान स्थित है–
   (अ) कानपुर (ब) करनाल
   (स) नागपुर (द) भोपाल
4. राजस्थान में लवण प्रभावित (Salf affected) मृदाओं का क्षेत्रफल है–
   (अ) 3.74 लाख हैक्टर
   (ब) 15 लाख हैक्टर
   (स) 0.5 लाख हैक्टर
   (द) उपयुक्त में से कोई नहीं
5. अम्लीय मृदाओं का सुधार होता है–
   (अ) जिप्सम से (ब) पाइराइट से
   (स) फास्फोजिप्सम से (द) चूना वाले पदार्थों से
6. क्षारीय मृदाओं का सुधार होता है–
   (अ) जिप्सम से (ब) फॉस्फोजिप्सम से
   (स) पाइराइट से (द) उपर्युक्त सभी से
7. जिप्सम में केल्शियम पाया जाता है–
   (अ) 23.2 प्रतिशत (ब) 50 प्रतिशत
   (स) 0.5 प्रतिशत (द) 5.0 प्रतिशत
8. राजस्थान में पाइराइट पाया जाता है–
   (अ) बीकानेर (ब) जोधपुर
   (स) जैसलमेर (द) सीकर
9. बुझे हुऐ चूने का रासायनिक सूत्र है–
   (अ) $CaCO_3$ (ब) CaO
   (स) $Ca(OH)_2$ (द) उपयुक्त में से कोई नहीं
10. पाइराइट का सूत्र है–
    (अ) FeS_2 (ब) Fe_2O_3
    (स) $FeSO_4$ (द) उपयुक्त में से कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. मृदा अम्लता कितने प्रकार की होती हैं ?
2. अम्लीय मृदा बननें के चार कारकों के नाम लिखिए।
3. लवण प्रभावित मृदाओं का वर्गीकरण लिखिए।
4. जिप्सम का रासायनिक सूत्र लिखिए।

5. जिप्सम का संघटन (Composition) लिखिए।
6. लवणीय जल की परिभाषा लिखिए।
7. एस.ए.आर. (S.A.R.) का सूत्र लिखिए।
8. आर.एस.सी. (R.S.C.) का सूत्र लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. मृदा में चूना मिलाने पर क्या परिवर्तन होते हैं ?
2. जिप्सम आवश्यकता क्या है ?
3. पौधों पर अम्लता का क्या प्रभाव पड़ता है ?
4. लवण प्रभावित मृदा बनने के कारण बताइये ?
5. विद्युत चालकता की क्या है तथा इसकी इकाई लिखिए।
6. विनिमय सोडिय प्रतिशतता को परिभाषित कीजिए तथा इसका सूत्र लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. मृदा अम्लता क्या होती है ? यह कैसे उत्पन्न होती है? इसका पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता हैं ?
2. अम्लीय मृदा क्या होती है ?अम्लीय मृदा बनने के क्या कारण है ? इनको कैसे सुधारा जा सकता है?
3. लवण प्रभावित मृदाओं से क्या समझते हो, यह कैसे बनती है ? इनके रासायनिक विधि से कैसे सुधारा जाता है?
4. मृदा सुधारक क्या है ? जिप्सम द्वारा क्षारीय मृदाओं को सुधारने की विधि का विस्तृत वर्णन कीजिए।
5. पाइराइटस क्या है ? इसके द्वारा क्षारीय मृदाओं को कैसे सुधारा जाता है ?
6. लवणीय और क्षारीय मृदाओं में भेद कीजिये, राजस्थान में किन जिलो में ये मृदाये पायी जाती है तथा कैसे बनती है ?
7. लवणीय जल का सिंचाई से पहले कैसे उपचार किया जाता है?

उत्तरमाला–

(1) अ (2) अ (3) ब (4) अ (5) द
(6) द (7) अ (8) द (9) स (10) अ

अध्याय – 7

पादपों के आवश्यक पोषक तत्व (Essential Nutrients of Plants)

वे सभी रसायनिक तत्व, जिनकी पौधों को वृद्धि एवं उपापचय में आवश्यकता होती है, पोषक तत्व (Nutrient) कहलाते हैं।

पौधों को अपने पोषण के लिए अनेक तत्वों की आवश्यकता होती है। पौधों का रासायनिक विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ है कि पौधों में ऐसे तत्व पाये जाते हैं जिनमें से अनेक वास्तव में पौधों की संतुलित वृद्धि के लिए आवश्यक नहीं होते हैं। आवश्यक पोषक तत्वों में केवल वही तत्व सम्मिलित किये जा सकते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पौधों में कोई विशिष्ट कार्य करते हैं तथा इनकी कमी का पौधे की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। किसी तत्व की पौधों के लिए आवश्यकता को निर्धारित करने के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किये गये हैं।

पौधों के लिए तत्वों की अनिवार्यता की कसौटी (Criteria of Nutrient Essentiality for Plants)

वैज्ञानिक डी. आई. आरनन (1954) ने पौधों के लिए पोषक तत्वों की अनिवार्यता निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त प्रस्तुत किये–

(1) पौधे में आवश्यक पोषक तत्व की कमी से वानस्पतिक अथवा जनन अंग की वृद्धि रुक जाती है और पौधे अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर पाते।

(2) किसी विशेष आवश्यक पोषक तत्व की कमी को केवल उसी तत्व को मृदा में आपूर्ति करके कमी को पूरा किया जा सकता है अर्थात् एक आवश्यक तत्व की कमी दूसरे तत्व से पूरी नहीं की जा सकती।

(3) पौधे में तत्व का विशिष्ट दैहिक अथवा उपापचय कार्य हो।

जो तत्व उपर्युक्त तीनों शर्तों को संतुष्ट करते हैं उन्हें अनिवार्य तत्वों की सूची में रखा जा सकता है। वास्तव में कुछ तत्व दूसरी शर्त पूरी नहीं करते जैसे मोलिब्डिनम का अभाव वेनेडियम तथ क्लोरीन का अभाव ब्रोमीन अथवा आयोडीन द्वारा पूरा किया जा सकता है।

अतः बाद में वैज्ञानिक डी. जे. निकोलस (1965) ने उपरोक्त शर्तों में संशोधन करके यह निर्धारित किया कि (1) अनिवार्य तत्व का पौधों में दैहिक अथवा उपापचयी विशिष्ट कार्य होना चाहिए एवं (2) पौधों में कमी होने पर पौधा अपना जीवन चक्र पूरा न कर सके।

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की सूची व उनके आविष्कारक

क्रमांक	तत्व का नाम	वैज्ञानिकों के नाम	वर्ष
1.	हाइड्रोजन	सास	1802
2.	कार्बन	सास	1802
3.	ऑक्सीजन	डी–श्यासर	1804
4.	नाइट्रोजन	डी–श्यासर	1804
5.	फॉस्फोरस	जस्टिस वॉन लीबिग	1835
6.	पोटैशियम	सी. स्प्रेन्जिल	1839
7.	मैग्नीशियम	सी. स्प्रेन्जिल	1839
8.	कैल्शियम	सी. स्प्रेन्जिल	1839
9.	सल्फर (गंधक)	पैटरसन	1911
10.	आयरन (लोहा)	ई. ग्रिस	1844
11.	मैंगनीज	जे. एस. मेकहार्ग	1922
12.	जिंक (जस्ता)	सॉमर व लिपमैन	1926
13.	कॉपर (ताँबा)	सॉमर व लिपमैन	1931
14.	मोलिब्डिनम	आरनन व स्काउट	1939

15.	बोरौन	के. वेरिंगटन	1923
16.	क्लोरीन	ब्रॉयर व अन्य साथी	1954
17.	सोडियम	ब्राउनैल व वुड	1957
18.	कोबाल्ट	अहमद व इवन्स	1959
19.	वेनेडियम	आरनन व वैसिल	1953
20.	सिलीकॉन	लेविन	1962
21.	आयोडीन	एल. फ्रायज	1966
22.	सेलैनियम	ट्रिलीज व ट्रिलीज 1938	
23.	गेलियस	आर ए. स्टीनबर्ग	1938
24.	एल्यूमीनियम	के. टोबक	1942

नोट : कुछ तत्वों के अन्वेषकों में अन्य वैज्ञानिक भी जुड़े हुए हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण उनके नाम नहीं दिये जा सके हैं।

अनिवार्य पादप पोषक तत्व (Essential Plant Nutrients)

वर्तमान में 17 तत्वों को अनिवार्य बताया गया उसके अनुसार कार्बन,, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व सल्फर पादप प्रोटीन एवं जीवद्रव्य की रचना करते हैं, अतः संरचनात्मक तत्व कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त दस पोटैशियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम, जस्ता, लोहा, ताँबा, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्डीनम क्लोरीन व निकिल भी आवश्यक तत्वों की श्रेणी में रखे गये हैं। सोडियम, वैनेडियम, कोबाल्ट तथा सिलिकॉन भी कुछ विशेष प्रजाति के पौधों के लिए आवश्यक पाये गये हैं। यद्यपि इनके उपापचयी कार्यों का ज्ञान अभी तक नहीं हुआ है।

लाभदायक पोषक तत्व (Beneficial Nutrient Elements)

एल्यूमीनियम, आयोडीन, सैलेनियम, गैलियम, रूबीडियम, स्ट्रॉशियम, निकिल, क्रोमियम व आर्सेनिक तत्व बहुत सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित होने पर पौधों की वृद्धि को उत्तेजित करते हैं अतः

आवश्यक पादप पोषक तत्व व उनके प्राप्य रूप

तत्व Element		रासायनिक संकेत Chemical Symbol	प्राप्य रूप Form(s) taken up
वृहद पोषक तत्व (Macro Nutrients)			
1. कार्बन		C	CO_2
2. हाइड्रोजन		H	H_2O
3. ऑक्सीजन		O	H_2, O_2
4. नाइट्रोजन	मुख्य पोषक तत्व	N	NH^+_4, NO^-_3
5. फॉस्फोरस	मुख्य पोषक तत्व	P	H_2, PO_4^- HPO_4^{2-}
6. पोटैशियम	मुख्य पोषक तत्व	K	K^+
7. कैल्शियम	द्वितीयक पोषक तत्व	Ca	Ca^{2+}
8. मैग्नीशियम	द्वितीयक पोषक तत्व	Mg	Mg^{2+}
9. गंधक	द्वितीयक पोषक तत्व	S	SO_4^{2-}
सूक्ष्म पोषक तत्व (Micro Nutrients)			
10. लोहा		Fe	Fe^{2+}, Fe^{3+}
11. जिंक		Zn	Zn^{2+}
12. मैंगनीज		Mn	Mn^{2+}
13. ताँबा		Cu	Cu^{2+}
14. बोरोन		B	$B(OH)^0_3$
15. मोलिब्डिनम		Mo	MoO_4^{2-}
16. क्लोरीन		Cl	Cl^-
17. सिलिकॉन		Si	$Si\ (OH)^0_4$
18. कोबाल्ट		Co	Co^{2+}
19. निकिल		Ni	Ni^{2+}
20. सोडियम		Na	Na^+
21. वैनेडियम		V	V^+

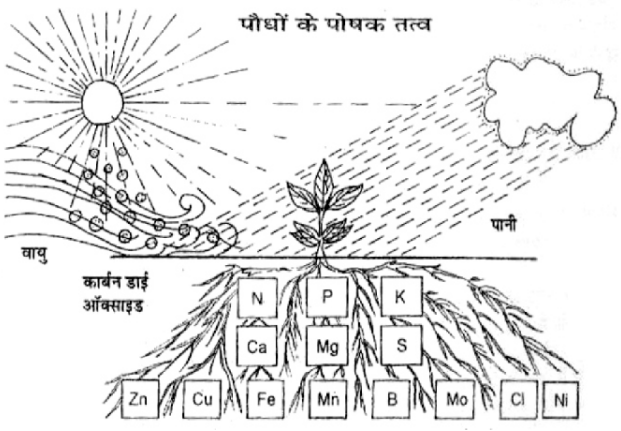

इन तत्वों को लाभदायक तत्वों की श्रेणी में रखा गया है।

चित्र–कृषि के प्राकृतिक आधार– सूर्य, पानी, हवा, भूमि और पौधा

सभी पौधों को बढ़वार और विकास के लिए कम से कम 17 तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से कार्बन, हाईड्रोजन और ऑक्सीजन, पानी तथा हवा से प्राप्त होते हैं। अन्य 14 तत्व (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, गंधक, कैल्शियम, मैग्नीशियम, बोरोन, लोहा, मैंगनीज, जस्ता, जिंक, मोलिब्डीनम, क्लोरीन, निकिल) भूमि, उर्वरक व खादों से मिलते हैं।

आवश्यक पोषक तत्वों का वर्गीकरण (Classification of Essential Plant Nutrients)

(1) पोषक तत्वों की मात्रात्मक आवश्यकता के आधार पर वर्गीकरण (Based on amount required)–

पौधों में पोषक तत्वों की आवश्यकता के आधार पर पर वृहद् तथा सूक्ष्म तत्वों में वर्गीकृत किया गया है। वैज्ञानिक लूमिस व शुल (1837) के अनुसार जिन तत्वों की पौधों को 1.0 पी.पी.एम. (भाग प्रति दस लाख) अथवा इससे अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है उन्हें वृहद् पोषक तत्व (Macro Nutrients) कहते है तथा जिनकी पौधों को 1.0 पी.पी.एम. से कम मात्रा में आवश्यकता होती है उन्हें सूक्ष्म तत्व (Macro/Trace/Oligo/Sprune elements) कहा जाता है। जिन पोषक तत्वों की पौधों को 1.0 पी.पी.बी. (parts per billion) से कम मात्रा में आवश्यकता होती है, उन्हें अति सूक्ष्म (Ultra micro nutrients) कहते हैं।

(i) वृहद् पोषक तत्व (Macro Nutrients)

(अ) मुख्य पोषक तत्व (Major Nutrients)– नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटेशियम इन तीनों पोषक तत्वों की पौधों को अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है, इसीलिए इन्हें मुख्य पोषक तत्व कहते हैं।

(ब) गौण पोषक तत्व (Secondary Nutrients)– कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा सल्फर इन तीनों पोषक तत्वों की पौधों को पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता होती है, लेकिन इनका कार्य मुख्य पोषक तत्वों से कम माना जाता है, इसीलिए इनको द्वितीयक पोषक तत्व कहते हैं।

(ii) सूक्ष्म पोषक तत्व (Macro/Trace/Oligo/Sprune elements)– लोहा, मैगनीज, कॉपर, जिंक, बोरोन, मोलिब्डीनम, क्लोरीन, निकिल। इनकी पौधों को केवल सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है।

(iii) अति सूक्ष्म पोषक तत्व (Ultra micro nutrients)– सोडियम, बेनेडियम, सिलिकॉन, रुबीडियम, सैलेनियम, गैलेनियम।

(iv) लाभदायक तत्व (Beneficial Element)– एल्यूमीनियम, आयोडीन, सैलेनियम, गैलियम, रूबीडियम, स्ट्रॉशियम, निकिल, क्रोमियम व आर्सेनिक।

(2) पौधों में तत्वों के कार्य के आधार पर वर्गीकरण (Classification based on Function in Plants)

(i) आधारीय तत्व (Basic Elements)–जो पादप संरचना का आधार है तथा पौधे के लगभग 95 प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ– कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन।

(ii) संरचनात्मक एवं ऊर्जा नियामक तत्व (Structural Elements)–जो पौधों की संरचना व ऊर्जा संग्रह तथा स्थानान्तरण का कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ–नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा गंधक।

(iii) नियंत्रक तथा वाहक तत्व (Regulators & Carriers Elements)–जो पौधों की उपापचयी क्रियाओं का नियंत्रण करते तथ आयन वाहक का कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ–कैल्शियम, पोटेशियम तथा मैग्नेशियम।

(iv) एन्जाइमों का उत्प्रेरण करने वाले तत्व (Enzymic Catalyst Elements)–जो पौधों में उपापचयी क्रियाओं में संलिप्त एन्जाइमों का उत्प्रेरण करते हैं तथा इलेक्ट्रॉन परिवहन का कार्य भी करते है। उदाहरणार्थ– लोहा, मैग्नीज, जिंक, कॉपर, बोरोन, मोलिब्डीनम, क्लोरीन तथा नाइट्रोजन।

(3) पौधों में पोषक तत्वों की गतिशीलता के आधार पर वर्गीकरण (Based on Mobility in Plants)

(i) अत्यधिक गतिशील (Highly Mobile)– नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम

(ii) मध्यम गतिशील (Moderately Mobile)–जिंक,

मैगनेशियम

(iii) अल्प गतिशील (Less Mobile)– गंधक, लोहा, कॉपर, मोलिब्डीनम एवं क्लोरीन।

(iv) अचल गतिशील (Immobile)– कैल्शियम, बोरोन।

(4) अन्य वर्गीकरण– धातु और अधातु के आधार पर पोषक तत्वों को इस प्रकार वर्गीकृत करते हैं–

(i) धातु (Metals)– कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम, लोहा, ताँबा, जस्ता, मैंगनीज।

(ii) अधातु (Non-metals)– नाइट्रोजन, फास्फोरस, सल्फर, मोलिब्लिडनम, क्लोरीन, कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन।

पोषक तत्वों की मात्रा एवं पादप वृद्धि में सम्बन्ध (Relationship between Nutrient Concentration and Plant Growth)–

(i) अभाव (Deficient)– पौधों में पोषक तत्व की मात्रा इतनी कम होती है कि उस तत्व के अभाव के लक्षण पौधे पर दिखाई देने लगते हैं और पैदावार घट जाती है। अत्यधिक अभाव होने पर पौधा मर जाता है।

(ii) क्रान्तिक स्तर (Critical range)– यह तत्व का पौधे में वह स्तर होता है जिस पर उस तत्व के प्रति पौधा वृद्धि और विकास करता है अर्थात् उक्त तत्व की आपूर्ति करने पर पौधे की रुकी हुई वृद्धि पुनः होने लगती है। यह तत्व के अभाव व पर्याप्त मात्रा की मध्य की अवस्था है।

(iii) पर्याप्त स्तर (Sufficient range)–इस स्तर पर पोषक तत्व देने से पादप वृद्धि कोई खास नहीं होती है बल्कि पौधे में तत्व का सान्द्रण बढ़ जाता है।

(iv) विषैला स्तर (Toxic range)– इस स्तर पर पोषक तत्व का सान्द्रण इतना बढ़ जाता है कि वह पौधों को हानि पहुँचाता है तथा पादप उपज को घटाने लगता है अथवा पौधा मर जाता है। पौधों में पोषक तत्वों का असंतुलन भी उत्पन्न हो जाता है।

मृदा में पोषक तत्वों के प्राप्त के स्रोत (Sorces of Plant Nutrients in Soil)

मृदा में निम्नलिखित स्रोतों द्वारा पोषक तत्व प्राप्त होते हैं–

(1) खाद एवं उर्वरकों द्वारा (By Manures and Fetrilizers)– खेत में कार्बनिक खाद तथा रासायनिक उर्वरक देने पर पोषक तत्व मृदा में पहुंचते रहते हैं। जैसे–गोबर की खाद, हरी खाद, वर्मी कम्पोस्ट, कम्पोस्ट, यूरिया, डाई–अमोनियम फॉस्फेट, अमोनियम सल्फेट, सिंगल सुपर फॉस्फेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश।

(2) फसल के अवशेषों से (By Crop Residues)– पौधों के वानस्पतिक अवशेष, पत्तियाँ, तना व जड़ के सड़ने से मिट्टी में पोषक तत्व प्राप्त होते रहते हैं।

(3) मृदा सुधारकों द्वारा (By Soil Amendments)– भूमि को सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के भूमि सुधारक प्रयोग किये जाते हैं जिसके द्वारा मृदा को पोषक तत्व प्राप्त होते रहते हैं। जैसे–जिप्सम, पायराइट, चूना, फॉस्फो जिप्सम, गंधक आदि।

(4) वर्षा द्वारा (By Rain)– वर्षा के समय बादल के गर्जन व तड़कन से वायुमण्डल की बहुत सी नाइट्रोजन पानी में घुलकर मृदा में पहुंच जाती है।

(5) दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण से (By Nitrogen Fixation by Legumes)– दहलनी फसलों की जड़ों में छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ (Nodules) पायी जाती हैं, इनमें उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डल से नत्रजन लेकर ग्रन्थियों में स्थापित करते हैं जिसे नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया कहते हैं।

(6) असहजीवी जीवाणु द्वारा (By non-symbiotic Bacteria)– मृदा में उपस्थित एजोटोबैक्टर व क्लोस्ट्रीडियम असहजीवी जीवाणु वायु में उपस्थित तात्विक नत्रजन का भूमि में यौगिकीकरण करते हैं।

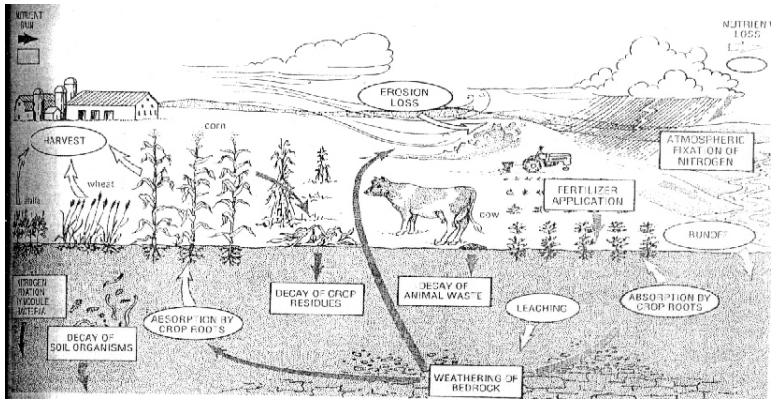

पौधों के लिए पोषक तत्वों के स्रोत निम्न चित्र के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं–

पौधों में आवश्यक पोषक तत्वों के विशिष्ट कार्य (Specific functions of Essential Nuturient in Plants)–

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व मुख्य रूप से निम्न कार्य सम्पन्न करते हैं–

(1) कोशिका अवयवों एवं उपापचयी यौगिकों के संरचनात्मक तत्व अथवा अंश के रूप में।

(2) ये कोशिकीय अवयवों को सुव्यवस्थित बनाए रहते हैं।

(3) ऊर्जा रूपान्तरण अथवा स्थानान्तरण में सहायक होते हैं।

(4) एन्जाइम अभिक्रियाओं को उत्तेजित करने में सहायक होते हैं।

वृहद् पोषक तत्वों के प्रमुख कार्य (Specific Functions of Macro Elements)

कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन (Carbon, Hydrogen and Oxygen)–

कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन को पौधे वायु तथा जल से सीधे अवशोषित करते हैं, अतः पादप पोषण में इनका अत्यधिक महत्व होते हुए भी इनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। पौधे के शुष्क भाग का कार्बन लगभग 46 प्रतिशत, ऑक्सीजन 40 प्रतिशत व हाइड्रोजन 8 प्रतिशत अर्थात् तीनों तत्व संयुक्त रूप से 94 प्रतिशत भाग निर्माण करते हैं। इस प्रकार ये तीनों तत्व पौधे के सभी कार्बनिक यौगिकों के निर्माण हेतु आवश्यक हैं तथ्ज्ञा पदप वृद्धि एवं विकास में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। पादप संरचना निर्माण के साथ–साथ ये तीनों तत्व पौधे की अपचायी क्रियाओं हेतु आवश्यक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। कार्बोहाइड्रेट, वसा व प्रोटीन के विघटन द्वारा कार्बन डाई–ऑक्साइड व जल के संयोग से ही पौधों में शर्करा व स्टार्च आदि का संश्लेषण होता है जिनसे बाद में अन्य पादप यौगिकों का निर्माण होता है। इस प्रकार हरे पौधों में यही क्रिया जीवन का आधार बनती है तथा प्रत्येक संश्लेषण क्रिया में C, H व O का विशेष महत्व है।

नाइट्रोजन (Nitrogen)–

नाइट्रोजन के बिना जीवन असम्भव है। यह जीवों में सभी प्रोटीन्स का आवश्यक अंग है। नाइट्रोजन का पादप पोषण में महत्वपूर्ण स्थान है तथा अनिवार्य खनिज पोषक तत्वों में इसका प्रथम स्थान है। पौधों में नाइट्रोजन के कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रायः सभी प्रकार की मृदाओं में नाइट्रोजन का अभाव होता है। पौधों में भारानुसार इसकी सामान्य मात्रा 1.0 से 5.0 प्रतिशत तक होती है। वायुमण्डल में लगभग 80 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है परन्तु पौधे इस सुगम स्रोत का उपयोग सीधे–सीधे नहीं कर पाते हैं।

(अ) सुलभ रूप (Available forms)–पौधों की जड़ों द्वारा नाइट्रोजन प्रमुखतः NO_3 (नाइट्रेट) व NH_4^+ (अमोनियम) दो आयनिक रूपों में अवशोषित किया जाता है।

(ब) पौधों में कार्य (Functions in Plants)–नाइट्रोजन प्रत्येक जीव कोशिका का एक संरचनात्मक तत्व है। इसके प्रमुख कार्य निम्न हैं–

(1) वानस्पतिक वृद्धि तेजी से होती है।

(2) पत्ती में हरे रंग (पर्णहरित) व प्रोटीन की रचना में नत्रजन का मुख्य स्थान है। पौधों में नाइट्रोजन से अमीनो अम्ल, प्रोटीन, एल्कालाइड्स व प्रोटोप्लाजम का निर्माण होता है।

(3) नाइट्रोजन से, फॉस्फोरस व पोटैशियम का पौधों द्वारा उपयोग सन्तुलित रूप में होता है।

(4) नाइट्रोजन पौधों को गहरा हरा रंग प्रदान करती है।

(5) पत्ती वाली सब्जियों के गुणों में वृद्धि करता है व सरसता बढ़ाती है।

(6) नत्रजन की कुछ मात्रा सेल्यूलोज इत्यादि के रूप में कोशिका भित्ति पदार्थ (Cell wall material) बनाने के काम भी आती है। नत्रजन से कोशिका का आकार बढ़ता है व दीवारें पतली हो जाती है।

(7) दाने व चारे की फसलों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ाती है।

(8) दाने सूडौल व गूदेदार बनते हैं।

(9) गन्ना, गेंहू, जौ व जई आदि में कल्ले (Pillering) अधिक संध्या में फूटते हैं।

(10) यह पादप ऊतकों में पानी का अनुपात बढ़ाती है तथा कैल्शियम की प्रतिशतता घटाती है।

अधिक नत्रजन से हानियां–

(1) अधिक नत्रजन ग्रहण कर पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है जिससे सिंचाई करने पर गिरने (Lodging) लगते है। गिरने का मुख्य कारण पौधे की कोमलता है।

(2) कोमल पौधों पर कीट–पतंगों व रोगों का आक्रमण बढ़ता है।

(3) फसल देर में पकती है क्योंकि अधिक नत्रजन ग्रहण कर फसल काफी समय हरी–भरी रहती है। यदि मृदा में फास्फोरस व पोटाश की कमी है तो फसल में दाना बहुत

देर से बनता है व वजनी भी कम होता है।

(4) भूसे की मात्रा दाने की अपेक्षा बढ़ती है।

(5) पौधों में कोमलता व कोशिका भित्ति पतली होने के कारण पाला व सूखा सहन करने की शक्ति कम हो जाती है।

(6) फसलों की भण्डारण गुणों में कमी आ जाती है।

(7) गन्ने की फसल में अधिक नाइट्रोजन से शक्कर की मात्रा घटती है।

(8) आलू जैसी फसलों में वानस्पतिक वृद्धि अधिक होकर कंद की पैदावार कम हो जाती है।

फॉस्फोरस (Phosphorus)–

(1) सुलभ रूप (Available forms)–

पादप पोषण की दृष्टि से फॉस्फोरस द्वितीय महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। यह पौधों की जड़ों द्वारा मुख्यतः $H_2PO_4^-$ व HPO_4^- आयनों के रूप में मृदा से अवशोषित किया जाता है।

(2) पौधों में कार्य (Functions in Plants)

(1) फॉस्फोरस से पौधे की जड़ों का विकास तेज एवं सुदृढ़ होता है जो अन्य पोषक तत्वों को मृदा से चूसने में सहायक है।

(2) फॉस्फोरस मिलने से पौधों में रोग रोधकता बढ़ जाती है व पाले से बचने की सहन शक्ति में वृद्धि करता है।

(3) फॉस्फोरस की उपस्थिति में परागसेचन अच्छा होता है।

(4) कोशिका विभाजन शीघ्र होता है।

(5) फॉस्फोरस से पौधों में वसा एवं एल्यूमीन ठीक बनते हैं।

(6) फॉस्फोरस से पौधों का स्टार्च आसानी से शर्करा में बदल जाता है।

(7) बीज स्वस्थ उत्पन्न होते हैं तथा बीजों का भार भी बढ़ाता है। फसल तेजी से बढ़ती है।

(8) फसलों की दाने उपज भूसा की अपेक्षा अधिक बढ़ती है।

(9) फसलों में खड़ी रहने की क्षमता (Lodging resistance) बढ़ती है।

(10) फॉस्फोरस पौधों में अन्य तत्वों का चूषण बढ़ाता है।

(11) साग–सब्जियों व दानों के गुणों (Quality) में वृद्धि करता है।

(12) पौधों में कीट के आक्रमण के प्रति रोधकता बढ़ती है।

(13) फलीदार फसलों की जड़ों में पाये जाने वाली ग्रन्थियों का विकास इसकी उपस्थिति में अधिक होता है। अतः पौधों को नत्रजन भी काफी प्राप्त होती है। फलस्वरूप प्रोटीन की मात्रा भी पौधों में बढ़ जाती है।

(14) फॉस्फोरस की उपस्थिति में फसल में फूल शीघ्र आते हैं तथा फल जल्दी बनते हैं। दाने शीघ्र पकते हैं।

(15) फॉस्फोरस पौधों में न्यूक्लिक अम्लों का निर्माण करके जीनों व क्रोमोसोमो के निर्माण में सहायक तत्वों का संश्लेषण करता है। अतः फॉस्फोरस एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी को आनुवांशिक कूट ले जाने वाले प्रक्रम का सूत्रधार बनता है।

(16) अधिक नत्रजन के प्रभाव को दूर करता है।

पोटैशियम (Potassium)

(1) सुलभ रूप (Available forms)–

पौधों द्वारा पोटैशियम का अवशोषण केवल K^+ आयन के रूप में होता है। पौधों में इसकी मात्रा 1.0 से 1.4 प्रतिशत तक होती है। इससे स्पष्ट होता है पौधों को पोटैशियम की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है।

(2) पौधों में कार्य (Functions in Plants)

(1) फसलों की गुणता (Quality) में वृद्धि होती है। आलू व अन्य सब्जियों के स्वाद में वृद्धि करता है। सब्जियों के पकने के गुण को किसी सीमा तक सुधारता है।

(2) फसल को गिरने से रोकता (Lodging resistance) है तथा भूमि व जलवायु की प्रतिकूल दिशाओं में फसलों के अन्दर रोधकता बढ़ाता है।

(3) फसल में सूखा सहने, बीमारी व कीट पतंगों के आक्रमण के प्रति रोधकता (Resistance) बढ़ाता है।

(4) पौधों में पोषक तत्वों के वाहन (Translocation) में सहायक है।

(5) फसल में फल काफी संख्या में तथा शीघ्र लगते हैं।

(6) पोटाश अनाज के दानों में अधिक गुदा पैदा करके उन्हें सुड़ौल करता है, दानों में चमक आती है।

(7) पोटाश पौधों की पत्तियों की कार्य क्षमता को बढ़ाता है। इससे कार्बन डाई–ऑक्साइड का संश्लेषण होने से पौधों में पर्णहरित पर्याप्त मात्रा में बनता है।

(8) फलीदार फसलों की जड़ों पर ग्रन्थियों में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जीवाणुओं को इस तत्व से भोजन प्राप्त होता है। इससे दलहनी फसलें वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को शीघ्र ग्रहण कर लेती है।

(9) नाइट्रोजन के प्रयोग से बीज के शीघ्र अथवा देर से पकने वाले प्रभाव को पोटाश अधिक सक्रिय बनाता है और

संतुलित रखता है।

(10) पोटैशियम अनेक एन्जाइमों का सक्रिय कारक है।

(11) पादप कोशिका संघटन, जलयोजन व पारगम्यता बनाए रखता है।

(12) पोटैशियम आयन आंशिक तौर पर पादप कोशिकाओं की उचित स्फीति (Turgour) को अनुरक्षित करने के लिए उत्तरदायी होता है।

(13) इससे मृदा में नाइट्रोजन का कुप्रभाव दूर होता है।

(14) पौधों में प्रोटीन के निर्माण में पोटैशियम का प्रमुख हाथ रहता है इससे कोशिकाओं के निर्माण तथा विभाजन में सहायता मिलती है।

कैल्शियम के कार्य

(1) कैल्शियम फसलों के आणुवांशिकी गुण (Hereditary Characters) के लिए उत्तरदायी तथा क्रोमोसोम का संरचनात्मक घटक है।

(2) कैल्शियम प्रोटोप्लाज्म के जलीयन (Hydration) को कम करता है तथा प्रोटोप्लाज्म की पारगम्यता को नियंत्रित करता है।

(3) कैल्शियम लाइपेस एन्जाइम को सक्रियता प्रदान करता है।

(4) कैल्शियम पौधों को उनके अवशोषण में अधिक वर्णात्मक (Selective) बनाने की ओर प्रवृत करता है। कैल्शियम कोशिका भित्ति एक घटक है अतः भूसे के कड़ेपन में वृद्धि करता है।

(5) दाना व तना सख्त बनाता है।

(6) पौधों में कार्बोहाइड्रेड संचालन में सहायक है।

(7) कैल्शियम बीज निर्माण को उत्साहित करता है।

(8) पौधों में कार्बनिक अम्लों के प्रभाव को उदासीन करता है।

(9) दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियों का विकास करता है।

(10) भूमि में पोटैशियम व फॉस्फोरस आदि का विनिमय करके पौधों को पोटैशियम की उपलब्धता बढ़ाता है।

मैग्नीशियम के कार्य–

(1) मैग्नीशियम क्लोरोफिल का एक अवयव है। अतः इसके बिना कोई पौधा हरा नहीं हो सकता। इस प्रकार यह पौधों में प्रकाश संश्लेषण की दर में वृद्धि करता है।

(2) ऐसे अनेक एन्जाइमों का सक्रियण करता है जो प्रोटीन, वसा व कार्बोहाइड्रेट के उपापचय से सम्बन्धित है।

(3) पौधों के अन्दर पोषक तत्वों के वाहन व पोषक तत्वों के अवशोषण में सहायता करता है।

(4) वसीय अम्लों व तेलों के संश्लेषण में आवश्यक है।

(5) यह पौधों में शर्कराओं एवं स्टार्च के स्थानान्तरण में सहायक होता है।

(6) मैग्नीशियम क्रोमोसोम का एक मुख्य अवयव होने के कारण वंशानुगत गुणों को नियंत्रित करता है। यह पोलीराइबोसोम का एक मुख्य भाग है।

(7) यह फॉस्फोरस को ग्रहण करने तथा इसके स्थानान्तरण में सहायक होता है।

(8) पौधों में नाइट्रोजन, मेटाबॉलिज्म से संबंधित कई फॉस्फोराइलेशन क्रियाएं मैग्नीनिशियम द्वारा उत्प्रेरित होती है।

गंधक के कार्य

(1) यद्यपि पर्णहरित का अवयव नहीं है किन्तु यह पर्णहरित के बनने में तथा पौधे के वानस्पतिक वृद्धि में सहायक होता है।

(2) गंधक सिस्टीन, सिस्टाइन व मिथियॉनिन एमीनो अम्लों का अवयव है, अतः प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक तत्व है।

(3) यह पौधों की जड़ों में वृद्धि करता है तथा बीज के बनने में सहायता करता है।

(4) दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियों का निर्माण तेज होता है।

(5) तिलहनी फसलों में वसा वृद्धि करता है तथा तेल में सुगन्ध बनाने में सहायक होता है।

(6) गंधक की उपस्थिति में पौधों की रोगरोधक शक्ति बढ़ती है।

(7) प्रकाश संश्लेषण से संबंधित एन्जाइमों का सक्रियण करके कार्बोहाइड्रेट्स उपापचय में भी सक्रिय भागीदारी करता है।

(8) गंधक चारे में N/S अनुपात को घटाता है जिससे चारे की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

जस्ता के कार्य–

(1) पौधों में अपरोक्ष रूप से पर्णहरित की रचना में लोहे व मैंगनीज के साथ सहायक है।

(2) पौधों में आक्सीकरण में सहायक।

(3) पौधों की पानी चूसने की क्षमता बढ़ाता है।

(4) जस्ते का पौधों में प्रकाश संश्लेषण व नाइट्रोजन उपापचय में महत्वपूर्ण योगदान है।

(5) प्रोटीन व कैरोटीन आदि के संश्लेषण में सहायक है।

(6) जिंक का प्रमुख कार्य पौधों में ऑक्सीन (Auxin) पादप हार्मोन के सान्द्रण को नियंत्रित करता है।

(7) यह इनोलेज, लेसीथिनेज, सिस्टेज एन्जाइमों का सक्रियण भी करता है।

(8) यह RNA के विघटन को रोकता है।

(9) कोशिका संरचना को सामान्य बनाने में योगदान देता है।

(10) यह इन्डोल एसीटिक अम्ल (I.A.A.) के निर्माण में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार जस्ता ट्रिप्टोफेन के संश्लेषण के लिए आवश्यक होता है।

(11) पादप वृद्धि के समय एल्डोलेज के निर्माण में प्रयुक्त होता है जो श्वसन क्रिया में भाग लेता है।

(12) जस्ता कार्बनिक एनहाइड्रेज, एल्कोहल डिहाइड्रोजिनेज, पायरुविक कार्बोक्सीलेज व पैप्टीडेज एन्जाइमों का अंग है।

ताँबा के कार्य–

(1) पौधों में विटामिन–ए की वृद्धि में सहायक है।

(2) पौधों में वृद्धि एवं विकास की अनेक क्रियाओं को उत्तेजित करता है।

(3) इन्डोल एसिटिक अम्ल वृद्धिकारक हार्मोन की संश्लेषण में सहायक है।

(4) लोहे के उपयोग में सहायता करता है।

(5) अप्रत्यक्ष रूप से यह क्लोरोफिल निर्माण में सहायता करता है।

(6) पौधों में कवक रोगों का नियंत्रण करता है।

(7) श्वसन प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

(8) यह टाइरोसिनेज, एस्कोर्बिक अम्ल ऑक्सीडेस, मोनोफिनॉल ऑक्सीडेस आदि एन्जाइम का मुख्य अवयव है। वह एन्जाइम पौधों में ऑक्सीकरण क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है।

बोरोन के कार्य

(1) पौधों में कैल्शियम के अवशोषण व उपयोग में सहायक है।

(2) पौधों में कैल्शियम व पोटैशियम के अनुपातों को नियंत्रित करता है।

(3) प्रोटीन संश्लेषण में सहायक है।

(4) कोशिका विभाजन व कारटैक्स के विकास में सहायक है।

(5) यह पुष्प, फल, बीज निर्माण, परागण व प्रजनन क्रियाओं के लिए आवश्यक होता है।

(6) पानी के अवशोषण एवं कोशिका में जल नियंत्रण में सहायता करता है।

(7) दलहन फसलों में राइजोबियम (सहजीवी) जीवाणु के लिए आवश्यक है।

(8) पेक्टिन, ATP, DNA, RNA के संश्लेषण में सहायक है।

(9) अधिक मात्रा में ग्रहण करने पर पौधे की मृत्यु हो सकती है।

(10) विभाज्योतिकी ऊतकों (Meriste matic tissues) की वृद्धि के लिए आवश्यक होता है।

(11) फलीदार पौधों द्वारा नत्रजन स्थिरीकरण में सहायक।

(12) इनोसिटॉल संश्लेषण के लिए आवश्यक होता है।

लोहा के कार्य–

(1) क्लोरोफिल निर्माण के लिए आवश्यक तत्व है, यद्यपि आयरन क्लोरोफिल का अंग नहीं है।

(2) आयरन पौधों द्वारा नाइट्रोजन के पोषण और प्रोटीन–संश्लेषण में सहायक होता है, पौधों में नाइट्रेट का अवकरण करता है।

(3) आयरन पादप कोषों में होने वाले ऑक्सीकरण–अवकरण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

(4) यह सोयाबीन में मोलिब्डिनेम को, जो एक नाइट्रेट रिडक्टेज (nitrate reductase) एन्जाइम में प्रॉस्थैटिक (Prosthetic) समूह का कार्य करता है, प्रतिस्थापित कर सकता है।

(5) यह कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक है।

(6) यह बहुत से ऑक्सीकारी एन्जाइम्स जैसे कैटालेज, परॉक्सीडेस एवं साइटोक्रोम बी और सी का संघटक होता है।

(7) श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन वाहक का कार्य करता है।

(8) अधिकांश आयरन क्लोरोप्लास्ट में उपस्थित रहता है इसके अभाव में क्लोरोप्लास्ट का स्वरूप ही बदल जाता है।

मैंगनीज के कार्य–

(1) मैंगनीज क्लोरोफिल निर्माण में सहायक होता है।

(2) यह आर्जिनेस, सिस्टीन डिसल्फाहाइड्रेस, हैक्साकाइनेस, डिऑक्सीराइबोन्यूक्लियेस आदि को सक्रिय बनाता है जो

कि पौधों में नाइट्रोजन, कार्बोहाइड्रेट मैटाबोलिज्म तथा क्रेब चक्र (Kreb cycle) की क्रियाओं में सहायक है।

(3) यह नाइट्रेट के स्वांगीकरण में सहायक है।

(4) यह ऑक्सीकरण–अवकरण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

(5) मैंगनीज की कमी से फसलों में अवकृत शर्कराओं तथा सूक्रोज की मात्रा कम हो जाती है। यह भी देखा गया है कि जब मैंगनीज की मात्रा अधिक मिलती है तो गन्ने में शर्कराओं शुद्धता अधिक होती है।

(6) मैंगनीज क्लोरोप्लास्ट का एक प्रमुख अवयव है और उन क्रियाओं में भाग लेता है जिनमें ऑक्सीजन मिलती है।

मेलिब्डिनम के कार्य–

(1) दलहन फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण जीवाणु के लिए आवश्यक है।

(2) एजोटोबेक्टर जीवाणु द्वारा भूमि में स्वतंत्र नाइट्रोजन के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है।

(3) पौधों के विटामिन–सी के संश्लेषण के लिए आवश्यक है।

(4) फॉस्फोरस उपापचय क्रिया को पौधों में प्रभावित करता है।

(5) पौधों में कार्बोहाइड्रेट संश्लेषण के लिए भी आवश्यक है।

(6) पौधों में नाइट्रोजन व अमोनियम अवकरण के लिए भी आवश्यक है।

(7) यह नाइट्रेट रिडक्टेस एन्जाइम का महत्वपूर्ण भाग है जहाँ पर इलेक्ट्रॉन वाहक का कार्य करता है। जेन्थीन ऑक्सीडेज एन्जाइम के लिए भी यह आवश्यक है।

क्लोरीन के कार्य–

(1) पौधों में एन्जाइम की क्रिया को उत्तेजित करता है।

(2) कार्बोहाइड्रेट उपापचय क्रिया को प्रभावित करता है।

(3) रसाकर्षेण दाब को बढ़ाता है।

(4) पर्णहरित रचना में सहायक है।

(5) पौधों की पत्तियों में, पानी रोकने की क्षमता बढ़ाता है।

कोबाल्ट के कार्य–

(1) यह राइजोबिया द्वारा तात्विक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए आवश्यक होता है। यह विटामिन B_{12} जो हीमोग्लोबिन के निर्माण में आवश्यक है, के संश्लेषण में सहायक होता है।

(2) यह वाष्पोत्सर्जन एवं प्रकाश संश्लेषण में बढ़ोतरी करता है।

(3) आर्जीनेस, लेसीथिनेस, ऑक्जलएसीटिक डिकार्बोक्सीलेस तथा मेलिक एन्जाइम्स की सक्रियता के लिए आवश्यक होता है।

वैनेडियम (Vanadium)

यह निश्चित रूप से हरी एल्गी के लिए आवश्यक तत्व है, परन्तु उच्च हरे पौधों के लिए इसकी आवश्यकता सर्वमान्य नहीं है। वेनेडियम कुछ सीमा तक एजोटोबेक्टर के पोषण में मौलिब्डेनम को प्रतिस्थापित करता है। एसपेरागस, चावल, जौ तथा मक्का की वृद्धि वेनेडियम के प्रदाय से अधिक होती बताई गई है। पादप पोषण में इस तत्व के कार्यों के बारे में अभी ज्ञात नहीं है परन्तु यह समझा जाता है कि यह जैविक ऑक्सीकरण–अवकरण अभिक्रियाओं में कार्य करता है।

सोडियम (Sodium)

यह चुकन्दर में सूखे के प्रतिरोध (resistance) में वृद्धि करता है। सोडियम पौधों द्वारा जल ग्रहण करने को प्रभावित करता है। यह कोष स्फीति (cell turgor) एवं पौधों की मैटाबोलिज्म को भी प्रभावित करती है। सोडियम ऑक्जेलिक अम्ल के संचयन (accumulation) में महत्वपूर्ण कार्य करता है। स्टोमेटा के खोलने में सहायक होता है तथा नाइट्रेट रिडक्टेज की क्रिया को नियंत्रित करता है।

सिलिकॉन (Silicon)

(1) सिलिका पादप कोशिका भित्ति की संरचना में योग देता है। यह प्रमुख रूप से एपीडर्मल तथा वास्कुलर ऊतकों को शक्ति प्रदान करता है।

(2) कोशिका से जल हानि रोकता है तथा कवकों के संक्रमण से रक्षा करता है।

(3) गन्ने में इन्वर्टेज एन्जाइम की सक्रियता कम करके शर्करा उत्पादन बढ़ाने में योगदान करता है।

(4) Mn^{++} व Fe^{+++} के अधिक सान्द्रण के कारण उत्पन्न विषैले प्रभाव को कम करता है।

(5) यह धान की उपज भी बढ़ाता है।

निकिल के कार्य–

निकिल का सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण में अहम योगदान होता है। निकिल दानों, फलों व सब्जियों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। पौधों की निकिल की आवश्यकता स्वतः ही मृदा से पूर्ण हो जाती है। निकिल ऐसे योगिकों के उपापचय में आवश्यक होता है जो मनुष्यों में हृदय, लीवर व गुर्दों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। निकिल विशेष रूप से हार्मोन्स, लीपइड्स व कोशिका भित्ति निर्माण से सम्बन्धित क्रियाओं के संचालन में योग

पौधों में पोषक तत्वों के अभाव के लक्षण (Nutrient Deficiency Symptoms of Plants)

यदि पौधे में एक अथवा एक से अधिक तत्वों की कमी होती है तो पादप वृद्धि असामान्य हो जाती है और विभिन्न पोषक तत्वों की कमी के विशिष्ट लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि मृदा से किस तत्व की आपूर्ति कम है। इस प्रकार मृदा के किसी पोषक तत्व के स्तर का ज्ञान हो जाता है। प्रायः पोषक तत्वों के अभाव के लक्षण अन्य निदान तकनीकों के पूरक का काम करते हैं। पौधों में पोषक तत्व का ऐसा स्तर होता है जब पोषक तत्व न तो पौधे की अधिकतम वृद्धि के लिए पर्याप्त होता है और न ही तत्व की कम के लक्षण दिखाई देते हैं। इस घटना को **अदृश्य भूख** (**Hidden hunger**) कहते हैं।

दृश्य निदान (Visual Diagnosis)–

यह ऐसी विधि है जिसमें पौधे पर अवपोषण के लक्षणों को देखकर पौधे के लिए उर्वरक की आवश्यकता का निदान किया जा सकता है। इस विधि की यह धारणा है कि कोई भी पौधा जो कि अवपोषण से त्रस्त है, या उसमें पोषक तत्व अत्यधिक है तो इससे पौधे के कई अंगों पर विशेष तौर पर पत्तियों पर विशिष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। पोषक तत्वों की अल्पता के कारण पत्तियों पर सामान्यता विशिष्ट प्रकार के रंगों का विकास होता है। आमतौर पर इन विशिष्ट लक्षणों की पहचान करने के लिए काफी अनुभव की आवश्यकता है।

पौधों को देखकर–पौधों में पोषक तत्वों की कमी का पता लगाना –

(1) पोषक तत्व जिनकी कमी के लक्षण, पहले पौधे की नीचे की पत्तियों अथवा पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं – इस वर्ग में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, मैग्नीशियम व जस्ता सम्मिलित है। ये तत्व पौधों में बहुत अधिक संचालनता (mobility) रखते हैं।

(2) पोषक तत्व जिनकी कमी के लक्षण, पौधे की ऊपरी भागों कलिका अथवा नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं– इस वर्ग में कैल्शियम, बोरोन, ताँबा, मैगनीज, गन्धक व लोहा सम्मिलित किये जाते हैं। पौधों में इन तत्वों का संचालन एक भाग से दूसरे भाग में बहुत कम होता है।

पौधों में पोषक तत्वों के कमी के लक्षण (Deficiency symptoms of nutrients in plants) –

(1) नत्रजन की कमी के लक्षण :–

1. पौधे बौने रह जाते है।
2. पौधे हल्के पीले रंग के दिखाई पड़ते हैं।
3. प्रोटीन प्रतिशत कम होती है।
4. पौधे की पत्ती के किनारे व नोक झुलसी हुई नजर आती है। नत्रजन पौधों में गतिशील होने के कारण कमी के लक्षण पहले पुरानी (निचली) पत्तियों पर आते हैं और फिर ऊपर की ओर नई पत्तियाँ प्रभावित होती हैं व सूख जाती हैं।
5. नत्रजन की भारी कमी में, पौधे पर फूल नहीं बनते या बहुत कम बन पाते हैं जिससे पौधे की उपज गिर जाती है।
6. कल्ले (Tiller) वाली फसलों में कल्ले कम फूटते हैं। जैसे अनाज कुल वाली फसलें।

(2) फॉस्फोरस की कमी के लक्षण :–

1. पौधों की जड़ों की वृद्धि व विकास बहुत कम होता है तथा कभी–कभी जड़ें भी सूख जाती हैं।
2. पौधो छोटे रह जाते है, तथा पत्तियों का रंग नीला अथवा बैंगनी हरा हो जाता है।
3. परिपक्वता देर में होती है, फूल–फल बहुत देर में बनते हैं तथा फलों या बीजों का आकार बहुत छोटा होता है।
4. पत्तियों का रंग हल्का बैंगनी या भूरा हो जाता है। पौधों में फास्फोरस गतिशील है अतः लक्षण पहले नीचे की पत्तियों पर व फिर ऊपर की पत्तियों की ओर बढ़ते हैं। पत्तियों के सिरे से यह रंग प्रारम्भ होकर, किनारे की और बढ़ती है। पत्तियों के मुख्य नसें हरी रहती है। चौड़ी पत्ती वाले पौधे में पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है। आलू में पत्तियाँ प्याले का आकार बना लेती है। गेहूँ व गन्ना आदि की फसलों में कल्ले कम फूटते हैं।
5. पौधे में पर्व छोटे रह जाते हैं। शाखाएँ पतली एवं कमजोर हो जाती है।

(3) पोटाश की कमी के लक्षण :–

1. पोटेशियम की कमी में पत्तियाँ धब्बेदार व भूरी हो जाती है। कमी के लक्षण पहले/पुरानी नीचे की पत्तियों पर प्रदर्शित होते है। पत्तियाँ समय से पूर्व ही गिर जाती है।
2. पौधों में पर्व की लम्बाई घटती है। पौधों की वृद्धि में कमी आती है।
3. पत्तियों के सिरे व किनारे झुलसे नजर आते है। कभी–कभी पत्तियों मोटी पड़ने लगती हैं और पत्तियों के सिरे मुड़ने लगते हैं। मुख्य नसें हरी बनी रहती हैं। बाद में सूखकर जालीदार संरचना बनती है।
4. कपास में फसल वृद्धि के समय ही पत्तियाँ गिरने लगती हैं। डोडे ठीक प्रकार से नहीं खुलते हैं।

5. तम्बाकू के पौधों में, पत्तियों की नसों के बीच में, सिरों पर या किनारों पर ऊतक निर्जीव हो जाने के कारण फल छोटे पड़ जाते हैं।
6. फल वृक्षों में फूल व फल कम लगते हैं।
7. मक्का के भुट्टे छोटे तथा सिरे पर दाने कम निकलते हैं।
8. आलू में पोटाश की कमी से पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है, जो बाद में पीले भूरे एवं कांसे के रंग में परिवर्तित हो जाता है। कन्द छोटे पड़ जाते हैं तथा जड़ों का विकास कम होता है। दलहनी फसलों में पत्तियों के किनारे पर पीले सफेद धब्बे पड़ जाते हैं।
9. कमी के लक्षण खेत में पहले नम क्षेत्र में दिखाई देते हैं। जड़ों का कम विकास होने के कारण पौधा गिर जाता है।

(4) केल्शियम की कमी के लक्षण :–

1. अग्रिम कलिका सूख जाती है।
2. कलियाँ व फल अपरिपक्व अवस्था में मुरझा जाते हैं।
3. जड़ों का विकास अपूर्ण होता है।
4. नई (ऊपरी) पत्तियों के किनारे झुक या सिकुड़ जाते हैं। पत्तियों के किनारे व सिरा मुड़ जाते हैं।

(5) मैग्निशियम की कमी के लक्षण :–

1. पौधो की निचली (पुरानी) पत्तियो का रंग किनारे व तने के बीच से नष्ट होता है। नसें हरी बनी रहती हैं।
2. अधिक कमी में पुरानी पत्तियाँ सूख जाती हैं।
3. पत्तियाँ आकार में छोटी रह जाती हैं तथा ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं।
4. पत्तियाँ अपरिपक्व अवस्था में गिर सकती है तथा इन पर फफूंदी का आक्रमण हो सकता है।

(6) गन्धक की कमी के लक्षण :–

1. पौधे की ऊपरी (नई पत्तियों) पत्तियों की शिरायें व शिराओं के बीच के भाग हल्के हरे रंग के हो जाते हैं।
2. पौधे की वृद्धि धीमी हो जाती है।

(7) जस्ते की कमी के लक्षण :–

1. जस्ते की कमी के लक्षण नयी व पुरानी पत्तियों पर एक साथ दिखाई पड़ते है। पत्तियों का आकार छोटा (विशेष रूप से फल वृक्षों में) हो जाता है, पत्तियाँ मुड़ सकती हैं।
2. पत्तियों के किनारे ऐंठ जाते हैं व मुड़ जाते हैं।
3. पत्तियों का रंग धुधंला पीला हो जाता है।
4. फलों का आकार छोटा हो जाता है तथा फलों में बीजों का उत्पादन घट जाता है। फल व कलिका रचना बहुत कम होती है।
5. नये पौधों में डाइबैक का प्रभाव पाया जाता है। धान में खेरा रोग हो जाता है।
6. नीबू कुल में लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है। इसका तना बौना रह जाता है।

(8) लोहे की कमी के लक्षण :–

1. पौधों की नई (ऊपरी) पत्तियाँ पहले पीली पड़ती हैं।
2. पत्तियों के किनारे बहुत समय तक हरे बने रहते हैं तथा नसें हरी बनी रहती हैं।
3. तना छोटा हो जाता है।
4. नई कलिकाऐं मुरझाई नजर आती हैं।

(9) ताम्बे की कमी के लक्षण :–

1. नई पत्तियों के किनारे व नोंक में क्लोरोसिस व पत्तियाँ बदरंग दिखाई पड़ती है।
2. नींबू कुल के पौधों में, नई वृद्धि वाले भागों में डाइबैक हो जाता है।
3. नींबू कुल के फलों में लाल भूरे धब्बे अनियमित आकार के पाये जाते हैं।
4. फलों के रस में अम्ल कम बनता है।

(10) मैंगनीज की कमी के लक्षण :–

1. नई (ऊपरी) पत्तियों की नसों के बीच क्लोरोसिस, अत्यन्त कमी में पत्तियों का हल्का रंग, सफेद हो जाता है।
2. पत्तियों पर मृत उत्तियों के धब्बे बन जाते हैं।
3. जई पर बहुत ही शीघ्र कमी के लक्षण आते हैं।
4. पत्तियों की नसें हरी बनी रहती है।

(11) बोरोन की कमी के लक्षण :–

1. कलिका (Terminal Bud) का रंग हल्का हरा हो जाता है तथा आधार पर पीला पाया जाता है।
2. गोभी के फूल का आकार अनियमित (Deformed) छोटा व फल पर लाल धब्बे पड़ जाते हैं।
3. दलहनी फसलों में जड़ों की ग्रन्थियों में वृद्धि रूक जाती है।
4. कुछ पौधों में तने फट जाते हैं।
5. जड़ वाली फसलों में काले धब्बे या बीच वाले भाग में पट्टियाँ पाई जाती हैं।

6. अधिक कमी में वृद्धि भागों की मृत्यु हो जाती है।
7. बाद की अवस्था में पत्तियाँ मुड़ सकती है।

(12) मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण :–

1. पौधे छोटे पीले नत्रजन की कमी के समान होते हैं।
2. पौधों की नई पत्तियों पर, लक्षण दिखाई पड़ते हैं।
3. दलहनी पौधों पर लक्षण स्पष्ट होते हैं तथा इनकी जड़ों में बनने वाली ग्रन्थियां कमजोर रह जाती हैं।
4. जई की पत्तियाँ पीछे की ओर झुक जाती हैं।
5. टमाटर की नीचे की पत्तियों के किनारे मुड़ जाते है।

(13) क्लोरीन की कमी के लक्षण :–

1. खेत में इसकी कमी के लक्षण अभी तक नहीं देखे गये हैं। गमलों में क्लोरीन की कमी में, पत्तियों में विल्ट (Wilt) के लक्षण नजर आते हैं।
2. पत्ता गोभी में इसकी कमी में पत्ते मुड़ जाते हैं।
3. बरसीम की पत्तियाँ छोटी व मोटी हो जाती हैं।
4. क्लोरोसिस, नैक्रोसिस व टमाटर के पौधों पर असाधारण प्रकार की रचनायें बन जाती हैं।

पोषक तत्वों के पादप द्वारा अधिग्रहण की क्रिया विधि – (Mechanism of Absorption of Nutrients by Plant)

सामान्यतया सभी पादप, जड़ों द्वारा मृदा से पोषक तत्व अधिग्रहण करते हैं। पादप अपनी जड़ो द्वारा मृदा से जल एवं खनिज पोषक तत्वों का अवशोषण की क्रिया विधि निम्नांकित चरणों में सम्पन्न होती है–

1. मृदा ठोस कणों से विलयन प्रावस्था में आयनों का स्थानान्तरण।
2. मृदा घोल से जड़ पृष्ठ तक आयनों का स्थानान्तरण।
3. जड़ के अन्दर आयनों का प्रवेश।
4. जड़ से तने एवं पत्तियों तक आयनों का स्थानान्तरण।

(1) मृदा ठोस कणों से विलयन प्रावस्था में आयनों का स्थानान्तरण –

मृदा जल ठोस कार्बनिक तथा अकार्बनिक कणो के घनिष्ठ सम्पर्क में रहता है। जब कण इसमें घुल जाते है तो मृदा विलयन कहलाता है। मृदा विलयन ठोस कणों के साथ गतिक साम्य की दशा में होता है। मृदा विलयन में खनिज तत्वों की पूर्ति हेतु मृदा कणों से आयन मृदा विलयन में आ जाते हैं। जिस मृदा में आयन उपयुक्त मात्रा में होते है वह मृदा उपजाऊ मृदा कहलाती है।

इस प्रकार मृदा से जड़ों द्वारा किसी पोषक तत्व का अवशोषण होने पर मृदा विलयन का बार–बार नवीनीकरण होता रहता है।

(2) मृदा विलयन से जड़ पृष्ठ पर आयनों का स्थानान्तरण–

मृदा विलयन से पौधें की जड़ों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण तीन विधियों द्वारा होता है–

(अ) जड़–अपरोधन (Root Interception)– जड़ें मृदा में प्रवेश करके मृदा कोलॉइड्स के सम्पर्क में आती है। इस विधि द्वारा पोषक तत्वों के अवशोषण में जड़–अपरोधन क्रिया का योगदान अन्य विधियों की तुलनां कम होता है।

(ब) संहति प्रवाह (Mass Flow)– कुछ पोषक तत्व मृदा जल सहित जड़ों की ओर गति करने से पौधे अवशोषित कर लेते हैं। इस प्रकार की गति को संहति प्रवाह कहते हैं। पादप वाष्पोत्सर्जन क्रिया तेज होने से संहति प्रवाह की क्रिया भी अधिक होती है। नत्रजन, केल्शियम, मैग्निशियम तथा गन्धक का अवशोषण हेतु यह क्रिया विधि महत्वपूर्ण है।

(स) विसरण (Diffusion)– पादप द्वारा पोषक तत्वों के अवशोषण से जड़ों के नजदीक आयन्स की सान्द्रता कम होने पर मृदा विलयन से जड़ों की तरफ आयनों का विसरण होता है। दो स्थानों पर आयनों की सान्द्रता में अन्तर होने पर विसरण होता है। जिन पोषक तत्वों की मृदा विलयन में सान्द्रता कम होती है तथा उनका जड़ों द्वारा अवशोषण तेजी से होता है उनके लिए विसरण क्रिया महत्त्वपूर्ण है। पोषक तत्वों के आयन अधिक सान्द्रण वाले स्थान से कम सान्द्रण वाले स्थान, पादप जड़ की ओर विसरित होते हैं।

आयनों का विसरण तब तक चलता रहता है जब तक कि एक नई साम्यावस्था स्थापित नहीं हो जाती है। फिक्स के नियमानुसार मृदा कणों से जड़ो तक पोषक तत्वों का विसरण होता है।

(3) जड़ों के अन्दर आयनों का प्रवेश–

पोषक तत्वों के आयनों का जड़ों में प्रवेश दो क्रियाविधियों द्वारा होता हैं–

(अ) निष्क्रिय अवशोषण (Passive Absorption)

(ब) सक्रिय अवशोषण (Active Absorption)

(अ) निष्क्रिय अवशोषण (Passive Absorption)–

निष्क्रिय अवशोषण में उपापचयी ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती है। जड़ों के सेल्युलोज तन्तु स्पंज की तरह कार्य करने से लगातार विलयन का विसरण होता रहता है। निष्क्रिय अवशोषण में मृदा विलयन से आभासी स्वतन्त्र स्थान में आयनों

का विसरण होता है। यह क्रिया बिना किसी ऊर्जा व्यय किये सान्द्रता प्रवणता के कारण सम्पन्न होती है।

वर्तमान आधुनिक विचारधारा के अनुसार आयनों का जड़ों में प्रवेश प्रेरक बल वैद्युत रासायनिक विभव के कारण होता है। यह विभव विलयन की सान्द्रता और उसमें उपस्थित आयनों के आवेश के अनुपात पर निर्भर करता है। कौशिका झिल्ली के अन्दर कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) ऋण आवेशित होता है तथा मृदा विलयन उदासीन होता है।

इस प्रकार किसी आयन की सान्द्रता कोशिका झिल्ली के अन्दर तथा बाहरी विलयन में एक समान होने पर भी वैद्युत रासायनिक विभवान्तर पैदा हो जाता है। यही विभवान्तर आयनों के मृदा विलयन से कोशिका झिल्ली को पार करके अन्दर की ओर जाने के लिए प्रेरक बल का कार्य करता है।

(ब) सक्रिय अवशोषण (Active Absorption) –

सक्रिय अवशोषण में उपापचयी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस क्रिया में आन्तरिक स्थान के भीतर आयनों का अवशोषण उपापचयी होता है अर्थात इस प्रकार के अवशोषण के लिए जड़ कोश द्वारा ऊर्जा व्यय होती है। बाह्य स्थान में अवशोषण के विपरित यह विशेषकर अनुत्क्रमणीय होती है। इस प्रकार के अवशोषण में आयनों की वरण–क्षमता के लिए उत्तरदायी होता है। ये वाहक जो मेटाबोलिज्म से उत्पन्न पदार्थ होते है जो स्वतन्त्र आयनों से संयोग करते है।

ये वाहक–आयन जटिल झिल्ली तथा अन्य अवरोधों, जो स्वतन्त्र आयनों के लिए पारगम्य नहीं होते हैं, को पार कर सकते हैं। इस आयन स्थानान्तरण के पूर्ण होने पर आयन–वाहक जटिल टूट जाता है तथा आयन कोष के आन्तरिक स्थान के अन्दर मुक्त हो जाते है और वह अपनी पूर्व अवस्था को ग्रहण कर लेता है। पोषकों के शोषण के लिए ऊर्जा का प्रदान जड़ों के वायुवीय श्वसन से होता है।

(4) जड़ से तने एवं पत्तियों तक आयनों का स्थानान्तरण –

जड़ों द्वारा अवशोषण के पश्चात आयन्स जाईलम वाहिका में चले जाते हैं, जहाँ से उसका स्थानान्तरण तने तथा पत्तियों में जल के साथ होता रहता है। आयन्स के स्थानान्तरण की क्रिया मुख्य रूप से जल के साथ संहति प्रवाह (Mass Flow) मानी जाती है।

इस क्रिया द्वारा आयनों के स्थानान्तरण की दर मुख्य रूप से जड़ों द्वारा जल अवशोषण की दर वाष्पोत्सर्जन की दर पर निर्भर करती है। वाष्पोत्सर्जन की दर के कम होने से आयनों की ऊपर की ओर स्थानान्तरण की दर भी कम जो जाती है। जाइलम में नत्रजन का स्थानान्तरण नाइट्रेट, अमोनियम तथा एमीनों अम्लों के रूप में होता है।

पौधों द्वारा मृदा से पोषक तत्व ग्रहण करने की प्रक्रियाएं निम्न चित्र से प्रदर्शित की जाती हैं–

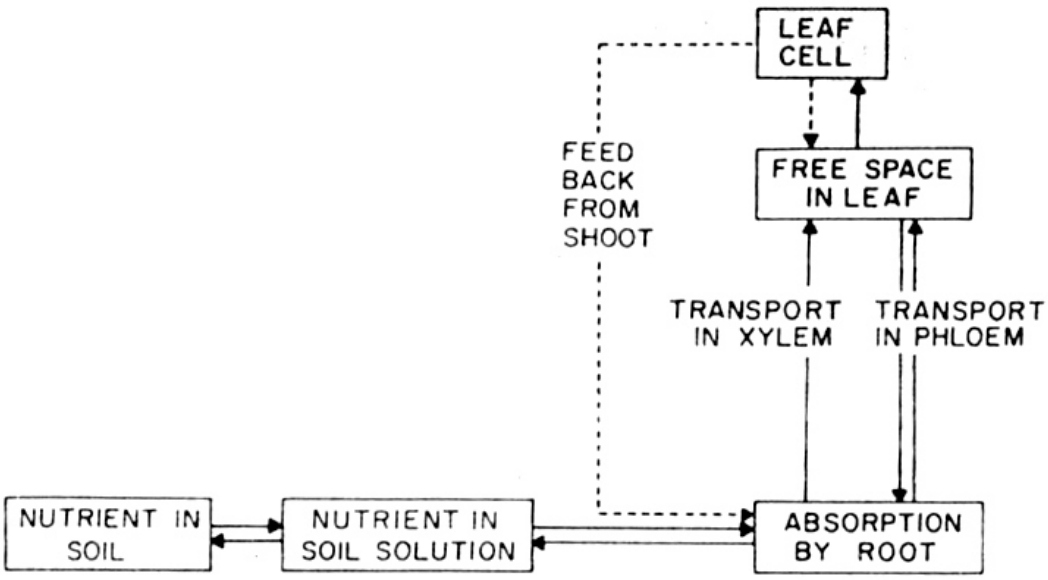

चित्र–पौधों द्वारा मृदा से पोषक तत्व ग्रहण करने की प्रक्रियाएं

सांकेतिक पौधे (Indicator Plants)

विशिष्ट पोषकों की अल्पता के लिए कुछ पौधे सूचकों के रूप में विशेष रूप से उपयुक्त माने गये हैं। ये पौधे अल्पताओं से प्रभावित हो जाते हैं और ऐसे स्पष्ट लक्षण विकसित करते हैं जो अन्य अल्पताओं के द्वारा नहीं दर्शाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में, वे पौधे जो साधारणतया पोषक तत्वों की कमी को दर्शाते है, सांकेतिक पौधे (Indicator Plants) कहलाते हैं।

पोषक तत्वों की कमी दर्शाने वाले सांकेतिक पौधे

क्र.सं.	पोषक तत्व	सांकेतिक पौधे
1.	नाइट्रोजन	मक्का, गेहूँ, जौ, दलहनी पौधे
2.	फॉस्फोरस	मक्का, जौ, टमाटर, सेम, रिजका
3.	पोटैशियम	कपास, केला, आलू, रिजका, सेम, तम्बाकू, गन्ना, अनाज फसलें, सब्जियाँ व फल
4.	कैल्शियम	बरसीम, दलहनी फसलें
5.	मैग्नीशियम	आलू, फूलगोभी, सेम, चैरी
6.	गंधक	मक्का, बरसीम, जौ, सेम, नींबू, सोयाबीन, तम्बाकू, राया, चाय
7.	लोहा	फूलगोभी, नींबू, केला, धान, जौ, ज्वार, आडू
8.	मैगनीज	सेब, नींबू, चुकन्दर, चैरी, मक्का सोयाबीन
9.	जस्ता	जई, मक्का, जौ, ज्वार, नींबू, आलू, सेम, प्याज, टमाटर, धान
10.	ताँबा	नींबू, सेब, जई, जौ, मक्का, तम्बाकू, टमाटर, प्याज
11.	बोरॉन	बरसीम, रिजका, शलजम, अमरुद, गाजर, नाशपाती, गोभी, सेब
12.	मोलिब्डिनम	टमाटर, पालक, फूलगोभी, पातगोभी, चुकन्दर, नींबू, दलहने, सरसों

पोषक तत्वों के विषैले प्रभाव (Toxicities of Nutrients)

आवश्यक पोषक तत्वों तथा लाभदायक पोषक तत्वों, विशेषकर भारी धातु तत्वों की पौधों को अत्यधिक मात्रा में सुलभता उन पर विषैला प्रभाव उत्पन्न करती है जिसके कारण पौधों का विकास अवरुद्ध हो जाता है, पौधे अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं तथा कभी–कभी पौधों की मृत्यु भी हो जाती है। पौधों पर पोषक तत्वों के आधिक्य से उत्पन्न विषैला प्रभाव निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है–

(1) पोषक तत्वों की सुलभ मात्रा का स्तर।

(2) अन्य सहयोगी तत्वों की आपेक्षिक सुलभता विशेषतः लोहे व जस्ते के संदर्भ में।

(3) पौधों की जीनी संरचना।

(4) पौधों/फसल की अवस्था/आयु।

सामान्यतः प्रारम्भिक अवस्था में पौधे पोषक तत्वों के अधिक सांद्रण को सहन कर लेते हैं। पौधे की आयु में वृद्धि होने पर तत्वों का विषैला प्रभाव अधिक सरलता से होता है।

बड़े पोषक तत्व, सूक्ष्मपोषक तत्वों की अपेक्षा कम विषैला प्रभाव उत्पन्न कर पाते हैं। बड़े तत्वों में P तथा Ca के आधिक्य में उपयोग से आयरन क्लोरोसिस, N के आधिक्य से फसलों का गिरना आदि प्रमुख हैं।

सामान्यतः सूक्ष्म तत्वों की लघु मात्रा ही बहुत हानिकाक होती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों का विषैलापन उनके अभावों के प्रभावों से अधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसका अभाव होने पर पौधा जिन्दा रहता है तथा कुछ न कुछ उत्पादन देता है। परन्तु सूक्ष्म तत्वों का आधिक्य होने पर वह पौधे पर विषैला प्रभाव डालता है जिससे या तो पौधा मर जाता है अथवा रोगग्रस्त हो जाता है।

कुछ सूक्ष्म तत्वों के विषैले प्रभाव–

(1) लोहा (Iron)– पादप वृद्धि अवरुद्ध व जड़ों में भूरापन व सूखापन तथा ब्राजिंग (ताँबे जैसा रंग) जड़ों में गलन पैदा होना।

(2) मैंगनीज (Manganese)– पत्तियों में कुँचन (crincle) अनाजों (जई) में ब्हिप टेल (लोमड़ी रंग), बादामी अथवा नीललोहित पत्तियां व तने, अनाजों की पत्तियों पर भूरे धब्बे तथा जड़ों का रंग भूरा हो जाता है।

(3) ताँबा (Copper)– नवीन पत्तियों में हरिमाहनता तथा पुरानी पत्तियों पर लाल व गुलाबी धब्बे पत्तियों में स्फीति अभाव तथा जड़ों का लाल–बादामी होकर चटकना व गलना। लोहे की सुलभता कम होना।

(4) जस्ता (Zinc)– पत्तियाँ लाल भूरी होकर सूख जाती है तथा कागज जैसी प्रतीत होती है। पत्तियाँ किनारों की ओर से मुड़कर गोल हो जाती है। अतः शिराओं पर लाल–भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। फॉस्फोरस की सुलभता घट जाती है। अनाज फसलों पर कम प्रभाव।

(5) मोलिब्डिन (Molybdenum)– पत्तियों पर सुनहरे –पीले तथा नीले धब्बे। टमाटर, आलू आदि के तने भी सुनहरे पीले हो जाते हैं।

(6) बोरॉन (Boron)– जौ व मक्का में नवीन पत्तियों में अत्यधिक हरिमा–हीनता, विरंजन होकर मध्य से लटक जाना

तथा कलियों का रंग उड़ जाना तथा फूलों के हल्के रंग होना।

(7) क्लोरीन (Chlorine)– पत्तियों की संख्या व आकार में कमी व मोटा होना तथा पत्तियों के किनारे बादामी होकर फट जाते हैं।

क्रान्तिक स्तर (Critical limits)

मृदा व पौधों में पोषक तत्व का वह स्तर जिससे पादप एवं मृदा विश्लेषण से प्राप्त पोषक तत्व का मान यदि कम होता हैं तो पोषक तत्वों की मृदा व पौधों में अत्यधिक कमी प्रकट होती है। भिन्न–भिन्न पोषक तत्वों के मृदा व पौधों में क्रान्तिक स्तर भी भिन्न होते हैं।

पादप पोषक तत्वों के मृदा एवं पौधों में क्रान्तिक स्तर (Critical limits of Plant Nutrients in Soil & Plants)

सुलभ पोषक तत्व	मृदा	पौधा
N	<280 कि./है.	<1.50%
P	<20 कि./है.	<20%
K	<100 कि./है.	<1.40%
S	<10.0 पी.पी.एम.	<0.15 0.20%
Ca	सी.ई.सी. <50%	<0.20%
Mg	सी.ई.सी. <4%	<0.10 0.20%
Zn	<0.60 पी.पी.एम.	<20.0 पी.पी.एम.
Fe	<1.0 1.50 पी.पी.एम.	<50.0 पी.पी.एम.
Mn	<2.0 पी.पी.एम.	<20.0 पी.पी.एम.
Cu	<4.0 पी.पी.एम.	<4.0 पी.पी.एम.
B	<0.5 पी.पी.एम.	<1.0 पी.पी.एम.
Mo	<0.02 पी.पी.एम.	<0.10 पी.पी.एम.

पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक :

पादप पोषक तत्वों की उपलब्धता को निम्नांकित कारक प्रभावित करते है –

(1) मृदा पी. एच. :– मृदा पी.एच. एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता का निम्नांकित चित्र के माध्यम से स्पष्ट है कि अधिकांश पोषक तत्वों की उपलब्धता पी. एच. 6.5 से 7.5 के बीच होती है। Fe, Mn, Al, Cu, Co सूक्ष्म पोषक तत्व अम्लीय परिस्थितियों में अधिक विलेय होने से इनकी उपलब्धता अधिक होती है। 7.0 से अधिक पी. एच. पर इनकी उपलब्धता कम होती चली जाती है।

अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की तुलना में उच्च पी. एच. वाली मृदाओं में Mo की उपलब्धता अधिक होती है। इसी प्रकार अधिक लवणीय व क्षारीय मृदा में कैल्सियम अविलेय अवस्था (कैल्सियम ट्राईफास्फेट) के रूप में बदलने से पौधों को प्राप्त नहीं होता है।

(2) पैतृक पदार्थ :– मृदा का निर्माण पैतृक पदार्थों से होता है यदि पैतृक पदार्थ में पौधों के पोषक तत्व अधिक है, तो उनसे बनने वाली मृदाओं में पौधों के पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक होगी।

(3) मृदा आयु :– पुरानी मृदाओं में अधिक अपक्षय, लगातार फसलों के उगाने, मृदा क्षरण एवं अपक्षालन के कारण पोषक तत्वों की उपलब्धता कम होती जाती है, जबकि नवनिर्मित मृदाओं में पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक होती है।

(4) जलवायु :– जलवायु भी पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अपक्षालन द्वारा घुलनशील पोषक तत्व मृदा के निचले संस्तरों में चले जाते हैं, जिससे मृदा की उपरी सतह पर पोषक तत्वों की उलब्धता में कमी हो जाती है। अधिक तापमान एवं शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में भी पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है।

(5) मृदा की भौतिक दशा :– मृदा में पर्याप्त वायु एवं जल संचार होने पर मृदा की भौतिक दशा अच्छी होने से जलधारण क्षमता, जीवाणुओं की क्रियाशीलता, जीवांश पदार्थों का विघटन अच्छा होने से मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है। अतः मृदा की भौतिक दशा भी पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करती है।

(6) मृदा सूक्ष्म जीव :– मृदा में उपस्थिति सूक्ष्मजीव शैवाल, एक्टीनोमाइसिटीज तथा बैक्टीरिया है। मृदा में सूक्ष्मजीव मृदा में वायु संचार बढ़ाने, जटिल कार्बनिक पदार्थो का विच्छेदन कर ह्यूमस निर्माण करने, वायु मण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने का कार्य करते है जिससे मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक रहती है। जिन मृदाओं में सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता कम होती है, पोषक तत्वों की उपलब्धता भी कम रहती है।

(7) कार्बनिक पदार्थ :– कार्बनिक पदार्थ (खाद व वनस्पति अवशेष) के सड़ने–गलने से मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की प्राप्ति होती है, अतः जिन मृदाओं में कार्बनिक पदार्थो की मात्रा अधिक होती है, पोषक त्त्वों की उपलब्धता अधिक होती है।

(8) जल क्रान्ति :– मृदा में अधिक समय तक पानी भरे रहने से जल निकास ठीक से नहीं हो पाता तथा मृदा में वायु की कमी हो जाती है। वायु की कमी से विनाइट्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है, परिणामतः नाइट्रोजन पोषक तत्वा की उपलब्धता घट जाती है।

(9) फसल प्रणाली :– किसी निश्चित भू–भाग पर लगातार एक ही फसल लेने से निश्चित पोषक तत्वों के अवशोषण से पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। वैज्ञानिक ढंग से फसल चक्र अपनाकर फसलें उगाने से पोषक तत्वों की उपलब्धता बनी रहती है।

(10) जुताई :– मृदा की जुताई का ढंग व समय भी मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करता है। ढ़ालदार खेतों में जुताई ढाल के लम्बवत करने से मृदा कटाव अधिक होता है तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी आ जाती है। मृदा की उचित गहराई तथा सही समय पर उचित ढ़ंग से जुताई करने पर पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक रहती है।

(11) स्थलाकृति :– मृदा की स्थलाकृति भी पौधों के पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करती है। ढालू पहाड़ी क्षेत्रों में मृदा का क्षरण अधिक होता है जिससे पोषक तत्वों की उपलब्धता कम रहती है। निचले भागों में ऊँचें स्थानों से पोषक तत्व एवं कार्बनिक पदार्थ पानी वे साथ बहाकर निचले स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। अतः निचले स्थानों की मृदाओं में पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक रहती है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. पौधों अपने आवश्यक पोषक तत्व वायु, पानी तथा मृदा से लेते हैं।
2. वायु तथा पानी से मिलने वाले कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन पोषक तत्व हैं।
3. पौधों हेतु नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम प्राथमिक पोषक तत्व तथा केल्शियम, मैग्नीशियम, गंधक गोण पोषक तत्व द्वितियक पोषक तत्व कहलाते हैं।
4. आरनॉन के अनुसार किसी तत्व की कमी के कारण कोई पौधा अपनी वानस्पतिक वृद्धि अथवा प्रजनन क्रिया पूर्ण नहीं कर पाता है तो वह तत्व पौधे के लिए आवश्यक होता है।
5. पौधे नाइट्रोजन को NH_4^+ , NO_3^- फॉस्फोरस को $H_zPO_4^-$ पोटेशियम को K^+ रूप में ग्रहण करते है।
6. पोषक तत्वों के स्रोत–फसलों के अवशेष, कार्बनिक व अकाबर्निक पदार्थ, वर्षा जल, दलहनी फसल की जड़े, इत्यादि हैं।
7. नत्रजन की कमी से पौधे बोने व हल्के पीले रंग के दिखाई देते हैं।
8. फॉस्फोरस की कमी से पौधों की जड़ों के विकास में कमी, पत्तियों का रंग बैंगनी हरा तथा परिपक्वता देरी से आती है।
9. जस्ते की कमी से धान में खेरा रोग हो जाता है।
10. साधारणतया सभी पादप जड़ों द्वारा मृदा से पोषक तत्व अधिग्रहण करते हैं।
11. पादप अपनी जड़ों द्वारा मृदा से जल एवं खनिज पोषक तत्वों का अवशोषण की क्रिया विधि निम्नलिखित चार चरणों में सम्पन्न होती है –
    (i) मृदा ठोस कणों से विलयन प्रावस्था में आयनों का स्थानान्तरण।
    (ii) मृदा घोल से जड़ पृष्ठ तक आयनों का स्थानान्तरण।
    (ii) जड़ के अन्दर आयनों का प्रवेश।
    (iv) जड़ से तने एवं पत्तियों तक आयनों का स्थानान्तरण।
12. मृदा विलयन से पौधों की जड़ों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण– जड़ अपरोधन, संहति प्रवाह तथा विसरण द्वारा होता है।
13. जड़ों के अन्दर आयनों का प्रवेश निष्क्रिय तथा सक्रिय अवशोषण विधि द्वारा होता है।
14. मृदा पी.एच., पैतृक पदार्थ, मृदा की भौतिक दशा, कार्बनिक पदार्थ, फसल प्रणाली, मृदा जुताई का ढंग इत्यादि कारक पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं।
15. उदासीन मृदा पी. एच. पर अधिकांश पोषक तत्व उपलब्ध अवस्था में रहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. पौधों के लिए आवश्यक प्राथमिक पोषक तत्व है –
   (अ) नत्रजन (ब) फॉस्फोरस
   (स) पोटेशियम (द) उपर्युक्त सभी
2. पौधों के आवश्यक पोषक तत्वों की कसौटी देने वाला वैज्ञानिक है –
   (अ) आरनॉन (ब) स्वामीनाथन
   (स) आइन्सटीन (द) वैकंटरमन
3. अधिकांश पौधे नत्रजन का उपयोग करते है –
   (अ) NH_2 (ब) N_2
   (स) NO_3^- (द) NO_2^-

4. धान में खेरा रोग किस पोषक तत्व की कमी से होता है –

(अ) Fe (ब) Zn

(स) Cu (द) K

5. अधिकांश पोषक तत्व किस मृदा पी.एच. पर उपलब्ध होते हैं ?

(अ) अम्लीय (ब) क्षारीय

(स) उदासीन (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

अतिलघुतरात्मक प्रश्न –

1. पौधों हेतु तीन प्राथमिक पोषक तत्वों के नाम लिखिए।
2. पौधों हेतु तीन गौण पोषक तत्वों के नाम लिखिए ।
3. पौधे नत्रजन को किस रूप में ग्रहण करते हैं ?
4. फॉस्फोरस की कमी का एक लक्षण लिखिए ।
5. पौधों की अग्र कलिका किस पोषक तत्व की कमी से सूखती है ?
6. लोह तत्व की कमी से पौधे के कौनसे भाग की पत्तियाँ पीली पड़ती है ?
7. पादप जड़ों के अन्दर आयनों के प्रवेश की दो क्रिया विधियों के नाम लिखिए।
8. अम्लीय परिस्थितियों में कौनसे पोषक तत्व अधिक उपलब्ध रहते हैं ?
9. मृदा में सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता किस पी.एच. मान पर सर्वाधिक होती है ?
10. मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता बनाये रखने हेतु किस प्रकार की फसल प्रणाली अपनानी चाहिए ?

लघुतरात्मक प्रश्न–

1. प्राथमिक एवं गौण पोषक तत्वों के नाम लिखिए।
2. भूमि से मिलने वाले पौधों हेतु आवश्यक पोषक तत्वों के नाम लिखिए।
3. आरनॉन के अनुसार पौधों के आवश्यक पोषक तत्वों के निर्धारण की कसौटी के तीन बिन्दु लिखिए।
4. पौधों अपने भोजन के रूप में पोषक तत्व किस रूप में लेते हैं ? तालिका बनाइये।
5. पोषक तत्वों की प्राप्ति के कोई चार स्रोतों के नाम लिखिए ।
6. नत्रजन की कमी के लक्षण लिखिए।
7. पादप पोषक तत्वों के अवशोषण की क्रिया विधि के चार चरण लिखिए।
8. मृदा विलयन से जड़ पृष्ठ तक आयनों के स्थानान्तरण की विसरण विधि को समझाइए।
9. पोषक तत्वों की उपलब्धता के मृदा पी. एच. के प्रभाव को समझाइये।
10. पौधों को देखकर पौधों के पोषक तत्वों की कमी का पता लगाने के दो लक्षण लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का वर्णन कीजिए।
2. मृदा में पोषक तत्वों की प्राप्ति के स्रोतों का वर्णन कीजिए।
3. पौधों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
4. पोषक तत्वों के पादप द्वारा अधिग्रहण की क्रियाविधि को समझाइये।
5. पादप पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारको का वर्णन कीजिए।
6. आवश्यक पोषक तत्वों के कार्य लिखिए।
7. सूक्ष्म पोषक तत्वों के कार्य लिखिए।

उत्तरमाला–

1. (द), 2. (अ) 3. (स) 4. (ब) 5. (स)

अध्याय – 8

उर्वरकों की मृदा में अभिक्रिया एवं फसलों में प्रभाव (Reaction of Fertilizers in Soil & Effects on Crops)

उर्वरक (Fertilizers)–

वे अकार्बनिक रासायनिक पदार्थ होते हैं जो कारखानों में तैयार किये जाते हैं। इनमें पौधों के पोषक तत्वों की मात्रा अधिक पायी जाती है। कुछ उर्वरक कार्बनिक रूप में पाये जाते है, जैसे–यूरिया। उर्वरकों में पौधे के एक या दो पोषक तत्व उपस्थित रहते हैं। सभी जल विलेय उर्वरक होते हैं तथा पौधे आसानी से एवं शीघ्र ही पोषण तत्वों का शोषण कर लेते हैं।

उपलब्ध पोषक तत्वों के आधार पर रासायनिक उर्वरकों का वर्गीकरण (Classification of chemical fertilizers based on nutrient availability)–

रासायनिक उर्वरकों को पाँच भागों में बाँटा जाता है–

(1) नाइट्रोजनधारी उर्वरक (Nitrogenous fertilizers)

(2) फॉस्फेटिक उर्वरक (Phosphatic fertilizers)

(3) पोटैशिक उर्वरक (Potassic fertilizers)

(4) यौगिक उर्वरक (Compound fertilizers)

(5) एकल उर्वरक (Straight fertilizers)

(1) नाइट्रोजनधारी उर्वरक (Nitrogenous fertilizers)– नाइट्रोजनधारी उर्वरकों को उनमें पाये जाने वाली नाइट्रोजन के प्रकार के अनुसार चार भागों में बाँटा जा सकता हैं–

(i) अमोनियम उर्वरक (Ammonical fertilizers)– इन उर्वरकों में नाइट्रोजन अमोनिया आयन (NH_4^+ form N) के रूप में होती है। भूमि में इसका उपयोग करने पर यह मृदा के सूक्ष्म कणों से चिपक जाती है जिससे निक्षालन (Leaching) द्वारा हानि नहीं हो पाती। अतः इन उर्वरकों का प्रयोग पानी भरे खेत में भी किया जा सकता है। यह उर्वरक भूमि पर अम्लीय प्रभाव डालते हैं। धान की फसल के लिए ये सबसे उपयुक्त उर्वरक होते हैं। अमोनियम सल्फेट (20.5% N) व अमोनियम क्लोराइड (25% N) इस वर्ग के प्रमुख उर्वरक हैं।

(ii) नाइट्रेट उर्वरक (Nitrate fertilizers)– इन उर्वरकों में नाइट्रोजन नाइट्रेट आयन (NO_3^- form N) के रूप में होती है। अधिकांश पौधे नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में ग्रहण करते हैं। नाइट्रेट युक्त उर्वरक पानी में शीघ्र घुलनशील होने के कारण पौधों को बहुत जल्दी उपलब्ध हो जाते हैं। इस प्रकार उर्वरक वर्षा के मौसम में प्रयोग के लिए उपर्युक्त नहीं होते हैं क्योंकि नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में अधिक घुलनशील होती है जो लीचिंग द्वारा नष्ट हो जाती है। इन उर्वरकों का प्रभाव क्षारीय होता है। जैसे–सोडियम नाइट्रेट (16% N), कैल्शियम नाइट्रेट (15% N), पोटैशियम नाइट्रेट (13% N) आदि।

(iii) नाइट्रेट एवं अमोनियम उर्वरक (Nitrate & Ammonical fertilizers)– इन उर्वरकों में नाइट्रोजन अमोनिया व नाइट्रेट (NH_4^+ and NO_3^- form N) दोनों आयनों के रूप में पायी जाती है। इन उर्वरकों का प्रभाव अमोनियम तथा नाइट्रेट दोनों के बीच का होता है। जैसे– कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट (CAN) (25-26% N), अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट (26% N), अमोनियम नाइट्रेट (33.5% N)।

(iv) एमाइड उर्वरक (Amide fertilizers)– इस वर्ग के उर्वरक यूरिया तथा कैल्शियम सायनाइड हैं। इनमें कार्बन तत्व पाया जाता है इसलिए इन्हें कार्बनिक उर्वरक भी कहते हैं। ये उर्वरक भी जल में शीघ्र विलय होते हैं। इन उर्वरकों की नत्रजन पौधों को देर से मिलती है। भूमि में उपस्थित जीवाणुओं की क्रिया के फलस्वरूप एमाइड नत्रजन क्रमशः अमोनियम व नाइट्रेट में परिवर्तित होती है। मृदा पर यूरिया का प्रभाव अम्लीय होता है।

यूरिया में सबसे अधिक नाइट्रोजन (46% N) पायी जाती है। कैल्शियम साइनामाइड में (21% N) होती है।

(2) फॉस्फेटिक उर्वरकों का वर्गीकरण (Classification of Phosphatic fertilizers)–

फॉस्फेटिक उर्वरकों को विलयता के आधार पर निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है–

(i) जल विलेय फॉस्फेट युक्त उर्वरक– इन उर्वरकों में फॉस्फोरस जल विलेय मोनो कैल्शियम फॉस्फेट के रूप में होता है। इस वर्ग के प्रमुख उर्वरक निम्न हैं–

(1) सिंगल सुपर फॉस्फेट (16% P_2O_5)

(2) ट्रिपल सुपर फॉस्फेट (40 - 42% P_2O_5)

(3) मोनो अमोनियम फॉस्फेट (11% N, 48% P_2O_5)

(4) डाइ अमोनियम फॉस्फेट (18% N, 46% P_2O_5)

इनमें फॉस्फोरस $H_2PO_4^-$ आयन के रूप में होता है।

(ii) साइट्रिक अम्ल अथवा साइट्रेट में विलेय फॉस्फेट युक्त उर्वरक– यह उर्वरक साइट्रिक अम्ल में विलेय होते हैं परन्तु जल में अविलेय होते हैं। इन उर्वरकों में फॉस्फोरस HPO_4^- के रूप में होता है जो डाई कैल्शियम फॉस्फेट के रूप में संयुक्त रहता है। इस वर्ग के प्रमुख उर्वरक निम्न हैं–

(1) बेसिल स्लैग (13 - 18% P_2O_5)

(2) डाई कैल्शियम फॉस्फेट (34 39 % P_2O_5)

(3) रेनेनिया फॉस्फेट (23 - 26% P_2O_5)

(4) हड्डी का चूरा (आंशिक घुलनशील)

(iii) जल एवं साइट्रिक अम्ल में विलेय फॉस्फेट युक्त उर्वरक– इस श्रेणी में ऐसे उर्वरक सम्मिलित हैं जिनका फॉस्फोरस न तो जल में और न साइट्रिक अम्ल में विलेय होता है। यह केवल खनिज अम्लों में विलेय होता है। इस रूप में यह पौधों को प्राप्त नहीं होता। इसमें निम्न उर्वरक आते हैं–

(1) रॉक फॉस्फेट (20 40 % P_2O_5)

(अ) उदयपुर रॉक फॉस्फेट (30 32 % P_2O_5)

(ब) मसूरी रॉक फॉस्फेट (16 20 % P_2O_5)

(2) हड्डी का चूरा (Row bone meal) (3 4 %N, 20 - 25% P_2O_5)

(3) वाष्पित हड्डी का चूरा (Steamed bone meal) (22 25 % P_2O_5)

(3) पोटाशिक उर्वरकों का वर्गीकरण (Classification of Potassic fertilizers)–

मोटे तौर पर पोटैशियम उर्वरक दो प्रकार के होते हैं–

(i) क्लोराइड युक्त पोटाशिक उर्वरक– इसमें म्यूरेट ऑफ पोटाश अथवा पोटैशियम क्लोराइड सम्मिलित हैं। सबसे सस्ता पोटाशिक उर्वरक है तथा भारत में सम्पूर्ण पोटाशिक उर्वरकों का 60 प्रतिशत भाग केवल पोटैशियम क्लोराइड के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें 60 प्रतिशत जल विलेय (K_2O) पाया जाता है।

(ii) क्लोराइड विहीन पोटाशिक उर्वरक– इस वर्ग में पोटैशियम सल्फेट (48-52% K_2O), पोटैशियम नाइट्रेट (44% K_2O), पोटैशियम कार्बोनेट (65% K_2O) आदि प्रमुख हैं। इन उर्वरकों से प्राप्त होने वाली पोटाश अपेक्षाकृत महंगी होती है।

(4) यौगिक उर्वरक (Compound fertilizers)–

ऐसे उर्वरक जिनका प्रयोग भूमि में एक से अधिक पोषक तत्व देने के लिए करते हैं, यौगिक उर्वरक कहलाते हैं। जैसे– डाई अमोनियम फॉस्फेट (18% N & 46 P_2O_5)

(5) एकल उर्वरक (Straight fertilizers)–

ऐसे उर्वरक जिनके द्वारा मृदा में केवल एक ही पोषक तत्व की पूर्ति की जाती है, एकल उर्वरक कहलाते हैं। जैसे– यूरिया, सिंगल सुपर फॉस्फेट, म्युरेट ऑफ पोटाश।

पौधों को आवश्यक प्राथमिक पोषक तत्व प्रदान करने हेतु नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश युक्त उर्वरक प्रयोग किये जाते हैं। ये उर्वरक मृदा में मिलाने पर नमी एवं मृदा कोलॉइड के सम्पर्क में आते हैं। विभिन्न सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता से पौधों को उपलब्ध रूप में उपलब्ध होते हैं। विभिन्न प्रकार के उर्वरकों के विभिन्न अभिक्रियाओं से मृदा एवं फसलों पर प्रभाव पड़ता है। विभिन्न महत्त्वपूर्ण उर्वरकों मृदा अभिक्रिया एवं फसलों पर प्रभाव का अध्ययन इस अध्याय में दिया गया जा रहा है।

यूरिया (Urea) –

यूरिया, भारत में किसानों द्वारा सबसे ज्यादा उपयोग किया जाने वाला उर्वरक है। सम्पूर्ण नाइट्रोजन का 90 प्रतिशत से अधिक भाग यूरिया के रूप में कारखानों में निर्मित होता है। यूरिया कार्बनिक उर्वरक है इसका रासायनिक सूत्र NH_2-CO-NH_2 है, इसमें नाइट्रोजन एमाइड (NH_2) रूप में होती है।

1. संगठन (Composition)– यूरिया का उर्वरक नियंत्रण अध्यादेश 1957 के अनुसार विशिष्ट विवरण निम्न प्रकार

है– (i) नमी, कुल भार प्रतिशत (अधिकतम) – 1.0% (ii) नाइट्रोजन की कुल प्रतिशत मात्रा (न्यूनतम) – 46.0% (iii) बाइयूरेट प्रतिशत (अधिकतम) – 1.5% (iv) गोल कणाकार जो IS छलनी 320 से गुजर जाए।

2. गुण (Properties)– (i) यह सफेद दानेदार है। (ii) जल में शीघ्र घुलनशील है। (iii) नमी शीघ्र ग्रहण करता है। (iv) इसमें 46 प्रतिशत नाइट्रोजन पायी जाती है।

3. मृदा में अभिक्रिया (Reaction in Soil)– मृदा में यूरिया का प्रयोग करने पर नमी के सम्पर्क में आने पर यह पूर्णतया घुल जाता है। इसमें नाइट्रोजन, एमाइड के रूप में होती है, जिसका उपयोग पौधे नहीं कर पाते हैं। मृदा में यूरिएज (Urease) एन्जाइम की उपस्थिति में सूक्ष्म जीवों की क्रिया के कारण यूरिया, अमोनियम कार्बोनेट में परिवर्तित हो जाता है–

$$\underset{\text{(यूरिया)}}{CO(NH_2)_2} + \underset{\text{(जल)}}{2H_2O} \xrightarrow{\text{यूरिएज}} \underset{\text{(अमोनियम कार्बोनेट)}}{(NH_4)_2CO_3}$$

अमोनियम कार्बोनेट शीघ्र ही सूक्ष्मजीवी ऑक्सीकरण द्वाराअपघटित होकर अमोनियम (NH_4^+) तथा कार्बोनेट (CO_3^{2-}) आयन बनाता हैं –

$$\underset{\text{अमोनियम कार्बोनेट}}{(NH_4)_2CO_3} \longrightarrow \underset{\text{अमोनियम आयन}}{NH_4^+} + \underset{\text{कार्बोनेट आयन}}{CO_3^{2-}}$$

यूरिया से प्राप्त अमोनियम आयन का उपयोग निम्न प्रकार से होता है–

1. अमोनियम आयन का कुछ भाग पौधों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है, जैसे–धान की फसल नाइट्रोजन को अमोनियम रूप में ही ग्रहण करती है।
2. वायुमण्डल में विसरित होना।
3. मृदा कोलॉइडल ऋण आवेशित होने के कारण अमोनियम आयन मृदा कोलॉइड्स पर अधिशोषित हो जाते हैं।
4. अमोनियम का अमोनिया में नाइट्रीकरण होता है।

अमोनियम सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा ऑक्सीकृत होकर नाइट्रेट (NO_3^-) रूप में बदल जाती है, जिसे पौधे ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रक्रिया नाइट्रोसोमोनास एवं नाइट्रोबेक्टर जीवाणु द्वारा दो चरणो में होती है, यह प्रक्रिया एक सप्ताह में पूर्ण हो जाती है–

$$\underset{\text{अमोनियम}}{2NH_4^+} + 3O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोसोमोनास}} \underset{\text{नाइट्राइट}}{2NO_2^-} + \underset{\text{जल}}{2H_2O} + \underset{\text{नवजात हाइड्रोजन}}{4H}$$

$$2NO_2^- + 2O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोबेक्टर}} 2NO_3^- \text{ (नाइट्रेट) (पौधों द्वारा ग्रहण योग्य)}$$

उपर्युक्त अभिक्रिया से निम्नलिखित व्यावहारिक बातें समझ सकते हैं–

1. इस अभिक्रिया हेतु वायु संचार वाली मृदायें आवश्यक हैं।
2. सूक्ष्म जीवों की सक्रियता आवश्यक है एवं उनकी सक्रियता हेतु मृदा में उचित वातावरण, ताप, नमी का होना आवश्यक है।
3. इस अभिक्रिया में नवजात हाइड्रोजन बनती है। जिससे हाइड्रोजन आयन्स मृदा कोलाइड पर अधिशोषित होकर मृदा में अम्लीयता बढ़ाते हैं–

$$\underset{Ca^{2+}}{\boxed{\text{मृदा कोलाइड}}} + 4H \longrightarrow H^+ \underset{H^+}{\boxed{\text{मृदा कोलाइड}}} H^+ \text{ (अम्लीय मृदा)} + 2Ca^{2+}$$

अतः यूरिया का प्रयोग वर्षों तक लगातार करने से मृदा का पी.एच. घटता है तथा पी.एच. अधिक घटने से मृदायें अम्लीय हो जाती है। यूरिया, अमोनियम सल्फेट उर्वरक की तुलना में कम अम्लीय है। 100 किग्रा यूरिया से उत्पन्न अम्लता के उदासीकरण के लिए 80 किग्रा केल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) की आवश्यकता होती है।

मृदा में अमोनियम (NH_4^+) आयन्स का ह्रास नहीं होता क्योंकि यह धनायन होने के कारण मृदा कोलॉइड पर अधिशोषित हो जाती है तथा आयन विनिमय से मृदा विलयन में आकर नाइट्रीकरण द्वारा पौधों को उपलब्ध होती रहती है। मृदा में नाइट्रेट (NO_3^-) आयन्स पौधों द्वारा ग्रहण करने के पश्चात नाइट्रोजन का ह्रास निक्षालन, वाष्पन, विनाइट्रीकरण, अमोनियम स्थिरीकरण द्वारा होता है –

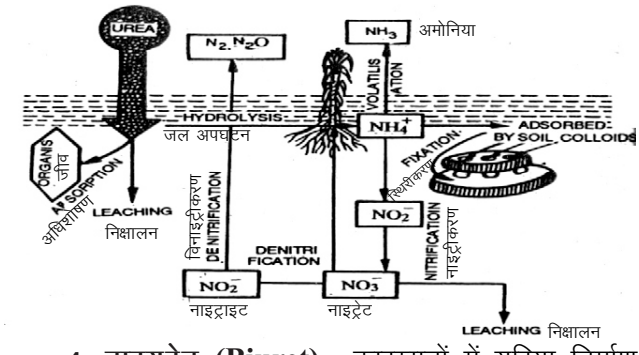

4. बाइयूरेट (Biuret)– कारखानों में यूरिया निर्माण प्रक्रिया के दौरान आवश्यकता से अधिक उच्च तापमान के कारण यूरिया के दो अणु मिलकर बाइयूरेट बनाते हैं–

$$\underset{\text{(यूरिया)}}{2NH_2CONH_2} \xrightarrow{\text{निस्तापन}} \underset{\text{(बाइयूरेट)}}{NH_2CONHCONH_2} + \underset{\text{(अमोनिया)}}{NH_3}\uparrow$$

यूरिया में बाइयूरेट की मात्रा 1.5 प्रतिशत होती है। इससे अधिक मात्रा होने पर बीजों के अंकुरण तथा पौधों की वृद्धि पर विषैला प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार का यूरिया, पर्णीय छिड़काव (Foliage Spray) हेतु प्रयोग में नहीं लेना चाहिए।

5. फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops) –

(1) मृदा तथा खड़ी फसल में इसे प्रयोग किया जा सकता है।

(2) इसका प्रयोग कीटनाशकों के साथ भी किया जा सकता है।

(3) पत्तियों पर छिड़काव हेतु यह प्रभावशाली एवं उत्तम उर्वरक है।

(4) यूरिया का प्रयोग फसल में आधी मात्रा बोते समय तथा शेष आधी मात्रा के दो हिस्से करके एक भाग फसल वृद्धि के समय तथा दूसरा भाग फूल एवं फलियाँ बनते समय किया जाता है।

(5) सभी प्रकार की फसलों हेतु प्रभावशाली एवं लाभदायक है।

(6) शुष्क खेती की फसलों में पर्णीय छिड़काव द्वारा नाइट्रोजन देना आसान एवं लाभदायक है।

(7) 2 प्रतिशत से अधिक बाइयूरेट वाला उर्वरक फसलों पर कुप्रभाव डालता है।

(8) गंधक, नीम की खली, लाख, इत्यादि से यूरिया को लेपित कर प्रयोग करने से घुलनशीलता कम हो जाती है तथा नाइट्रोजन मंद गति से पौधों को उपलब्ध होती है।

कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट (Calcium Ammonium Nitrate) –

इसे 'केन' तथा 'किसान खाद' भी कहते हैं। इस उर्वरक में अमोनियम नाइट्रेट तथा कैल्शियम कार्बोनेट संयुक्त रूप से होते हैं। इसका उत्पादन नांगल (पंजाब) में होता है।

1. संगठन (Composition)– केल्शियम अमोनियम नाइट्रेट का उर्वरक (नियंत्रण) अध्यादेश 1957 के अनुसार विशिष्ट विवरण निम्न प्रकार है– (i) नमी की अधिकतम मात्रा–1.0% (ii) कुल अमोनिकल एवं नाइट्रेट नाइट्रोजन (न्यूनतम)–25.0% (iii) अमोनियम नाइट्रोजन–12.5% (iv) नाइट्रेट नाइट्रोजन–12.5%

2. गुण (Properties)–

(i) यह उर्वरक उदासीन प्रकृति का है।

(ii) इसका प्रयोग अम्लीय एवं क्षारीय मृदाओ में किया जा सकता है।

(iii) सभी प्रकार की फसलों में इसका प्रयोग लाभदायक है।

(iv) कैल्शियम कार्बोनेट साथ होने से अमोनियम नाइट्रेट का विस्फोटक गुण तथा आर्द्रता ग्राह्यता गुण कम हो जाता है।

(v) इसमें 25 प्रतिशत नाट्रोजन पायी जाती है।

(vi) इसमें 8.1 प्रतिशत केल्शियम होता है जो पौधों हेतु आवश्यक गौण पोषक तत्व है।

(vii) दाने बड़े आकार के होने से खेतों में प्रयोग आसान है।

(viii) यह आर्द्रताग्राही उर्वरक है अतः भण्डारण शुष्क स्थान पर करें तथा खोलने के उपरान्त थैले का मुंह अच्छी तरह बन्द करें।

3. मृदा में अभिक्रया (Reaction in Soil)–

(i) उदासीन उर्वरक है, यह मृदाओं को अम्लीय एवं क्षारीय नहीं बनाता है इसलिए इसे 'किसान खाद' कहते हैं।

(ii) मृदा में मिलाने पर यह अमोनियम (NH_4^+), नाइट्रेट (NO_3^-) तथा कैल्शियम (Ca^{2+}) आयन्स में वियोजित हो जाता है।

(iii) अमोनियम (NH_4^+) तथा कैल्शियम आयन्स (Ca^{2+}) मृदा कोलॉइड्स पर अधिशोषित हो जाते हैं तथा नाइट्रेट (NO_3^-) पौधों द्वारा उपयोग कर लिए जाते हैं अथवा अपक्षालन, वाष्पीकरण इत्यादि से ह्रास हो जाता है।

(iv) उर्वरक में उपस्थित कैल्शियम कार्बोनेट अम्लीयता को दूर करता है।

(v) सभी प्रकार की मृदाओ में इसका प्रयोग लाभदायक है।

4. फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops)–

1. फसलों के लिए पूर्णतया सुरक्षित उर्वरक है।
2. फसलों पर इसका प्रभाव शीघ्र होता है।
3. इसे खड़ी फसल में काम में लिया जा सकता है।
4. इसमें उपस्थित नाइट्रेट (NO_3^-) को पौधे शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं तथा अमोनियम (NH_4^+) एवं कैल्शियम (Ca^{2+}) मृदा कौलाइड्स में अधिशोषित होने से पौधे धीरे–धीरे इनका उपयोग करते हैं।
5. अमोनियम के नाइट्रीकरण से पौधों को नाइट्रोजन अधिक समय तक प्राप्त होती रहती है।
6. खड़ी फसल में बिखेर कर इसका प्रयोग किया जा सकता है।

अमोनियम सल्फेट (Ammonium Sulphate) –

यूरिया के बाद नाइट्रोजन युक्त यह प्रमुख उर्वरक है। इसका रासायनिक सूत्र $(NH_4)_2SO_4$ है। इसमें नाइट्रोजन

अमोनियम के रूप में होती है।

1. संगठन (Composition)– अमोनियम सल्फेट का उर्वरक नियंत्रण अध्यादेश 1957 के अनुसार विशिष्ट विवरण निम्न प्रकार है–

(i) नमी की अधिकतम मात्रा – 1.0%

(ii) अमोनिकल नाइट्रोजन (न्यूनतम)– 20.60%

(iii) स्वतन्त्र अम्ल (H_2SO_4 के रूप में) – 0.025%

(iv) आर्सेनिक (अधिकतम) – 0.01%

2. गुण (Properties)–

(i) यह सफेद रवेदार पदार्थ होता है।

(ii) जल में घुलनशील है।

(iii) वायुमण्डल से बहुत कम नमी शोषित कर पाता है।

(iv) इसमें 20.6 प्रतिशत नाइट्रोजन पायी जाती है।

3. मृदा में अभिक्रिया (Reaction in Soil)– अमोनियम सल्फेट के लगातार प्रयोग से मृदायें अम्लीय हो जाती है–

(i) मृदा में डालने पर अमोनियम सल्फेट शीघ्रता से घुलकर अमोनियम (NH_4^+) तथा सल्फेट (SO_4^{2-}) आयन्स में विच्छेदित हो जाता है –

$$(NH_4)_2SO_4 \longrightarrow 2NH_4^+ + SO_4^{2-}$$

(ii) इसके अमोनियम आयन मृदा कोलॉइड्स पर अधिशोषित हो जाते हैं –

$$\boxed{\text{मृदा कोलाइड}}^{Ca^{++}} + (NH_4)_2SO_4 \longrightarrow \boxed{\text{मृदा कोलाइड}}^{NH_4^+} + CaSO_4 \downarrow \text{(घुलनशील अपक्षालित)}$$

(iii) SO_4^{2-} आयन मृदा के [illegible] क्रिया करके $CaSO_4$ बनाते हैं जो जल में घुलकर अपक्षालित हो जाता है तथा आंशिक रूप से पौधों द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। जिससे मृदा कोलॉइड्स पर कैल्शियम आयन्स (Ca^{2+}) की कमी हो जाती है।

(iv) अमोनियम (NH_4^+) आयन्स का नाइट्रीकरण होने से नाइट्रेट आयन बनते हैं जिनका उपयोग पौधे कर लेते हैं, अन्यथा अपक्षालन द्वारा इनकी हानि हो जाती है–

$$2NH_4^+ + 3O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोसोमोनास}} 2NO_2^- + 2H_2O + 4H$$
(अमोनियम) (नाइट्राइट) (जल) (नवजात हाइड्रोजन)

$$2NO_2^- + O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोबेक्टर}} 2NO_3^-$$
(नाइट्राइट) (नाइट्रेट – पौधों द्वारा ग्रहण योग्य)

केल्शियम की हानि के साथ–साथ नाइट्रीकरण से नवजात हाइड्रोजन का निर्माण होने से हाइड्रोजन आयन (H^+) धनायनों को प्रतिस्थापित कर मृदा कोलॉइड पर अधिशोषित हो जाता है –

$$\boxed{\text{मृदा कोलॉइड}}^{Ca^{2+}}_{Mg^{2+}} + 4H \longrightarrow H^+\boxed{\text{मृदा कोलॉइड}}^{H^+}_{H^+} H^+ \text{(अम्लीय मृदा)} + Ca^2_+ Mg^{2+}$$

इस प्रकार एक अमोनियम सल्फेट दोगुने केल्शियम आयन्स (Ca^{2+}) को हटाता है, जिससे हाइड्रोजन (H^+) की सान्द्रता बढ़ती है एवं मृदायें अम्लीय हो जाती हैं।

मृदा में 100 कि.ग्रा. अमोनियम सल्फेट उर्वरक प्रयोग करने से 110 कि.ग्रा. $CaCO_3$ की हानि होती है अर्थात इसके प्रयोग से यूरिया की अपेक्षा मृदायें अधिक अम्लीय होती है। क्षारीय मृदाओं में इस उर्वरक का प्रयोग लाभदायक है। यह भारी एवं हल्की दोनों प्रकार की मृदाओं में प्रयोग किया जा सकता है।

मृदाओं में अमोनियम की हानि बहुत कम होती है। मृदा कोलॉइड्स पर अधिशोषित होने के कारण अपक्षालन द्वारा हानि नहीं होती है। अमोनियम सल्फेट उर्वरकों को चूना अथवा क्षारीय योगिकों के साथ मिश्रण बनाकर प्रयोग न करें क्योंकि इनकी आपसी क्रिया से अमोनियम युक्त नाइट्रोजन, अमोनियम गैस के रूप में स्वतन्त्र हो जाती है–

$$(NH_4)_2SO_4 + CaO \longrightarrow CaSO_4 + H_2O + 2NH_3 \uparrow$$
अमोनियम सल्फेट चूना कैल्शियम सल्फेट अमोनिया

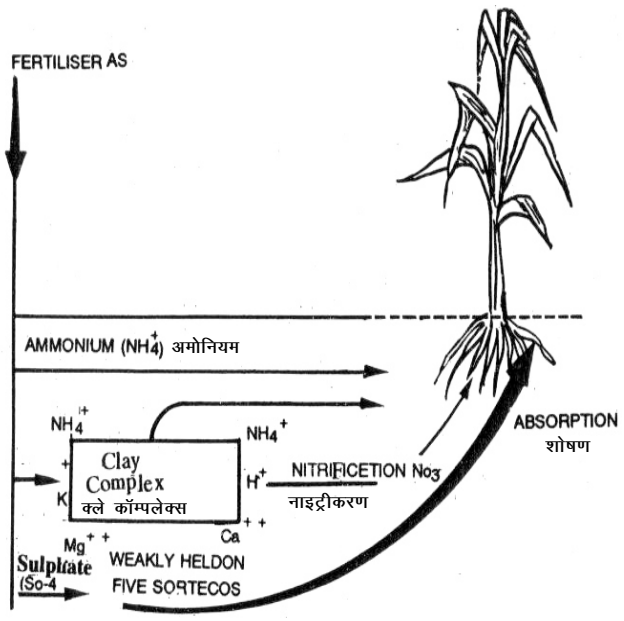

चित्र– मृदा के अंदर अमोनियम सल्फेट उर्वरक की अभिक्रियाएं

फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops) –

1. धान की फसल नाइट्रोजन को अमोनियम (NH_4^+) रूप में ग्रहण करती है इसलिए धान के लिए सर्वोत्तम उर्वरक है।
2. अमोनियम (NH_4^+) आयन मृदा कोलाइड पर अधिशोषित होने से अपक्षालन नहीं होता है तथा इनके नाइट्रीकरण से नाइट्रेट आयन (NO_3^-) बनते हैं जिसे सभी फसलें आसानी से ग्रहण कर लेती हैं। अतः सभी फसलों हेतु उपयोगी है।
3. इस उर्वरक का प्रयोग खड़ी फसल में छिटककर किया जा सकता है।
4. इसमें 20.6 प्रतिशत नाइट्रोजन के साथ–साथ 24 प्रतिशत गन्धक होने से फलीदार फसलों हेतु आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होता है। गन्धक जड़ों की ग्रन्थियों के विकास में सहायक है। प्याज, लहसुन, सरसों की फसल में गन्धक आवश्यक होती है।
5. जल में घुलनशील एवं शीघ्र सक्रिय होने से फसलों को नाइट्रोजन शीघ्र प्राप्त होती है।

डाई अमोनियम फॉस्फेट (Diammonium Phosphate) –

इसे आम भाषा में डी.ए.पी. उर्वरक कहते हैं। इसे फॉस्फोरिक अम्ल की अमोनिया के साथ क्रिया से बनाया जाता है। इसमें पहले मोनो अमोनियम फॉस्फेट बनता हैं pH मान 5.8 से 6.0 के बीच इस अमोनीकरण की क्रिया को आगे बढ़ाने से डाइ अमोनियम फॉस्फेट (DAP) उर्वरक बनता है। वर्तमान में फॉस्फोरस युक्त इस उर्वरक का प्रयोग किसानों द्वारा सर्वाधिक किया जा रहा है क्योंकि इसमें फॉस्फोरस के साथ नाइट्रोजन भी उपलब्ध होता है। इस उर्वरक का रासायनिक सूत्र $(NH_4)_2HPO_4$ है।

1. संगठन (Composition)–

डाइ अमोनियम फॉस्फेट का उर्वरक नियंत्रण अध्यादेश 1957 के अनुसार विशिष्ट विवरण निम्न प्रकार है–

(i) नमी की अधिकतम मात्रा – 1.0%

(ii) कुल अमोनियम नाइट्रोजन प्रतिशत (न्यूनतम)18.0%

(iii) कुल फॉस्फोरस प्रतिशत (न्यूनतम) –46.0%

(iv) कुल जल विलेय फॉस्फोरस प्रतिशत (न्यून.)–41.6%

2. गुण (Properties)–

(i) यह उर्वरक दानेदार रूप में बाजार में बिकता है।

(ii) यह उर्वरक जल में घुलनशील है।

(iii) इसमें नाइट्रोजन व फॉस्फोरस दोनों पाए जाते हैं।

(iv) इसमें 18 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 46 प्रतिशत फॉस्फोरस पाया जाता है।

(v) नाइट्रोजन, अमोनियम (NH_4^+) रूप में तथा फॉस्फोरस, HPO_4^{2-} रूप में पाया जाता है।

(vi) इसमें पोषक तत्व उच्च मात्रा में होते हैं इसलिये इसे उच्च विश्लेषण उर्वरक कहते हैं। इसके भण्डारण तथा यातायात का खर्च कम आता है।

(vii) यह बहुत कम आर्द्रताग्राही उर्वरक है।

3. मृदा में अभिक्रिया (Reaction in Soil) –

(i) नम एवं शुष्क दोनों ही मृदाओं में उर्वरक लाभदायक है।

(ii) दानेदार होने के कारण मृदा में आसानी से प्रयोग किया जा सकता है।

(iii) हल्की, माध्यम तथा भारी मृदाओं में इस उर्वरक का प्रयोग कुशलता से किया जा सकता है।

(iv) मृदा में डालने पर इसमें उपस्थित अमोनियम (NH_4^+) मृदा कणों पर अधिशोषित हो जाती है तथा HPO_4^{2-} धीरे–धीरे घुलकर पौधों को प्राप्त होता है।

(v) मृदा में इस उर्वरक का प्रभाव अम्लीय होता है क्योंकि अमोनियम के नाइट्रीकरण से नवजात हाइड्रोजन बनती है तथा कैल्शियम आयन घुलनशील यौगिक बनाते हैं। हालांकि प्रारम्भ में इसकी प्रतिक्रिया अमोनियम की वजह से क्षारीय होती है।

फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops) –

(i) इस उर्वरक के प्रयोग से फसलों को नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस दोनों पोषक तत्व प्राप्त होते हैं इसलिए किसान इसका अधिक प्रयोग कर रहे हैं।

(ii) नाइट्रोजन प्रारम्भ में अमोनियम (NH_4^+) एवं नाइट्रीकरण पश्चात नाइट्रेट (NO_3^-) रूप में पौधों को प्राप्त होती है।

(iii) फॉस्फोरस HPO_4^{2-} धीरे–धीरे घुलकर पौधों को प्राप्त होता है।

(iv) इसका प्रयोग क्षारीय मृदाओं में करने पर मुक्त हो रही अमोनिया बीजांकुरण को क्षति पहुंचाती हैं।

(v) इसका प्रयोग फसलों में बुवाई से पूर्व ऊर कर सिंगल सुपर फॉस्फेट के समान ही करना चाहिए, खडी फसल में बिखेरकर प्रयोग न करें।

सिंगल सुपर फॉस्फेट (Single Super Phosphate) –

यह फॉस्फोरस प्रदान करने वाला उर्वरक है। यह फॉस्फेटिक उर्वरको में सबसे पुराना एवं लोकप्रिय है। यह जल में शीघ्र घुलनशील है। इसका उत्पादन सर्वप्रथम 1842 में लॉस

(Lawes) ने इंग्लैण्ड में रॉक फॉस्फेट तथा गंधक के तेजाब से किया था। इसका रासायनिक सूत्र मोनोकेल्शियम फॉस्फेट $Ca(H_2PO_4)_2.H_2O$ है।

1. संगठन (Composition)–

उर्वरक नियंत्रण अध्यादेश 1957 के अनुसार सिंगल सुपर फॉस्फेट का निर्धारित विशिष्ट विवरण निम्न है–

(i) नमी की अधिकतम मात्रा – 1.2 %

(ii) कुल जल विलेय फॉस्फोरस प्रतिशत (न्यूनतम) – 16.0%

(iii) मुक्त फॉस्फोरिक अम्ल प्रतिशत (अधिकतम) – 4.0%.

2. गुण (Properties) –

(i) यह बादामी रंग का चूर्ण अथवा दानेदार रूप में होता है।

(ii) इसकी गतिशीलता बहुत कम होती है।

(iii) इसमें फॉस्फोरस $H_2PO_4^-$ के रूप में होती है।

(iv) इसमें फॉस्फोरस की मात्रा 16.0 प्रतिशत पायी जाती है।

(v) इसमे स्वतन्त्र अम्ल होता है, जिससे अम्लीय गंध आती है। अम्ल से जूट के बोरे खराब होने के कारण आजकल पॉलीथीन के बोरों में भरा जाता है।

3. मृदा में अभिक्रिया (Reaction in Soil) –

(i) यह मृदा नमी में आसानी से घुल जाता है।

(ii) हल्की अम्लीय, उदासीन तथा चूना युक्त लवण प्रभाति मृदाओं में प्रयोग करने पर डाइकेल्शियम फॉस्फेट तथा ट्राई केल्शियम फॉस्फेट बनते हैं –

$$\underset{\text{मोनो केल्शियम फॉस्फेट}}{Ca(H_2PO_4)_2} + \underset{\text{केल्शियम बाइ कार्बोनेट}}{Ca(HCO_3)_2} \longrightarrow \underset{\text{डाइ केल्शियम फॉस्फेट}}{2CaHPO_4} + \underset{\text{कार्बोनिक अम्ल}}{2H_2CO_3}$$

$$\underset{\text{मोनो केल्शियम फॉस्फेट}}{Ca(H_2PO_4)_2} + \underset{\text{केल्शियम बाइ कार्बोनेट}}{2Ca(HCO_3)_2} \longrightarrow \underset{\text{ट्राई केल्शियम फॉस्फेट (अघुलनशील)}}{Ca_3(PO_4)_2} + \underset{\text{कार्बोनिक अम्ल}}{4H_2CO_3}$$

मृदा जल में उपस्थित कार्बोनिक अम्ल में डाइ केल्शियम फॉस्फेट धीरे–धीरे घुलता जाता है तथा पौधों को प्राप्त होता रहता है।

(iii) अधिक अम्लीय मृदाओं में लोहा तथा एल्यूमिनीयम के साथ मिलकर इनके फॉस्फेट बनाता है। इससे फॉस्फोरस स्थिरीकरण होता है –

$$\underset{\substack{\text{मोनो कैल्शियम}\\\text{फॉस्फेट}}}{2Ca(H_2PO_4)_2} + \underset{\substack{\text{आयरन}\\\text{ऑक्साइड}}}{Fe_2O_3} \longrightarrow \underset{\substack{\text{आयरन फॉस्फेट}\\\text{(अघुलनशील)}}}{2FePO_4} + \underset{\substack{\text{डाइ कैल्शियम}\\\text{फॉस्फेट}}}{2CaHPO_4} + 3H_2O$$

$$\underset{\substack{\text{मोनो कैल्शियम}\\\text{फॉस्फेट}}}{2Ca(H_2PO_4)_2} + \underset{\substack{\text{एल्युमिनीयम}\\\text{ऑक्साइड}}}{Al_2O_3} \longrightarrow \underset{\substack{\text{एल्युमिनीयम}\\\text{फॉस्फेट}\\\text{(अघुलनशील)}}}{2AlPO_4} + \underset{\substack{\text{डाइ कैल्शियम}\\\text{फॉस्फेट}}}{2CaHPO_4} + 3H_2O$$

(iv) उदासीन मृदाओं में फॉस्फोरस की उपलब्धता अधिक होती है।

4. फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops) –

1. यह उर्वरक सभी फसलों के लिए उपयुक्त है क्योंकि इसमें जल विलेय $H_2PO_4^-$ फॉस्फोरस पाया जाता है तथा फसलें फॉस्फोरस को $H_2PO_4^-$ रूप में आसानी से ग्रहण कर लेती हैं।
2. फॉस्फोरस की गतिशीलता कम होने से इस उर्वरक का प्रयोग बुवाई से पूर्व जड़ो के पास संस्थापन विधि से किया जाता है।
3. इस उर्वरक को खड़ी फसल में बिखेरकर नहीं देना चाहिए।
4. कम अवधि में पकने वाली फसलों (धान, गेहूं, जौ, ज्वार, सरसों इत्यादि) में इसकी सम्पूर्ण मात्रा बुवाई से पहले ऊर कर देना चाहिए।
5. लम्बी अवधि की फसलों (गन्ना, फल वृक्षों) में इसका प्रयोग जड़ों के पास गहरी संस्थापन विधि से खडी फसल में प्रयोग करें। 6. अम्लीय मृदाओं जिनका pH मान 5.5 से कम है, उनमें इस उर्वरक का प्रयोग न करें क्योंकि फसलों को प्राप्यता बहुत कम होती है, आवश्यक हो तो चूना मिलाकर प्रयोग करें।

म्यूरेट ऑफ पोटाश (Muriate of Potash) –

इसका रासायनिक नाम पोटेशियम क्लोराइड (KCI) है। यह सामान्य नमक से मिलता–जुलता है। इसका स्वाद तीखा (Bitter) नहीं होता है।

यह नमक + मिर्च के मिश्रण जैसा भी बाजार में आता है। यह सिल्वाइट तथा कार्नेलाइट खनिज अयस्कों के क्रिस्टलीकरण तथा प्लवन विधि (Floatation) प्रक्रम द्वारा प्राप्त किया जाता है।

1. संगठन (Composition)–

म्यूरेट ऑफ पोटाश का उर्वरक नियंत्रण अध्यादेश 1957 के अनुसार विशिष्ट विवरण निम्न प्रकार है–

(i) नमी की प्रतिशत मात्रा (अधिकतम) – 0.5%

(ii) कुल पोटाश (K_2O) की प्रतिशत मात्रा (न्यूनतम)–60.0%

(iii) सोडियम की प्रतिशत मात्रा (अधिकतम) – 3.5%

2. गुण (Properties)–

(i) यह जल में शीघ्र घुलनशील है।

(ii) यह मोटा या बारीक क्रिस्टलीय लवण है।

(iii) इसमें 60% K_2O होता है।

(iv) यह शुद्ध रूप में सफेद रवेदार पदार्थ है किन्तु आयरन

ऑक्साइड की उपस्थिति से इसका रंग लाल हो जाता है।

(v) वर्तमान में यह दानेदार रूप में भी बाजार में मिलता है।

(vi) यह उर्वरक आर्द्रताग्राही नहीं होता है।

3. मृदा में अभिक्रिया (Reaction in Soil) –

(i) इस उर्वरक के मृदा में मिलाने पर यह आयनित होकर K^+ तथा CI^- में वियोजित हो जाता है।

(ii) पोटेशियम आयन (K^+) मृदा कोलॉइड्स पर अधिशोषित हो जाते हैं।

(iii) यह उर्वरक उदासीन है इसलिए मृदा में अम्लीयता व क्षारीयता उत्पन्न नहीं करता है।

(iv) क्षारीय मृदाओं में इस उर्वरक के प्रयोग से मृदा में CI^- आयन जमा होने से फसलों के लिए विषैला सिद्ध होता है। (v) क्षारीय मृदा में इसका प्रयोग जैविक खाद के साथ करना लाभदायक है।

4. फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops) –

(i) इसे फसलें K^+ रूप में ग्रहण करती है।

(ii) इसका पोटेशियम फसलों को शीघ्र प्राप्त होता है।

(iii) दलहन वाली फसलों में इसके प्रयोग से उनकी जड़ो की ग्रन्थियों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण अधिक होता है।

(iv) खाद्यान वाली फसलों में इसका प्रयोग लाभकारी है।

(v) तम्बाकू, आलू, चुकन्दर, चाय, कॉफी में इस उर्वरक का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इसमें उपस्थित क्लोराइड इनकी गुणवता को खराब करता है।

(vi) यह क्षारीय मृदा में प्रयोग करने पर फसलों पर विषैला प्रभाव डालता है।

(vii) इसे बुवाई से पूर्व फॉस्फोरस उर्वरक की भांति ऊर कर देना चाहिए। खड़ी फसल में बिखेर कर इसका प्रयोग न करें।

सल्फेट ऑफ पोटाश (Sulphate of Potash) –

यह क्लोराइड रहित उर्वरकों में प्रमुख पोटेशियम युक्त उर्वरक है। इसका रासायनिक नाम पोटेशियम सल्फेट (K_2SO_4) है। इस उर्वरक का निर्माण लैंगवेनाइट ($K_2SO_4.2MgSO_4$) खनिज के विलयन की पोटेशियम क्लोराइड के साथ सान्द्रण तथा पोटेशियम क्लोराइड की गन्धक के तेजाब की अभिक्रिया से प्राप्त किया जाता है।

1. संगठन (Composition)–

सल्फेट ऑफ पोटाश का उर्वरक नियंत्रण अध्यादेश 1957 के अनुसार विशिष्ट विवरण निम्न प्रकार है–

(i) नमी की प्रतिशत मात्रा (अधिकतम) – 1.5%

(ii) कुल पोटाश की प्रतिशत मात्रा (न्यूनतूम) – 48%

(iii) कुल क्लोराइड की प्रतिशत मात्रा (अधिकतम) – 2.5%

(iv) सोडियम की प्रतिशत मात्रा (अधिकतम) – 2.0%.

2. गुण (Properties) –

(i) यह सफेद रंग का पदार्थ है।

(ii) यह क्रिस्टलीय योगिक है।

(iii) इसमें पोटेशियम 48 से 50 प्रतिशत पाया जाता है।

(iv) इसका पोटेशियम जल में शीघ्र घुलनशील है।

(v) यह आर्द्रगाताग्राही नहीं है अतः भण्डारण सुविधापूर्वक कर सकते हैं।

(vi) यह पोटेशियम का मंहगा उर्वरक है।

(vii) इसमें 23–48 प्रतिशत सल्फर होती है जो पौधों का आवश्यक गौण पोषक तत्व है।

3. मृदा में अभिक्रिया (Reaction in Soil) –

(i) इस उर्वरक को मृदा में मिलाने पर यह आयनित होकर K^+ तथा SO_4^{2-} आयन्स में विभाजित हो जाता है।

(ii) पोटेशियम आयन (K^+) मृदा कोलाइड्स पर अधिशोषित हो जाते है।

(iii) पोटेशियम आयन्स (K^+) अधिशोषित होने से अपक्षालन द्वारा नष्ट नहीं होते हैं।

(iv) यह उदासीन उर्वरक है जिससे मृदा में अम्लीयता एवं क्षारीयता पैदा नहीं करता है।

(v) चूने वाली क्षारीय मृदाओं में इसका प्रयोग लाभकारी है।

(vi) भारी मृदाओं की अपेक्षा हल्की व मध्यम मृदाओं में यह उर्वरक अधिक उपयोगी है।

4. फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops) –

(i) इसे फसलें K^+ रूप में ग्रहण करती है।

(ii) जल में घुलनशील होने से फसलों को शीघ्रता से प्राप्त होता है।

(iii) यह सभी फसलों में उपयोगी है।

(iv) फसलों के उत्पादन एवं गुणवता में सुधार लाता है।

(v) तम्बाकू, आलू, चुकन्दर, चाय, कॉफी, प्याज की फसलों में विशेष उपयोगी है।

(vi) खट्टे फलों में रस की मात्रा बढ़ाता है।

(vii) जिन पौधों में फल नहीं लगते या छोटे रह जाते हैं उनमें

यह उर्वरक लाभ पहुंचाता है।

(viii) इसे बुवाई से पूर्व खेत में ऊर कर देना चाहिए, खडी फसल में बिखेरकर इसका प्रयोग न करें।

उर्वरकों के अधिक उपयोग से मृदा पर पड़ने वाले प्रभाव –

खेती में रासायनिक उर्वरकों के अनुचित एवं असंतुलित प्रयोग से मृदा उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रासायनिक उर्वरकों का इतना अधिक असंतुलित प्रयोग हो रहा है कि अब इसके दुष्परिणाम स्पष्ट नजर आ रहे हैं। देश के कृषि क्षेत्र में पौधो के लिए तीन मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश का प्रयोग अनिश्चित अनुपात में किया जा रहा है। उत्पादन बढ़ाने की होड़ में किसान उर्वरकों का अन्धाधुंध प्रयोग कर रहा है। इनमें भी नत्रजन युक्त यूरिया का अधिक उपयोग हो रहा है। इससे मृदा में गौण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है, परिणाम स्वरूप मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

उर्वरको के अधिक उपयोग से मृदा पर निम्नांकित प्रभाव पड़तें हैं –

1. अम्लीय उर्वरक– अधिकांश रासायनिक उर्वरक मृदा पर अम्लीय प्रभाव छोड़ते है अतः इनके अधिक उपयोग से मृदा में अम्लीयता बढ़ जाती है। अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट, यूरिया, डी.ए.पी. जैसे अम्ल उत्पादक उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मृदा में अम्लीयता पैदा होती है।

अमोनियम आयन मृदा कोलॉइड़ पर अधिशोषित होकर केल्शियम आयनों को विस्थापित करते है, जो जल में घुलनशील होने के कारण अपक्षालन द्वारा क्षीण हो जाते है। परिणामस्वरूप मृदा कोलॉइड़ पर कैल्शियम की कमी हो जाती है और मृदाऐं अम्लीय हो जाती है।

इसे निम्नांकित अम्लीय उर्वरकों के उदाहरण से अच्छी तरह समझा जा सकता है –

(i) अमोनियम सल्फेट उर्वरक–

(ii) अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक–

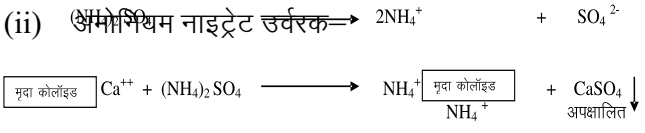

(iii) यूरिया उर्वरक–

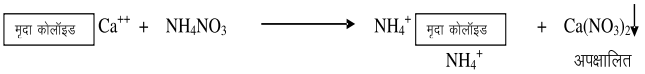

$$CO(NH_2) + 2H_2O \xrightarrow{\text{यूरिएज}} (NH_4)_2CO_3$$

मृदा कोलॉइड Ca^{++} + $(NH_4)_2CO_3$ पर अधिशोषित मृदा कोलॉइड NH_4^+ + आयन

नाइट्रोसोमानास व नाइट्रोबेक्टर जीवाणु द्वारा प्रक्रिया दो चरणों में पूर्ण होती है। इस प्रक्रिया में निर्मित नवजात हाइड्रोजन से मृदाऐं अम्लीय बनती हैं तथा NO_3^- का उपयोग पौधें कर लेते हैं –

$$NH_4^+ + 3O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोसोमोनास}} 2NO_2^- + 2H_2O + 4H \text{ नवजात हाइड्रोजन}$$

$$2NO_2^- + O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोबेक्टर}} 2NO_3^- \text{ (पौधों द्वारा उपयोग)}$$

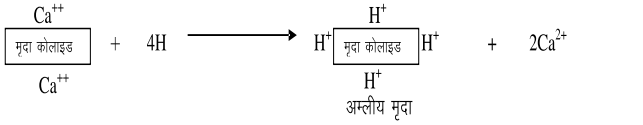

2. सोडियम युक्त उर्वरक – सोडियम युक्त उर्वरकों का अधिक प्रयोग के कारण मृदा कोलॉइड्स पर सोडियम आयन्स अधिशोषित होने से मृदाऐं क्षारीय बन जाती है। सोडियम द्वारा कैल्शियम का विस्थापन करने से निक्षालन द्वारा केल्शियम मृदा की निचली सतहों में चला जाता है –

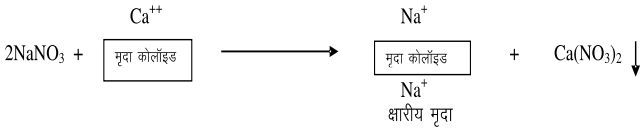

क्षारीयता तथा लवणीयता का मृदा पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। सोडियम आयन्स की अधिकता के कारण विऊर्णीपिंडन (defloculation) से मृदा संरचना खराब हो जाती है। मृदा में वायु संचार बन्द हो जाता है। वायु संचार की कमी के कारण सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता में कमी आ जाती है।

सोडियम की अधिकता वाली मृदाओं की थोड़ी सी नमी में जुताई करने पर कीचड़ तथा सूखने पर ढेले बन जाते है, जिससे जुताई कार्य में कठिनाई आती है। सोडियम की अधिक मात्रा से पारगम्यता (Permeability) में कमी आ जाती है जिससे मृदा में अतिरिक्त जल की मात्रा बढ़ जाती है।

क्षारीय मृदाओं में सोडियम की अधिकता से फॉस्फोरस, लोहा, तांबा, जस्ता, मैंगनीज, बोरोन तथा मोलिब्डेनम की मात्रा अधिक होने से विषैला प्रभाव डालता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. पौधों को आवश्यक प्राथमिक पोषक तत्व प्रदान करने हेतु नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश युक्त उर्वरक प्रयोग किये जाते हैं।
2. नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों में यूरिया सर्वाधिक उपयोग किया जाने वाला उर्वरक है, इसमें 46 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है।
3. यूरिया, अमोनियम सल्फेट, सिंगल सुपर फॉस्फेट, डी.ए.पी. के अधिक प्रयोग से मृदायें अम्लीय हो जाती हैं।
4. केल्शियम अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक कर मृदाओं में उदासीन प्रभाव के कारण इसे 'किसान खाद' कहते हैं।
5. फॉस्फोरस प्रदान करने वाले उर्वरकों में सिंगल सुपर फॉस्फेट महत्त्वपूर्ण उर्वरक है। जिसमें 16 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा डी.ए.पी. उर्वरक में 18 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 46 प्रतिशत फॉस्फोरस पाया जाता है।
6. फॉस्फोरस का आयरन तथा एल्युमिनियम के साथ मिलने से जटिल योगिक बनते हैं जो जल में अघुलनशील है, इसे फॉस्फोरस स्थिरीकरण कहते हैं।
7. पोटेशियम युक्त उर्वरकों में म्यूरेट ऑफ पोटाश तथा सल्फेट ऑफ पोटाश महत्त्वपूर्ण उर्वरक है, जिनमें क्रमशः 60 तथा 48 प्रतिशत पोटेशियम पाया जाता है।

8- म्यूरेट ऑफ पोटाश में उपस्थित क्लोराइड (Cl^-) तम्बाकू, आलू, चुकन्दर, चाय तथा कॉफी की गुणवत्ता खराब करता है, अतः इन फसलों में इस उर्वरक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

9. उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।
10. सोडियम युक्त उर्वरकों के अधिक उपयोग से मृदा क्षारीय हो जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. एमाइड युक्त कार्बनिक उर्वरक है–

   (अ) यूरिया (ब) अमोनियम सल्फेट

   (स) केल्शियम अमोनियम नाइट्रेट

   (द) डाई अमोनियम फॉस्फेट

2. अमोनियम सल्फेट उर्वरक मृदा पर प्रभाव डालता है–

   (अ) क्षारीय (ब) अम्लीय

   (स) उदासीन (द) कोई नहीं

3. डी.ए.पी. उर्वरक का रासायनिक सूत्र है–

   (अ) $Ca(HPO_4)_2.H_2O$ (ब) NH_2CONH_2

   (स) $(NH_4)_2HPO_4$ (द) $Ca_3(PO_4)_2$

4. जल विलेय फॉस्फोरस है–

   (अ) P_2O_5 (ब) PO_4^{3-}

   (स) HPO_4^{2-} (द) $H_2PO_4^-$

5. सोडियम नाइट्रेट उर्वरक का मृदा पर प्रभाव पड़ता है–

   (अ) क्षारीय (ब) अम्लीय

   (स) उदासीन (द) कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

1. यूरिया में नत्रजन की प्रतिशत मात्रा लिखिए।
2. यूरिया का सूत्र लिखिए।
3. किसान खाद किस उर्वरक को कहते हैं ?
4. सिंगल सुपर फॉस्फेट उर्वरक का सूत्र लिखिए।
5. पर्णीय छिड़काव हेतु श्रेष्ठ नत्रजन युक्त उर्वरक का नाम लिखिए।
6. कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक में नत्रजन की प्रतिशत मात्रा लिखिए।
7. अमोनियम सल्फेट उर्वरक का रासायनिक सूत्र लिखिए।
8. अमोनियम सल्फेट उर्वरक में कितनी प्रतिशत नत्रजन पायी जाती है ?
9. धान की फसल के लिए सर्वोत्तम नत्रजन युक्त उर्वरक का नाम लिखिए।
10. आलू की फसल के लिए उत्तम पोटाश युक्त उर्वरक का नाम लिखिए।
11. उर्वरक क्या होते हैं?
12. नत्रजन उर्वरक के उदाहरण लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

1. बाइयूरेट का फसलों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. केल्शियम अमोनियम नाइट्रेट के चार गुण लिखिए।

3. डी.ए.पी. उर्वरक का संगठन लिखिए।
4. म्यूरेट ऑफ पोटाश के फसलों पर चार प्रभाव लिखिए।
5. यूरिया की मृदा में अभिक्रिया लिखिए।
6. नाइट्रोजन का ह्रास किस तरह होता है?
7. कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट के फसलों पर चार प्रभाव लिखिए।
8. अमोनियम सल्फेट उर्वरक की मृदा में अभिक्रिया लिखिए।
9. म्यूरेट ऑफ पोटाश का फसलों पर प्रभाव लिखिए।
10. सल्फेट ऑफ पोटाश के गुण लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. यूरिया उर्वरक की मृदा में अभिक्रिया एवं फसलों पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।
2. डी.ए.पी. उर्वरक की मृदा में अभिक्रिया एवं फसलों पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।
3. म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं सल्फेट ऑफ पोटाश उर्वरक का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर कीजिए–

   (अ) संगठन (ब) गुण

   (स) मृदा में अभिक्रिया (द) फसलों पर प्रभाव
4. सिंगल सुपर फॉस्फेट की मृदा में अभिक्रिया एवं फसलों पर प्रभाव को समझाइये।
5. उर्वरकों के अधिक उपयोग से मृदा पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कीजिए।
6. उर्वरकों का वर्गीकरण लिखिए।

उत्तरमाला–

1. (अ) 2. (ब) 3. (स) 4. (द) 5. (अ)

अध्याय – 9

कृषि रसायन एवं पर्यावरण प्रदूषण
(Agrochemicals and Environmental Pollution)

कृषि रसायन (Agrochemicals)–

भारतीय कृषि में हरित क्रान्ति (सन् 1965–67) के आगमन के बाद देश खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया। हरित क्रान्ति की सफलता में कृषि रसायनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तब से लगातार कृषि रसायनों के उपयोग से फसल सुरक्षा के अतिरिक्त फसल उत्पादन में निरन्तर बढ़ोतरी हुई है।

परिभाषा (Definition)–

कृषि रसायन वे पदार्थ होते हैं जो रासायनिक या जैव रसायन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप निर्मित होते हैं तथा फसलों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व व सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

दूसरे शब्दों में कृषि रसायन ऐसे उत्पादों की श्रेणी है जिसमें सभी पीड़कनाशी रसायन एवं रासायनिक उर्वरक शामिल होते हैं जो फसलों का उत्पादन (Crop Production) बढ़ाने एवं फसल सुरक्षा (Crop Protection) प्रदान करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

यद्यपि ये सभी रसायन कृषकों के लिए अत्यन्त मंहगे होते हैं फिर भी बेहतर उत्पादन हेतु इनका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा हैं। यदि इनका उपयोग सही मात्रा एवं उपर्युक्त विधि द्वारा किया जाए तो ये किसानों के लिए अच्छी आय के अवसर प्रदान कर सकते हैं। कृषि रसायनों का मृदा सुधारक (Soil amendments) एवं वृद्धि नियामक (Growth regulators) के रूप में भी महत्वपूर्ण योगदान है।

कृषि रसायनों के प्रकार (Typs of Agrochemicals)

ये निम्न प्रकार के होते हैं–

(1) रासायनिक उर्वरक (Chemical Fertilizers)–

खेती की पैदावार बढ़ाने में रासायनिक उर्वरकों की प्रमुख भूमिका है। भारत में हरित क्रान्ति की सफलता काफी हद तक उर्वरकों के इस्तेमाल पर निर्भर रही है। नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. नौरमैन ई. बोरलौग के अनुसार 'अगर अधिक पैदावार देने वाली किस्में हरित क्रान्ति की उत्प्रेरक थी तो रासायनिक उर्वरकों ने ईंधन के रूप में उसे गति प्रदान करने वाली शक्ति का काम किया।' आज उर्वरक गहन खेती का अपरिहार्य निवेश बन गये हैं। चूंकि भारत दूसरी 'सुपर हरित क्रान्ति' करने का प्रयास कर रहा है। अतः उर्वरकों की खपत में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही हैं।

भारत में उर्वरक उत्पादन 1906 में सिंगल सुपर फॉस्फेट के साथ शुरु हुआ। सन् 1947 में आजादी मिलने के समय देश में अमोनियम सल्फेट एक मात्र नाइट्रोजन उर्वरक के रूप में जाना जाता था। सन् 1956 में यूरिया और 1967 में डाई–अमोनियम फॉस्फेट का उत्पादन शरु होने के साथ ही देश में उर्वरकों के इस्तेमाल में क्रान्ति आ गई। सन् 1951–52 में प्रति हैक्टर उर्वरक (N + P + K) खपत बहुत कम (लगभग 0.5 किग्रा./है.) थी जो बढ़कर सन् 2016–17 में 158 किग्रा. प्रति हैक्टर हो गई। किन्तु सन् 2015 के विश्व आंकडों के अनुसार इजिप्ट (389 किग्रा.), चीन (420 किग्रा.), कोरिया (296 किग्रा.), बांग्लादेश (278 किग्रा.) जैसे देशों के मुकाबले भारत में उर्वरकों की खपत बहुत कम है।

विश्व में भारत का सन् 2014–15 के आंकड़े के अनुसार उर्वरक उत्पादन (N + P) में चीन तथा यू.एस.ए. के बाद तीसरा स्थान है और उर्वरक खपत (N + P + K) में विश्व में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है। नाइट्रोजन के विश्व उत्पादन एवं खपत में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है। फॉस्फोरस के

खपत में भारत का विश्व में चीन के बाद द्वितीय स्थान है और पोटैशियम की खपत में भारत का चीन, ब्राजील और यू.एस.ए. के बाद विश्व में चतुर्थ स्थान है। उर्वरकों की खपत में तेजी से बढ़ोतरी होने से विभिन्न मानवीय गतिविधियों के कारण होने वाले पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जागरुकता से उर्वरकों के इस्तेमाल के प्रति संदेह पैदा हो गया है और इस बात पर चिंता प्रकट की जा रही है कि रासायनिक उर्वरकों पर अत्यधिक निर्भरता से पर्यावरण को अस्थायी क्षति पहुंच सकती है। उपयोग में लाये गये उर्वरकों का कुछ भाग निचली सतह में जाकर भू–गर्भीय जल में मिल जाता है या मिट्टी के कटाव के साथ नाले, नदी और तालाब में मिल जाता है।

जलाशयों के जल में पोषक तत्वों की मात्रा में बढ़ोतरी से इनमें शैवाल की वृद्धि ज्यादा होती है, जिससे जलाशय सुपोषी हो जाते हैं और जल में कार्बनिक कार्बन की मात्रा ज्यादा हो जाती है। इसके फलस्वरूप जैव रासायनिक ऑक्सीजन की मांग ज्यादा हो जाती है और अवायवीय अवस्था बन सकती है। इस तरह से बनी अवायवीय अवस्था से जल में उपस्थित पौधों एवं मछलियों के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इनकी मृत्यु दर बढ़ जाती है।

उर्वरक नाइट्रोजन के निक्षालन खासतौर से नाइट्रेट नाइट्रोजन से जलाशयों का प्रदूषण होता है और जलाशयों के सुपोषी होने के साथ–साथ इसका दुष्प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर भी होता है। अगर पीने के जल में नाइट्रेट की मात्रा 45 पी.पी.एम. (या नाइट्रेट नाइट्रोजन की मात्रा 10 पी.पी.एम.) से ज्यादा है। जल में विलेयशील उर्वरकों के उपयोग से या इनके उपयोग के तुरन्त बाद सिंचाई करने से या अधिक वर्षा से भी उर्वरक नाइट्रोजन का निक्षालन ज्यादा होता है खासतौर से हल्की रेतीली मृदाओं में जिनकी जलधारण क्षमता एवं धनायन विनिमय क्षमता कम होती है।

नाइट्रोजन की तरह फॉस्फोरस गतिशील तत्व नहीं है एवं मृदा में स्थिर हो जाता है, परन्तु मृदाएं जिनमें कार्बनिक कार्बन की मात्रा ज्यादा और एल्युमिनियम और लोहा की मात्रा कम होती है, फॉस्फोरस की गतिशीलता ज्यादा होती है और इसका निक्षालन हो सकता है। शहरी एवं औद्योगिक अपशिष्ट के सान्निक्षेपण तथा मृदा के अपरदन के कारण भी जलाशयों में फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ सकती है।

जल में फॉस्फोरस की मात्रा थोड़ी–सी बढ़ोतरी ही जलाशय को सुपोषी बनाने के लिए काफी है, क्योंकि इसके फलस्वरूप शैवाल, जल के पौधों इत्यादि में वृद्धि होती है। अधिकांश फसलों द्वारा नाइट्रोजन 30–50 प्रतिशत, फॉस्फोरस 15–20 प्रतिशत, पोटैशियम 70–80 प्रतिशत, जिंक 2–5 प्रतिशत, लौहा 1–2 प्रतिशत तथा तांबा 1–2 प्रतिशत तक ही मात्रा का उपयोग होता है। उर्वरकों का बाकी हिस्सा मृदा में घुल कर नीचे की ओर चला जाता है अथवा उसका वाष्पीकरण या डिनाइटीकरण होता है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि भारत में पोषक सुरक्षा एवं कृषि पैदावार की स्थिति को देखते हुए उर्वरकों के इस्तेमाल के प्रभावों को समझा जाए और उनका सही–सही मूल्यांकन किया जाए।

(2) पीड़कनाशी (Pesticides)–

भारतीय कृषि में हरित क्रान्ति के उदय के बाद फसल उत्पादन बढ़ाने तथा फसलों की कीट–पतंगों, रोगों, खरपतवारों से सुरक्षा करने में पीड़कनाशियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत विश्व में पीड़कनाशियों का तृतीय सबसे बड़ा उपभोक्ता (Consumer) है तथा दक्षिण एशिया के देशों में सबसे बड़ा उपभोक्ता है। साधारण पीड़कनाशी (Basic Pesticides) बनाने में भारत चीन के बाद एशिया का दूसरा सबसे बड़ा निर्माण करने वाला तथा विश्व में भारत का 12वां स्थान है। भारत कीटनाशकों का विश्व में 13वां सबसे बड़ा निर्यातक देश है जो ब्राजील, यू.एस.ए., फ्रांस और नीदरलैण्ड जैसे देशों को कीटनाशकों का निर्यात करता है।

कई दशकों से भारत में पीड़कनाशियों की खपत कई गुना बढ़ी है जो 1953–54 में 154 मैट्रिक टन से बढ़कर सन् 2009–2010 में 85000 मैट्रिक टन हो गई। भारत में प्रति हैक्टर पीड़कनाशियों की खपत विश्व में सबसे कम है, जो हाल में 0.6 किग्रा प्रति हैक्टर है। विश्व के अन्य देशों जैसे– यू.के. (5.7 किग्रा. प्रति हैक्टर), फ्रांस (5–6 किग्रा. प्रति हैक्टर), कोरिया (7 किग्रा. प्रति हैक्टर), यू.एस.ए. (7 किग्रा. प्रति हैक्टर), जापान (12 किग्रा. प्रति हैक्टर), चीन (13 किग्रा. प्रति हैक्टर) तथा ताईबान (17 किग्रा. प्रति हैक्टर) खपत हैं।

हमारे देश में सबसे ज्यादा कीटनाशकों की खपत आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा पंजाब जिनमें कुल खपत का 45 प्रतिशत भाग उपयोग होता है। फसलों में सबसे अधिक कीटनाशक कपास, धान, फल एवं सब्जियों में प्रयोग होते हैं।

कीटनाशी अधिनियम 1968 के अनुसार भारत में लगभग 155 पीड़कनाशी पंजीकृत हुए हैं जिनमें 57 कीटनाशक, 44 फफूंदनाशक, 33 खरपतवारनाशी, 7 मूषकनाशी, 4 पादप वृद्धि नियामक, 4 धूर्मण (फ्युमिगेन्ट्स), 3 अष्टपदनाशी, 1 मोलस्कीसाइड्स, 1 सूत्रकृमिनाशी, 1 मृदा निर्जमीकारक (Soil Strilent)।

हमारे देश में कुल पीड़कनाशियों में 60 प्रतिशत कीटनाशक, 18 प्रतिशत कवकनाशक, 16 प्रतिशत खरपतवारनाशी, 3 प्रतिशत जैवनाशी तथा 3 प्रतिशत अन्य दूसरे रसायन कृषि में प्रयुक्त होते हैं।

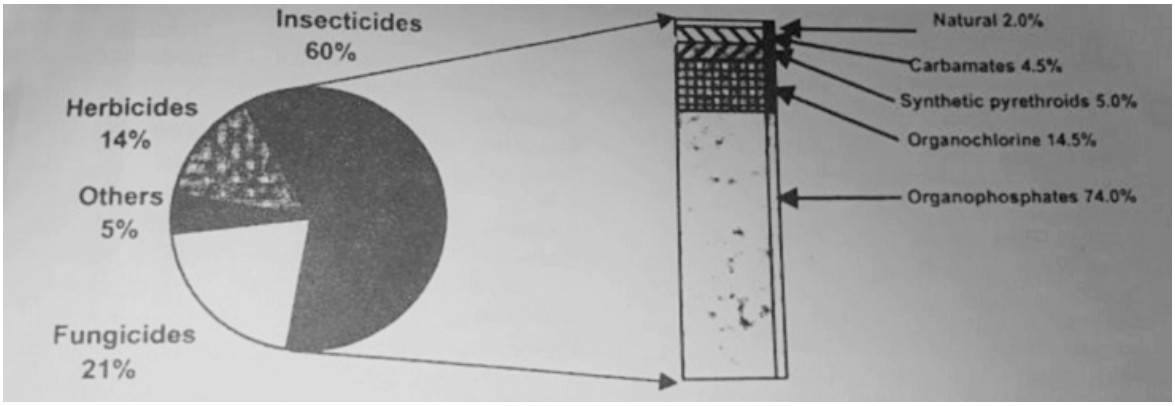

चित्र–भारत में विभिन्न पीड़कनाशियों की खपत

पीड़कनाशी की परिभाषा (Definition of pesticides)

वे रासायनिक यौगिक जो पादप कीट एवं रोगों को नियंत्रित करने, खरपतवार उन्मूलन, कृषि उत्पादों को नष्ट करने वाले कीटों एवं सूक्ष्म जीवों को मारने तथा परजीवियों तथा मनुष्य एवं जानवरों के खतरनाक रोगाणुओं के नियंत्रण में प्रयोग किये जाते हैं, पीड़कनाशी (पेस्टीसाइड्स) कहलाते हैं।

पीड़कनाशी का वर्गीकरण नियंत्रण हेतु प्रयोग के आधार पर निम्न प्रकार किया जाता है–

1. कीटनाशी (Insecticides) : कीटों को मारने हेतु
2. कवकनाशी (Fungicides) : फंजाई को नष्ट करने के लिए
3. खरपतवार नाशी (Weedicides) : खरपतवारों को नष्ट करने के लिए
4. सूत्रकृमि नाशी (Nematicides) : सूत्रकृमियों के लिए
5. अष्टपद नाशी (Acaricides) : माइट्स आदि को मारने के लिए
6. मूषकनाशी (Rodenticides) : चूहों को मारने हेतु
7. एल्गीसाइड्स (Algicides) : एल्गी को नष्ट करने के लिए
8. मोलस्कीसाइड्स (Molluscicides) : मोलस्क समुदाय के लिए
9. बैक्टीरीसाइड्स (Bacteriocides) : बैक्टीरिया नष्ट करने के लिए।

रासायनिक कीट–नाशक (Insecticides) –

प्रारम्भ में अकार्बनिक कीटनाशी यथा लेड आरसीनेट, पेरिस ग्रीन, कैल्शियम आरसीनेट का उपयोग कीट नियंत्रण के लिए किया जाने लगा। लेकिन ये कीटनाशी पौधों पर भी घातक प्रभाव छोड़ने लगे। फिर वानस्पतिक कीटनाशी यथा निकोटीन, रोटीनौन, पायरैथ्रम आदि का उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में आविष्कार हुआ लेकिन इन कीटनाशकों की उपलब्धता आसानी से नहीं होती तथा इनका प्रभाव एक–दो दिन तक ही रहता था। अतः आवश्यकता ऐसे कीटनाशियों की होने लगी जो कीटों को स्थायी रूप से नष्ट करें और आसानी से उपलब्ध हो जाए।

कीटनाशियों का वास्तविक युग सन् 1939 में डॉ. पॉल मुलर द्वारा डी.डी.टी. कीटनाशी की खोज होने पर प्रारम्भ हुआ। इसी समय से रासायनिक कीट नियंत्रण प्रारम्भ हो गया। डॉ. पाल मुलर को इस खोज पर सन् 1948 में नोबेल पुरस्कार भी मिला। कीट–नाशक निम्न वर्गों में विभाजित किये जाते हैं :–

1. क्लोरीनेटिड हाइड्रोकार्बन्स (Chlorinated hydrocarbons)– ये अत्यधिक विषैले होते हैं, इनका प्रभाव काफी समय तक रहता है। ये स्पर्श तथा आन्तरिक या उदर विष दोनों की ही तरह काम करते हैं। ये जल में अविलेय तथा पैट्रोलियम आदि में विलेय होते हैं। ये स्तनधारियों के लिए विषैले होते हैं। डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन, हैप्टाक्लोर, क्लोरडेन इत्यादि ये कीटनाशी पूर्व में भूमिगत कीट जैसे दीपक, कटुआ लट, सफेद लट के लिए प्रयोग में लिये जाते थे। ये अत्यंत कारगर थे। इनमें से कतिपय जैसे बी.एच.सी., हैप्टाक्लोर आदि पौधों पर छिड़के जाते थे। लेकिन इन कीटनाशियों के अवशेष खाद्यान्नों में पाये जाने लगे। इनसे भूमि प्रदूषित होने लगी तो भारत सरकार ने इन पर रोक लगा दी। इनमें से कतिपय जैसे एन्डोसल्फान का वेधक कीटों पर प्रयोग अनेक वर्षों तक होता

रहा है। लिण्डेन तो अभी भी फसलों पर कीट नियंत्रण हेतु काम लिया जाता है।

2. आरगैनो फॉस्फेट कीटनाशी (Organo phosphate) : पैराथियोन, मिथाइल पैराथियोन, ईथिऑन, डाइमैथेएट, डोमैटोन, फॉस्फामीडोन, फोरेट इत्यादि कीटनाशी कीट नियंत्रण में अत्यंत कारगर हैं। लेकिन इनमें से अधिकतर अत्यंत विषैले हैं। अतः कुछ पर भारत सरकार ने प्रतिबंध लगा रखा है। मैलाथिपोन, ऐसीफेट आदि इस समुदाय के कीटनाशी है जो आज भी फसलों पर, खासतौर से सब्जियों एवं फलों वाली फसलों पर प्रयोग किये जाते हैं। इनकी कीट मारक क्षमता ठीक है, इनके अवशेष शीघ्र अवघटित हो जाते हैं और मानव पशुओं के लिए तुलनात्मक रूप से कम विषैले हैं।

3. कार्बामेट कीटनाशी (Carbamate) : कार्बारिल, एल्डीकार्व, कार्बो फ्यूरान इस श्रेणी के कीटनाशक हैं। इनमें से कार्बारिल का प्रयोग विभिन्न फसलों पर किया जाता है। कार्बोफ्यूरान भी भूमिगत कीट दीमक आदि के लिए एवं बीजोपचार में काम लिया जाता है। एल्डीकार्व बहुत घातक है, अतः इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

4. सिंथेटिक पायरैथ्रोएड (Synthetic Phyrethroides) : उदाहरणार्थ साइपरमैथ्रिन, परमैथ्रिन, डेल्टामैथ्रिन तथा फनवलेरट आदि। ये कीटनाशी कीड़ों के लिए बहुत कम मात्रा में भी अत्यन्त घातक होते हैं, लेकिन मानव के लिए कम घातक हैं और इनके अवशेष शीघ्र अवघटित हो जाते हैं। अतः इनका प्रयोग छेदक कीड़ों के लिए खासतौर से किया जाता है। लेकिन इनके बार बार प्रयोग से अन्य छोटे छोटे कीट जैसे माहू, सफेद मक्खी, हरा तैला आदि की बढ़ोतरी हो जाती है। अतः सिर्फ एक या दो बार ही फसलों पर छिड़काव करें।

(3) जैविक कीटनाशी (Bio Pesticides)–

जैविक कीटनाशक विभिन्न प्रकार के जीवों जैसे कीटों, फफूंदी, जीवाणुओं, विषाणुओं तथा वनस्पतियों पर आधारित उत्पादन हैं जो फसलों, सब्जियों तथा फलों को कीटों और रोगों से सुरक्षित कर उत्पादन बढ़ाने में सहयोग करते हैं। यह 20–30 दिन के अंदर भूमि और जल से मिलकर जैविक क्रिया का अंग बन जाते हैं तो वहीं स्वास्थ्य और पर्यावरण को भी कोई हानि नहीं पहुंचाते हैं। उदाहरणार्थ– नीम कीटनाशी, ट्राइकोकार्ड (ट्राइकोग्रामा), न्यूक्लियर पॉली हाइड्रोसिस वायरस, बैसिलस थुर्रेजिएसिंस, फेरोमोन ट्रेप (गंधपाश), ट्राइकोडरमा, व्यूवेरिया बैसियाना, मेटाराइजिम एनीसोपीली। जैविक कीटनाशी पर्यावरण के लिए लाभदायक (Eco Freindly), प्रयोग करने में आसान तथा रासायनिक पीड़कनाशियों की अपेक्षा कम मात्रा में प्रयुक्त होकर फसलों में अधिक उपयोगी होते हैं। इनका प्रयोग कपास, धान, मूंगफली, दाल, गेहूँ, गन्ना एवं फल व सब्जियों में किया जाता है।

जैविक कीटनाशकों से लाभ (Advantages of bio-pesticides)–

- जीवों एवं वनस्पतियों पर आधारित उत्पाद होने के कारण जैविक कीटनाशक लगभग एक माह में भूमि में मिलकर अपघटित हो जाते हैं तथा इनका कोई अंश अवशेष नहीं रहता, यही कारण है कि इन्हें पारिस्थितकीय मित्र के रूप में जाना जाता है।
- जैविक कीटनाशक केवल लक्षित कीटों एवं बीमारियों को मारते हैं, जबकि रासायनिक कीटनाशकों से मित्र कीट भी नष्ट हो जो हैं।
- जैविक कीटनाशकों के प्रयोग से कीटों/व्याधियों में सहनशीलता एवं प्रतिरोध नहीं उत्पन्न होता जबकि अनेक रसायन कीटनाशकों के प्रयोग से कीटों में प्रतिरोध क्षमता उत्पन्न होती जा रही है, जिनके कारण उनका प्रयोग अनुपयोगी होता जा रहा है।
- जैविक कीटनाशकों के प्रयोग के तुरन्त बाद फलियों, फलों, सब्जियों की कटाई पर प्रयोग में लाया जा सकता है, जबकि रासायनिक कीटनाशकों के अवशिष्ट प्रभाव को कम करने के लिए कुछ दिनों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
- जैविक कीटनाशकों के सुरक्षित, हानिरहित तथा पारिस्थितकीय मित्र होने के कारण विश्व में इनके प्रयोग से उत्पादित चाय, कपास, फल, सब्जियों, तम्बाकू तथा खाद्यान्नों, दलहन एवं तिलहन की मांग एवं मूल्यों में वृद्धि हो रही है, जिसका परिणाम यह है कि कृषकों को उनके उत्पादों का अधिक मूल्य मिल रहा है।
- जैविक कीटानाशकों के विषहीन एवं हानिरहित होने के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में इनके प्रयोग से आत्महत्या की सम्भावना शून्य हो गयी है, जबकि कीटनाशी रसायनों से अनेक आत्महत्याएं हो रही हैं।
- जैविक कीटनाशक पर्यावरण, मनुष्य एवं पशुओं के लिए सुरक्षित तथा हानिरहित हैं। इनके प्रयोग से जैविक खेती को बढ़ावा मिलता है जो पर्यावरण एवं परिस्थितकीय का संतुलन बनाये रखने में सहायक है।

(4) पादप वृद्धि नियामक (Plant Growth Regulator)–

ये वह कृषि रसायन होते हैं जो पौधों की वृद्धि की प्रक्रियाओं (Plant Growth Proceses) को नियंत्रित

(Controling) अथवा बदलने (Modyfing) के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इनका प्रयोग कपास, धान, सब्जियों व फलों में किया जाता हैं। उदाहरणार्थ– साइटोकायनिन्स (Cytokinins), इथायलिन (Ethylene), इंडोल–3–एसिडिक–एसिड (Indol-3 acetic acid (IAA)), एब्सीसिक एसिड (Abscisic acid (ABA)), ऑक्जीन्स (Auxins), गिब्बिलियन्स (Gibberellins), जायटिन (Zeatin), पेलारगॉनिक एसिड (Pelargonic acid)।

(5) कीट वृद्धि नियामक (Insect Growth Regulator)–

ये वे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो कीड़ों के जीवनचक्र को प्रभावित करते हैं। ये हानिकारक कीटों को नियंत्रण करने के लिए कीटनाशक के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। लाभदायक कीड़ों को बहुत कम मात्रा में हानि पहुँचाते हैं तथा उनके साथ मित्रवर व्यवहार करते हैं। पर्यावरण प्रदूषण को बहुत कम मात्रा में नुकसान पहुँचाते हैं। यह जैविक नियंत्रण के साथ बहुत अधिक प्रभावी होते हैं। उदाहरणार्थ– बूप्रोफेजिन (Buprofezin), क्लोरफ्लूआजिरोन (Chlorfluaziron), टेफ्लूबैनर्जोन (Teflubenzuron), पायरीप्रोक्सीफेन (Pyriproxefen), फिनोक्सीकार्ब (Fenoxycarb), नोवेल्यूरॉन (Novaluron)।

(6) वनस्पति आधारित कीटनाशक (Botanical Pesticides)–

वनस्पति आधारित कीटनाशकों में विभिन्न सान्द्रता वाले नीम के उत्पाद उपलब्ध है। इनका प्रयोग मुख्यतः सफेद मक्खी, ग्रास होपर, शूट फ्लाई व लट कीटों के लिए किया जाता है। नीम की निंबोली के 5 प्रतिशत पानी में निकाले गए सत (नीम सीड कर्नल एक्सट्रेक्ट) का छिड़काव चने की हरी लट व अन्य अनेकों पत्तियाँ कुतरने वाले व सफेद मक्खी आदि कीटों के लिए कारगर है। महुआ, करंज, तिल, सरसों आदि वनस्पति तेलों का प्रयोग कोमल तने के कीटों की रोकथाम व संग्रहित खाद्यान्नों की सुरक्षा के लिए होता है। वनस्पति आधारित अन्य कीटनाशकों में क्राईसेन्थेमम से प्राप्त बिना सिर्नजिस्ट मिला पाईरिथ्रम, रोटीनान, सेबाडेला, तम्बाकू की पत्तियों (निकोटिन), लहुसन आदि से प्राप्त तत्व नाशकीटों की प्रभावी रोकथाम के लिए प्रयुक्त होते हैं। नीम से बना हुआ, Azadirachtin वनस्पति कीटनाशक काफी प्रचलित एवं लाभकारी है।

पीड़कनाशियों का मृदा में व्यवहार (Behaviour of pesticides in soil)–

विभिन्न प्रकार के पेस्टीसाइड्स का संगठन अलग–अलग होने के कारण उनका मृदा में व्यवहार भी भिन्न होता है।

(1) वाष्पीकृत (Volatility) : कुछ पेस्टीसाइड्स प्रयोग किये जाने के बाद वाष्प रूप में परिवर्तित होकर वायुमण्डल में फैल जाते हैं या मृदा छिद्रों में प्रवेश कर जाते हैं जिससे वे अपनी वांछनीय क्रिया को पूरा करते हैं जैसे, डी.डी.टी. मैथिल ब्रोमाइड आदि।

(2) अधिशोषण (Adsorption) : कुछ पेस्टीसाइड्स में क्रियाशील समूह जैसे : $-OH$, $-NH_2$, $-NHR$, $-CONH_2$, $-COOR$, $-NR_3$ की उपस्थिति के कारण मृदा में अधिशोषित हो जाते हैं।

मृदा में ह्यूमस एवं क्ले की उपस्थिति के कारण क्रियाशील समूह अधिशोषण की क्रिया को पूरा करने में समर्थ हो जाते हैं। क्ले पर अधिशोषित होने से पेस्टीसाइड्स की जीवनाशक क्रिया में बाधा पहुँचती है परन्तु क्ले से अलग होते ही ये पुनः क्रियाशील हो जाते हैं।

(3) निक्षालन (Leaching) : पानी के साथ पेस्टीसाइड्स मृदा में नीचे की ओर रिसकर प्रवेश करते हैं। यह रिसाव की क्रिया मृदा में पेस्टीसाइड्स कम रिसते हैं। हल्की प्रकार की मृदा में रिसाव अधिक होता है खरपतवार नाशक पदार्थ कीटनाशक एवं फंजाईनाशक से अधिक रिसते है।

(4) रासायनिक क्रिया (Chemical Reaction) : मृदा के सम्पर्क में आने के बाद पेस्टीसाइड्स में रासायनिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं। डी.डी.टी. एवं ट्राइजिन्स सूर्य की रोशनी के प्रभाव से परिवर्तित होते हैं। अम्लीय अवस्था में पेस्टीसाइड्स पहले सिलीकेट क्ले कलिल पर अधिशोषित होते हैं, फिर जलयोजित होकर परिवर्तित होते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन एट्रजिन, मैलाथियान में पाया गया है।

(5) सूक्ष्म जीव–मैटाबोलिज्म (Microbial Metabolism) : मृदा में पेस्टीसाइड्स का जैव–रासायनिक विधि से परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन पेस्टीसाइड्स में $-OH$, $-COO-$, $-NH_2$ एवं NO_2 समूहों की उपस्थिति के कारण होता है। डी.डी.टी. एवं एल्ड्रिन में परिवर्तन इसी श्रेणी के हैं, परन्तु ये परिवर्तन जीवाणुओं द्वारा तीव्रता से होता है।

(6) स्थायित्व (Persistance) : संगठन एवं प्रकृति के अनुसार पेस्टीसाइड्स के परिवर्तन में मृदा में समय लगता है। खरपतवार नाशक 2–4D मृदा में 2 से 4 सप्ताह तक बनी रहती है जबकि डी.डी.टी. मृदा में 3 से 15 वर्ष या और भी अधिक समय तक बनी रह सकती है। फसलों को उगाने से, रिसाव द्वारा एवं कार्बनिक पदार्थों के अपघटन के द्वारा पेस्टीसाइड्स का स्तर धीरे–धीरे मृदा में कम होता रहता है। अधिक समय तक विषैले पेस्टीसाइड्स के प्रभाव जीवधारियों के लिए भी घातक होते हैं।

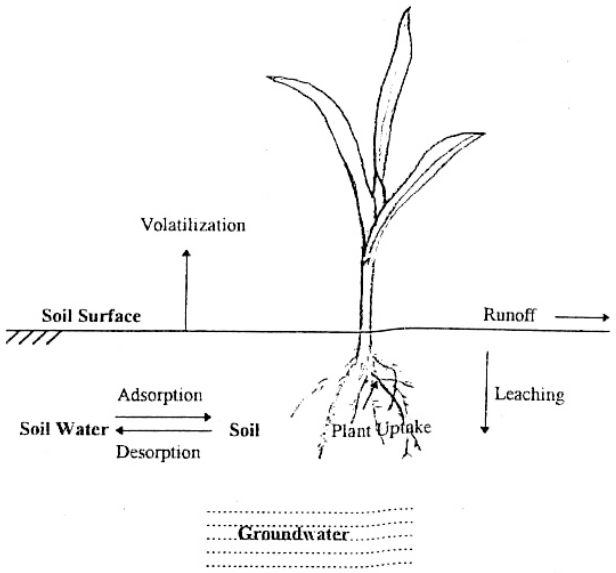

चित्र–मृदा में कीटनाशकों का व्यवहार

भारत में निम्न 27 पीड़कनाशियों के निर्माण, आयात एवं प्रयोग पर प्रतिबंध (27 Pesticides banned for manufacturer, Import & Use) –

1. एल्ड्रिन 2. बैंनजीन हैक्साक्लोराइड 3. कैल्शियम साइनाइड 4. क्लोरढान 5. कॉपर ऐसिटोआसीनेट 6. ब्रोमोक्लोरोप्रोपेन 7. इन्ड्रिन 8. ईथायल मर्करी क्लोराइड 9. ईथायल पैराथियोन 10. हैप्टाक्लोर 11. मैनाजोन 12. नाइट्रोफेन 13. पैराक्यूट डाई मिथायल सल्फेट 14. पेन्ट्राक्लोरो नाइट्रो बेन्जीन 15. पेन्ट्राक्लोरो फिनोल 16. फिनायल मर्करी ऐसिटेट 17. सोडियम मिथैन आर्सोनेट 18. ट्रेटाडीफोन 19. टोक्सासीन 20. एल्डीकार्व 21. क्लोरोबैन्जीलेट 22. डाइएल्ड्रिन 23. मैलिक हाइड्राजिड 24. इथालिन डाइब्रोमाइड 25. टी.सी.ए. 26. मेटोऑक्सूरोन 27. क्लोरोफेनविनफॉस।

वे पीड़कनाशी जिनका प्रयोग भारत में नियंत्रित कर दिया गया हैं (Pesticides Restricted for Use in India)–

1. एल्यूमिनियम फॉस्फाइड 2. डी.डी.टी. 3. लिण्डेन 4. मिथाइल ब्रोमाइड 5. मिथाइल पैराथियोन 6. सोडियम साइनाइड 7. मिथोक्सी इथायल मर्क्यूरिक क्लोराइड 8. मोनोक्रोटोफास 9. इण्डोसल्फान 10. फिनाइटोथ्रायोन 11. डाइजीनोन 12. फेनथ्रायोन 13 डायजोमेट

–स्रोत : निदेशालय, पादप संरक्षण एवं भण्डारण, फरीदाबाद

पर्यावरण (Environment)

पर्यावरण शब्द का तात्पर्य भूतल के समस्त भौतिक प्रभावों, जैसे–ताप, जल, वायु पदार्थों के गठन की विभिन्नताओं तथा जैविक से है। मृदा, पहाड़, जल, स्थल, वायु इत्यादि के अतरिक्त दूसरे समस्त जीव भी पर्यावरण के अंग होते हैं। पर्यावरण जैव जगत का नियामक है जिसने पृथ्वी को जीवित जगत का गौरव प्रदान किया है। स्पष्ट है कि पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। कोई भी जीव अपने पर्यावरण से अलग जीवन–यापन नहीं कर सकता। समस्त जीवों को उस स्थान की परिस्थितियों के अनुसार अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता है जहाँ पर वह पाया जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions) :

प्रसिद्ध पर्यावरणविद् हर्ष कोविट्स के अनुसार 'पर्यावरण सम्पूर्ण बाह्य परिस्थितियों और उसका जीवधारियों पर पड़ने वाला प्रभाव है, जो जैव जगत् के विकास चक्र का नियामक है।'

जर्मन विद्वान ए. फिटिंग के अनुसार 'जीवन की परिस्थिति के समस्त तत्व या घटक (Factors) मिलकर पर्यावरण अथवा वातावरण कहलाते हैं।'

टांसले के अनुसार, 'प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमें जीव रहते हैं, पर्यावरण है।'

उपरोक्त समस्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण से तात्पर्य जीवों की उनके चारों की उन परिस्थितियों के परिवृत्त से है जो उसे घेरे हुए हैं एवं उनकी सभी प्रकार की क्रियाओं को प्रभावित करता है। इन समस्त परिस्थितियों को उन सम्पूर्ण शक्तियों की नींव समझा जाता है जिनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव मानव प्रक्रियाओं पर पड़ता है।

पर्यावरण प्रदूषण (Environment Pollution) :

आज पर्यावरण प्रदूषण (Environment Pollution) सम्पूर्ण विश्व की एक गंभीर समस्या है। पर्यावरण प्रदूषण को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है–

पर्यावरणीय प्रदूषण मनुष्यों की गतिविधियों द्वारा प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न उप–उत्पाद है जो पर्यावरण में पूर्ण रूप से या अधिकतम प्रतिकूल परिवर्तन उत्पन्न करता है, ऊर्जा स्वरूपों, विकिरण स्तरों, रासायनिक तथा भौतिक संगठन तथा जीवों की संख्या में परिवर्तन को प्रभावित करता है।

अतः जिस क्रिया से हवा, जल, मिट्टी एवं वहाँ के संसाधनों के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में किसी अवांछनीय परिवर्तन से जैव जगत् एवं सम्पूर्ण परिवेश पर हानिकारक प्रभाव पहुँचे, उसे प्रदूषण (Pollution) कहते हैं।

प्रदूषक (Pollutant) :

कोई पदार्थ अथवा कारक जो वातावरण को प्रभावित करते हुए मानव के लक्ष्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले, प्रदूषक कहे जाते

हैं। यह दो प्रकार के होते हैं–

1. निम्नीकृत प्रदूषक (Degradable Pollutant)– कार्बनिक पदार्थ, जैसे–कूड़ा–करकट, कचरा, गोबर, मलमूत्र एवं जीवधारियों के अवशेष या उत्सर्जी पदार्थ, सड़–गल कर मृदा उर्वरता बढ़ाने में सहायक होते हैं, परन्तु इनका अपघटन पूर्ण न होने पर दुर्गन्धयुक्त गैसों से वायुमण्डल दूषित होता है और फसलों में दीमक लगने की संभावना बढ़ जाती है।

2. अनिम्नीकृत प्रदूषक (Non-degradable Pollutant)– उद्योगों के अवशिष्ट एवं रासायनिक पदार्थ जिनका कि कम विघटन होता है अथवा विघटन हो ही नहीं पाता, अनिम्नीकृत प्रदूषक की श्रेणी में आते हैं, जैसे–प्लास्टिक पदार्थ, बी.एच.सी., डी.डी.टी., ऐलुमिनियम, आर्सेनिक, सिलिकेट पदार्थ, फाउन्ड्री उद्योग के अवशेष आदि।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार (Kinds of Environmental Pollution)–

पर्यावरण प्रदूषण प्रमुख रूप से प्रकृतिजन्य एवं मानवजन्य कारणों से होता है। कृषि एवं पर्यावरण सम्बन्धों की दृष्टि से इसे निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता हैं– (1) जल प्रदूषण (2) वायु प्रदूषण (3) मृदा प्रदूषण (4) ध्वनि प्रदूषण, (5) रेडियोधर्मी प्रदूषण।

(1) जल प्रदूषण (Water Pollution)– प्राकृतिक संसाधनों में जीवधारियों के अस्तित्व के लिए जल सर्वाधिक आवश्यक तत्व है। जल से ही धरती पर जीवन का निर्वहन होता है, परन्तु दूसरी ओर मानव सभ्यता इसे विकारग्रस्त करके प्रदूषित करने के लिए उत्तरदायी भी है। जल के अवयवों में अवांछित तत्व प्रवेश कर जाते हैं तो उनका मौलिक संतुलन बिगड़ जाता है। इस प्रकार जल के प्रदूषित होने की प्रक्रिया या जल में हानिकारक तत्वों की मात्रा का बढ़ना जल प्रदूषण कहलाता है तथा ऐसे पदार्थ जो जल को प्रदूषित करते हैं, जल प्रदूषक कहलाते हैं।

जल प्रदूषण को मुख्यतः मनुष्य द्वारा अपने क्रियाकलापों से उसके प्राकृतिक (भौतिक), रासायनिक और जैविक घटकों में धीरे–धीरे कमी पैदा करने वाले कार्यों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। दूसरी ओर यह चट्टानों के विखण्डन, खनिज पदार्थ, मृदा तलछट, पोषक तत्व, मृत पशुओं, वानस्पतिक पदार्थ एवं सूक्ष्म जीवों के सड़ जल कर धीरे–धीरे क्षय होने से संभव है, जो मृदा अपरदन के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते रहते हैं। जल अवयवों की गुणवत्ता (सतही और भूमिगत) का कम होना पिछले कुछ दशकों से लगातार बढ़ रहा है तथा औद्योगिक और कृषि क्षेत्रों में मानवीय गतिविधियों की वृद्धि से जल प्रदूषण की समस्या अधिक गंभीर हो गई है।

पर्यावरण में प्रदूषणकारी तत्वों को लेकर कुछ वर्षों से विश्वव्यापी चिन्ता व्यक्त की जा रही हैं। मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न प्रदूषणकारी तत्वों द्वारा मानवजाति अथवा पारिस्थितिक जीवन तंत्र पर होने वाले हानिकारक प्रभावों की सूचनाओं के व्यापक प्रसार से प्राप्त होने वाली जानकारी के कारण प्रदूषण चिन्ता उत्पन्न हुई है। जल प्रदूषण जैसी पर्यावरण सम्बन्धी समस्या जल स्रोतों में औद्योगिक इकाईयों द्वारा अनियंत्रित बहिःस्राव के कारण उत्पन्न हुई है, जबकि वायु प्रदूषण जैसी अन्य समस्याएं ऊर्जा उत्पादन करने वाले उद्योगों तथा वाहनों के उत्सर्जन पदार्थों के अपर्याप्त नियंत्रण से सम्बद्ध है।

जल प्रदूषण के मानदण्ड (Valuation of Water Pollution)– जल प्रदूषण के प्रकार और सीमा के लिए निम्नलिखित मानदण्ड सुनिश्चित किये जाते हैं–

1. प्राकृतिक (भौतिक) मानदण्ड– पानी का रंग, गंध, अविलेयता, सघनता (धनत्व) तथा तापमान प्राकृतिक रूप से जल प्रदूषण के बारे में सही जानकारी देते हैं।

2. रासायनिक मानदण्ड– पी–एच, पूरी तरह घुलनशील लवण (टी.डी.एस.) आयनिक साम्य, छोड़े गए सघन तत्व, विलीन ऑक्सीजन (डी.ओ.), अवशिष्ट क्लोरीन, रासायनिक ऑक्सीजन (सी.ओ.सी.), जैविक ऑक्सीजन आवश्यकता, अपचयोपचय सम्भाव्यता, रेडियो सक्रिय पदार्थ, जैव रसायन, जैविक क्रिया विधि को कम एवं ज्यादा करने वाले जैविक पदार्थ, भारी तत्वों सहित धात्विक आयन ऑक्साइड तथा औद्योगिक उप उत्पाद आदि।

3. जैविक मानदण्ड– विभिन्न प्रकार की जैविक क्रियाएं, जीवाणु, शैवाल, प्रोटोजोआ तथा कठोर कवच वाले छोटे–बड़े जीव जन्तु।

जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत (Main Source of Water Pollutants)–

जल प्रदूषण निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक स्रोतों से होता है–

1 निश्चित स्रोत– इस प्रकार के जल प्रदूषक स्रोतों को किसी स्थान विशेष पर तुरन्त पहचाना जा सकता है एवं वे पूर्व परिचित स्रोत होते हैं, जैसे–

- औद्योगिक अपशिष्ट विसर्जन
- शोधन संयंत्र, डेयरी उद्योग एवं चमड़ा उद्योग से स्रावित पदार्थ

! नगर मल व्यसन का रिसाव, संयुक्त मल नल का अधिप्रवाह तथा अपरिष्कृत मल विसर्जन निक्षालन अवक्षेप एवं स्वच्छतापरक भूमि भराव

! वायुवीय अवपात

2. अनिश्चित स्रोत–

! कृषि सिंचाई एवं कृषि कार्य

! पशुधन बहिःस्राव एवं पशु बाड़ों की गतिविधियाँ

! भूमंडलीय जनित प्राकृतिक लवणता एवं वनीकरण

! भूतलीय जल का प्राकृतिक पर्यावरण के माध्यम से बहना

! खनिजों का विलीनीकरण एवं वायुवाहित समुद्री लवण एवं खनन गतिविधियां

! तेल क्षेत्रों से लवण जल का विसर्जन तथा शहरी क्षेत्रों से तेल एवं ग्रीस युक्त प्रवाह

! घरेलू कूड़ा–करकट, निर्माण संबंधी गतिविधियां एवं रेडियो सक्रिय तत्व।

जल प्रदूषक (Water pollutant)–

ऐसे अवांछित तत्व जो जल में मिलकर उसकी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक संरचना में परिवर्तन कर देते हैं जल प्रदूषक कहलाते हैं। प्रदूषकों का प्रकार, घनत्व, स्रोत तथा उनकी प्राकृतिक एवं रासायनिक अवस्थाएं चारों ओर के वातावरण के साथ उनकी अभिक्रियाशीलता पर निर्भर करती है। बहुसंख्यक जल प्रदूषकों का वर्गीकरण निम्नांकित श्रेणियों के अन्तर्गत किया जाता है–

(1) जैव प्रदूषक (Biological pollutant) : जैव प्रदूषकों में विघटनशील एवं अविघटनशील दोनों ही प्रकार के उत्पाद सम्मिलित है। जैव प्रदूषकों में पादप पोषक मल, संश्लिष्ट जैविक उत्पाद एवं तेल इत्यादि रोग उत्पादक कारक सम्मिलित है। किसी भी जल संसाधन में पादप एवं सूक्ष्म जैविक समष्टि के रूप में विद्यमान विलीन ऑक्सीजन जलीय जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है तथा पानी में विलय ऑक्सीजन (डी.ओ.) का स्तर 4–6 पीपीएम (प्रति दस लाख) अंश तक रहना चाहिए। जैव प्रदूषण मुख्य रूप से कृषि भूमि में बहने वाले पानी, औषधालयों के जैव कचरे एवं अन्य सड़े–गले अवांछित पदार्थों के शुद्ध जल में मिलने से होता है।

(2) अजैव प्रदूषक (Non-biological pollutant) : इस प्रकार के प्रदूषक तत्वों में अजैव लवण, अघुलनशील और घुलनशील पूर्ण रूप से विभाजित धातु या धात्विक संयोजन, सूक्ष्म मात्रिक तत्व, जैव अंशयुक्त धातुओं का मिश्रण, जैव–धात्विक आमिश्र एवं खनिज अम्ल इत्यादि सम्मिलित हैं।

(क) भारी एवं सूक्ष्मधातु (Heavy and Micro Metals)–

अन्य धातुओं की अपेक्षा सीसा, पारा और कैडमियम जल में उपस्थित तीन प्रमुख प्रदूषक तत्व होते हैं। यद्यपि कालान्तर में जब अनेक धातुओं का उपयोग बढ़ने से उनकी विषाक्तता का पता चला तो भारी धातु प्रदूषण को ही सूक्ष्म मात्रा (1 mg/1) से अधिक होने पर कई खतरनाक रोग उत्पन्न होने के प्रमाण मिले हैं। सीसा मुख्यतः गुर्दे, यकृत तथा मस्तिष्क की कोशिकाओं को अधिक प्रभावित करता है। मोटर वाहनों के धुएं से टेटाइथाइल लेड का वायुमण्डल में रिसाव अधिक होने की वजह से सीसे का भूपटल पर जमाव वर्षा एवं असंघटित बैटरी उद्योग के द्वारा शुद्ध जल में मिल जाता है।

पारा सामान्यतः प्राकृतिक जल में नहीं होता है लेकिन क्लोरीन एवं सोडियम हाइड्रॉक्साइड बनाने वाले संयंत्रों से रिसने वाले बहिःस्राव द्वारा पारा नदियों एवं जलाशयों में पहुंच कर उनको प्रदूषित कर देता है। जल में एक विशेष प्रकार की शैवाल होती है जो पारे को मिथाइल मरकरी में बदल देती है तथा शैवाल भक्षी मछलियों के माध्यम से मछली का सेवन करने वाले लोगों के शरीर में पारा पहुंच कर अनेक रोग उत्पन्न करता है।

(ख) अकार्बनिक रसायन (Inorganic Chemicals) –

प्राकृतिक जल में मौजूद अकार्बनिक यौगिकों के दो भाग होते हैं : धनायन एवं ऋणायन। धनायन में मुख्यतः धातुएं एवं ऋणायन में क्लोराइड (Cl^{-1}), फ्लोराइड (F^{-}) एवं सल्फेट (SO_4^{-}) जैसी धातुएं/अधातुएं होती हैं।

फ्लोराइड मानव के लिए स्वास्थ्यवर्धक माना गया है, परन्तु लगातार फ्लोराइडयुक्त पानी का सेवन करने पर एक सीमा के बाद यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी हो सकता है। पानी में 1.5 मिग्रा./ली. से अधिक फ्लोराइड सान्द्रता होने पर फ्लोरोसिस नामक बीमारी हो जाती है। फ्लोरोसिस से पीठ का झुक जाना एवं हड्डियों का कमजोर हो जाना आम बात है तथा इनसे व्यक्ति जवानी में ही बूढ़ा दिखाई देने लगता है।

(ग) नाइट्रेट (Nitrate)–

नाइट्रेट पौधों के लिए लाभदायक होता है तथा यह अल्प मात्रा में जल में भी पाया जाता है। कृषि कार्यों में अंधाधुंध रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग एवं शहरी सीवेज लाइनों से निकलने वाले अनियोजित पानी से जल में नाइट्रेट की मात्रा दिनों–दिन बढ़ती जा रही हैं। जल में नाइट्रेट की मात्रा के बढ़ने पर वह अनाक्सीकारक परिस्थिति में नाइट्राइट में बदल कर अति सूक्ष्म मात्रा में शरीर के लाल रक्ताणुओं को नष्ट कर देती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने जल में नाइट्रेट की अधिकतम सीमा 45 मिग्रा./ली. निर्धारित की है। पेयजल में नाइट्रेट की अधिकता के कारण मैथोहिमोग्लोबेमिया नामक बीमारी हो जाती है जिसे ब्लूबेबी सिन्ड्रोम कहते हैं। नाइट्रेट पाचन के दौरान कार्बनिक पदार्थों से क्रिया करके नाइट्रोसामीन नामक कैंसरकारी रसायन बनाते हैं।

(घ) कार्बनिक रसायन (Organic Chemicals)–

यह सूक्ष्म धातुओं की अपेक्षा अधिक हानिकारक होते हैं। कार्बनिक रसायन जल में अघुलनशील जबकि वसा में घुलनशील होते है। इसी कारण ऐसे रसायनिक पदार्थ अल्प मात्रा में शारीरिक उपापचयन प्रक्रिया के पश्चात् में ही वसा तंतुओं में एकत्र होते रहते हैं। जल में अघुलनशील डी.डी.टी. समुद्री मछलियों के तंतुओं में भी पाया जाता है जो अन्ततोगत्वा मछलियों के सेवन से मानव के शरीर में भी पहुंच जाता है।

3. तलछट (Sediment) :

तलछट मृदा में अघुलनशील अज्ञात सूक्ष्माणुओं का मिश्रण होता है जो मृदा अपरदन से जल स्रोतों में प्रवेश कर जाता है। वास्तव में सतही जल प्रदूषण के व्यापक प्रदूषक तत्व तलछट होते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्राकृतिक जल में पहुँचने वाले निलम्बित कणों का घनत्व स्राव के घनत्व से लगभग 700 गुणा अधिक है। क्षेत्र विशेष में होने वाली कृषि क्रिययें, भवन निर्माण एवं खनन संबंधी गतिविधियां मृदा अपरदन को अधिक प्रभावित करते हैं जिससे सूक्ष्म तत्व पानी में पहुंच कर तलछट के रूप में जमा होते रहते हैं।

4. रेडियो सक्रिय तत्व (Radio Active Elements) :

मानव स्वास्थ्य के लिए सबसे घातक प्रदूषकों में इन प्रदूषकों को शामिल किया जाता है। पर्यावरण से सम्बन्धित विकिरण समस्थानिक स्रोतों को प्राकृतिक एवं कृत्रिम वर्गों में विभाजित किया जाता है। रेडियो आइसोटोप कॉस्मिक किरणों से उत्पन्न होकर अवक्षेप (वर्षा एवं हिमपात) तथा वायु के माध्यम से मृदा एवं जल धाराओं में पहुंच जाते हैं जबकि भूमि की सतह और उसके अन्दर उत्पन्न होने वाले आइसोटोप विकिरण अपक्षय के कारण बनने वाले तत्वों के माध्यम से पानी तक पहुंचते हैं। दूसरी ओर मानव निर्मित रेडियो समस्थानिकों में मुख्यतः परमाणु परीक्षणं से होने वाले अवघात विस्फोट, परमाणु ऊर्जा, संयंत्रों से निकलने वाला रेडियो सक्रिय अपशिष्ट, परमाणु संस्थानों और आयुर्विज्ञान प्रतिष्ठानों की विभिन्न प्रकार की गतिविधियों से निकलने वाले रेडियो विकिरण सम्मिलित हैं।

5. तापीय प्रदूषक (Thermal Pollutant) :

कोयले की राख एवं वाष्प शक्ति चालित संयंत्रों में काम में लिया जाने वाला नाभिकीय ईंधन तापीय प्रदूषकों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है। इनसे निकलने वाली ऊष्मा का अल्प अंश ही सफलता पूर्वक कार्य में परिणित होता है, शेष व्यर्थ चला जाता है। आधुनिकतम कोयला संचालित विद्युत उत्पादन संयंत्रों की दक्षता भी 40 प्रतिशत से अधिक नहीं होती है। इन संयंत्रों में काम आने वाले कंडेन्सर निकटवर्ती नदी, झील या नगर पालिका के संसाधनों आदि से उपलब्ध पानी का उपयोग करके, पुनः गंदे पानी को इनमें छोड़ते हैं तो इस सारी प्रक्रिया में पानी का तापमान 30 डिग्री से. तक बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप जलीय जीवन के डी.ओ. स्तर में कमी आने से जलीय जीव जन्तुओं पर विपरीत प्रभाव डालता है।

6. औद्योगिक रसायन जनित प्रदूषण :

जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ औद्योगिक गतिविधियों में वृद्धि के कारण प्रदूषण तेज गति से बढ़ रहा है, प्रदूषण का प्रभाव औद्योगिक क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि एन्टार्कटिक, आर्कटिक और सुदूर स्थित प्रकृति संरक्षित क्षेत्रों सहित समस्त भूमण्डल पर देखा गया है। इस प्रकार प्रदूषकों की बढ़ती सघनता के परिणामस्वरूप कुछ पदार्थों की सान्द्रता के बढ़ने से पारिस्थितिक तंत्र पर विषैले प्रभाव पड़ रहे हैं। एक करोड़ दस लाख ज्ञात रसायनों में से लगभग 60,000 – 70,000 रसायन नियमित प्रयोग में आते हैं। पर्यावरण को विषाक्त बनाने वाले इन रसायनों के प्रभाव का आंकड़ा बीमा है परन्तु फिर भी कुछ ऐसे मामले सामने आए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि भारी धातु, उपधातु, कीटनाशक, कपड़े धोने वाले साबुन, डिटर्जेन्ट, गंध, पॉलीक्लोरीन युक्त यौगिक तथा अग्निशामक रसायन जल स्रोतों से मिलकर उनको विषाक्त बना रहे हैं।

7. तेजाबकरण (Acidification) :

तेजाबीकरण को जीव मंडल में एक या अधिक क्षेत्रों में अधिक तेजाब युक्त होने वाले परिवर्तन या उनके प्रतिबिम्बों की प्रक्रिया के रूप में पहचाना जा सकता है जो इस प्रकार के परिवर्तन प्रस्तुत करते हैं। तेजाब की बढ़ती हुई सान्द्रता को वर्षा, ताल जल, बर्फ, झीलों, नदियों, भूजल एवं मृदा में आसानी से देखा जा सकता है। मृदा एवं चट्टानों में तीव्रगति से तेजाबीकरण करने वाली प्राकृतिक, भौतिक, रसायनिक एवं जैविक क्रियाएं होती रहती हैं तथा ज्वालामुखी विस्फोट एवं बिजली गिरने जैसी भौतिक एवं रसायनिक घटनाएं भी अम्ल वर्षा

के लिए उत्तरदायी है। इसके अलावा दलदल, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से तेजाबी गैस उत्पन्न करने वाले औद्योगिक बहिःस्राव, जंगलों का कटना, खाद एवं उर्वरकों का अनियंत्रित उपयोग एवं उनकी जैव मात्रा क्षेत्र विशेष में तेजाबीकरण के लिए जिम्मेदार हैं। वातावरण में वायु प्रदूषण से बनने वाले रासायनिक यौगिक जैसे नाइट्रोजन, ऑक्साइड, नाइट्रिक अम्ल एवं अमोनिया लवण भी तेजाबकारी प्रभाव रखते हैं तथा ये प्रदूषक यौगिक जल की किसी भी विशिष्ट अवस्था जैसे ताल जल एवं ओस कणों के रूप में गिरकर तेजाब के रूप में इकट्ठे होते रहते हैं। वर्षा से तेजाब कण, पादपों, पशुओं या मनुष्य निर्मित ढांचों के तुरन्त सम्पर्क में आते हैं तो प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होते हैं तथा जब तेजाब मृदा एवं जलीय पर्यावरण में रसायनिक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं तो अप्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

8. तेलीय जल प्रदूषण (Oily Water Pollution) :

कमोबेश तेल प्रदूषण तेल भण्डारण रिसाव, जीवाश्म ईंधन उपयोग, ग्रीन हाऊस गैसों में वृद्धि एवं तेल टैंकरों से रिसाव आदि से होता है जिससे तेलीय प्रदूषक भूमण्डलीय जलवायु में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा जलयानों एवं तेल पाइप लाइनों से रिस कर निकलने वाला तेल तथा तलघरों में बनाये गये तेल भण्डारों से तेलीय हाइड्रोकार्बन विभिन्न माध्यमों द्वारा ताजे पानी में मिलकर उसे प्रदूषित करते रहते हैं। तेलीय प्रदूषण से मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों पर घातक प्रभाव देखे गये हैं।

9. खनन से जल प्रदूषण (Pollution by mining):

खनन क्रिया के दौरान उत्पन्न धूलकरण नदियों, झीलों, जलाशयों एवं कुंओं के जल को प्रदूषित करते रहते हैं। सबसे अधिक जल प्रदूषण कोयला खनन से होता है। अनुमानतः प्रतिवर्ष सवा करोड़ टन कोयला खुली खानों से निकलने के पश्चात् उसकी सफाई में तथा इतने ही कोयले की पाइप द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने के क्रम में क्रमशः 900 करोड़ गैलन व 280 गैलन व्यर्थ पानी प्राप्त होता है। यह गंदा पानी जल स्रोतों तक पहुंच कर उन्हें प्रदूषित करता है और बिना शोधन के यह जल मैदानों एवं खेतों में जाकर फसलों को हानि पहुंचाता है।

10. कृषि एवं कृषि कार्यों द्वारा जल प्रदूषण :

कृषि उपज बढ़ाने में रसायनिक खादों की मुख्य भूमिका भली प्रकार सिद्ध हो चुकी है। पिछले आधे दशक से भारत में रसायनिक खादों के अतिरिक्त जैव खादों और कीटनाशकों के उपयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। योजनाबद्ध ढंग से उपज बढ़ाने के लक्ष्य को पाने के लिए जहां उपर्युक्त वस्तुओं का प्रयोग अनिवार्य है, वहीं यह भी सत्य है कि इन उर्वरकों के असंतुलित उपयोग ने पर्यावरण संबंधी समस्याएं भी उत्पन्न की है।

आंकड़ों के अनुसार भारत में नाइट्रोजन की क्षमता धान में 30–40 प्रतिशत और गेंहू के क्षेत्र में लगभग 50–60 प्रतिशत है तथा पोटैशियम और फॉस्फोरस खाद की क्षमता मूल्य क्रमशः 50 प्रतिशत और 15–20 प्रतिशत के लगभग है। इससे पता चलता है कि प्रयुक्त खादों की अधिक मात्रा पौधों के लिए आवश्यक नहीं होती वरन् यह भूमिगत जल में पहुंच कर जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न करती है। उर्वरकों में प्रदूषणकारी तत्व के रूप में नाइट्रोजन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। उर्वरकों में मिलाए गए सूक्ष्म जैव तत्व यदि भूजल में पहुँच जाते हैं तो वे जल को विषाक्त कर देते हैं, परिणामस्वरूप सामान्य खेती और उर्वरकों के विशेष योगदान का निश्चित हिसाब नहीं लगाया जा सकता है।

11. लौह अयस्क उद्योग से उत्पन्न जल प्रदूषण :

लौह अयस्क बनाने के पश्चात् बचे हुए स्लैग को अन्यत्र फेंक दिया जाता है जो वर्षा जल में घुलकर शुद्ध जल को प्रदूषित करता रहता है, तब इससे निकलने वाले रसायन नदी–नालों में मिलकर सतही एवं भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं।

12. चमड़ा उद्योग से जल प्रदूषण :

सतही तथा भूमिगत दोनों प्रकार के जल चमड़ा उद्योग से निकलने वाले दूषित जल द्वारा प्रदूषित होते हैं। चमड़ा उद्योगों से निकलने वाले प्रदूषित जल में 35 प्रतिशत से भी अधिक फ्लोराइड के अलावा पानी में खारापन, अमोनिया, सल्फाइड, टेनिन और क्रोमियम जैसे तत्वों की मात्रा होती है। यह जल मछलियों के लिए सबसे अधिक हानिकारक होता है।

13. सुपोषण :

सुपोषण का शाब्दिक अर्थ पर्याप्त भोजन प्रदान करना है। इसका उल्लेख झीलों, बांधों, धीमी गति से बहने वाली नदियों, समुद्र तटीय जल, अतिरिक्त उर्वरकों में भी किया जा सकता है जो अन्य असुविधाकारी जलीय पौधों को जन्म देते हैं। इसके कारण पानी की गुणवत्ता में कमी के अलावा खाद और गंध जैसी समस्याएं, ऑक्सीजन एवं पारदर्शिता में कमी, मछलियों की सम्भावित मृत्यु, जल प्रवाह में रुकावट, पशुओं एवं मनुष्य पर विषाक्त प्रभाव जैसी समस्याएं उत्पन्न होती है तथा झीलों, बांधों, सरोवरों एवं समुद्र तटीय पानी में पाये जाने वाले सुपोषणकारी तत्व नहाने पर चर्म रोग उत्पन्न करते हैं।

सुपोषण पर नियंत्रण – जल संसाधनों पर पोषक तत्वों के अतिरिक्त दबाव में भारी कमी करके ही सुपोषण की स्थिति पर प्रभावी ढंग से नियंत्रण किया जा सकता है। जल स्रोतों में पोषक

तत्वों के व्यापक संतुलन, विशेष भौगोलिक एवं जलवायु संबंधी और प्राकृतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किये गये सामूहिक प्रयास ही प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं।

जल प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Water Pollution)–

विभिन्न दैनिक कार्यों एवं अत्यधिक उपयोग में आने के कारण जल प्रदूषण के प्रभाव मानव, जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर अनेकों प्रकार से पड़ता है, जिसका वर्णन नीचे किया गया है–

1. मनुष्यों पर प्रभाव–

मनुष्य जल का प्रयोग पीने में अथवा अन्य भोज्य पदार्थों के द्वारा करता है। प्रदूषित जल के प्रयोग से मनुष्यों पर निम्नलिखित कुप्रभाव पड़ते हैं–

(क) विभिन्न प्रकार के रोग– दूषित पानी के प्रयोग से अनेकों रोग पाये गये हैं, जैसे– रोगजनक जीवाणु द्वारा टाइफाइड, पेचिस, हैजा आदि विषाणुओं द्वारा पीलिया, यकृत ज्वर आदि प्रोटोजुआ द्वारा पेट तथा ओंत सम्बन्धी रोग, एस्केरिस एवं फीताकृमि पेचिस एवं आँतों के रोग फैलते हैं। जल में पाये जाने वाले विभिन्न रासायनिक अपद्रव्यों से भी अनेकों रोग एवं विकृतियाँ पैदा होती है, जैसे–पानी में 10 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक फ्लुओराइड दांतों एवं हड्डी सम्बन्धी रोग पैदा करता है। जल में उपस्थित नाइट्रेट एवं नाइट्राइट की मात्रा ऑक्सीजन वहन क्षमता को कम करती है। जल में सीसा की मात्रा अधिक होने पर वृक्क शोथ, उदर शूल, कोष्ठवद्धता आदि रोग हो जाते हैं। जल में पारे एवं रेडियोधर्मी पदार्थों की मात्रा होने से विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है।

(ब) जल के रंग एवं स्वाद में परिवर्तन– प्रदूषित जल में शैवाल उत्पन्न हो जाते हैं, अथवा कार्बनिक पदार्थ सड़ जाते हैं या धूल मिल जाती है जिससे पानी का रंग बदल जाता है। पानी में अमोनिया या हाइड्रोजन सल्फाइड गैसों के घुल जाने से पानी का गन्ध स्वाद अप्रिय हो जाता है।

(स) अपाच्य भोजन– प्रदूषित जल से तैयार भोज्य पदार्थ पाचन की दृष्टि से अच्छे नहीं होते अथवा भोजन पदार्थों के बनने में भी प्रदूषित जल बाधक होता है। भोज्य पदार्थों का संरक्षण अधिक समय तक नहीं किया जा सकता। दूषित जल को स्वच्छ बनाने में खर्च भी अधिक होता है अतः दूषित जल की उपयोगिता भी कम हो जाती है।

(द) स्वास्थ्य के लिए जल का विषैला हो जाना– कभी–कभी जमीन में गैस पाइप लाइन के टूट जाने से पेयजल स्रोत का जल मानव स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध होता है। इसी प्रकार से पानी की पाइप लाइन के टूट जाने से आसपास की गन्दगी जल में मिल जाने से जल हानिकारक हो जाता है।

(2) जल प्रदूषण का भूमि एवं फसलों पर प्रभाव–

सिंचाई के लिए प्रयोग किये जाने वाले जल की गुणवत्ता के अनुसार ही भूमि एवं फसलें प्रभावित होती है। लवणयुक्त जल के प्रयोग से भूमि भी लवणीय होने लगती है, मृदा की विद्युत चालकता बढ़ जाती है, मृदा के घोल में लवणीय पदार्थों की मात्रा अधिक हो जाने से पोषक तत्व पौधों को कम प्राप्त होने लगते हैं जिससे मृदा की उत्पादकता घटने लगती है। क्षारयुक्त जल से मृदा जल निकास खराब हो जाता है। जमीन में पानी भरा रहने लगता है, मृदा में अवायवीय अवस्थाएं भी अधिक पैदा हो जाती है। मृदा में विनिमयशील सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत अधिक हो जाती है, मृदा का पी.एच. मान 9.0 से अधिक हो जाता है। लाभदायक जीवाणुओं की संख्या एवं कार्यक्षमता कम हो जाती है।

जिस पानी में बोरोन अधिक होता है तो इसके प्रयोग से भारी प्रकार की मृदाओं में बोरोन की सान्द्रता बढ़ने लगती है। लवणीय पानी में बोरोन की मात्रा अधिक पाई जाती है।

लवणीय एवं क्षारीय पानी के प्रयोग से फसलों के बीजों का अंकुरण कम होता है। दलहनी फसलों के बीजों का अंकुरण अधिक प्रभावित होता है। पौधों की वृद्धि कम होती है, पौधों में किल्ले कम फूटते हैं। पौधों के लिए जल एवं पोषक तत्वों की वृद्धि कम हो जाती है जिससे फली छोटी बनती है, दाना पतला पड़ जाता है, फलों का आकार एवं संख्या कम हो जाती है। बोरोनयुक्त पानी के प्रयोगों से पौधों की पत्तियाँ पर्णहरित रहित हो जाती है। पत्तियाँ किनारों की ओर झुलस सी जाती है एवं उनकी नसें भी पर्णहरित रहित हो जाती है। पत्तियों पर चकत्ते से बन जाते हैं। अतः फलस्वरूप पैदावार में 50 प्रतिशत से अधिक तक हानि होती है। प्रदूषित जल में कीटनाशक, कवकनाशक एवं उद्योगों के विसर्जित जहरीले धातु तत्व भी भूमि एवं फसलों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के फलस्वरूप वायुमण्डल में कार्बन डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है। यह गैस जल से संयोग करके कार्बोनिक अम्ल बनाती है। इस अम्ल से हाइड्रोजन आयन उत्पन्न होते हैं क्योंकि इस क्रिया में कार्बोनेट आयन नीचे चले जाते हैं, जो पानी से मिलकर उसे अम्लीय बना देते हैं। ऐसे पानी से सिंचाई करने से पौधों की जड़े कमजोर हो जाती हैं तथा जड़ों की संख्या भी घट जाती है। अम्लीय जल मृदा को अम्लीय बनाता है। अम्लीय माध्यम में अनेकों पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो

जाती है। नहरों के किनारे रिसाव के कारण जल स्तर ऊँचा हो जाता है। जल स्तर के बढ़ने से पेड़–पौधों की जड़ों के प्रसार क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त जल निकास के अभाव में विषाक्त जल निचले स्थानों में भर जाता है जिससे धीरे–धीरे मृदा सोडियम के हानिकारक प्रभाव से ग्रस्त हो जाती है जिससे मृदा कणों की संरचना एवं संगठन प्रभावित होते हैं और फसलोत्पादन पर हानिप्रद प्रभाव पड़ता है। आँधी तूफान के प्रभाव से जल–स्रोतों की ऊपरी सतह के मटमैली हो जाने से जलीय पौधों की प्रकाश–संश्लेषण क्रिया अपूर्ण रहने से पौधे ठीक प्रकार से भोजन नहीं बना पाते और मरने लगते हैं।

(3) जलीय जीवन पर प्रभाव–

जल में जीव–जन्तु एवं वनस्पतियाँ दोनों ही पायी जाती है। जल की ऊपरी सतह पर अशुद्धियों की पर्त जम जाने से जल के भीतर रहने वाले जीवधारियों की श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। वनस्पति के प्रकाश–संश्लेषण में बाधा हो जाती है। जलाशयों या पानी स्रोतों में कीटनाशी, कवकनाशी एवं रासायनिक उर्वरकों एवं हानिकारक धातुओं के मिल जाने से जलीय जीव–जन्तु एवं वनस्पति उर्वरकों एवं हानिकारक धातुओं के मिल जाने से जलीय जीव–जन्तु एवं वनस्पति मरने लगते हैं। कूड़ा–करकट, कचरा तथा अन्य कार्बनिक अवशिष्ट जलाशयों के तल में बैठ जाते हैं जिससे वनस्पतियों एवं जीव सड़कर मर जाते हैं तथा जलकुंभी अधिक पैदा हो जाती है जो जल स्रोत को प्रदूषित करती हैं। तैलीय प्रदूषण एवं तापीय प्रदूषण से ल के जीव जैसे मछली तथा जल के पक्षी मरने लगते हैं।

जल प्रदूषण नियंत्रण के उपाय :

जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए निम्नांकित उपाय किये जा सकते हैं–

1. कल कारखानों से निकलने वाले जहरीले अपशिष्ट पदार्थों एवं गर्म जल का मुख्य जल स्रोतों जैसे जलाशयों, नदियों या समुद्रों में विसर्जन रोकना चाहिए।
2. जिन फसलों पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है उन खेतों से बहने वाले जल को पीने वाले जलाशयों व कुओं में जाने से रोकना चाहिए।
3. कीटनाशकों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाना चाहिए, इनकी जगह जैवनाशकों जैसे बैसिलस या ऐसे विषाणुओं का प्रयोग करना चाहिए जो सिर्फ कीटाणुओं का प्रयोग करना चाहिए जो सिर्फ कीटाणुओं का नाश करें। इसके अतिरिक्त जैव उत्प्रेरकों जैसे राइजोबियम, नीलहरित शैवाल, एजोटोबैक्टर, माइकोराइजा का प्रयोग करना चाहिए।
4. कूड़े–करकट को जलाशयों एवं नदियों में न डालकर शहर से बाहर किसी गड्डे में डालना चाहिए।
5. उर्वरक एवं विद्युत संयंत्रों से सल्फर तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम करके अम्लीय वर्षा को रोका जा सकता है।
6. मृत जीव–जन्तुओं को नदियों में प्रवाहित न करने के साथ चिता की राख नदियों में नहीं डालनी चाहिए।
7. चमड़ा उद्योग में चमड़ी से बाल निकालने तथा उसे नरम करने की प्रक्रिया में प्रोटियेस एन्जाइम को व्यवहार में लाना चाहिए। इस प्रक्रिया में अल्प जल के साथ–साथ सल्फेट, टैनिन, अमोनिया, क्रोमियम आदि रसायनों का भी अल्प मात्रा में उपयोग होता है।
8. कपड़ा तथा अन्य उद्योग जिनमें रंगों का प्रयोग होता है उनके रंगीन जल में रंगों का शोषण करने के लिए लिग्निन का प्रयोग करना चाहिए जो कागज उत्पाद के अवशिष्ट जल में पाया जाता है।
9. विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री बनाने वाले उद्योगों में सौर ऊर्जा की सहायता से अवशिष्टों का उपचार करके बचे हुए जल को सिंचाई के काम में लेना चाहिए।
10. सीवर लाइनों का जल शहर से बाहर शोधन करके नदियों में डालना चाहिए।
11. तैलीय पदार्थों से बने कीचड़ को बायोरेमिडियेशन तकनीक द्वारा शुद्ध करना चाहिए तथा मिट्टी के साथ कीचड़ को मिलाकर उसकी सांद्रता एवं तापमान बनाये रखते हुए उसमें यूरिया एवं फास्फेट आदि डालकर उसे खाद में बदल देना चाहिए।

(2) वायु प्रदूषण (Air Pollution)–

वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसें सामान्य अवस्था में एक निश्चित अनुपात में पायी जाती है। सामान्यतः वायु में नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत, कार्बन डाई–ऑक्साइड 0.3 प्रतिशत, शेष निष्क्रिय गैसें जल वाष्प होती है। इन गैसों का विभिन्न जीवधारियों तथा वायुमण्डल के बीच चक्रीयकरण होता रहता है। इस चक्रीयकरण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप इन गैसों का अनुपात वायुमण्डल में स्थायी रूप से बना रहता है। जब वायु में अवांछनीय तत्व प्रवेश करते हैं तो वायु में विद्यमान गैसों का मौलिक अनुपात तथा संतुलन बिगड़ जाता है। इस स्थिति को वायु प्रदूषण के नाम से जाना जाता है। वास्तव

में वायु प्रदूषण का मतलब है हवा में धूल और कार्बन के महीन कणों तथा नुकसान पहुँचाने वाली गैसों का एक सीमा से अधिक हो जाना, नाइट्रोजन डाइ–ऑक्साइड, सल्फर डाइ– ऑक्साइड और कार्बन मोनो ऑक्साइड की मात्रा तथा हवा में घुले हुए वो महीन कण जो नंगी आँखों से नहीं दिखाई देते, उन्हें पी–एम 2.5 कहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तय किये गये मापदण्ड से इनका अधिक हो जाना ही वास्तव में वायु प्रदूषण की मुख्य कसौटी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक इन कणों की मात्रा हवा में 25 माइक्रोग्राम प्रति मीटर से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। हवा में अगर इनकी मात्रा 100 माइक्रोग्राम हो जाए तो ऐसी हवा प्रदूषित कही जायेगी और अगर यह 300 माइक्रोग्राम तक चली जाए तो फिर कम से कम बच्चों, बूढ़ों, दमे के मरीजों व बीमारों को तो घर में ही रहना होगा। सन् 2015 की शुरूआत में पहले तीन सप्ताह दिल्ली के पंजाबी बाग इलाके में प्रदूषण की औसत रीडिंग 473 पीएम–2.5 थी। जबकि चीन की राजधानी बीजिंग में तब यह 227 थी। लेकिन नवम्बर–दिसम्बर 2015 में तो कई बार दिल्ली में प्रदूषण की मात्रा 500 माइक्रोग्राम की सीमा को भी पार कर गई। यह विश्व स्वास्थ्य संगठन की निर्धारित प्रदूषण मात्रा से 2000 गुना अधिक है।

वायु प्रदूषण के स्रोत (Sources of Air Pollution)–

वायु प्रदूषण के प्राकृतिक एवं मानवीय अनेक प्रकार के स्रोत है। यदि मनुष्य अपने विकास कार्यों को न भी करें तो प्रकृति में स्वतः वायु प्रदूषण होता रहता है, परन्तु प्रकृति भी इस प्रदूषण का नियंत्रण भी करती है। वायु प्रदूषण समस्या तो उस समय उत्पन्न होती है जब मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस संतुलन को बिगाड़ता है। वायु प्रदूषण के निम्नलिखित स्रोत हैं–

(1) घरेलू कार्यों में दहन से

(2) ताप विद्युत ऊर्जा हेतु दहन से

(3) यातायात में इंधन के दहन से

(4) औद्योगिक कारखानों से

(5) विलायकों के प्रयोग से

(6) कृषि क्रियाओं द्वारा

(7) अन्य स्रोत

(1) घरेलू कार्यों में दहन से– जल गर्म करने, भोजन बनाने आदि कार्यों के लिए ईंधन, लकड़ी, गोबर, कपड़े, खेतों का कचरा, घास–फूस, कोयला, मिट्टी का तेल तथा कुकिंग गैस जला कर उष्मा प्राप्त करते हैं। इनके जलने से कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, आर्गेनिक पार्टीकुलेट इत्यादि गैसें निकलती है जो वायु के प्रदूषण का कारण होती है।

(2) ताप विद्युत ऊर्जा हेतु दहन से– ताप विद्युत उत्पादन के लिए ताप–विद्युत गृहों में ऊष्मा प्राप्ति के लिए बहुत अधिक मात्रा में कोयला जलाया जाता है जिसके जलने के परिणामस्वरूप CO_2, SO_2 इत्यादि गैसें और अत्यधिक मात्रा में धुआँ उत्पन्न होता है जिसके कारण वायु प्रदूषण होता है।

(3) यातायात में इंधन के दहन से– यातायात के विभिन्न साधनों, जैसे– मोटर कार, ट्रक, बस, डीजल रेल तथा वायुयान इत्यादि जो आंतरिक दहन ईंधन पर आधारित हैं, इन साधनों में दहन के लिए जो पेट्रोल, डीजल, क्रूड ऑयल इत्यादि ईंधनों का प्रयोग किया जाता है, इनके जलने से अत्यधिक मात्रा में काला धुआँ निकलता है, वह वायुमण्डल को प्रदूषित करता है।

(4) औद्योगिक कारखानों से– कारखानों की भट्टियों तथा चिमनियों से दिन–प्रतिदिन धुआँ एवं विषाक्त गैसें निकलती है, जो वायुमण्डल को दिन–रात प्रदूषित करती है। कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड आदि विषैली गैसें कारखानों से निकल कर निरन्तर वायु प्रदूषण उत्पन्न करती है।

(5) विलायकों के प्रयोग से– विभिन्न प्रकार के विलायक जो विभिन्न प्रकार के कार्यों में प्रयोग किये जाते हैं, वाष्पशील होने के कारण प्रयोग करते समय अत्यन्त सूक्ष्म कणों तथा वाष्प के रूप में वायु में मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं।

(6) कृषि क्रियाओं द्वारा– गहन कृषि में आजकल अनेक प्रकार के विषैले रासायनिकों का प्रयोग खरपतवार, कीट, कवक, जन्तु एवं रोग नियंत्रण के लिए किये जाते हैं जिससे अनेक कार्बनिक फॉस्फेट, क्लोरीन युक्त हाइड्रोकार्बन, पारा, सीसा इत्यादि प्रदूषण निकलते रहते हैं जो वायु मण्डल में मिलकर उसकी स्वच्छ वायु को गम्भीर रूप से प्रदूषित कर देते हैं।

(7) अन्य स्रोत– गलियों, खेतों एवं सड़क से निकलने वाले कूड़े–करकट को एकत्रित करके जलाने से पर्याप्त मात्रा में धुआँ तथा कार्बन के कण उत्पन्न होते हैं जिससे वायु का प्रदूषण होता है। शादी–विवाह तथा त्योहारों व अन्य उत्सवों के समय चूल्हें जलाये हैं उनसे उत्पन्न धुआँ भी वायु प्रदूषण का कारण बनता है।

वायु प्रदूषण का चित्र द्वारा प्रदर्शन

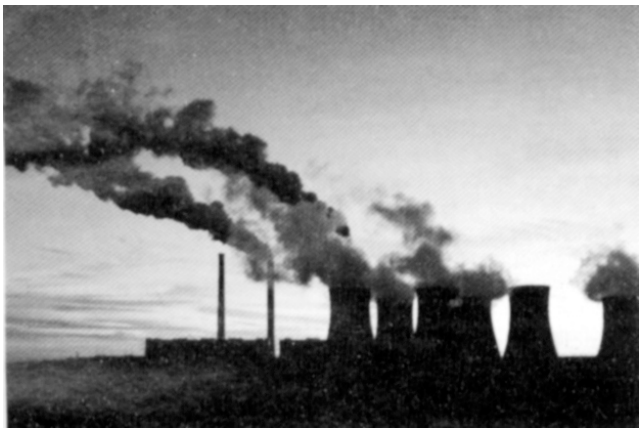

वायु प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Air Pollution)–

वायु प्रदूषण का प्रभाव क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वायु प्रदूषण के प्रभावों को निम्नलिखित प्रकारों से समझा जाता है–

(1) पौधों की वृद्धि पर प्रभाव : पेड़–पौधे सूर्य के प्रकाश में वायु से कार्बन डाइ–ऑक्साइड लेकर प्रकाश–संलेश्षण की क्रिया द्वारा अपने भोजन का निर्माण करते हैं। वायु–प्रदूषण के फलस्वरूप पत्तियों की उपरी सतह पर धूल के कण जम जाने से प्रकाश संलेश्षण एवं उत्स्वेदन क्रियाओं में व्यवधान उत्पन्न होने लगता है।

प्रकाशकाल में कमी आने के कारण कुछ दिनों के बाद भोजन व्यवस्था में व्यवधान पड़ जाने के कारण पौधे पीले पड़ कर मरने लगते हैं। ईंधन के जलने स सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रस ऑक्साइड गैसों के वातावरण की नमी के सम्पर्क में आने से सल्फ्यूरिक अम्ल एवं नाइट्रिक अम्ल बनते हैं। जो अम्लीय वर्षा (Acid rain) के रूप में फसलों को जला देते हैं।

विभिन्न प्रकार के वाहनों एवं कारखानों से निकलने वाले धुँएं में कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड आदि गैसें होती हैं, जो पृथ्वी पर आने वाली सूक्ष्म तरंगीय विकिरणों के लिए पारदर्शी होती हैं, परन्तु पृथ्वी तल से अन्तरिक्ष को लौटाने वाली दीर्घ तरंग विकिरण के लिए व्यवधान पैदा करती है। फलस्वरूप वातावरण का ताप लगातार बढ़ने का खतरा है, जिससे ध्रुवीय बर्फ पिघलने की सम्भावना के फलस्वरूप संसार के निचले क्षेत्रों के जलमग्न होने की संभावना भी बढ़ती जाती है। इसी कारण फसलों की बुवाई एवं पकने का समय भी परिवर्तित हो रहा है जिससे फसलों की पैदावार प्रभावित होने लगी है।

वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाने से फसलों में फूल आने में देरी होने लगती है। वातावरण में ताप में वृद्धि के कारण मृदा नमी भी कम होने लगती है। अधिक समय तक नमी संचित नहीं रह पाती जिससे फसलें एक से दो सप्ताह पूर्व ही पक जाती है। फलस्वरूप फसलोत्पादन कम हो जाता है।

(2) जीव–जन्तुओं पर प्रभाव– वायुमण्डल में छाये हुए धुँए के कारण सूर्य की पराबैंगनी किरणें नीचे पृथ्वी पर आ जाती हैं जिससे जीवधारियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित वायु में जीवधारियों की श्वसन क्रिया भी प्रभावित होती है। पशुओं के चारे में फ्लुओराइड की मात्रा बढ़ जाने से फ्लुओरोसिस बीमारी होने लगती है जिससे पशु लंगड़े होने लगते हैं। वायु प्रदूषण से मधुमक्खी अक्रियाशील होकर मरने लगती है। अम्लीय वर्षा के पानी के तालाबों में पहुँचने से मछलियाँ भी मरने लगती है।

(3) मनुष्यों पर प्रभाव– प्रदूषित वायु में पाई जाने वाले धातु कण, कार्बन कण, विभिन्न प्रकार की हानिकारक गैसें, धुँआ आदि से मनुष्य की श्वसन क्रिया में व्यवधान पहुँचता है। प्रदूषित वायु में साँस लेने से यकृत तथा किडनी में क्षति, आहार नली में क्षति, क्षय, मधुमेह तथा कैंसर आदि रोग हो जाते हैं। वायु में कार्बन मोनो–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाने से रक्त हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन वहन क्षमता घट जाती है। वायु में कार्बन डाइऑक्साइड अधिक होने से दम घुटने लगता है।

(4) वायुमण्डल पर प्रभाव– वायुमण्डल में अधिक धुँआ के सूक्ष्मकण प्रकाश किरणों को प्रकीर्णित कर देने में सक्षम होते हैं जिससे वस्तुएँ दिखाई देने में व्यवधान पैदा हो जाता है। वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार पृथ्वी के तापक्रम में वृद्धि के लिए बढ़ती हुई कार्बन डाइऑक्साइड मुख्य कारण है।

पचास वर्ष में लगभग 1 डिग्री से. तापक्रम पृथ्वी का बढ़ गया है। अतः 3.6 डिग्री से. की और वृद्धि हो जाने से आर्कटिक तथा अंटार्कटिक के हिमखण्ड पिघल कर पृथ्वी पर 100 मीटर ऊँचा जलस्तर उत्पन्न कर देंगे। बादलों का आसामयिक बनना एवं वर्षा करना तथा वर्षा के दिनों में कम वर्षा होना वायुमण्डल में प्रदूषण का ही प्रभाव है।

वायुमण्डल में CO_2 के प्रभाव से ओजोन पर्त की मोटाई कम होने लगती है जिससे सूर्य का हानिकारक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकने की क्षमता कम होने से हानिकारक प्रभाव संभावित है। ओजोन (O_3) ऑक्सीजन का एक अपररूप है। ओजोन का रंग नीला तथा गंध तीक्ष्ण होती है। इसकी अधिक मात्रा हानिकारक जबकि कम मात्रा लाभदायक होती है। प्रकृति में ओजोन + 0.1 से 1.1 भाग प्रति 10 लाख भाग तक पायी जाती है। प्रकृति में ओजोन ऑक्सीजन से बिजली चमकने पर उत्पन्न होती है।

ऑक्सीजन तथा सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों द्वारा भी ओजोन बनती रहती है। इस प्रकार से प्राप्त ओजोन पृथ्वी के चारों तरफ एक सुरक्षा कवच बना लेती है जो सूर्य की घातक किरणों को पृथ्वी तक आने से रोकती है। यदि यह कवच न होता तो दिन का तापक्रम + 130° तथा रात्रि का तापक्रम –150° सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाने की संभावना व्यक्त की गई है। क्लोरो–फ्लोरो कार्बन तथा नाइट्रिक ऑक्साइड ओजोन को सूर्य के प्रकाभा में विघटित करते हैं जिससे ओजोन हटने से छेद दिखाई देने लगता है जिससे सूर्य की गरमी का पृथ्वी पर आना प्रारम्भ हो जाता है।

(5) अन्य पदार्थों पर प्रभाव– प्रदूषित वायु का अजैविक वस्तुओं पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे–धातु, भवन, संगमरमर, चूना आदि पर सल्फर डाइऑक्साइड एवं सल्फर ऑक्साइड से नमी की उपस्थिति में क्षरण होता है। हाइड्रोजन सल्फाइड से चाँदी की चमक कम हो जाती है और शीशे की वस्तुएं काली पड़ने लगती है। ऐतिहासिक इमारतें धुंए के प्रभाव से चमक खोने लगती है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण (Control of Air Pollution)–

वायु प्रदूषण रोकने के लिए प्रदूषण के स्रोत पर भी नियंत्रण आवश्यक है। वायु प्रदूषण नियंत्रण की मुख्य विधियाँ निम्न प्रकार से हैं :–

(1) पृथक्करण विधि– इस विधि के अन्तर्गत छानकर (Filtration), निःसादन (Sedimentation), घोलकर (Dissolving) एवं अधिशोषण (Absorption) द्वारा वायु प्रदूषण नियंत्रित किया जाता है।

(i) छानकर (Filtration)– इसमें एक छन्ने का प्रयोग किया जाता है, जिससे कणदार पदार्थ छन्ने पर रुक जाते हैं और गैस बाहर निकल जाती है।

(ii) निःसादन द्वारा (Sedimentation)– इसमें एक चक्रवात रूपी उपकरण का प्रयोग किया जाता है। प्रदूषित वायु चक्रवात रूपी उपकरण में घूमकर निकलती है जिससे कणिकाएं निःसादित होकर रुक जाती है। स्वच्छ वायु बाहर निकल जाती हैं।

(iii) घोलकर (Dissolving)– प्रदूषित वायु को या तो जल से उपचारित किया जाता है अथवा उसे विशेष प्रकार के यंत्र में होकर गुजारा जाता है जिससे उसमें प्रदूषित गैसें घुल सकें। इस कार्य के लिए मार्जक यंत्र (Scrubbers machine) काम में लाया जाता है।

(iv) अधिशोषण (Absorption)– उपर्युक्त ठोस पदार्थ का उपयोग प्रदूषित गैसों को शुद्ध करने के लिए करते हैं, जैसे–चारित कार्बन।

(2) रूपान्तरण विधि– इस विधि में रासायनिक पदार्थों द्वारा वायु में उपस्थित प्रदूषकों को नुकसान न पहुँचाने वाले रूप में ऑक्सीकरण अथवा उदासीनीकरण द्वारा परिवर्तित कर दिया जाता है। यह विधि अधिक खर्चीली है।

वायु प्रदूषण रोकने के उपाय (Measures to control Air Pollution)–

वायु प्रदूषण रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

(1) कानून एवं सामाजिक चेतना– वायु प्रदूषण रोकने के लिए औद्योगिक सैप्टिक इकाइयों, यातायात वाहनों एवं दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर कानून बनाकर प्रदूषण नियंत्रण करना आवश्यक है। साथ ही सामाजिक चेतना जागृत करके सभी को वायु प्रदूषण के कारकों को नियंत्रित करने में जागरुक करना आवश्यक है। कूड़े–करकट को गाढ़ना, मरे पशुओं को गाढ़ना, सड़ते हुए कचरे को मिट्टी से ढकना, धूम्रपान वर्जित करना वायु प्रदूषण रोकने हेतु सामाजिक चेतना के अंग साबित हो सकते हैं।

जून 1972 में राष्ट्रसंघ द्वारा स्टाकहोम (स्वीडन) में अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्स का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में औद्योगिरण के फलस्वरूप पर्यावरण में बढ़ते वायु प्रदूषण पर चर्चा के बाद विभिन्न राष्ट्रों को कानून बनाने की सलाह दी गई। वायु प्रदूषण के नियंत्रण एवं इसकी रोकथाम के लिए देश में वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम, 1981 बनाया गया जो राष्ट्रपति की सहमति के बाद 16 मई 1981 से लागू किया गया। इसके पश्चात् इस अधिनियम का संशोधित रूप वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) संशोधन अधिनियम–1987 लाया गया जो 1 अप्रैल 1988 से लागू किया गया।

2. प्रचार माध्यम– रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र एवं अन्य प्रचार माध्यमों के द्वारा वायु प्रदूषण से होने वाले खतरों से बचने के उपायों का प्रचार करना चाहिये, जिससे वायु प्रदूषण को रोकने में सहायता मिल सके।

3. दहन हेतु प्रौद्योगिकी सुधार– घरों में खाना पकाने के लिए कम धुएँ वाले ईंधन काम में लाने चाहिए, जैसे– कूकिंग गैस, विद्युत उपकरण, बायो गैस आदि। विद्युत शवदाह गृहों का विकास आवश्यक है।

4. कार्बनिक पदार्थों के सड़ाव की उचित व्यवस्था– फसलों, पेड़–पौधों, पशुओं तथा मनुष्य के अवशेष एवं उत्सर्जित पदार्थों को भली–भाँति गड्ढे बनाकर वायवीय व्यवस्था द्वारा

सड़ाना चाहिए जिससे दूषित गैसें पैदा न हों। गाँवों में गोबर से बायो गैस का निर्माण करने से जलाने के लिए गैस तथा खेत के लिए अच्छा खाद प्राप्त होता है।

5. परिवहन वाहनों के धुँएं पर नियंत्रण– परिवहन के वाहन सुधरे इंजन के कम धुँआ उगलने वाले प्रयोग में लाने चाहिए। डीजल का प्रयोग संयोजी पदार्थ के साथ मिलाकर करना चाहिए। वाहनों द्वारा प्रदूषण की निर्धारित सीमा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वाहनों की कार्यशीलता आदि के सुधार से वायु प्रदूषण कम किया जा सकता है। विद्युत एवं बैटरी चालित इंजनों का विकास एवं प्रयोग भी आवश्यक है।

6. शहरों में यातायात व्यवस्था– शरों में कम से कम वाहनों के प्रवेश के लिए बाह्य पथ निर्माण आवश्यक है तथा समानान्तर सड़क बनाने से अनावश्यक रुकने पर नियंत्रण से वायु प्रदूषण रोका जा सकता है।

7. सेप्टिक प्रसाधन गृहों का निर्माण– मल–मूत्र विसर्जन हेतु गाँव एवं शहरों से अधिकाधिक सेप्टिक प्रसाधन गृहों का निर्माण आवश्यक है जिससे वायु प्रदूषण पर नियंत्रण पाया जा सके। इससे उत्पन्न गैस को ईंधन के रूप में भी काम में लाने हेतु मनोवृत्ति परिवर्तन आवश्यक है।

8. परमाणु विस्फोट एवं परीक्षण पर नियंत्रण– अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परमाणु विस्फोट एवं परीक्षण पर नियंत्रण हेतु कदम उठाने चाहिए, जिससे विस्फोट पदार्थों के वायुमण्डलीय प्रदूषणजनित खतरों से जीव जगत् को बचाया जा सके।

9. सघन वृक्षारोपण– यह सर्वविदित है कि वृक्ष वायु प्रदूषण को रोकने में सबसे अधिक उपयोगी भूमिका अदा करते हैं। अतः वृक्षारोपण हेतु जनजागृति अत्यन्त आवश्यक है। बेकार खाली पड़ी भूमि पर वृक्षारोपण करके वायु प्रदूषण को रोका जा सकता है। शहरों में भी योजनानुसार सड़कों के दोनों ओर पौधे लगाने चाहिये एवं अच्छे पार्क विकसित करने चाहिये। पीपल का पौधा जीवनकाल में 1713 किलोग्राम ऑक्सीजन देता है जो 60,000 मनुष्यों के लिए पर्याप्त है।

10. विषैले रसायनों का कम प्रयोग– फसलोत्पादन में बी.एच.सी., एल्ड्रिन एवं अन्य वायु प्रदूषण फैलाने वाले रसायनों का कम प्रयोग करना चाहिए। डी.डी.टी. का भी अत्यधिक प्रयोग नहीं रना चाहिए।

11. कारखानों की चिमनियों पर विद्युत अवक्षेपकों का प्रयोग– कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ से वायु प्रदूषण पर नियंत्रण करने हेतु विद्युत अवक्षेपक प्रयोग में लाने चाहिए जिससे वायु प्रदूषण कम हो सके।

12. उद्योगों में श्रमिकों के लिए नकाब का प्रयोग– उद्योगों में प्रदूषित वायु के खतरे से बचने के लिए श्रमिकों को विशेष प्रकार के नकाब (Mask) का प्रयोग करना चाहिए, जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पड़े। प्रयोगशालाओं में जहाँ विषैली गैसें उत्पन्न हों वहां भी नकाब का प्रयोग आवश्यक है।

(3) मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)–

आज से लगभग 50 वर्ष पहले सिंचाई के साधन कम थे, उन्नतिशील फसलों की जातियों का अभाव था, किसान सालभर में औसतन एक फसल लेते थे तथा सिंचित्र क्षेत्रों में दो–तीन वर्ष के अन्तराल से गोबर की खाद डालते रहते थे। परन्तु आबादी बढ़ने से अधिक खाद्यान्न की पूर्ति हेतु सिंचाई के साधनों में वृद्धि हुई, अधिक पैदावार देने वाली जातियों का विकास हुआ और फसलों की आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान में रखकर रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों आदि का भी विकास हुआ। अतः अधिक क्षेत्र पर खेती की जाने लगी एवं वर्ष में 2–3 फसलें ली जाने लगी।

मृदा खेती के अतिरिक्त भी विभिन्न उपयोगों में आने लगी। परिणामस्वरूप मृदा प्रदूषण की समस्या पैदा हुई। अतः बाह्य एवं आंतरिक कारणों से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में ऐसा अवांछनीय परिवर्तन जिससे वह मनुष्य एवं अन्य जीव तथा पेड़–पौधों के लिए अनुपयोगी हो जावे, मृदा प्रदूषण कहलाता है।

मृदा प्रदूषण के स्रोत (Sources of Soil Pollution)–

(1) घरेलू अपशिष्ट (Domestic Wastes)
(2) नगर पालिका अपशिष्ट (Municipal Wastes)
(3) औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Wastes)
(4) कृषि अपशिष्ट (Agricultural Wastes)
(5) अन्य स्रोत (Other Wastes)

(1) घरेलू अपशिष्ट (Domestic Wastes)– घरेलू अपशिष्ट पदार्थों में मुख्य रूप से घर की सफाई से सम्बन्धित जैसे–धूल, कागज, कपड़ों के टुकड़े, प्लास्टिक के टुकड़े, कोयला, राख, लकड़ी, सूखी पत्तियाँ, सजावट का बेकार सामान, बर्तनों की धुलाई के समय प्रयोग किये जाने वाले पदार्थ, टूटे फर्नीचर के बेकार पदार्थ, भोजन से सम्बन्धित पदार्थ, जैसे–सब्जी, दाल, चावल, फल, फलों के बीज, सब्जियों की पत्तियाँ, अनाज, दाल या अनाज की घुनयुक्त धूल एवं कूड़ा–करकट आदि सम्मिलित हैं।

(2) नगर पालिका अपशिष्ट (Municipal Wastes)– शहरों एवं कस्बों की सफाई के समय विसर्जित कूड़ा–करकट,

मल–मूत्र, दुकानों, कारखानों, मुर्गीपालन केन्द्र, पशुओं के विसर्जित पदार्थ, मृत शरीर, शौचालय के अन्य अपशिष्ट पदार्थ, अस्पताल एवं शिक्षा संस्थाओं के विसर्जित पदार्थ प्रमुख रूप से विसर्जन के बाद मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(3) औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Wastes)– विभिन्न प्रकार के उद्योग, जैसे–साबुन, कपड़ा, फल, कागज, रबर, चर्म, धातु, पैट्रोल, प्लास्टिक, रसायन, लकड़ी, इस्पात आदि के अपशिष्ट पदार्थ ठोस, द्रव रूप में अपशिष्ट पदार्थ मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(4) कृषि अपशिष्ट (Agricultural Wastes)– फसलों के अवशेष जैसे–जड़, तना, पत्तियाँ, फूल आदि खरपतवार, कार्बनिक खादों का प्रयोग में न लाया गया भाग, फसलों का भंडारण हेतु प्रयोग में लाई जाने वाली बेकार बोरी आदि मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(5) अन्य स्रोत (Other Wastes)– फसलों को बीमारियों, कीड़े–मकोड़ों एवं खरपतवारों से बचाने के लिए अनेकों प्रकार के रसायन प्रयोग में लाये जाते हैं जिन्हें मिट्टी में मिलाया जाता है, या फसलों पर छिड़का जाता है। मृदा कटाव के समय एक स्थान की मिट्टी को दूसरे स्थान पर पहुंच कर एकत्र होते जाना, धातुओं एवं खनिजों की खुदाई के समय शेष विस्थापित अपशिष्ट एवं विभिन्न विस्फोटक गतिविधियों के पदार्थ आदि मृदा को प्रदूषित करने के अन्य स्रोत है। प्रदूषित जल से सिंचाई करने से भी मृदा में अम्लीयता एवं क्षारीयता पैदा होती है।

मृदा प्रदूषण के प्रकार (Types of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण दो प्रकार के पाये जाते हैं :–

(1) रासायनिक प्रदूषण (Chemical Pollution)

(2) जैविक प्रदूषण (Biological Pollution)

(1) रासायनिक प्रदूषण (Chemical Pollution)– फसलों से अधिक पैदावार लेने के लिए उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवारनाशक, कवकनाशक आदि प्रयोग में लाये जाते हैं जिनमें से कुछ अधिक विषैले होते हैं, जैसे– आर्सेनिक, लैड यौगिक, एल्ड्रिन आदि एवं कुछ कम विषैले होते हैं जिनका हानिकारक प्रभाव प्रयोग की जाने वाली मात्रा पर निर्भर करता है, जैसे–डी.डी.टी., पैराथियान, बी.एच.सी., मरक्यूरिक यौगिक आदि।

(2) जैविक प्रदूषण (Biological Pollution)– मृदा, जल, कीचड़, मानव एवं पशुओं के मलमूत्र में अनेकों प्रकार के विषैले जीवाणु पाये जाते हैं जिनसे विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे–

(अ) क्लास्ट्रीडियम बॉट्यूलिनम (Clostriduim botulinum)– ये मिट्टी, पानी, कीचड़ आदि में पाये जाते हैं। ये भोज्य पदार्थ जैसे–मांस, मछली, सीलबन्द भोज्य पदार्थों को विषाक्त कर देते हैं जिनसे स्नायु तन्त्र पर प्रभाव, सिर दर्द, कब्ज, गर्दन में लकवा आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(ब) क्लास्ट्रीडियम परफ्रिजेन्स (Clostriduim peffringens)– ये मिट्टी, पशुओं का मलमूत्र, मनुष्य के मल में पाये जाते हैं। इनसे लगभग सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ खराब होने की संभावना बनी रहती है जिनके सेवन से उल्टी आना, शरीर में दर्द एवं पेचिस के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(स) स्टेफाइलो कॉकस एवं माइक्रोकॉकस (Staphylococcus and Micrococcus)– ये कफ, थूक, घाव आदि में उत्पन्न हो जाते हैं। इनसे कस्टर्ड, क्रीम, दूध से बने पदार्थ, मांस, मछली आदि प्रभावित होते हैं। उल्टी आना, सिर दर्द, बुखार, अधिक पसीना आना आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

(द) साल्मोनेला (Salmonella)– ये मनुष्य तथा पशुओं के मलमूत्र में पैदा होते हैं तथा सभी प्रकार के भोजन को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभाव से उल्टी आना, प्यास लगना, घबराहट, सिर दर्द आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

(य) बैसीलस सेरियस (Bacillus Cereus)– इसका स्रोत मिट्टी है। दूध, अण्डा, कस्टर्ड आदि के सेवन से उल्टी आना, डायरिया हो जाना, पेट में मरोड़ उठना आदि लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

(र) कवक संदूषण (Fungal Contamination)– कवक भी भोज्य पदार्थों पर उगकर उन्हें हानिकारक बना देते हैं, जैसे–

एस्परजिलस फ्लेवस (Asperillus Flavus)– प्रोटीन प्रचुरता वाले भोज्य पदार्थ, जैसे– सोयाबीन, मूँगफली आदि पर यह पनपते हैं और ऐसे पदार्थों के सेवन से यकृत सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।

फ्युजेरियम स्पोरोट्राइकोइड्स (Fusarium Sporotrichoides)– ये जौ, जई, गेहूँ आदि अनाजों पर पैदा हो जाता है। इस प्रकार के प्रदूषित पदार्थों के प्रयोग से हड्डियों का गलन रोग पैदा हो जाता हैं।

पेनीसीलियम (Penicillium)– इसकी अनेकों प्रजातियाँ यकृत रोग, ट्यूमर कैंसर आदि को फैलाती है।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव (Effect of Soil Pollution)–

विभिन्न माध्यमों से प्रदूषित मृदा मनुष्य, जीव–जन्तु एवं वनस्पतियों पर अनेकों हानिकारक प्रभाव डालती हैं, जैसे :

(1) मृदा गुणों पर प्रभाव (Effect of Soil Properties)– वानस्पतिक आवरण के नष्ट होने से मृदा अपरदन तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में वृद्धि होती है। मृदा में पोषक तत्वों की कमी आ जाती है एवं जलधारण क्षमता कम हो जाती है। अत्यधिक एवं लगातार रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में क्षारीयता अथवा अम्लीयता बढ़ती है जिससे सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता घट जाती है, वायु संचार कम हो जाता है, पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। अधिक मात्रा में विषैले पदार्थों के समावेश से मृदा में इनकी सान्द्रता हानिकारक हो जाती है। अतः प्रदूषण के फलस्वरूप मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों का ह्रास होता है।

(2) फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops)– प्रदूषित मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में ह्रास होने से बीजों का अंकुरण एवं पौधों की बढ़वार प्रभावित होती है। मृदा में वायु संचार में व्यवधान उत्पन्न होने से पौधों की जड़ों एवं जीवाणुओं के श्वसन में व्यवधान उत्पन्न होता है जिससे पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है। मृदा क्षरण के फलस्वरूप पोषक तत्व बह जाते हैं, विभिन्न रसायनों के अधिक प्रयोग से मृदा pH मान बदल जाता है, परिणामस्वरूप पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। मृदा में विषैले पदार्थों के अधिक संग्रहीत हो जाने से इनका पौधों में भोजन के साथ समावेश होने से फसलों में जहरीला प्रभाव (Toxicity) दिखाई देने लगता है। अतः पौधों के लिए पोषक तत्व एवं जल की असामान्य उपलब्धता फसलोत्पादन को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। फसलों एवं फलों की गुणवत्ता गिर जाती है।

(3) मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effect on Human and other Animals)– मृदा में प्रदूषित पदार्थों के समावेश से विभिन्न प्रकार के रोग फैलाने वाले रोगाणुओं की वृद्धि होती है जिससे बुखार, पेचिश, हैजा, मलेरिया, पीलिया आदि बीमारियां फैलती हैं। अपशिष्टों के हानिकारक विषैले तत्व भूमि में एकत्र हो जाते हैं जिससे भूमि प्रदूषित हो जाती है। ऐसी भूमि में उगाई गई फसलों और फलदार पौधों के उगाने से ये तत्व मनुष्यों तथा पशुओं के भोजन द्वारा औद्योगिक इकाइयों, सार्वजनिक शौचालयों एवं सार्वजनिक संस्थानों के विसिर्जत अपशिष्ट मृदा में पड़े रहने पर सड़–गल कर वातावरण में दुर्गन्ध फैलाते हैं जिससे श्वस हेतु प्रदूषित वायु प्राप्त होती है जो मनुष्य के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालती है। खाने–पीने की वस्तुएं भी ऐसे वातावरण में प्रदूषित होकर बीमारियों का माध्यम बनती है। मक्खी, मच्छर आदि हानिकारक कीड़े–मकोड़े अधिक पनपने से बीमारियाँ फैलती हैं।

(4) आर्थिक हानि (Financial Losses)– प्रदूषित मृदा को ठीक करने में व्यय होता है तथा प्रदूषित उत्पादों द्वारा फैली बीमारियों की रोकथाम पर अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है। अधिक रसायनों के प्रयोग से पैदा की गई फसलों एवं फलों की गुणवत्ता बिगड़ जाने के खतरे उत्पन्न होने से बाजार में कीमत भी कम मिलती है। खाद्य पदार्थों का आंतरिक संगठन प्रभावित होने से कभी–कभी संरक्षण सम्बन्धी परेशानियाँ भी आने लगती हैं। मृदा प्रदूष से एक बार मृदा उत्पादकता में कमी आने से उसे पुनः लाभदायक बनाना कृषि विशेषज्ञों के सामने एक चुनौतीपूर्ण दायित्व की समस्या का कारण बनता है।

मृदा प्रदूषण नियंत्रण के उपाय (Measures to Control Soil Pollution)–

मृदा जीवधारियों एवं वनस्पतियों के लिए अस्तित्व का प्रमुख माध्यम है। अतः इसे उपयोगी बनाये रखने हेतु प्रदूषण से बचाने के कुछ उपाय नीचे बताये गये हैं–

(1) विभिन्न माध्यमों से प्राप्त ठोस अपशिष्ट पदार्थों से मृदा को प्रदूषण से बचाने हेतु निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं–

(अ) भू–निक्षेपण (Land disposal)– इस विधि के अन्तर्गत अपशिष्ट पदार्थों को खुला ढेर (Open dump) के रूप में अथवा स्वच्छता भूमि भरण (Sanitary Land filling) हेतु व्यवस्थित करने से मृदा प्रदूषण को बचाया जाता है। खुला ढेर विधि में कूड़ा–करकट, कचरा आदि अपशिष्ट पदार्थ खुले स्थान पर एकत्र किये जाते हैं। वहीं पर या तो वर्षात् के पानी के प्रभाव से सड़–गल जाते हैं या आग लगाकर नष्ट किये जाते हैं। कभी–कभी खुले ढेरों को दबाकर कार्बनिक पदार्थों को सीमित स्थान पर ही संग्रहित करते हैं। यह विधि सस्ती एवं सरल है परन्तु अपशिष्ट में पैदा होने वाले रोगाणु जल के साथ स्थानान्तरित होकर रोग फैलाते हैं। स्वच्छता भूमि–भरण विधि में अपशिष्ट पदार्थों को किसी निचली जगह में पत्तों के रूप में एकत्र करते जाते हैं। वहीं पर उन्हें आवश्यकतानुसार रौलर से दबाते भी रहते हैं। कार्बनिक पदार्थ सड़कर खाद का काम देते हैं तथा जमीन भी समतल हो जाती है। फिर भी अवशिष्ट पदार्थों के सड़ने से पैदा हुई दुर्गन्ध से वातावरण प्रदूषित होता है और आस–पास बीमारियाँ फैलने की संभावना बनी रहती है। बड़े शहरों में यह विधि विशेष रूप से कम में लायी जाती हैं।

(ब) भस्मीकरण (Bruning)– बड़े–बड़े शहरों में इस विधि में भस्मीकरण यन्त्र द्वारा अपशिष्ट पदार्थों को जलाकर नष्ट किया जाता है। इसमें ठोस अपशिष्ट पदार्थ का लगभग 80 प्रतिशत भाग जलकर राख बन जाता है। राख को आसानी से खेतों में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। खर्चीली विधि होने के कारण यह अधिक प्रचलित नहीं है।

(स) पुनः चक्रीकरण (Re-cycling)– भू–निक्षेपण विधि में अपशिष्ट से अलग किये जाने वाले पदार्थ निकाले जाते हैं। परन्तु पुनः चक्रीकरण विधि में विभिन्न पदार्थ क्रमशः प्राप्त किये जाते हैं। इस विधि के अन्तर्गत कम्पोस्ट बनाना (Composting), दारण (Rendering), भंजक आसवन (Destructive distillation) एवं व्यवसायिक मुक्तीकरण (Industrial Selvaging) प्रमुख हैं।

कम्पोस्ट बनाने हेतु मानव–मलमूत्र, कूड़ा–करकट आदि आबादी से दूर निश्चित आकार के गड्ढों में एकत्र करते हैं जहाँ पर वे जैविक अपघटन द्वारा उपयोगी खाद में बदल जाते हैं। दारण विधि में पशुओं के अवशेष, वसा, हड्डी, रक्त आदि को पकाकर चर्बी प्राप्त करते हैं तथा साथ ही प्रचुर प्रोटीनयुक्त अंश वाला पदार्थ भी प्राप्त होता है।

भंजक आसवन विधि में अपशिष्ट पदार्थों को वायु की अनुपस्थिति में ताप द्वारा अपघटित किया जाता है जिससे उपयोगी पदार्थ अलग–अलग हो जाते हैं। राख, धूल, कंकड़–पत्थर अलग हो जाने के बाद शेष पदार्थ को यंत्र चालित पट्टों की मदद से कक्षों में भेजा जाता है, जहाँ पर धातु, काँच, प्लास्टिक आदि अलग–अलग कर दी जाती हैं।

(2) घरेलू अपशिष्ट पदार्थों को विधिवत् एकत्र करना चाहिये जिसे बाद में अन्यत्र स्थानान्तरित करके जगह–जगह प्रदूषण को रोका जा सकता है।

(3) शहरों के अपशिष्ट पदार्थों को रोजाना एकत्र करके निश्चित जगह पर एकत्र करके ढक देना चाहिए। खुले स्थानों पर शौच पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए तथा जगह–जगह स्वच्छ आधुनिक सुलभ शौचालय बनवाने चाहिए जिससे प्रदूषण से बचा जा सके। नगरपालिकाओं को जगह–जगह कम्पोस्ट बनाने की व्यवस्था, कूड़ा–करकट एकत्र करने के कूड़ेदान, अपशिष्ट स्थानान्तरित करने के लिए समुचित यन्त्रों की व्यवस्था करते रहना चाहिए।

(4) औद्योगिक संस्थानों में अपशिष्ट पदार्थों को पर्याप्त उपचार के बाद ही विसर्जित करना चाहिए। अपशिष्ट पदार्थों के बिना उपचार के विसर्जित करने पर पूरी तरह से वैधानिक रूप से प्रतिबन्ध आवश्यक है।

(5) कृषि के अपशिष्ट पदार्थों को खाद के गड्ढों में नियमित रूप से डालना चाहिए जिससे वे पुनः खेतों के लिए उपयोगी बन सके।

(6) विभिन्न रसायनों का सीमित प्रयोग आवश्यक है। ऐसे रसायन प्रयोग में लाये जाये जिनका जैविक अपघटन आसान हो। अधिक विषैले रसायनों के प्रयोग पर प्रतिबंध आवश्यक है।

(7) भूमि कटाव, भू–उत्खनन, भूमि का क्षारीय या अम्लीय बनाना, भूमिगत परमाणु विस्फोट आदि पर प्रारम्भ से ही नियंत्रण हेतु कदम उठाने चाहिए।

(8) भूमि प्रदूषण से होने वाले रोगों के नियंत्रण की सामयिक व्यवस्था आवश्यक है।

(9) भूमि प्रदूषण रोकने हेतु प्रचार माध्यमों के द्वारा जन–जागृति अत्यन्त आवश्यक है। समय–समय पर सर्वेक्षण के द्वारा नागरिकों को प्रदूषण की सीमा से अवगत कराते रहना भी आवश्यक है। इस कार्य हेतु क्षेत्रीय पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण प्रयोगशालाओं का विस्तार हितकर सिद्ध होगा।

(10) सिंचाई एवंज ल–निकास की व्यवस्था क्षेत्र विशेष के अनुसार होनी चाहिए जिससे जल के माध्यम से एक स्थान के लवण आदि दूसरे स्थान पर एकत्र होकर मृदा को अनुत्पादक न बनायें। भूमि की उर्वरता को बनाये रखने हेतु कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग, उपयुक्त फसल प्रणाली एवं भूपरिष्करण क्रियाएं अपनाना भी आवश्यक हैं।

(4) ध्वनि प्रदूषण (Sound Pollution)

कल–कारखाने, परिवहन, मनोरंजन के साधन एवं मानव शोर वातावरण को असहनीय बना देते हैं जो ध्वनि प्रदूषण के कारण बनते हैं। अतः किसी साधन से निर्गत ध्वनि जब असह्य हो जाती है तो उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

सामान्यतः 40–50 db (Decibles) तक की ध्वनि कर्णप्रिय तथा 70–75 db तक की ध्वनि सहनीय होती है। भारतीय मानक संस्थान के अनुसार 90 db की ध्वनि मानक ध्वनि मानी जाती है, इससे अधिक ध्वनि प्रदूषण के अन्तर्गत मानी जाती है।

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत (Sources of Sound Pollution)–

(1) प्राकृतिक स्रोत– प्राकृतिक स्रोतों से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं, जैसे–विद्युत गर्जन, बादल की गर्जन,

तूफान एवं हवायें, जल वृष्टि, भूकम्प, ज्वार–भाटा, ज्वालामुखी का फूटना आदि।

(2) कृत्रिम स्रोत– मानव सुविधाओं के लिए विकसित साधनों से तरह–तरह की ध्वनियाँ पैदा होती हैं, जैसे–उद्योग–धन्धों की मशीनों द्वारा, स्थल परिवहन, वायु परिवहन एवं जल परिवहन के साधनों द्वारा।

(3) मनोरंजन के साधन एवं मानव कार्यकलाप– मनोरंजन के विभिन्न साधन जैसे–सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, लाउडस्पीकर, स्टीरियो, वाद्य यंत्र आदि ध्वनि प्रदूषण के कारण हैं। इसी प्रकार मनुष्यों द्वारा विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों के आयोजनों में ध्वनि प्रदूषण फैलता है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव (Effectcs of Sound Pollution)–

ध्वनि प्रदूषण मानव स्वास्थ्य एवं व्यवहार पर प्रभाव डालता है। ध्वनि प्रदूषण मुख्यतः चार प्रकार से व्यवधान पहुँचाता हैं–

(1) श्रवण शक्ति स्तर पर प्रभाव

(2) शारीरिक कार्य प्रणालियों पर प्रभाव

(3) मानव आचरण पर प्रभाव

(4) आर्थिक प्रभाव

(5) रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radio Active Pollution)–

प्रकृति में कुछ तत्व ऐसे पाए जाते हैं जिनसे विशेष प्रकार के विकिरण उत्सर्जित होते रहते हैं जिनमें गामा विकिरण अन्य एल्फा एवं बीटा की तुलना में अधिक भेदन क्षमता रखती है। नाभिकीय विस्फोटों से भी रेडियोधर्मी पदार्थों का विसर्जन होता है। रेडियोधर्मी पदार्थों से भूमि, जल, वायु सभी प्रभावित होते हैं।

कृषि रसायनों द्वारा मृदा, जल एवं वायु प्रदूषण (Pollution of Soil, Water and Air by Agrochemicals)–

कृषि में विषैले कृषि रसायनों जैसे शाकनाशियों, व्याधिनाशियों व पादप नियामकों का अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप मृदा उर्वरता पर बुरा असर पड़ रहा है। इन रसायनों के प्रयोग से खरपतवार, कीट व रोग तो नियन्त्रित हो जाते हैं, परन्तु इन जहरीले कृषि रसायनों का मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, जिससे मृदा उर्वरता कम हो जाती है।

किसानों को इन रसायनों के प्रयोग की सही जानकारी नही होने के कारण आज उर्वर भूमि बंजर भूमि में तब्दील होती जा रही हैं। खेती में प्रयोग हो रहे इन कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग का प्राकृतिक संसाधनों– भूमिगत जल, सतही जल, मृदा, जीव–जन्तुओं और पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

इसमें प्रमुख कृषि रसायन निम्नलिखित हैं-

(i) रासायनिक उर्वरकों द्वारा प्रदूषण

(ii) नाशी रसायनों द्वारा प्रदूषण

(i) रासायनिक उर्वरकों द्वारा प्रदूषण– वर्तमान कृषि में उर्वरकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज कृषि में उर्वरकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग किया जा रहा है। इन उर्वरकों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम के उर्वरक प्रमुख हैं। फसलें नाइट्रोजन का उपयोग 25–70 प्रतिशत तथा फॉस्फोरस का उपयोग 5–30 प्रतिशत ही कर पाती हैं इनके शेष बचे तत्त्व मृदा में रहते हैं। इनके स्वरूप बदलकर वायु, जल तथा भूमि में बने रहते हैं। नत्रजन उर्वरकों को लम्बे समय तक प्रयोग करने से मृदा अम्लीय हो जाती है। इसके अतिरिक्त नाइट्रेट मृदा में रिसाव द्वारा भूमि जल में मिल जाती है। जल में नाइट्रेट की मात्रा 50 मि.ग्रा. प्रति लीटर से अधिक होती है तो वह पशुओं एवं मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। ऐसा देखा गया है कि जब पानी में 10 मि.ग्रा. प्रति लीटर फॉस्फोरस और 200 – 300 मि.ग्रा. प्रति लीटर से अकार्बनिक नाइट्रोजन कम होती है तो शैवाल की वृद्धि रुक जाती है।

भारी तत्त्व संचयन–

इन उर्वरकों में कुछ भारी तत्त्व As, Cd, Cu, Hg, Mn, Ni, Pb, U, Zn इत्यादि फॉस्फोरस वाले उर्वरकों में पाये जाते हैं ये तत्त्व रॉक फॉस्फेट में प्राकृतिक रूप से पाये जाते हैं तथा रॉक फॉस्फेट से उर्वरक बनते हैं। इनमें सीसा एवं कैडमियम ज्यादा नुकसान दायक होते हैं।

ये तत्त्व पौधों के अवशोषण के पश्चात खाद्य श्रृंखला से मानव एवं पशुओं के शरीर में चला जाता है। इसकी निश्चित मात्रा से अधिक होने पर गुर्दों द्वारा काम न करना, आंते एवं आमाशय का कमजोर होना, अति तनाव वाली बीमारियां हो जाती हैं।

सारणी–उर्वरकों में उपस्थित शीशा एवं कैडमियम की मात्रा (ppm)

क्र.सं.	उर्वरक का नाम	शीशा (Pb)	कैडमियम (Cd)
1.	रॉक फॉस्फेट	1135	303
2.	सिंगल सुपर फॉस्फेट	6098	187
3.	डाई अमोनियम फॉस्फेट	188	109
4.	नाइट्रो फॉस्फेट	313	89
5.	कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	200	06

रेडियोएक्टिव पदार्थ–

फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों में यूरेनियम, थोरियम, रेडियम इत्यादि रेडियोएक्टिव पदार्थ पाये जाते हैं। ये पदार्थ भी पर्यावरण प्रदूषण फैलाते हैं। इन पदार्थों से प्राणियों में आनुवंशिक कुप्रभाव उत्पन्न होता है, जिससे जीवों में प्रतिरोधक क्षमता में कमी, जनन क्षमता में कमी होने लगती है। इससे कई प्रकार के रोग जैसे– बालों का झड़ना, हाथ पैरों में जलन, असमय बुढ़ापा, तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोग, कैंसर इत्यादि बीमारियां हो जाती हैं।

नाइट्रेट वाले पदार्थ–

नाइट्रोजन वाले उर्वरकों से शेष नाइट्रेट के जल में मिलने से जल प्रदूषण होता हैं। नाइट्रेट युक्त जल के उपयोग से बच्चों में मेथेमोग्लोबिनेमिया ब्लू बेबी सिंड्रोम रोग, नाइट्रेट की अधिक सान्द्रता से कैंसर, मानसिक कमजोरी, अतितनाव, शीघ्र मृत्यु इत्यादि हो सकती है। नाइट्रेट (NO^-_3) के नाइट्राइट (NO^-_2) में बदलने से आमाशय पर कुप्रभाव पड़ता है। नाइट्राइट एवं एमीन्स से नाइट्रोसोअमिन बनता है, जिससे कैंसर हो सकता है।

जल प्रदूषण–

तालाबों एवं बड़े जलाशयों में खेतों में प्रयुक्त नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम युक्त उर्वरक वर्षा जल के साथ बहकर जाने से जलीय पौधों की वृद्धि एवं विकास अधिक होता है। इन जलीय पौधों की अत्याधिक वृद्धि से जलराशियों में ऑक्सीजन की कमी होने लगती है। ऑक्सीजन की कमी से जलीय जन्तु एवं पौधे मरने लगते हैं। ऐसे जल में दुर्गंध आने लगती है, जो पीने एवं अन्य उपयोग हेतु उपयोगी नहीं रहता है। अतः आवश्यकता से अधिक उर्वरकों का प्रयोग खेतों में नहीं करना चाहिए।

वायु प्रदूषण–

उर्वरकों के प्रयोग से खेतों में नाइट्रस ऑक्साइड, अमोनिया इत्यादि बनती है। सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों से बचाव करने वाली ओजोन से यह नाइट्रस ऑक्साइड, अमोनिया क्रिया करके ओजोन को नष्ट करती है। उर्वरकों के प्रयोग एवं कार्बनिक नाइट्रोजन के खनिजन एवं विनाइट्रीकरण से ऐसी गैसों की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ने से वायु प्रदूषण होता है।

हालांकि इनके द्वारा क्लोरोफ्लोरो कार्बन यौगिकों की तुलना में नुकसान कम होता है। ओजोन के नष्ट होने से सूर्य की हानिकारक किरणों का प्रभाव पौधों, पशुओं एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ता हैं इन हानिकारक विकिरणों से चर्मरोग, कैंसर इत्यादि भयंकर रोग होते हैं। अतः इससे बचाव हेतु उर्वरकों का संतुलित प्रयोग किया जाना चाहिए।

(ii) नाशी रसायनों द्वारा प्रदूषण–

वर्तमान में किसान अपनी फसल, फल, सब्जियों की अच्छी पैदावार प्राप्त करने हेतु कीटनाशी, रोगनाशी, खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग अन्धाधुन्ध रूप से कर रहे हैं। इन रसायनों का प्रयोग भारत में लगातार प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है।

यहां के अशिक्षित किसान इन नाशी रसायनों का अत्यधिक प्रयोग कर अपनी फसलों को बचाकर उपज बढ़ाता है। लगातार इन रसायनों के प्रयोग से वायु, जल तथा मृदा प्रदूषित हो रही है। चित्र द्वारा पीड़कनाशियों से पर्यावरण के घटक मृदा, जल एवं वायु में प्रदूषण का प्रदर्शन निम्न प्रकार प्रदर्शित हैं–

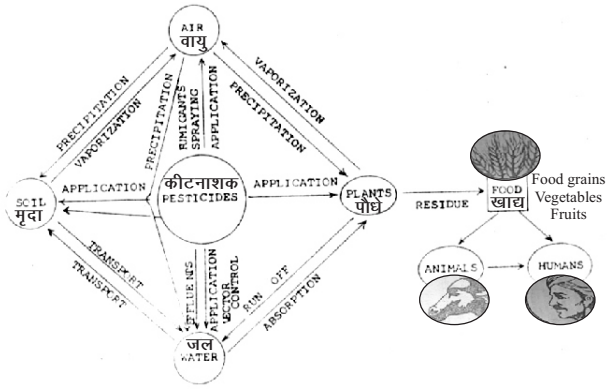

चित्र–पीड़कनाशियों द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण प्रदर्शन

वायु प्रदूषण–

प्रयोग के समय इन नाशी रसायनों के सूक्ष्म कण हवा को प्रदूषित करते हैं। वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसों से क्रिया करके वायु को प्रदूषित कर देते हैं। इनके कण श्वसन द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुंचकर स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इस प्रदूषण के कारण कई किसानों की मृत्यु तक हो जाती है। अतः संतुलित मात्रा में नाशी रसायनों का प्रयोग करना चाहिए तथा जैविक कीटनाशी रसायनों का इस्तेमाल अधिक करना चाहिए।

नाशी रसायनों का मृदा में संचयन–

कृषि कार्यों में लगातार कई वर्षों तक नाशी रसायनों के उपयोग के कारण मृदा में इनका संचयन होने लगता है। क्लोरीन युक्त कीटनाशी रसायनों का संचय अधिक होता हैं। इस प्रकार का संचयन होने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे खतरनाक कीटनाशी जैसे बी.एच.सी., डी.डी.टी., एल्ड्रिन इत्यादि को सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया है। देश के विभिन्न हिस्सों से लिये गए मृदा नमूनों में कीटनाशियों का स्तर अधिक पाया गया है।

जल में संचयन–

नाशी रसायनों का लगातार खेतों में प्रयोग से वर्षा जल द्वारा अपक्षालन, सतह पर वर्षा जल के साथ बहकर जाने,

औद्योगिक संस्थानों का बहिःस्त्राव इत्यादि से नाशी रसायन जल में पहुँचकर उसे प्रदूषित करते हैं। विभिन्न दुर्घटनाओं में नाशी रसायनों के बहने से भी वातावरण प्रदुषित होकर जल प्रदूषित होता है।

जैव श्रृंखला में शामिल होकर ये नाशी रसायन दुधारू पशुओं और मनुष्यों तक पहुंच जाते हैं। आई. टी. आर. सी., लखनऊ द्वारा समय–समय पर गंगा, कावेरी एवं अन्य नदियों के जल के नमूनों का विश्लेषण करने पर डी.डी.टी., एण्डोसल्फान, मेलाथियान, पेराथियोन, डाइमेथोएट एवं एथिओन के अवशेष पाये गये हैं।

खाद्य पदार्थों में संचयन–

बाजार में बिकने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थ कीटनाशकों के सम्पर्क में आते हैं। सब्जियों में तो आजकल इसका प्रयोग अत्यधिक हो रहा है। खाद्य श्रृंखला के दौरान इन कीटनाशियों का जैविक सांद्रण होता है। इनकी मात्रा खतरे से अधिक पायी जाती है।

मानव शरीर पर प्रभाव–

नाशी रसायनों के अवशेष मनुष्य के वसा, ऊतक, खून एवं दूध में पाये जाते हैं। कीटनाशकों का फसलों पर प्रयोग उनके स्थानान्तरण, प्रदूषित खाद्य पदार्थों के उपयोग से मानव शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इनके मानव शरीर में संचयन से कैंसर, सिरदर्द, चर्मरोग, एलर्जी, अन्धापन, अमाशय के रोग, आंखों के रोग, यकृतशोथ, कोलेस्ट्रॉल इत्यादि बीमारियां फैलती है।

अन्य प्रभाव–

मानव के साथ–साथ कई लाभदायक जीवों पर इनका प्रभाव पड़ता है, जिससे नुकसानदायक कीटों के साथ–साथ लाभदायक कीट जैसे– क्राइसोपर्ला, कॉक्सीनेला, मैना, मकड़ी, लेड़ी बर्ड बीटिल इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार परागण करने वाले कीट मधुमक्खियां कीटनाशियों से मर जाती हैं, जिससे परागण की क्रिया प्रभावित होती है। इस प्रकार के संग्रह किये गए शहद में भी कीटनाशियों के अवशेष पाये गये हैं।

उपर्युक्त कीटनाशियों की भांति विभिन्न रोग व बीजोपचार में काम आने वाले रसायनों जैसे– थायरम बॉवस्टिन, मैंकोजेब, जाइनेब, सल्फर इत्यादि फफूंदनाशी, एट्राजीन, सीमेजिन, आइसोप्रोट्यूरॉन, डेलापान इत्यादि खरपतवारनाशियों से पर्यावरण मृदा, जल, वायु प्रदूषित होते हैं। विभिन्न प्रकार के मृदा सुधारकों, भण्डारण इत्यादि में प्रयुक्त रसायन भी पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

केन्द्रीय जल स्वास्थ्य इंजिनियरिंग अनुसंधान संस्थान के अनुसार भारत में प्रति एक लाख व्यक्तियों में से 60 व्यक्तियों की मृत्यु टाइफॉइड, पेचिस, पीलिया से हो जाती है, जिसका प्रमुख कारण प्रदूषित जल है। निम्न सारणी में जल में पाये जाने वाले हानिकारक पदार्थ एवं तत्त्वों का प्रभाव संक्षिप्त में दर्शाया गया है–

सारणी– प्रदूषित जल के स्रोत एवं रोग

क्र.स.	जल प्रदूषित पदार्थ एवं हानिकारक तत्त्व	स्रोत	सम्भावित रोग
1.	घुलनशील एवं अघुलनशील कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ	जल से सम्बन्धित उद्योग	पाचन तन्त्र में विकार
2.	क्लोराइड	NaCl, वस्त्र, चमड़ा उद्योग	गुर्दे के रोग
3.	सल्फाइड	पैट्रोलियम शोधन एवं कपड़ा उद्योग	श्वसन रोग
4.	अमोनियम	उर्वरक उद्योग	श्वसन रोग
5.	जस्ता	विद्युत्त लेपन एवं धातुकर्म	गुर्दे के रोग
6.	पारा	NaOH, कीटनाशक, पैट्रोरसायन, टूटे थर्मामीटर, पारा, लेम्प उद्योग	हृदय एवं गुर्दे के रोग
7.	सीसा	खनन, स्वचालित जहाज	विषाक्त प्रभाव
8.	तांबा	उद्योगों से	शरीर क्रियात्मक अस्वभाविकताऐं

9.	यूरिया	उर्वरक उद्योग	पेट विकार
10.	तेल एवं ग्रीस	पैट्रोलियम शोधन, वस्त्र एवं चमड़ा उद्योग	पाचन तन्त्र विकार
11.	कीटनाशक पदार्थ	कीटनाशक उद्योग	चर्म रोग एवं हृदय रोग
12.	रंग एवं रंजक	कागज, चमड़ा, कपड़ा उद्योग	चर्म रोग

पीड़कनाशियों का मृदा में स्थायित्व एवं मृदा जीवों पर प्रभाव (Persistance of pesticides in soil and their effects on soil micro organisms):

पीड़कनाशी जो कीटों एवं खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं, का अधिकांश भाग मृदा में मिल जाता है। पीड़कनाशी का प्रभावी होना तथा उनके हानिकारक अवशेषों का बुरा प्रभाव उनके मृदा में रहने के समय पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ– डी.डी.टी. का कृषि योग्य मृदा में 3 साल तक स्थायित्व रहता है जबकि ऑरगेनो फॉस्फेट और कार्बामेट कीटनाशी कुछ दिन या कुछ माह तक ही स्थायित्व (persist) रहते हैं। कुछ कीटनाशकों का मृदा में स्थायित्व इस प्रकार हैं– हैप्टाक्लोर 9 वर्ष, एल्ड्रिन तथा डाइएल्ड्रिन 9 वर्ष, डी.डी.टी. 10 वर्ष, बी.एच.सी. 11 वर्ष, क्लोरोडेन 12 वर्ष, डाइयूरॉन 19 माह, एट्राजिन 18 माह, 2–4 डी 14 से 30 दिन तक मृदा में बनी रहती है। फसलों को उगाने से, रिसाव द्वारा एवं कार्बनिक पदार्थों के अपघटन के द्वारा पीड़कनाशी का स्तर धीरे–धीरे मृदा में कम होता रहता है। अधिक समय तक विषैले पीड़कनाशी के प्रभाव जीवधारियों के लिए घातक होते हैं।

विशेष प्रकार के हानिकारक जीवों को मारने के लिए विशिष्ट प्रकार के पीड़कनाशी का प्रयोग किया जाता है क्योंकि सभी प्रकार के हानिकारक जीव एक ही प्रकार के पीड़कनाशी से नहीं मरते। निमेटोडस के लिए धूम्रक अधिक प्रभावी होते हैं। माइट्स के लिए आर्गेनो–फॉस्फेट एवं क्लोरीनेटिड हाइड्रोकार्बन अधिक प्रभावी होते हैं। केंचुओं पर सिवाय कार्बामेट्स एवं निमेटोसाइड्स के अधिकतर कीटनाशक अप्रभावी होते हैं।

नाइट्रीकरण, नत्रजन स्थिरीकरण में भाग लेने वाले जीवाणुओं पर पीड़कनाशियों का हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इन क्रियाओं पर खरपतवार नाशकों की तुलना में कीटनाशक एवं फंजाई नाशक अधिक हानिकारक पाए गए हैं। पीड़कनाशियों का प्रभाव मृदा जीवों पर कुछ समय तक ही प्रभावी होता है इसीलिए पीड़कनाशियों की सीमित एवं संतुलित मात्रा के प्रयोग से मृदा जीवों पर हानिकारक प्रभाव बचाया जा सकता है।

कृषि रसायनों के प्रयोग में ध्यान रखने योग्य सावधानियों एवं उनके हानिकारक प्रभाव से बचाव के उपाय :

कृषि रसायनों के प्रयोग में ध्यान रखने योग्य निम्नलिखित सावधानियाँ रखी जानी चाहिए –

(अ) उर्वरक सम्बन्धी –

1. उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करके।
2. पौधों की आवश्यकता से अधिक उर्वरकों का प्रयोग न करें।
3. नत्रजन युक्त उर्वरकों को किश्तों में आवश्यकतानुसार दें।
4. नत्रजन के मन्दगति उपलब्ध उर्वरकों का प्रयोग करें। 5. फॉस्फोरस व पोटेशियम वाले उर्वरकों का गहरी सतह में प्रयोग करें।
6. देशी खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट खादों का अधिक प्रयोग करें।
7. हरी खाद का प्रयोग करें।

(ब) भूमि प्रबन्धकीय –

1. गर्मी में गहरी जुताई करें जिससे हानिकारक जीवाणुओं के नष्ट होने के साथ–साथ उर्वरा शक्ति भी बढ़ती है।
2. नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसलों की बुवाई करें।

3. फसल चक्र अपनाकर उर्वरकों का प्रयोग कम करें। ढ़लानदार खेतों में वेदिका, समोच्च रेखा पर खेती करें।
4. मिट्टी पलटने वाले हल से पहली जुताई करें जिससे फसल अवशेष के सड़ने गलने से उर्वराशक्ति बढ़ती है।

(स) नाशकीय सम्बन्धी –

1. नाशी रसायनों का आवश्कतानुसार कम से कम प्रयोग करें।
2. अधिक आवश्यक हो तो जैविक कीट रसायनों का प्रयोग करें।
3. पौध संरक्षण हेतु समन्वित प्रबन्ध करें।
4. प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें जिससे उन पर कीटों क प्रभाव कम हो।
5. नाशी रसायन बनाने वाले कारखानों से होने वाले विसर्जन एवं उत्सर्जन सम्बन्धी मानकों का कड़ाई से पालन करें।
6. बीजोपचार में ट्राइकोडर्मा एवं जैविक विधियाँ काम में लें।
7. खरपतवार नाशियों के स्थान पर खरपतवारों से बचाव के उपायों पर ध्यान दें तथा समय–समय पर निराई गुड़ाई करें।
8. रोगों से बचाने हेतु रोगरोधी किस्मों का इस्तेमाल करें।
9. खाद्य पदार्थों में इन रसायनों का कम से कम उपयोग किया जाना चाहिए तथा इनके मानक निर्धारित हों।
10. प्रदूषण स्रोतों एवं औद्योगिक संस्थानों द्वारा होने वाले प्रदूषण तथा रोकथाम के तरीकों का समय–समय पर निरीक्षण किया जाना चाहिए।
11. आमजन को कीटनाशक, रोगनाशकों, खरपतवारनाशी रसायनों के दुष्प्रभाव से सचेत रहने हेतु जन जागृति फैलायी जाये।
12. खतरनाक खरपतवार गाजर घास को उखाड़ कर जला दें।

सारणी : जहरीलेपन के अनुसार कृषि रसायनों का वर्गीकरण

क्र. सं.	जहर का प्रकार	रसायन का नाम	घातक मात्रा मि.ग्रा./कि.ग्रा.	
			मुंह से	त्वचा से
1.	अत्यधिक जहरीला 	मोनोक्रोटोफॉस 36 SL (की.) फोरेट 10 G (की.) मिथाइल पैराथियॉन 50 EC (की.) मिथाईल पैराथियॉन 2%चूर्ण (की.)	1 से 5	1 से 200
2.	अधिक जहरीला 	क्लोरोपायरीफॉस 20 EC (की.) इमिडाक्लोरोपिड 17.5 EC (की.) डाइक्लोरोवास 76 EC (की.) साइपरमेथ्रीन 25 EC (की.) फैनवलरेट 20 EC (की.)	51 से 500	201 से 2000
3.	मध्यम जहरीला 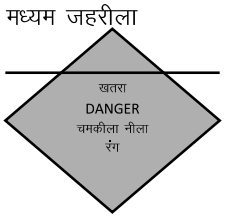	मेलाथियॉन 50 EC (की.) आइसोप्रोट्यूरॉन 75% WP (ख.) कार्बेन्डिज्म (फ.) कॉपर ऑकसीक्लोराइड (फ.)	501 से 5000	2001 से 20,000

4.	कम जहरीला 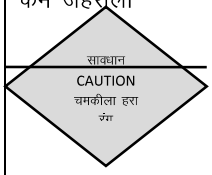	मैंकाजेब 75% WP (फ.) सल्फर 80% WP (फ.) एजेडिरेक्टिन 0.3% (की.) टेक्साकोनाजोन 5 EC (फ.)	5000 से अधिक	20000 से अधिक

(की.)– कीटनाशक, (फ.)– फफूंदनाशी, (ख.)– खरपतवारनाशी

पीड़कनाशकों के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि (Wating period of pecticides after its application)–

फसलों में कीटनाशक छिड़कने के बाद विशेष समय तक क्रियाशील रहते हैं, कुछ रसायन एक सप्ताह, कुछ दो सप्ताह और कुछ तीन या चार सप्ताह तक कीटों को मारने की क्षमता रखते हैं। फसलों / भोज्य पदार्थों में कीटनाशी की मात्रा सहनशीलता सीमा से नीचे रखने के लिए हरेक कीटनाशी के लिए प्रतीक्षा अवधि निश्चित की जाती है। 'अंतिम बार कीटनाशी छिड़कने के बाद और फसल काटने के बीच के कम से कम अवकाश को प्रतीक्षा अवधि कहते हैं।'

पीड़क नाशकों का प्रयोग सावधानी पूर्वक जहरीलेपन के अनुसार करें। फल एवं सब्जियों में पीड़कनाशियों के प्रयोग के पश्चात, निम्नलिखित प्रतीक्षा अवधि के पश्चात उपयोग में लेना चाहिए। यहां कुछ प्रमुख पीड़कनाशियों के नाम एवं उनकी औसतन प्रतीक्षा अवधि दी जा रही है। इस प्रतीक्षा अवधि के पश्चात प्रयोग करने से मानव स्वस्थ्य पर दुष्प्रभाव कम होता है –

सारणी–

पीड़कनाशियों के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि

क्र.सं.	रसायन का नाम		प्रतीक्षा अवधि
1.	इण्डोसल्फान	35 EC	10–12 दिन
2.	लिण्डेन		9 दिन
3.	मोनोक्रोटोफॉस	36 SL	10 दिन
4.	मेलाथियॉन	50 EC	5 दिन
5.	मिथाईल पैराथियॉन		10 दिन
6.	साइपरमेथ्रीन	25 EC	4 दिन
7.	फैनवलरेट	20 EC	9 दिन
8.	डाइमेथोएट	30 EC	15 दिन
9.	डाइक्लोरोवास	76 EC	7 दिन
10.	क्यूनॉलफॉस	25 EC	15 दिन
11.	एल्ड्रिन		10–20 दिन
12.	डाइएल्ड्रिन		20–30 दिन
13.	कार्बोरिल		8–10 दिन
14.	डी.डी.टी.		10–20 दिन
15.	डायजीनोन		12–50 दिन
16.	हेप्टाक्लोर		5–7 दिन
17.	फॉस्फोमिडोन		20–30 दिन
18.	फोरेट		25–30 दिन

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. किसी विषय के क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।
2. द्रव्य की संरचना तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों के अनुसंधान एवं सुव्यवस्थित ज्ञान को रसायन विज्ञान कहते हैं।
3. कृषि रसायन विज्ञान, रसायनिक विज्ञान की वह शाखा है जिसमें कृषि रसायनों, पीड़कनाशियों के विभिन्न गुणों, वर्गीकरण, संघटन, रसायनों का मृदा एवं पौधों में होने वाली क्रियाओं एवं अभिक्रियाओं का सुव्यवस्थित अध्ययन किया जाता है।
4. खेती में प्रयोग हो रहे कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से प्राकृतिक संसाधनों– भूमिगत जल, सतहीजल, मृदा, जीव–जन्तुओं और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, इसे प्रदूषण कहते हैं।
5. वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ताप प्रदूषण, भूमि प्रदूषण – पर्यावरणीय प्रदूषण के मुख्य प्रकार है।
6. कृषि में रासायनिक उर्वरकों एवं नाशी रसायनों द्वारा प्रदूषण सर्वाधिक होता है।
7. मानव शरीर में नाशी रसायनों के संचयन से कैंसर, सिरदर्द, चर्मरोग, एलर्जी, अन्धापन, आमाशय के रोग, यकृतरोग, कोलेस्ट्रोल इत्यादि बीमारियाँ होती है।
8. केन्द्रीय जल स्वास्थ्य इंजिनियरिंग अनुसंधान संस्थान के

अनुसार भारत में प्रति एक लाख व्यक्तियों में से 60 व्यक्तियों की मृत्यु प्रदूषित जल से फैलने वाले रोग टायफाइड, पेचिश, पीलिया से होती है।

9. कृषि रसायनों के सावधानीपूर्वक संतुलित उर्वरक, पौध संरक्षण मे समन्वित कीट प्रबन्धन, जैविक खाद का प्रयोग कर पर्यावरणीय प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

10. नाशी रसायनों के डिब्बों पर लाल रंग अत्यधिक जहरीला, पीला रंग अधिक जहरीला, नीला रंग मध्यम जहरीला, हरा रंग कम जहरीला प्रदर्शित करता है।

11. सब्जियों का प्रयोग कीटनाशी रसायनों की प्रतिक्षा अवधि के पश्चात् ही करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. किसी विषय के क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित ज्ञान को कहते हैं–
   (अ) विज्ञान (ब) सामान्य ज्ञान
   (स) गणित (द) अंग्रेजी
2. जिप्सम का उपयोग भूमि सुधार में किया जाता है–
   (अ) लवणीय (ब) क्षारीय
   (स) अम्लीय (द) कोई नहीं
3. फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों से फसलें फॉस्फोरस का उपयोग कर पाती हैं–
   (अ) 5–10 प्रतिशत (ब) 5–20 प्रतिशत
   (स) 5–30 प्रतिशत (द) 5–40 प्रतिशत
4. कृषि रसायनों से जल प्रदूषित होता है–
   (अ) वर्षा जल के साथ बहकर आने से
   (ब) अपक्षालन से
   (स) औद्योगिक संस्थानों के बहिःस्राव से
   (द) उपर्युक्त सभी से
5. सर्वाधिक जहरीले कृषि रसायनों के डिब्बों पर चेतावनी अंकित होती है–
   (अ) लाल रंग से (ब) पीले रंग से
   (स) नीले रंग से (द) हरे रंग से
6. संतुलित वातावरण में ऑक्सीजन की मात्रा होती है–
   (अ) 78 प्रतिशत (ब) 21 प्रतिशत
   (स) 16 प्रतिशत (द) 0.3 प्रतिशत
7. निम्न में से कौनसा मानवजन्य प्रदूषण नहीं है–
   (अ) जल प्रदूषण (ब) ध्वनि प्रदूषण
   (स) सामाजिक प्रदूषण (द) औद्योगिक प्रदूषण
8. जल प्रदूषण से जल में परिवर्तन होता है–
   (अ) जल के भौतिक गुणों में
   (ब) जल के रासायनिक गुणों में
   (स) जल के जैविक गुणों (द) इनमें सभी
9. वायु प्रदूषण का कारण है–
   (अ) वाहनों से उत्सर्जित गैस
   (ब) औद्योगिक कारखानों से उत्सर्जित गैस
   (स) पटाखों से उत्सर्जित गैस
   (द) इनमें से सभी
10. वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव है–
    (अ) कैंसर (ब) टॉन्सिल रोग
    (स) एलर्जी (द) इनमें से सभी

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. जैविक कीटनाशक किसे कहते है ?
2. चूना से किस प्रकार की मृदाओं का सुधार किया जाता है ?
3. जहरीले कृषि रसायनों का मृदा के किन गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है ?
4. फसलें नाइट्रोजन का कितना प्रतिशत उपयोग कर पाती है ?
5. सिंगल सुपर फॉस्फेट उर्वरक में शीशा (Pb) एवं कैडमियम (Cd) की मात्रा पीपीएम में लिखिए।
6. फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों में पाये जाने वाले रेडियोएक्टिव पदार्थों के नाम लिखिए।
7. भारत में प्रति लाख व्यक्तियों में से कितने लोगों की मृत्यु प्रदूषित जल से जनित टाइफॉइड, पेचिश, पीलिया से होती है?
8. सबसे कम जहरीले कृषि रसायन के डिब्बे पर चेतावनी किस रंग से अंकित होती है ?
9. नाशी रसायनों के स्थान पर किस प्रकार के कीटनाशी रसायनों का प्रयोग करना चाहिए ?
10. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस. एल. के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. कीटनाशक की प्रतीक्षा अवधि की परिभाषा लिखिए।
2. कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग का प्रतिकूल प्रभाव

किन–2 प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ रहा है ?

3. कृषि रसायनों का मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव लिखिए।
4. कृषि रसायनों के प्रदूषण से बचाव हेतु उर्वरक सम्बन्धी उपाय लिखिए।
5. कृषि रसायनों से बचाव हेतु भूमि प्रबन्धकीय सावधानियाँ लिखिए।
6. नाशकीय कृषि रसायनों के प्रतिकूल प्रभाव से बचाव के उपाय लिखिए।
7. नाइट्रेट वाले पदार्थ किस प्रकार प्रदूषण फैलाते हैं ?
8. जलाशयों का प्रदूषण किस प्रकार होता है?
9. रासायनिक उर्वरकों से भारी तत्त्व संचयन के प्रभाव को समझाइये।
10. पीड़कनाशकों के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि को तालिका बनाकर लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. उर्वरकों द्वारा होने वाले प्रदूषण को विस्तार से समझाइये।
2. उर्वरकों के दुष्प्रभाव से बचाव हेतु विभिन्न उपायों का वर्णन कीजिए।
3. नाशी रसायनों द्वारा होने वाले प्रदूषण को विस्तार से समझाइये।
4. प्रदूषित जल के हानिकारक तत्त्व, स्रोत एवं सम्भावित रोग की तालिका बनाकर समझाइये।
5. जहरीलेपन के अनुसार कृषि रसायनों की वर्गीकरण तालिका उदाहरण सहित बनाइये।

उत्तरमाला–

1. (अ) 2.(ब) 3.(स) 4.(द) 5.(अ)
6. (ब) 7. (अ) 8. (द) 9. (द) 10. (द)

अध्याय – 10

जैव रसायन
(BIO CHEMISTRY)

जैवरसायन अर्थात् बायोकेमेस्ट्री दो शब्दों से मिलकर बना है: जैव (बायो) एवं रसायन (कैमेस्ट्री), विज्ञान की वह शाखा जिसमें सजीवों (पादप एवं जन्तु) में होने वाली जैविक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता हैं। विज्ञान की इस शाखा का नाम जीवरसायन (बायोकैमेस्ट्री), कार्ल न्यूबर्ग (Karl Neuberg) ने 1903 में दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कृषि एवं आयुर्विज्ञान की समस्याओं को कार्बनिक रसायन से समबद्ध किया गया, तब जैवरसायन का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण हो गया। अनुसंधान से परिणाम आया कि सभी कोशिकाओं में कई तरह की उपापचयी क्रियाएं होती हैं और जटिल जैविक यौगिक, सरल अणुओं से बनते हैं।

प्रत्येक सजीव की जैविक संरचना का आधार कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा आदि जैविक अणु है। सभी सजीवों (पादप/जन्तु) को अपनी वृद्धि, मरम्मत एवं सामान्य क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जो कि इन जैविक अणुओं यथा कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा आदि से प्राप्त होती है।

1. कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates)

यह एक लैटिन शब्द है जो कि कार्बो अर्थात कार्बन अवयव एवं हाइड्रेट अर्थात पानी के संयोग से बना यौगिक होता है, अधिकतर कार्बोहाइड्रेट का सामान्य सूत्र $C_x(H_2O)_y$ है, यहाँ $X \geq 3$ है। कुछ यौगिकों में कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन का अनुपात प्रचलित सूत्र से थोड़ा निम्न हैं और उनमें नाइट्रोजन एवं सल्फर तत्व भी पाया जाता है तथा उनमें कार्बोहाइड्रेट के सभी गुण होते हैं।

कार्बोहाइड्रेट का वैज्ञानिक रूप इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है– ''पॉली हाइड्रिक (एक से अधिक -OH समूह वाले) एल्डिहाइड या कीटोन अथवा वह पदार्थ जो जल अपघटन होने पर इन यौगिकों को उत्पन्न करते हैं, कार्बोहाइड्रेट कहलाते हैं।''

कार्बोहाइड्रेट्स को तीन मुख्य वर्गों में विभाजन किया गया है:–

1. मोनोसैकेराइड्स (Monosaccharides),
2. ओलिगोसैकेराइड्स (Oligosaccharides) एवं
3. पॉलीसैकेराइड्स (Polysaccharides)।

1. मोनोसैकेराइड्स (Monosaccharides) : मोनो (अर्थात एकल) सैकेराइड्स (शक्रा), वे सरलतम शक्राएँ जिन्हें जल अपघटन (Hydrolysis) द्वारा और सरल रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इनका सामान्य सूत्र $(CH_2O)_n$ है। इनके नाम के अंत में 'ओज' (-ose) अनुलग्न लगता है, कार्बन परमाणुओं की संख्या के अनुसार इनका नाम ट्राइओज (तीन कार्बन), टेट्रोस (चार कार्बन), पेन्टोस (पाँच कार्बन) एवं हैक्सोस (छह कार्बन), सबसे सरलतम मोनोसैकेराइड्स– ग्लिसरल्डीहाइड एवं डाई–हाइड्रोक्सी एसीटोन अणु हैं जिनमें तीन कार्बन परमाणु होते हैं।

इरिथ्रोस (Erythrose) एवं इरिथ्रुलोस (Erythrouluse) में चार कार्बन परमाणु होते हैं। राइबोज़ एवं डी ऑक्सीराइबोज़ जो कि न्यूक्लिक अम्ल के घटक हैं, में पाँच कार्बन परमाणु होते हैं। सर्वाधिक महत्व की शक्राएँ छः कार्बन युक्त : ग्लुकोज, फ्रक्टोज़ एवं गैलेक्टोग हैं, इनका रासायनिक सूत्र $C_6H_{12}O_6$ हैं। ग्लुकोज़ एवं गैलेक्टोज़ में एल्डिहाइड समूह होता है जबकि फ्रक्टोज में कीटोन समूह होता है।

2. ऑलिगोसैकेराइड्स (Oligosaccharides) : ओलिगो (अर्थात a few = कुछ) सैकेराइड्स (अर्थात शक्राएँ) में, 2 से 10 तक मोनोसैकेराइड के अणु होते हैं। ये वे शक्राएँ हैं जो

जल अपघटित होकर कर दो या अधिक परन्तु 10 से कम सरलतम शक्राओं को उत्पन्न करती है, ऑलिगोसैकेराइड्स कहलाते हैं।

इस वर्ग में मोनोसैकेराइड्स की संख्या के आधार पर डाई– सैकेराइड्स (सूक्रोज, लैक्टोज माल्टोज), ट्राईसैकेराइड्स (रैफिनोज़), टेट्रासैकेराइड (स्टेकियोज), पैन्टासैकेराइड (वर्बेसकोज) आदि, प्रातिक रूप से पौधों में पाये जाते हैं। इस वर्ग में डाईसैकेराइड्स सबसे महत्वपूर्ण हैं, जिनका सामान्य सूत्र $C_{12}H_{22}O_{11}$ है, जो कि दो मोनोसैकेराइड्स के अणु के संयोजन से बनता है। इनमें एक अणु ग्लुकोज़ का होता है जबकि दूसरा अणु पैन्टोज़ अथवा हैक्सोज़ हो सकता है।

सूक्रोज़ जिसे सामान्य शर्करा कहते हैं, इसमें एक अणु ग्लूकोज़ एवं दूसरा फ्रक्टोज होता है। यह मुख्यतः गन्ने एवं चुकंदर में पायी जाती है। लैक्टोज़ को दुग्ध शर्करा कहते हैं इसमें ग्लूकोज़ के साथ गैलेक्टोज़ इकाई का संयोजन होता है। तीसरी मुख्य डाईसैकेराइड माल्टोस होता है जो ग्लुकोज़ के दो अणुओं से मिलकर बना होता है। दो मोनो सैकेराइड्स के मध्य के बन्ध को ग्लाइकोसाइडिक बन्ध कहते हैं।

3. पॉलीसैकेराइड्स (Polysaccharides) : मोनोसैकेराइड्स अथवा ऑलिगोसैकेराइड्स के ऐसे बहुलक जिनके अणुभार बहुत अधिक होते हैं, पॉलीसैकेराइड्स कहलाते हैं। ये अक्रिस्टलीय, स्वादहीन तथा जल में अविलेय होते हैं, अतः इन्हें अशर्करा (Non-sugar) भी कहते हैं। स्टार्च, सेलूलोन, ग्लाइकोजन आदि साधारण पॉलीसैकेराइड होते हैं, जबकि पैक्टिन, लिग्निन, हेमीसेल्यूलोज आदि जटिल पॉलीसैकेराइड्स हैं।

पॉलीसैकेराइड्स का सामान्य सूत्र $(C_6H_{10}O_5)_n$ है जहाँ 'n' का मान अज्ञात है। पॉलीसैकेराइड्स, मोनोसैकेराइड्स के उच्च बहुलक होते हैं। सासायनिक रूप में पॉलीसैकेराइड्स, साधारण शक्राओं के ऐनहाइड्राइड्स हैं तथा तनु अम्लों के साथ गर्म करने से जल अपघटित होकर शक्राएँ देते हैं। सैल्यूलोस, प्रति में सर्वाधिक मिलने वाला कार्बनिक पदार्थ है, यह सभी पेड़ पौधों की कोशिका भित्ती का मुख्य अवयव है।

इसके मुख्य स्रोत लकड़ी, जूट, पटसन, रूई आदि है, सन, पटसन एवं कपास में 97–99 प्रतिशत तक तथा अनाजों के भूसों में 30–43 प्रतिशत तक सैल्यूलोज होता है, कपास अर्थात रूई लगभग शुद्ध सैल्यूलोस होता है। स्टार्च को एमाइलम (Amylum) भी कहते हैं, स्टार्च वनस्पतियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और पौधों का सुरक्षित खाना बतलाया गया है। आलू, चावल, सभी अनाज, शकरकन्द, अरारोट, साबूदाना आदि सभी भोज्य पदार्थ स्टार्च के मुख्य स्त्रोत हैं। आलू में 15–20 प्रतिशत, गेहूँ में 60–70 प्रतिशत, मक्का में 65–70 प्रतिशत तथा चावल में 75–80 प्रतिशत स्टार्च होता है।

ग्लाइकोजन, सभी जन्तु कोशिकाओं, ऊत्तकों, यकृत तथा माँसपेशियों के मुख्य रूप से संचित कार्बोहाइड्रेट्स के रूप में मिलता है, इसलिए इसे जन्तु स्टार्च या यकृत स्टार्च भी कहते हैं। यह माँसपेशियों की अपेक्षा यकृत में अधिक मिलता है। माँस पेशियों के सिकुड़ने तथा फैलने के समय संचित ग्लाइकोजन शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। निराहार अथवा भूख के समय इसकी मात्रा कम हो जाती है।

आवश्यकतानुसार यकृत का ग्लाइकोजन शीघ्रता से ग्लूकोस में परिवर्तित होकर रूधिर धारा के द्वारा ऊत्तकों में पहुँच जाता है। इनूलिन, कम्पोजिटी कुल के अनेक पौधों, प्याज, लहसुन आदि में पाया जाता है, यह फ्रक्टोस का बहुलक है। इनूलिनेस एंजाइम अथवा तनु अम्लों द्वारा पूर्णतः जल अपघटित होकर फ्रक्टोस देता है, इससे फ्रक्टोस का उत्पादन व्यावसायिक पैमाने पर किया जाता है।

उपरोक्त पॉलीसैकेराइड्स को सरल–पॉलीसैकेराइड्स कहते हैं, कारण कि यह लगभग एक ही तरह की शर्करा के बहुलक होते हैं। जटिल–पॉलीसैकेराइड्स, वे पॉलीसैकेराइड्स हैं जिनके अणुओं में अन्य अणु भी मिलते हैं, जैसे–1. हैमीसेल्यूलोज – यह पौधों की कोशिका भित्ति में लिग्निन के साथ संयुक्त रहता है, 2. लिग्निन – यह पौधे के रेशेदार भागों में सैल्यूलोज के साथ मिश्रित रूप में पाया जाता है, 3. पेक्टिन – मुख्यतः फलों में पाये जाते हैं तथा उनको सुरक्षित रखते हैं, इसका उपयोग जैम, जैली आदि बनाने में मुख्य घटक के रूप में होता है।

कार्बोहाइड्रेट्स के जैविक कार्य (Biological Functions of Carbohydrates) :

ये एक महत्वपूर्ण जैव अणु हैं तथा मनुष्य के भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। इनके मुख्य जैविक कार्य निम्नलिखित हैं–

1. शरीर को ऊष्मा एवं ऊर्जा प्रदान करना।
2. कोशिका झिल्ली का निर्माण करना।
3. पादपों के कंकाल का निर्माण करना।

2. प्रोटीन (Protein) :

प्रोटीन, ऐमीनो अम्लों के उच्च अणुभार वाले जटिल जैवबहुलक हैं, ये सभी जीवित कोशिका में पाये जाते हैं। प्रोटीन नाम ग्रीक शब्द प्रोटियॉस (Proteios) से लिया गया है जिसका अर्थ होता है प्राथमिक महत्व (Prime importance) क्योंकि प्रोटीन शरीर की वृद्धि एवं अनुरक्षण के लिए अति आवश्यक है अर्थात् ये जीवन के यौगिक है। वनस्पतियों की तुलना में जीव

जन्तुओं में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। जीवधारियों के बाल, त्वचा, नाखून, हीमोग्लोबिन, मांसपेशियाँ, एन्जाइम, ऐन्टिबॉडी, कुछ हार्मोन्स आदि प्रोटीन के बने होते हैं।

प्रोटीन का संघटन (Composition of Protein) :

सभी प्रोटीन नाइट्रोजन युक्त जटिल कार्बनिक यौगिक हैं जिनमें नाइट्रोजन के अतिरिक्त कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, सल्फर तत्व उपस्थित होते हैं।

कुछ प्रोटीन में इनके अतिरिक्त फास्फोरस, आयोडीन तथा कुछ धातु जैसे लोहा, तांबा, जिंक और मैंगनीज भी पाये जाते हैं, स्रोत के आधार पर तत्वों का प्रतिशत बदलता रहता है। प्रोटीन का आंशिक जल अपघटन कराने पर भिन्न–भिन्न अणुभार वाले पेप्टाइड प्राप्त होते हैं जो पूर्ण जल अपघटन होने पर एमीनो अम्ल देते हैं –

$$\text{प्रोटीन} \xrightarrow{\text{जल अपघटन}} \text{पेप्टाइड} \xrightarrow{\text{जल अपघटन}} \text{एमीनो अम्ल}$$

अतः प्रोटीन वास्तव में एमीनो अम्लों से निर्मित पॉलीपेप्टाइड होते हैं, जिनका अणुभार 10000 से अधिक होता है, सभी प्रोटीन 20 (बीस) – ऐमीनो अम्लों से बने होते हैं।

ऐमीनो अम्ल (Amino Acids) :

वे कार्बनिक यौगिक जिनके अणु में ऐमीनो (-NH_2) तथा कार्बोक्सिलिक (-COOH) दोनों समूह पाये जाते हैं, ऐमीनो अम्ल कहलाते हैं।

ऐमीनो अम्लों का नामकरण (Nomenclature of Amino Acids) :

ऐमीनो अम्लों को रूढ़ नाम (Trivial Name) से ही जाना जाता है, जो उसके गुण या प्राप्ति के स्रोत को दर्शाता है। जैसे H_2NCH_2COOH को 2–ऐमीनो ऐथेनोइक अम्ल के स्थान पर ग्लाइसीन से जाना जाता है क्योंकि यह मीठा होता है।

ऐमीनो अम्लों को सामान्यतः तीन अक्षर या कभी–कभी एक अक्षर के संकेत द्वारा संक्षेप में व्यक्त करते हैं। महत्वपूर्ण ऐमीनों अम्लों के संरचना तथा संक्षिप्त नाम को नीचे सारणी में दिया गया है –

क्र.सं.	नाम	संक्षिप्त नाम
1.	ग्लाइसीन	Gly (G)
2.	ऐलेनीन	Ala (A)
3.	सिरीन	Ser (S)
4.	थ्रीओनीन	Thr (T)
5.	वैलीन	Val (V)
6.	ल्यूसीन	Leu (L)
7.	आइसोल्यूसीन	Ile (I)
8.	ऐस्पार्टिक अम्ल	Asp (D)
9.	ग्लुटेमिक अम्ल	Glu (E)
10.	ग्लुटेमीन	Gln (Q)
11.	ऐस्पेरेजीन	Asn (N)
12.	आर्जीनीन	Arg (R)
13.	लाइसीन	Lys (K)
14.	सिस्टीन	Cys (C)
15.	मिथिऑनीन	Met (M)
16.	फेनिल ऐलेनीन	Phe (F)
17.	टाइरोसीन	Tyr (y)
18.	ट्रिप्टोफेन	Trp (W)
19.	हिस्टीडीन	His (H)
20.	प्रोलीन	Pro (P)

अनिवार्य या आवश्यक ऐमीनो अम्ल (Essential Amino Acids) :

कुल मिलाकर 20 ऐसे ज्ञात एमीनो अम्ल हैं जो अनन्त प्रकार से संयुक्त होकर हजारों किस्मों के प्रोटीन अणु का निर्माण करते हैं। शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए कई हजार किस्मों के प्रोटीनों की आवश्यकता होती है। इन प्रोटीन अणुओं में पाये जाने वाले एमीनो अम्लों का संश्लेषण समस्त पेड़ पौधों तथा जीव जन्तुओं में होता है, लेकिन उच्च जाति के कुछ जन्तुओं तथा मनुष्यों में दस ऐसे ऐमीनों अम्लों का संश्लेषण नहीं हो पाता है अतः इन्हें बाहर से भोजन द्वारा लेना आवश्यक होता है। इन दस ऐमीनों अम्लों को आवश्यक ऐमीनों अम्ल कहते हैं।

इन ऐमीनों अम्लों की कमी से शरीर में कई व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, अतः इनकी पूर्ती के लिए हमें उन प्रोटीनों का सेवन करना चाहिए जिनमें इन ऐमीनों अम्लों की प्रचुर मात्रा हो। कुछ प्रोटीन जैसे केसीन (दुग्ध प्रोटीन) में सभी आवश्यक ऐमीनो अम्ल होते हैं, ये आवश्यक ऐमीनो अम्ल निम्न है :

1. ट्रिप्टोफेन, 2. वैलीन, 3. मिथिऑनीन, 4. आइसो–ल्यूसीन, 5. ल्यूसीन, 6. लाइसीन, 7. फेनिल ऐलेनीन, 8. आर्जिनीन, 9. थ्रीओनीन, 10. हिस्टीडीन।

इन्हें निम्नलिखित तरीके से आसानी से याद किया जा सकता है– TV MILL PATH

पॉलीपेप्टाइड एवं प्रोटीन (Polypeptide and Protein) :

पैप्टाइड में एक सिरे पर मुक्त कार्बोक्सिलिक तथा दूसरे सिरे पर मुक्त ऐमीनो समूह होता है अतः यह दोनों सिरों पर ऐमीनो अम्लों से फिर से क्रिया कर सकता है। इस प्रकार ऐमीनो अम्ल, पैप्टाइड बन्ध द्वारा जुड़ते जाते हैं। पैप्टाइड बन्धों द्वारा जुड़े ऐमीनो अम्लों की संख्या के आधार पर पैप्टाइडों को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीत किया गया है–

(1) डाइपैप्टाइड (Dipeptide) : जिनमें दो ऐमीनों अम्ल संयुक्त होते हैं।

(2) ट्राइपैप्टाइड (Tripeptide) : जिनमें तीन ऐमीनो अम्ल संयुक्त होते हैं।

(3) टेट्रापैप्टाइड (Tetrapeptide) : जिनमें चार ऐमीनो अम्ल संयुक्त होते हैं।

(4) पॉलीपैप्टाइड (Polypeptide) : जिनमें दस या अधिक ऐमीनो अम्ल संयुक्त होते हैं।

अतः दस या अधिक ऐमीनों अम्ल इकाइयों से बना हुआ पैप्टाइड, पॉलीपैप्टाइड कहलाता है। पॉलीपैप्टाइड का अणुभार 10000 या अधिक होने पर उसे प्रोटीन कहते हैं, अतः प्रोटीन वास्तव में उच्च अणुभार वाले पॉलीपैप्टाइड होते हैं जिनमें 100 या अधिक ऐमीनों अम्ल, परस्पर पेप्टाइड बन्ध से जुड़े रहते हैं–

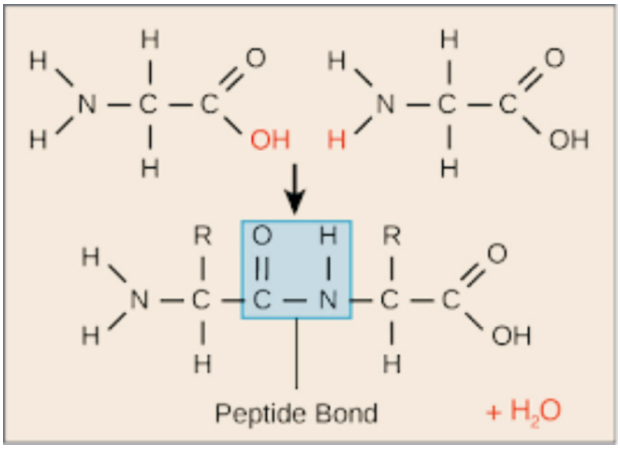

प्रोटीन्स के जैविक महत्व (Biological Importance of Proteins) :

कोशिकाओं के रचनात्मक अवयव : कई प्रोटीन्स जैविक पदार्थों की संरचना में विशेष हैं जैसे स्तनधारियों के बाल, नाखून आदि केरेटिन नामक प्रोटीन के बने होते हैं, संयोजीं उत्तकों में कोलेजन नामक प्रोटीन होता है, इसी तरह मांसपेशियां – मायोसिन नामक प्रोटीन की बनी होती है।

एंजाइम अर्थात जैव उत्प्रेरक के रूप में : लगभग सभी एंजाइम प्रोटीन के बने होते हैं, सजीवों में होने वाली सभी जैव रासायनिक अभिक्रियाओं में यह उत्प्रेरण का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

हॉर्मोन के रूप में : एंजाइम की तरह ही अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों द्वारा उत्पन्न होने वाले लगभग सभी हॉर्मोन भी प्रोटीन ही होते हैं – जैसे अग्नाशय से इन्सुलिन, थाईराइड ग्रंथि से थायरोक्सिन आदि।

ऑक्सीजन वाहक के रूप में : सभी प्राणियों द्वारा श्वसन में ली गई ऑक्सीजन को रुधिर में मौजूद हिमोग्लोबिन नामक प्रोटीन, वाहक का महत्वपूर्ण कार्य करता है, इसी कारण रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी होने पर साँस फूलने लगती है।

शरीर की सुरक्षा : शरीर में उपस्थित इम्मुनो–ग्लोबिन्स (Immunoglobins) नामक एंटीबाडी, जो सम्पूर्ण प्रोटीन हैं, सूक्ष्मजीवों के संक्रमण से हमारी रक्षा करती हैं।

शरीर की वृद्धि तथा मरम्मत कार्य : शरीर का सम्पूर्ण बाह्य आवरण तथा मांसपेशियां प्रोटीन की बनी होती हैं और यह आकार में बढ़ती रहती हैं, आतंरिक उपापचयी क्रियाओं के कारण ऊतक प्रोटीन का क्षय होता रहता है इनकी मरम्मत एमीनो अम्लों द्वारा ही होती है।

3. एन्जाइम्स (Enzymes) :

एन्जाइम्स प्राकृतिक, सरल या संयुक्त प्रोटीन होते हैं, जो जैव रसायनिक क्रियाओं में विशिष्ट उत्प्रेरक का कार्य करते हैं, कुछ एन्जाइम प्रोटीन नहीं भी होते हैं। सर्वप्रथम एन्जाइम को खमीर (Yeast) से प्राप्त किया गया था, इसलिए इन्हें एन्जाइम नाम दिया गया क्योंकि ग्रीक भाषा में En का अर्थ in तथा Zymase का अर्थ Yeast होता है।

अधिकांशतः एन्जाइम गोलाकार (Globular) प्रोटीन होते हैं। अब तक लगभग 3000 एन्जाइमों की पहचान की जा चुकी है, जिसमें से लगभग 300 का व्यापारिक उत्पादन किया जा चुका है।

एन्जाइमों का वर्गीकरण एवं नामकरण (Classification and Nomenclature of Enzymes) :

अन्तर्राष्ट्रीय एन्जाइम आयोग ने एन्जाइमों को मुख्यतः निम्न 6 वर्गों में वर्गीत किया है –

सारणी : एन्जाइमों के प्रकार

क्र.सं.	एन्जाइम वर्ग	अभिक्रिया की प्रकृति
1.	ऑक्सीडो–रिडक्टेसेस (Oxido-reductases)	जैविक ऑक्सीकरण एवं अपचयन
2.	ट्रान्सफरेसेस (Transferases)	दो पदार्थों के मध्य समूह का विनिमय $AB + CD \rightarrow AC + BD$
3.	हाइड्रोलेसेस (Hydrolases)	जल अपघटन क्रिया $AB + H_2O \rightarrow A(OH) + HB$
4.	लाएसेस (Lyases)	जल अपघटन के अतिरिक्त किसी पदार्थ से समूह का हटना $AB \rightarrow A + B$
5.	आइसोमरेसेस (Isomerases)	समावयवीकरण अभिक्रिया
6.	लाइगेसेस (Ligases)	ATP के साथ युग्मन अभिक्रिया

सामान्यतः एन्जाइम का नाम लिखते समय सब्स्ट्रेट के नाम के अंत में अनुलग्न –ase जोड़ देते हैं। जैसे माल्टोस के जल अपघटन की क्रिया को उत्प्रेरित करने वाले एन्जाइम को माल्टेस (Maltase) कहते हैं।

सारणी : कुछ एन्जाइमों के कार्य

क्र.सं.	एन्जाइम	उद्गम स्थान	क्रियाधार	उत्पाद
1.	टायलिन	मुँह–लार	पॉलीसैकेराइड	माल्टोस
2.	माल्टेस	आँत्र रस	माल्टोस	ग्लूकोस
3.	एमाइलोप्सिन	अग्नाशयी रस	पॉलीसैकेराइड	माल्टोस
4.	पेप्सिन	उदर–जठर रस	प्रोटीन	पॉलीपेप्टाइड
5.	ट्रिप्सिन	अग्नाशयी रस	प्रोटीन एवं पॉली पेप्टाइड	पेप्टाइड
6.	लाइपेस	उदर–जठर रस	वसा	ग्लिसरॉल एवं वसीय अम्ल
7.	डी ऑक्सीराइबो न्यूक्लिऐस तथा राइबोन्यूक्लिऐस	आँत–अग्नाशयी रस	DNA तथा RNA	ओलिगो तथा मोनो न्यूक्लिओटाइड

एन्जाइम के गुण धर्म (Characterstics of Engymes) :

एन्जाइम के कुछ मुख्य गुणधर्म निम्न हैं–

(i) ये रंगहीन ठोस पदार्थ है तथा जल एवं लवणों के तनु विलयनों में विलेय होते हैं।

(ii) इनका आण्विक द्रव्यमान अधिक होता है।

(iii) इनकी प्रति कोलॉइडी होती है।

(iv) ये शरीर तापमान तथा सामान्य pH (6-8) पर अधिक सक्रिय होते हैं।

(v) ये अतिविशिष्ट होते हैं अर्थात् एक एन्जाइम किसी एक विशेष प्रकार की अभिक्रिया को ही उत्प्रेरित कर सकता है।

(vi) इनकी सक्रियता कुछ कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थों द्वारा नियमित या कम की जा सकती है।

(vii) इनकी अत्यन्त कम मात्रा ही अभिक्रिया के उत्प्रेरण के लिए पर्याप्त होती है।

(viii) इनकी उपस्थिति से अभिक्रिया की दर में 10^{20} गुणा तक वृद्धि हो जाती है।

एन्जाइम क्रिया की क्रियाविधि (Mechanism of Enzyme Action) :

एन्जाइम जैव रसायनिक अभिक्रिया के पथ को बदल देते हैं जिसमें अत्यन्न कम सक्रियण ऊर्जा पर संक्रमण अवस्था प्राप्त हो जाती है, इसीलिए वेग बढ़ जाता है। एन्जाइम में सक्रिय केन्द्र होता है जिस पर सब्स्ट्रेट से क्रिया सम्पन्न होती है। एन्जाइम की क्रिया निम्न चार पदों में सम्पन्न होती है –

(i) एन्जाइम तथा सब्स्ट्रेट (क्रियाधार) की क्रिया से एन्जाइम सब्स्ट्रेट संकुल का बनना

$$E + S \rightarrow [ES]$$

(ii) इस संकुल का एन्जाइम–मध्यवर्ती संकुल में परिवर्तन

$$[ES] \rightarrow [EI]$$

(iii) इस संकुल का एन्जाइम–उत्पाद संकुल में परिवर्तन

$$[EI] \rightarrow [EP]$$

(iv) इस संकुल का एन्जाइम तथा उत्पाद में विघटन

$$[EP] \rightarrow E + P$$

जहाँ E = एन्जाइम, S = सब्स्ट्रेट, ES = एन्जाइम–सब्स्ट्रेट संकुल, EI = एन्जाइम–मध्यवर्ती संकुल, EP = एन्जाइम–उत्पाद संकुल, P = उत्पाद।

एन्जाइम्स की उपयोगिता (Application of Enzymes) :

एन्जाइम मुख्यतः पाचन की क्रिया में सहायक होते है। इसके अतिरिक्त एन्जाइम को रोगों की रोकथाम, जैसे एल्बिनिज्म (Albinism) रोग, जो एन्जाइम ट्रायोसिनेज (Triosinase) की कमी से होता है, को भोजन के साथ एन्जाइम की पूर्ति करके रोका जा सकता है। इनको रोगों के उपचार में भी प्रयुक्त किया जाता है जैसे हृदय रोग के उपचार में स्ट्रेप्टोकाइनेज एन्जाइम को रक्त के थक्के को विलेय करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इन्हें उद्योगों में मदिरा, वाइन, व्हिस्की, चमड़े तथा खाद्य पदार्थों के परिरक्षण में भी प्रयुक्त करते हैं।

4. न्यूक्लिक अम्ल (Nucleic Acids) :

समस्त जीवित कोशिकाओं के नाभिकों में पाये जाने वाले न्यूक्लिओं–प्रोटीन में न्यूक्लिक अम्ल, प्रोस्थेटिक समूह (Prosthetic group) के रूप में होते हैं। ये जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि कोशिकाओं में पाये जाने वाले गुणसूत्र (Chromosomes) में आनुवंशिक कूट (Genetic Code) धारण करने वाले जीन (Genes), न्यूक्लिक अम्ल से बने होते हैं। विभिन्न कोशिकाओं में प्रोटीनों का संश्लेषण भी न्यूक्लिक अम्लों द्वारा नियन्त्रित होता है।

न्यूक्लिक अम्लों के प्रकार (Types of Nucleic Acids) :

न्यूक्लिक अम्ल दो प्रकार के होते हैं–

1. राइबो न्यूक्लिक अम्ल (RNA - आर.एन.ए.) तथा
2. डीऑक्सी राइबो न्यूक्लिक अम्ल (DNA - डी.एन.ए.)

डी.एन.ए. मुख्यतः केन्द्रक में पाया जाता है तथा कुछ मात्रा में कोशिका द्रव्य में माइट्रोकाण्ड्रिया एवं क्लोरोप्लास्ट में पाया जाता है। आर.एन.ए. मुख्य रूप से कोशिका द्रव्य एवं अल्प मात्रा में केन्द्रक में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन – डी.एन.ए. और आर.एन.ए. (Chemical composition- DNA and RNA) :

न्यूक्लिक अम्लों का मन्द परिस्थितियों में जल अपघटन करने पर न्यूक्लिओटाइड देते हैं जो पुनः जल अपघटित होकर न्यूक्लिओसाइड तथा फॉस्फोरिक बनाते हैं। अकार्बनिक अम्लों की उपस्थिति में न्यूक्लिओसाइडों का जल अपघटन कराने पर शर्करा व कार्बनिक क्षार प्राप्त होता है, अतः न्यूक्लिक अम्लों के जल अपघटन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

न्यूक्लिक अम्ल → पॉली न्यूक्लिओटाइड

न्यूक्लिओटाइड → न्यूक्लिओसाइड तथा फॉस्फोरिक अम्ल

न्यूक्लिओसाइड → शर्करा तथा कार्बनिक क्षार

इस प्रकार न्यूक्लिक अम्लों के जल अपघटन से निम्न तीन प्रकार के यौगिक प्राप्त होते हैं अर्थात् न्यूक्लिक अम्लों के अवयव निम्नलिखित हैं :

(i) फास्फोरिक अम्ल (H_3PO_4)

(ii) शर्करा

(iii) कार्बनिक क्षार

(i) शर्करा (Sugar) :

न्यूक्लिक अम्लों में पाई जाने वाली शर्करा दो प्रकार की होती हैं : (i) D –राइबोज, (ii) D–डीऑक्सी राइबोज। जिन न्यूक्लिक अम्लों में शर्करा राइबोज पाई जाती है उन्हें

राइबोन्यूक्लिक अम्ल (RNA) कहते हैं तथा जिन न्यूक्लिक अम्लों में 2–डीऑक्सी राइबोस शर्करा पाई जाती है, उन्हें डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (DNA) कहा जाता है।

(ii) कार्बनिक क्षार (Organic base) :

न्यूक्लिक अम्लों में पाये जाने वाले कार्बनिक क्षार दो प्रकार के होते हैं–

(i) प्यूरीन (Purines) तथा

(ii) पिरिमिडीन (Pyrimidines)

प्यूरीन क्षारों में ऐडेनीन (Adenine=A) व ग्वानीन (Guanine=G) है तथा पिरिमिडीन क्षारों में साइटोसिन (Cytosine=C), थायमीन (Thymine=T) तथा यूरेसिल(Uracil=U) मुख्य हैं।

डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. दोनों ही न्यूक्लिक अम्लों में प्यूरीन क्षार के ऐडेसीन व ग्वानीन पाये जाते हैं। जबकि आर.एन.ए. में पिरीमिडीन क्षार के रूप में साइटोसीन व यूरेसिल तथा डी.एन.ए. में साइटोसीन एवं थायमीन पाया जाता है।

न्यूक्लिओसाइड तथा न्यूक्लिओटाइड (Nucleoside and Nueliotide) :

एक क्षार तथा शर्करा के संयोजन से बनी इकाई को न्यूक्लिओसाइड तथा क्षार–शर्करा और फास्फोरिक अम्ल के संयोजन से बने इकाई को न्यूक्लिओटाइड कहते हैं।

(i) न्यूक्लिओसाइड (Nucleoside) : एक क्षार तथा एक शर्करा अणु के संयोजित रूप को न्यूक्लिओसाइड कहते हैं। शर्करा में कार्बन परमाणुओं को क्षार से विभेद करने के लिए प्राइम जैसे 1', 2', 3' इत्यादि रूप में व्यक्त करते हैं।

एक न्यूक्लिओसाइड में शर्करा का कार्बन–1' (C - 1') पिरीमिडीन के नाइट्रोजन–1 (N - 1) के साथ तथा प्यूरीन के नाइट्रोजन–9 (N-9) के साथ जुड़ा रहता है। आर.एन.ए. तथा डी.एन.ए. प्रत्येक में चार–चार विभिन्न प्रकार के न्यूक्लिओसाइड होते हैं, जैसे राइबोस तथा ऐडेनीन के संयोजन से बने न्यूक्लिओसाइड को ऐडेनोसीन कहते हैं।

(ii) न्यूक्लिओटाइड (Nucleotide) : एक न्यूक्लिओसाइड के साथ फास्फोरिक अम्ल के एक अणु के संयोजन से एक न्यूक्लिओटाइड बनता है। फास्फोरिक अम्ल, शर्करा के C - 5' से अथवा C - 3' से संलग्न हो सकता है।

राइबोस शर्करा में फास्फोरिक अम्ल C - 2' से भी संलग्न हो सकता है। शर्करा में फास्फेट समूह के संलग्न स्थान के अनुसार ही इन न्यूक्लिओटाइडों की क्रमशः 5'P3'OH अथवा 3'P5'OH न्यूक्लिओटाइड कहा जाता है। न्यूक्लिओटाइडों को अंग्रेजी के तीन बड़े अक्षरों द्वारा व्यक्त करते हैं। जैसे ऐडेनोसिन तथा एक फास्फेटिक अणु के संयोजन के बने न्यूक्लिओटाइड को ऐडेनोसिन मोनो फास्फेट कहते हैं तथा इसे AMP से व्यक्त करते हैं।

(iii) पॉलीन्यूक्लिओटाइड (Polynucleotide) : न्यूक्लिओटाइड की बहुत सी इकाइयाँ परस्पर फास्फोडाइऐस्टर बन्धों द्वारा संयुक्त होकर बहुलक श्रृंखला पॉलीन्यूक्लिओटाइड का निर्माण करते हैं। ये पॉलीन्यूक्लिओटाइड ही न्यूक्लिक अम्ल हैं।

इन श्रृंखलाओं में दो न्यूक्लिओटाइड परस्पर शर्करा के C - 5' तथा C - 3' के द्वारा फास्फोडाइऐस्टर बन्ध द्वारा जुड़े रहते हैं। अतः श्रृंखला के एक सिरे पर फास्फेट C - 5' से जुड़ा रहता है और दूसरे 1 सिरे पर C - 3' से या इसके विपरीत एक पॉली न्यूक्लिओटाइड श्रृंखला है।

इस प्रकार न्यूक्लिओटाइड, न्यूक्लिक अम्लों के एकलक (Monomer) के साथ–साथ इमारती खण्ड (Building Blocks) भी कहलाते हैं।

न्यूक्लिक अम्लों में न्यूक्लिओटाइड फोस्फोडाइऐस्टर बन्ध द्वारा एक विशिष्ट क्रम में बन्धित होकर विभिन्न न्यूक्लिक अम्ल की एक लम्बी अशाखित श्रृंखला बनाते हैं जिसकी मेरूदण्ड में शर्करा व फास्फेट इकाई कार्बनिक क्षारों के साथ जुड़ी रहती है, जिसे निम्न संक्षिप्त रूप में व्यक्त करते हैं–

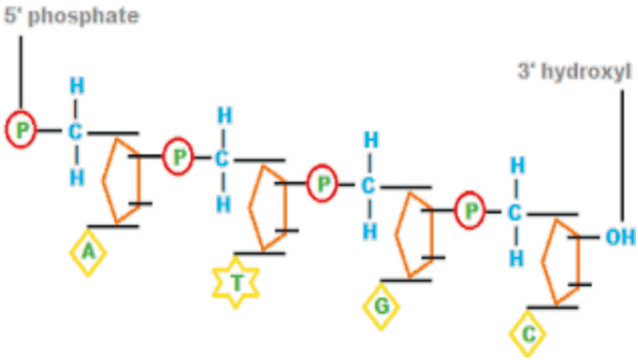

न्यूक्लिक अम्लों में शक्रा, फास्फेट तथा कार्बनिक क्षार जिस क्रम में जुड़े रहते हैं उसे न्यूक्लिक अम्ल की प्राथमिक संरचना कहते हैं।

डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. में अन्तर (Difference between DNA and RNA) :

क्र.सं.	डी.एन.ए.	आर.एन.ए.
1.	यह केन्द्रक में पाये जाने वाले क्रोमोसोम (गुणसूत्रों) में पाया जाता है।	यह मुख्यतः कोशिका द्रव्य में पाया जाता है।
2.	इसमें डीऑक्सी राइबोस शक्रा होती है।	इसमें राइबोस शक्रा होता है।
3.	डी.एन.ए. में क्षार ऐडेनीन, ग्वानीन, थायमीन तथा साइटोसीन भी पाये जाते हैं।	आर.एन.ए. में क्षार ऐडेनीन, ग्वानीन, यूरेसिल तथा साइटोसीन पाये जाते हैं।
4.	इसकी द्विकुण्डलित हेलिक्स संरचना होती है।	इसकी एक सूत्री कुण्डली संरचना होती है ।
5.	यह आनुवंशिक गुणों के स्थानान्तरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।	यह प्रोटीन संश्लेषण में मदद करता है।

5. लिपिड (Lipids) :

जैव कोशिकाओं में पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थ, जो स्पर्श में चिकने, जल में अविलेय तथा अध्रुवीय कार्बनिक विलायकों जैसे ईथर, क्लोरोफार्म तथा बैन्जीन में विलेय होते हैं, लिपिड कहलाते हैं।

लिपिड शब्द (Lipid) ग्रीक भाषा के शब्द lipos से लिया गया है जिसका अर्थ fat अर्थात वसा होता है। अतः इस वर्ग में वसा, तेल, मोम तथा सम्बन्धित पदार्थ आते हैं। ये भोजन के मुख्य घटक है तथा शरीर में ऊर्जा के मुख्य स्रोत होते हैं।

लिपिड का वर्गीकरण (Classification of Lipids) :

रासायनिक संघटन के आधार पर लिपिड को निम्न तीन वर्गों में बांटा गया है–(अ) सरल लिपिड (ब) संयुक्त लिपिड और (स) व्युत्पन्न लिपिड

(अ) सरल लिपिड या सम लिपिड (Simple Lipids or Homo Lipids) :

ये ऐल्कोहॉल के साथ वसीय अम्लों के ऐस्टर होते हैं, ये निम्न दो प्रकार के होते हैं– (i) प्रातिक वसा एवं तेल (ii) मोम

(i) प्रातिक वसा एवं तेल (Natural fats and oils) :

ये ग्लिसरॉल के वसीय अम्लों के ट्राइऐस्टर होते हैं। अतः इन्हें ट्राइग्लिसराइड भी कहते हैं। वसा ठोस तथा तेल द्रव अवस्था में होते हैं।

(ii) मोम (waxes) :

ये लम्बी श्रृंखला वाले मोनोहाइड्रिक ऐल्कोहॉलों तथा लम्बी श्रृंखला वाले वसीय अम्लों के एस्टर होते हैं। इनका गलनांक प्रातिक वसाओं से अधिक होता है, जैसे मधुमक्खी का मोम।

(ब) संयुक्त लिपिड या विषम लिपिड (Compound lipids or Hetero lipids) :

वे लिपिड जिनमें वसा अम्ल, वसा ऐल्कोहॉल के अतिरिक्त अन्य समूह भी पाये जाते हैं, संयुक्त लिपिड कहलाते हैं। इनके दो मुख्य वर्ग निम्न है–

(i) फास्फोलिपिड (ii) ग्लाइकोलिपिड

(i) फास्फोलिपिड (Phospholipids) : इनमें वसा अम्ल, ऐल्कोहॉल के अतिरिक्त फास्फोरिक अम्ल तथा नाइट्रोजनी कार्बनिक क्षार पाया जाता है। ये कोशिका झिल्ली के रचना में भाग लेते हैं।

(ii) ग्लाइको लिपिड (Glycolipids) : ये शक्रा के वसीय अम्लों के एस्टर होते हैं। इनमें नाइट्रोजनी क्षार भी पाया जा सकता है लेकिन फोस्फोरिक अम्ल नहीं पाया जाता है। ये मस्तिष्क, वृक्क, यत, श्वेत रक्त कोशिकाओं आदि में पाये जाते हैं।

(स) व्युत्पन्न लिपिड (Derived lipids) :

ये सरल तथा संयुक्त लिपिड के जल अपघटन उत्पाद होते हैं। इनमें वसा अम्ल एल्कोहॉल, मोनो तथा डाइग्लिसराइड, स्टेरॉयड, टर्पीन तथा कैरोटीनॉएड आदि सम्मिलित है।

सरल लिपिड की रासायनिक संरचना (Chemical Structure of Simple Lipids) :

(i) वसा एवं तेल :

ये ग्लिसरॉल के लम्बी श्रृंखला युक्त वसीय–अम्लों के

ट्राइग्लिसराइड होते हैं। वसा अम्ल में सम संख्या में कार्बन परमाणु होते हैं तथा यह संतृप्त अथवा असंतृप्त हो सकता है। संतृप्त अम्लों में पॉमिटिक अम्ल एवं स्टीयरिक अम्ल मुख्य हैं तथा असंतृप्त अम्लों में ओलिक अम्ल (एक–द्वि बंध), लिनोलिक (दो–द्वि बंध), लिनोलेनिक अम्ल (तीन–द्वि बंध) तथा अरैकीडोनिक अम्ल (चार–द्वि बंध) मुख्य हैं।

एक सामान्य ट्राइग्लिसराइड की निम्न सूत्र से व्यक्त करते हैं–

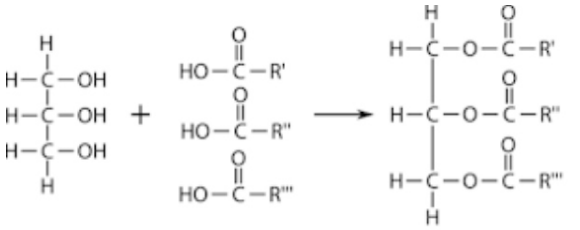

ट्राइग्लिसराइड में तीन अम्ल समान या भिन्न हो सकते हैं। वसा, संतृप्त वसा अम्लों के ट्राइग्लिसराइड होते हैं जबकि ट्राइग्लिसराइड (उदासीन वसा) तेल, असंतृप्त वसा अम्लों के ट्राइग्लिसराइड होते हैं।

संतृप्त अम्ल के टेडे–मेड़े (Zig - Zag) चतुष्फलक के कारण ये सघन संकुलित रहते हैं, इसलिए वसा ठोस अवस्था में पाये जाते हैं जबकि असंतृप्त अम्लों के समपक्ष विन्यास के कारण इनका सघन संकुलन नहीं हो पाता इसलिए ये तेल द्रव अवस्था में होते हैं।

(ii) मोम :

ये लम्बी श्रृंखला वाले संतृप्त तथा असंतृप्त अम्लों के लम्बी श्रृंखला वाले मोनो हाइड्रिक ऐल्कोहॉल के एस्टर होते हैं। अम्लों में कार्बन परमाणुओं की संख्या 14 से 36 तथा ऐल्कोहॉल में C_{16} से C_{36} तक होती है। अधिकांश मोम मिश्रित एस्टर होते हैं। ये रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय होते हैं। जैसे मधुमक्खी का मोम सेरिल ऐल्कोहॉल तथा माइरीस्टिक अम्ल का एस्टर होता है।

लिपिड के जैविक कार्य ((Biological Functions of Lipids) :

(i) वसा जन्तु तथा वनस्पति कोशिकाओं में संग्रहित भोजन के मुख्य अवयव होते हैं।

(ii) वसा कोशिका में ऊर्जा के मुख्य स्रोत होते हैं।

(iii) फास्फोलिपिड कोशिकाओं के संरचनात्मक घटक होते हैं।

(iv) कुछ लिपिड अनेक एन्जाइमों के सक्रियण के लिए आवश्यक होते हैं।

(v) ये हार्मोन्स संश्लेषण में भाग लेते हैं।

(vi) ये शरीर के लिए ऊष्मा रोधी तथा यांत्रिक सुरक्षा प्रदान करते हैं।

6. विटामिन (Vitamin) :

विटामिन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फंक (Funk) ने किया था जिसका अर्थ है Vital amines अर्थात् जीवित तन्त्रों में मिलने वाला ऐमीन। कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन के अतिरिक्त वे कार्बनिक पदार्थ, जो सामान्य स्वास्थ्य, वृद्धि तथा पोषण के लिए आवश्यक होते हैं, विटामिन कहलाते हैं।

विटामिन वास्तव में कोशिका निर्माण तथा ऊर्जा के स्रोत नहीं होते है बल्कि जैविक क्रियाओं में सहायक होते हैं तथा इनकी कमी से विशिष्ट रोग हो जाते हैं।

सभी विटामिन पेड़–पौधों तथा वनस्पतियों में संश्लेषित किये जाते हैं लेकिन मानव शरीर में अधिकांश विटामिन का संश्लेषण नहीं होता अतः विटामिन को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं।

अभी तक कुल बारह प्रकार के विटामिन ज्ञात किये जा चुके हैं। इनकी संरचना जटिल होती है अतः सुविधा के लिए इन्हें अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों A, B, C, D, E, K, आदि से व्यक्त करते हैं।

विटामिन का वर्गीकरण (Classification of Vitamins) :

विलेयता के आधार पर विटामिन को निम्नलिखित दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है–

(अ) वसा विलेय विटामिन

(ब) जल विलेय विटामिन

(अ) वसा विलेय विटामिन (Fat Soluble Vitamins) : ये विटामिन तेलीय पदार्थ होते हैं तथा जल में अविलेय होते हैं परन्तु वसा एवं तेल में विलेय होते हैं। विटामिन A, D, E एवं K इस प्रकार के विटामिन के उदाहरण हैं। लीवर कोशिकाओं में विटामिन A एवं D अधिकता में पाये जाते हैं।

(ब) जल विलेय विटामिन (Water Soluble Vitamins) : ये जल में विलेय होते है। इनमें विटामिन B कॉम्पलेक्स तथा विटामिन C आते हैं। कोशिकाओं में इस प्रकार के विटामिन का संग्रहण अत्यन्त कम मात्रा में होता है।

विटामिन का जैव–निकायों में कार्य (Functions of Vitamins in Biological System) :

विटामिन अत्यन्त कम मात्रा में जैव रसायनिक क्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं, अतः प्रत्येक विटामिन की प्रतिदिन की आवश्यक मात्रा अत्यन्त कम होती है तथा यह किसी व्यक्ति के

लिए निश्चित भी नहीं होती है। वयस्कों की तुलना में युवाओं को विटामिन की अधिक आवश्यकता होती है। प्रत्येक विटामिन एक निश्चित जैविक कार्य करता है। किसी विटामिन की कमी से मनुष्य में विशेष रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं जिसे भोजन के साथ लेने पर रोका जा सकता है। विभिन्न विटामिन को उनके स्रोत तथा उनकी कमी से होने वाले रोग (Deficiency Disease) को निम्न सारणी में दिया गया हैं–

क्र.सं.	विटामिन	मुख्य स्रोत	कार्य	अभाव रोग
1.	A (कैरोटिनॉइड)	दूध, अण्डा, मछली यकृत (लीवर), हरे तथा पीले साग–सब्जी आदि	नेत्र दृष्टि के लिए आवश्यक	रतौंधी (Night blindness)
2.	B_1 (थायमीन)	हरे साग सब्जी, दूध खमीर, अनाज आदि	तंत्रिका तंत्र का संचालन	बेरी–बेरी (Bari-Bari) तंत्रिका शोथ, भूख न लगना
3.	B_2 (रायबो फ्लेविन)	हरी सब्जियाँ, दूध, खमीर, यकृत (लीवर) एवं वृक्क	शरीर की वृद्धि	मुंह में छाले, होठ का फटना, डर्मेटाइटिस
4.	B_6 (पिरिडॉक्सिन)	अनाज, दालें, अण्डा माँस आदि	रक्त संचार	सूक्ष्मलोहित रक्ताल्पता (Microcytic-Anaemia)
5.	B_3 निकोटिनिक अम्ल / नायसिन	यीस्ट, दूध टमाटर हरी पत्तेदार सब्जियाँ	उपापचयी क्रियाओं में भूमिका	पेलेग्रा–3D :– 1. दस्त (Diarrhoea) 2. त्वचा शोथ (Dermatitis) 3. मनोभ्रंश (Dementia)
6.	B_{12} (सायनो कोबाल्मिन)	यकृत, मछली आदि	उपापचय की क्रिया	स्थूलाणुक रक्ताल्पता (Pernicious/Macrocytic anacmia) चेतनाशून्यता झनझनाहट, भूख की कमी, घबराहट आदि
7.	C (ऐस्कार्बिक अम्ल)	नींबू, संतरा, टमाटर आँवला, अमरूद, पत्ता गोभी आदि	घावों का भरना	स्कर्वी (Scurvy)
8.	H (बायोटिन)	दूध, खमीर, अण्डे वृक्क	उपापचय की क्रिया	बालों का गिरना, त्वचाशोध, पैरालाइसिस (लकवा)
9.	D (स्टेरॉल्स यौगिकों का समूह)	तेल, मक्खन, अण्डा मांस, मछली	अंधता को रोकना, वृद्धि करना, Ca एवं P का उपापचयन	बच्चों का सूखा रोग हड्डियों तथा दांतों की विकृति, कम वृद्धि
10.	E	पादप तेल (बिनौला सोयाबीन) गेहूँ के अंकुर	प्रतिऑक्सीकारक	जनन क्षमता में कमी (Sterillity) तथा कुपोषण
11.	K (दो यौगिकों का मिश्रण	पत्तेदार हरी सब्जियाँ, दालें	रक्त का थक्का बनना (प्रोथोम्बिन का संश्लेषण)	रक्त का थक्का न बनना

परिरक्षक (Preservatives):

खाद्य पदार्थों के मूल्य संवर्धन हेतु बनाये गये उत्पाद को सूक्ष्म जीवों (जीवाणु, विषाणु, कवक आदि) से सुरक्षित रखने हेतु प्रयोग किये जाने वाले प्रातिक एवं रासायनिक पदार्थों को परिरक्षक कहते हैं। परिरक्षक मिलाने से खाद्य पदार्थ के प्रातिक स्वाद एवं रंग में परिवर्तन नहीं होता है।

प्राकृतिक परिरक्षक (वनस्पति तेल, नमक, चीनी आदि) के अलावा कुछ रासायनिक परिरक्षकों का प्रयोग मूल्य संवर्धित उत्पाद को लम्बे समय तक उपयोग हेतु किया जाता है, इनमें निम्न गुण होने चाहिए : (i) कम मात्रा में क्रियाशील हो, (ii) दीर्घकालिक प्रभाव हो, (iii) खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता कम न करे एवं (iv) हानिकारक प्रभाव न हो।

परिरक्षकों को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त किया गया है: (i) प्राकृतिक परिरक्षक एवं (ii) रासायनिक परिरक्षक।

(i) प्राकृतिक परिरक्षक :

खाद्य पदार्थों (अचार, मुरब्बा आदि) को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने हेतु इनका प्रयोग किया जाता है। जैसे विभिन्न प्रकार के अचार हेतु वनस्पति तेल, नींबू के अचार हेतु नमक, हरी मिर्च के अचार हेतु नमक एवं नींबू के रस का प्रयोग किया जाता है।

(ii) रासायनिक परिरक्षक :

इस श्रेणी में अकार्बनिक एवं कार्बनिक रसायनों का प्रयोग किया जाता है। अकार्बनिक रसायन में सल्फर डाई ऑक्साइड तथा क्लोरीन गैस द्वारा कटे हुए फलों, माँस एवं मछली आदि को परिरक्षित किया जाता है।

अधिकांश परिरक्षक, कार्बनिक पदार्थ होते हैं, बहुत बड़े पैमाने पर खाद्य पदार्थों को मूल्य संवर्धन हेतु बनाये गये उत्पादों को परिरक्षित करने के लिए इन कार्बनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इनमें प्रमुख हैं– सिरका, लेक्टिक अम्ल, सोडियम बेन्जोएट, पोटेशियम बेन्जोएट, पैराबेन्स, सोर्बेट्स, प्रोपियोनेट्स आदि। इनमें से सोडियम बन्जोएट सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाला रासायनिक परिरक्षक है इसके 0.06 से 0.1 प्रतिशत की सांद्रता वाले विलयन का प्रयोग फलों के रस, जैम, जैली, मुरब्बा आदि में प्रयोग किया जाता है।

पैराबेन्स (एल्किल पैरा हाइड्रोक्सी बेन्जोएट) का प्रयोग टमाटर की चटनी, सॉस आदि के परिरक्षण में किया जाता है। सोर्बेट्स (सॉर्बिक अम्ल के लवण) का प्रयोग दूध एवं पनीर से बने खाद्य पदार्थों को परिरक्षित करने के लिए किया जाता है। प्रोपियोनेटस (प्रोपियोनिक अम्ल के एथिल व फेनिल एस्टर) का प्रयोग सूखे खाद्य पदार्थ– बिस्कुट, पापड़ आदि को परिरक्षित करने के लिए किया जाता है।

परिरक्षक	संरक्षित उत्पाद
वनस्पति तेल, नमक	अचार, मुरब्बा
चीनी	मिठाईयाँ (रसगुल्ला, गुलाबजामुन)
सिरका, लेक्टिक अम्ल	मुख्यतः तेल–रहित अचार
सोडियम / पोटेशियम बेनजोएट	फल रस, जैम, जैली
पैराबेन्स	टमाटर चटनी, सॉस
सोर्बेट्स	दूध एवं पनीर उत्पाद
प्रोपियोनेट्स	बिस्किट, पापड़ आदि

खाद्य रंग (Edible Colour):

वह प्राकृतिक एवं रासायनिक पदार्थ जिनका प्रयोग मूल्य–संर्वाधित खाद्य पदार्थ को अधिक सुंदर एवं रंगीन बनाने के लिए किया जाए– खाद्य रंग कहलाते हैं। खाद्य रंग नुकसान देह नहीं होना चाहिए साथ ही इसकी विशेषता हो कि यह खाद्य उत्पाद को दिये गये रंग को प्रातिक एवं स्थिर रखे।

विश्व खाद्य संगठन (W.H.O.) द्वारा मान्य रासायनिक खाद्य रंग मुख्य रूप से कॉलतार–रंजक (coal-tar dyes) हैं। मुख्य रूप से प्रयुक्त खाद्य रंग (ऐजोरंजक) लाल, नारंगी, हरा एवं नीला है। विभिन्न देशों में खाद्य पदार्थों में रंगों के प्रयोग हेतु विशेष नियम बने हुए हैं।

हमारे यहाँ सर्वाधिक प्रयुक्त नारंगी रंग है जो कि मिठाइयों को आक्रषक बनाने हेतु किया जाता है। प्राकृतिक खाद्य रंग के रूप में कैरोटीन, केसर (पीला) एवं चुकंदर रस (गहरा लाल) का प्रयोग किया जाता है। रासायनिक खाद्य रंगों का प्रयोग ठंडे पेय, डिब्बाबंद फल एवं सब्जी, बेकरी, माँस एवं मछली उत्पादों में किया जाता है। मुख्य रूप से प्रयुक्त खाद्य रंग हैं– टेट्राजीन, इरिथ्रोसिन, सनसेट यैलो, इन्डीगोकार्मिन आदि हैं।

यद्यपि औद्योगिक खाद्य संवर्धित उत्पादों में नियमानुसार खाद्य रंगों का सीमित प्रयोग किया जाता है, लेकिन आज लोभ वश मनुष्य ताजी सब्जियों एवं फलों को भी अधिक आकर्षक एवं रंगीन बनाने हेतु रासायनिक रंजकों का प्रयोग करता है, जो सेहत के लिए अत्यधिक नुकसानदेह हैं। अतः फल एवं सब्जियों को प्रयोग करने से पहले पानी से अच्छी तरह से धो लेना चाहिए।

मूल्य संबर्धित खाद्य उत्पादों–अचार, जैम, जैली, प्रातिक एवं संश्लेषित पेय पदार्थ में तो मानक खाद्य रंग उत्पाद को अधिक आकर्षक बनाने के लिए किया जाना एक सीमा तक उचित कहा जा सकता है, लेकिन दवा के रूप में मुख्य रूप से कैप्सूल को रंगीन बनाने के लिए इन रंगों के प्रयोग को प्रतिबंधित

किया जाना चाहिए, विदेशों में सभी केप्सूल का रंग सफेद ही होता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. कार्बोहाइड्रेट का सामान्य सूत्र $C_x(H_2O)_y$ है।
2. मोनोसैकेराइड्स का सामान्य सूत्र $(CH_2O)n$ है।
3. सर्वाधिक महत्व की शक्कराएँ छः–कार्बन युक्त ग्लुकोज, फ्रक्टोज एवं गैलेक्टोज हैं इनका रासायनिक सूत्र $(C_6H_{12}O_6)$ हैं।
4. डाईसैकेराइड्स (सूक्रोज, माल्टोज), ट्राईसैकेराइड्स (रैफिनोज), टेट्रासैकेराइड (स्टेकियोज), पैन्टासैकेराइड (वर्बेसकोज) प्राकृतिक रूप से पौधों में पाये जाते हैं।
5. दो मोनोसैकेराइड्स के मध्य के बन्ध को ग्लाइकोसाइडिक बन्ध कहते हैं।
6. स्टार्च, सैलूलोज, ग्लाइकोजन आदि साधारण पॉलीसैकेराइड हैं, जबकि सैल्यूलोज, हैमीसैल्यूलोज, पैक्टिन, लिग्निन आदि जटिल पॉलीसैकेराइड्स हैं।
7. जीवधारियों के बाल, त्वचा, नाखून, हीमोग्लोबिन, मांसपेशियाँ, एन्जाइम, ऐन्टिबॉडी, कुछ हार्मोन्स आदि प्रोटीन के बने होते हैं।
8. कुल मिलाकर बीस ज्ञात एमीनो अम्ल हैं, इनमे से दस आवश्यक ऐमीनो अम्ल है : TV MILL PARH
9. प्रोटीन वास्तव में एमीनो अम्लों से निर्मित पॉलीपेप्टाइड होते हैं।
10. पैप्टाइड में ऐमीनो अम्ल, पैप्टाइड बन्ध द्वारा जुड़े रहते हैं।
11. एन्जाइम प्रातिक सरल या संयुक्त प्रोटीन होते हैं जो जैव रसायनिक क्रियाओं में विशिष्ट उत्प्रेरक का कार्य करते हैं।
12. एक एन्जाइम किसी एक विशेष प्रकार की अभिक्रिया को ही उत्प्रेरित कर सकता है।
13. कोशिकाओं में पाये जाने वाले गुणसूत्र में आनुवंशिक कूट धारण करने वाले जीन न्यूक्लिक अम्ल से बने होते हैं।
14. विभिन्न कोशिकाओं में प्रोटीनों का संश्लेषण भी न्यूक्लिक अम्लों द्वारा नियन्त्रित होता है।
15. न्यूक्लिक अम्ल दो प्रकार के होते हैं–राइबो न्यूक्लिक अम्ल (आर.एन.ए.) तथा डीऑक्सी राइबो न्यूक्लिक अम्ल (डी. एन. ए.)।
16. डी.एन.ए. मुख्यतः केन्द्रक में पाया जाता है जबकि आर. एन.ए. मुख्य रूप से कोशिका द्रव्य में।
17. राइबोन्यूक्लिक अम्ल में राइबोज शर्करा तथा डी–ऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल में 2–डी ऑक्सी राइबोज शर्करा पाई जाती है।
18. डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. दोनों ही न्यूक्लिक अम्लों में प्यूरीन क्षार के ऐडेसीन व ग्वानीन पाये जाते हैं, जबकि आर.एन.ए. में पिरीमिडीन क्षार के रूप में साइटोसीन व यूरेसिल तथा डी.एन.ए. में साइटोसीन एवं थायमीन पाया जाता है।
19. एक क्षार तथा शर्करा के संयोजन से बनी इकाई को न्यूक्लिओसाइड तथा क्षार–शर्करा और फास्फोरिक अम्ल के संयोजन से बने इकाई को न्यूक्लिओटाइड कहते हैं।
20. न्यूक्लिओटाइड, न्यूक्लिक अम्लों के एकलक (Monomer) के साथ–साथ इमारती खण्ड भी कहलाते हैं।
21. न्यूक्लिक अम्लों में न्यूक्लिओटाइड, फोस्फोडाइऐस्टर बन्ध द्वारा एक विशिष्ट क्रम में बन्धित रहते हैं।
22. डी.एन.ए. की संरचना द्विकुण्डलित (डाइ हेलिक्स) होती है जबकि आर.एन.ए. एक सूत्री कुण्डली।
23. सरल लिपिड, गिलसरॉल के वसीय अम्लों के ट्राइऐस्टर होते हैं, अतः इन्हें ट्राइग्लिसराइड भी कहते हैं। वसा, ठोस तथा तेल द्रव अवस्था में होते हैं।
24. वसा अम्लों में सम संख्या में कार्बन परमाणु होते है तथा यह संतृप्त अथवा असंतृप्त हो सकते है।
25. संतृप्त अम्लों में पॉमिटिक अम्ल एवं स्टीयरिक अम्ल मुख्य हैं तथा असंतृप्त अम्लों में ओलिक अम्ल (एक–द्वि बंध), लिनोलिक (दो–द्वि बंध), लिनोलेनिक अम्ल (तीन–द्वि बंध) तथा अरैकीडोनिक अम्ल (चार–द्वि बंध) मुख्य है।
26. वसा (Fats), संतृप्त वसा अम्लों के ट्राइग्लिसराइड होते हैं जबकि तेल (Oils) असंतृप्त वसा अम्लों के ट्राइग्लिसराइड होते हैं।
27. विटामिन दो प्रकार के– वसा विलेय (विटामिन A, D, E तथा K) तथा जल विलेय (विटामिन B Complex तथा C) होते हैं।
28. वसा विलेय विटामिन शरीर में संचित हो जाते हैं जबकि जल विलेय विटामिन की हमें रोजाना भोजन में आवश्यकता होती है।
29. वनस्पति तेल, नमक, चीनी आदि प्रातिक परिरक्षक हैं. और सोडियम बेन्जोएट, पोटेशियम बेन्जोएट, पैराबेन्स,

सोर्बेट्स, प्रोपियोनेट्स आदि रासायनिक परिरक्षक हैं।

30. प्राकृतिक खाद्य रंग– कैरोटीन, केसर (पीला) एवं चुकंदर रस (गहरा लाल) है, जबकि रासायनिक खाद्य रंग– टेट्राजीन, इरिथ्रोसिन, सनसेट यैलो, इन्डीगोकार्मिन आदि हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. निम्न में शर्कराएँ हैं–
   (अ) ग्लुकोज (ब) फ्रक्टोज
   (स) गैलेक्टोज (द) उपरोक्त सभी
2. सुक्रोस के जल अपघटन से प्राप्त होते हैं–
   (अ) ग्लुकोज + ग्लुकोज
   (ब) ग्लुकोज + गैलेक्टोज
   (स) ग्लुकोज + फ्रक्टोज
   (द) इनमें से कोई नहीं
3. निम्न में से कौन पॉलीसैकेराइड नहीं है–
   (अ) स्टार्च (ब) ग्लाइकोजन
   (स) सैल्यूलोज (द) माल्टोज
4. लार में पाया जाने वाला एन्जाइम है–
   (अ) पेप्सिन (ब) ट्रिप्सिन
   (स) लाइपेज (द) टायलिन
5. किस विटामिन की कमी से रतौंधी रोग होता है–
   (अ) B_6 (ब) A
   (स) C (द) D
5. निम्न में से प्रातिक परिक्षक है–
   (अ) सोडियम बेनजोएट (ब) सोर्बेट्स
   (स) पैराबेन्स (द) चीनी

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. कार्बोहाइड्रेट की परिभाषा लिखिये।
2. आवश्यक ऐमीनो अम्ल किसे कहते हैं।
3. एन्जाइम को परिभाषित कीजिए।
4. डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए. में दो मुख्य अन्तर दीजिए।
5. तेल एवं वसा में दो मुख्य अन्तर दीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. एन्जाइम के मुख्य गुणधर्म लिखिए।
2. न्यक्लिक अम्लों के अवयव लिखिए।
3. खाद्य रंग, प्रकार एवं उनके उपयोग लिखिए।
4. विटामिन किसे कहते हैं, वसा विलेय विटामिनों के बारे में संक्षिप्त लिखिए।
5. न्यूक्लिओसाइट की परिभाषा लिखिए।
6. न्यूक्लिओटाइड की परिभाषा लिखिए।
7. खाद्य रंग एवं उनके उपयोग लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. कार्बोहाइड्रेट का वर्गीकरण कीजिए तथा प्रत्येक वर्ग का उदाहरण लिखिए। मोनोसैकेराइडो का नामकरण लिखिए।
2. प्रोटीन किसे कहते हैं?इसके बारे में विस्तृत विवरण लिखिए।
3. विटामिन का वर्गीकरण कीजिए। महत्वपूर्ण विटामिनों के स्रोत, कार्य एवं अभाव रोग लिखिए।
4. लिपिडस किसे कहते हैं? विस्तार से लिखिये।
5. खाद्य परिरक्षक का विस्तारपूर्ण एवं उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला

1. (द) 2. (स) 3. (द) 4. (द) 5. (ब) 6. (द)

अध्याय – 11

जैविक खाद एवं जैव उर्वरक
(Organic Manures and Bio fertilizers)

प्रस्तावना (Introduction)–

देश में विगत कुछ वर्षो से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध व अनियंत्रित प्रयोग किया जाता रहा है जिसके कारण मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा में उपलब्ध लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में भारी कमी हुई है। फलतः मृदा की उत्पादन शक्ति क्षीण हुई है। अतएव मृदा को स्वस्थ्य बनाये रखने, लक्षित उत्पादन प्राप्त करने के लिए, उत्पादन लागत कम करने हेतु व पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है, कि रासायनिक उर्वरकों जैसी कीमती निवेश के प्रयोग को एक हद तक कम करके जैविक खाद के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

जैविक खाद का तात्पर्य रासायनिक रूप से कार्बनिक पदार्थों से है, जो सड़ने गलने पर जीवांश पैदा करती है। इनमें वे सभी पोषक तत्व मौजूद रहते हैं जो कि पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं तथा मृदा को वे सभी तत्व पुनः मिल जाते हैं जो कि फसल अपनी बढ़वार के समय उससे लेते हैं। प्राकृतिक खाद या जैविक खाद और हरी खाद के इस्तेमाल से भूमि की संरचना में सुधार आयेगा और साथ ही रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभावों से बचा जा सकेगा। समन्वित पोषण आपूर्ति प्रणाली अपनाने के लिए यह जरूरी है कि जैविक खादों व अन्य उर्वरकों का सन्तुलित मात्रा में उचित समावेश किया जावे।

जैविक खाद (Organic Manures)–

जैविक खाद उस खाद को कहते है, जिसमें जीवों का अंश हो, ऐसी खाद को प्राकृतिक या कार्बनिक या जैविक खाद भी कहते हैं। जैविक खाद में मुख्यतः गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट, खली की खाद, वर्मी कम्पोस्ट, नाडेप की खाद, इसके अलावा हड्डी की खाद, पोल्ट्रीखाद, मछली की खाद, मानव विष्टा की खाद आदि आती है।

जैविक खादों का वर्गीकरण (Classification of Organic Manures)–

जैविक /कार्बनिक खादों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता हैं–

(अ) स्थूल जैविक/कार्बनिक खादें (Bulky Organic Manures)– इनमें पोषक तत्वों की मात्रा कम होने के कारण इनका प्रयोग अधिक मात्रा में करना पड़ता है। जैसे– गोबर की खाद, कम्पोस्ट, मलमूत्र की खाद, सीरे की खाद, प्रेसमड आदि।

(ब) सान्द्रित जैविक/कार्बनिक खादें (Consentrated Organic Manures)– इनमें स्थूल या भारी कार्बनिक खादों की अपेक्षा पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है। अतः अपेक्षाकृत इनकी कम मात्रा प्रयोग की जाती है। जैसे–खलियाँ (Cakes)।

(स) प्राणिजात खादें (Manures of animal origin)– जैसे सुखाया हुआ खून, ऊन, हड्डी की खाद, मछली की खाद।

जैविक खादों का मृदा में महत्त्व एवं प्रभाव –

जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट खाद तथा वर्मी कम्पोस्ट आदि मृदा उर्वरता बनाये रखने, उत्पादन का स्तर रखने एवं पौषक तत्वों का सही परिमाण प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। जैविक खाद का प्रभाव केवल एक फसल तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि उनका प्रभाव 2–3 वर्षों तक मृदा में रहता है। जैविक खाद के उपयोग से मृदा में जैविक कार्बन में भी सुधार आता है। पौधों को अपना जीवन पूर्ण करने के लिए 20 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जो केवल उर्वरकों के प्रयोग से पूर्ण नहीं की जा सकती है। आवश्यक मात्रा में जैविक खाद के प्रयोग से प्रमुख तत्वों के साथ–साथ गौण व सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति भी आसानी से हो जाती है।

जैविक खाद के उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक तीनों ही अवस्थाओं में सुधार होता है, इन खादों की उपयोगिता निम्नलिखित है–

(अ) मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव–

1. रेतीली हल्की मृदा सघन तथा दानेदार संरचना हो जाती है व भारी भूमि हल्की तथा भुरभुरी हो जाती है, परिणामतः भूमि की संरचना में सुधार होता है।
2. मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है।
3. मृदा में वायु संचार में वृद्धि होती है।
4. पानी व वायु द्वारा मृदा अपरदन कम हो जाता है, जिससे मृदा संरक्षण होता है।
5. मृदा ताप नियन्त्रण में रहता है।
6. पौधों की जड़ों का विकास अच्छा होता है।
7. भूमि में जल अंतःस्पदन अच्छा हो जाता है।

(ब) मृदा के रासायनिक गुणों पर प्रभाव –

1 पौधों को सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति के साथ–साथ हारमोन्स व एन्टीबायोटिक्स की भी प्राप्ति होती है जो विशेष लाभकारी होते हैं।

2 क्षारीय मृदा का पी.एच. मान कम हो जाता है।

3 मृदा की क्षारीयता तथा लवणीयता में सुधार होता है।

4 मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।

5 मृदा में पाये जाने वाले विषैले पदार्थों का प्रभाव कम हो जाता है।

6 जैविक खाद के उपयोग व अपघटन से मृदा में स्थिर तत्व विलेयशील होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं।

7 मृदा की उभय प्रतिरोधी क्षमता (Buffering capacity) तथा धनायन विनिमय क्षमता (Cation exchange capacity) में वृद्विहोती है।

(स) मृदा के जैविक गुणों पर प्रभाव –

1. मृदा में लाभकारी जीवाणुओं की संख्या में वृद्विहोती है।
2. जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्विहोने के कारण पौधों को पोषक तत्व आसानी से प्राप्त होते रहते हैं।
3. जैविक खादें मृदा में सूक्ष्म जीवों के लिए भोजन व ऊर्जा प्रदान करती है जिससे सूक्ष्म जीवों द्वारा मृदा में होने वाली नाइट्रीकरण (Nitrification), अमोनीकरण (Amonification) तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) की क्रिया बढ़ जाती है।
4. मृदा में वायुमण्डल से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण तीव्र गति से होने लगता है।
5. जीवाणु जटिल पदार्थो को विच्छेदित कर आयनिक रूप में पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

(द) जैविक खाद एवं उर्वरकों में भेद (Difference between organic manures & fertilizers)–

जैविक / कार्बनिक खाद (Organic manures)	उर्वरक (Fertilizers)
1. ये पेड़ पौधों तथा जन्तुओं के भागों तथा अवशेष पदार्थों को सड़ाकर बनाये जाते हैं।	1. ये अनेक रासायनिक क्रियाओं द्वारा तत्वों अथवा खनि पदार्थों से कारखानों में तैयार की जाती है।
2. पौधों के सभी आवश्यक तत्व उपस्थित रहते हैं, परन्तु पोषक तत्वों की मात्रा सघन नहीं होती।	2. पोषक तत्वों की मात्रा काफी सघन होती है, परन्तु इनमें एक या दो आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं।
3. पौधों को पोषक तत्वों की प्राप्यता धीरे–धीरे होती रहती है। इनका प्रभाव प्रायः 1–2 वर्ष तक मृदा में बना रहता है।	3. इनके पोषक तत्व पौधों को लगभग एक सप्ताह में ही प्राप्त होने लगते हैं और इनका अवशेष प्रभाव मृदा में अधिक समय तक नहीं रह पाता।
4. इन खादों को फसल की बुवाई से काफी पहले प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि इनके प्रयोग करने के काफी समय पश्चात्, जब ये सड़ जाते हैं तब पौधों को प्राप्त होते हैं।	4. सभी तत्व विलेय अवस्था में तथा शीघ्र पौधों को उपलब्ध होते हैं। अतः इनका प्रयोग फसल की बुवाई के समय अथवा खड़ी फसल में किया जाता है।
5. इनसे मृदा–जल धारण क्षमता बढ़ जाती है।	5. इनके प्रयोग से मृदा जल धारण क्षमता नहीं बढ़ती।
6. इनके प्रयोग से मृदा का वायु संचार सुधरता है।	6. उर्वरकों का मृदा वायु संचार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
7. सभी आवश्यक तत्व प्राप्त होने के कारण पौधों की सन्तुलित वृद्धि होती है।	7. इनके प्रयोग से पौधों की संतुलित वृद्धि नहीं होती, क्योंकि उर्वरकों से सभी तत्व पौधों को प्राप्त नहीं होते।

8. इसके प्रयोग से कार्बन नाइट्रोजन अनुपात मृदा में सन्तुलित रहता है।	8. यह अनुपात संतुलित नहीं रहता है।
9. मृदा ताप पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।	9. मृदा ताप पर प्रभाव नहीं पड़ता।
10. इनके प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाने से उसके अपरदन में कमी हो जाती है।	10. मृदा अपरदन (Erosion) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
11. अत्यधिक मात्रा में भी प्रयोग करने से मृदा पर हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।	11. अधिक मात्रा में प्रयोग करने से फसल एवं मृदा दोनों पर ही हानिकारक प्रभाव पड़ता है।
12. खादों के प्रयोग से मृदा में उपस्थित अविलेय तत्व विलेय रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, क्योंकि कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से कार्बनिक अम्ल बनते हैं।	12. इनमें ऐसा सम्भव नहीं है।
13. इनके प्रयोग से फसलों की जल माँग घटती है।	13. फसलों की जल माँग बढ़ती है।
14. इनके प्रयोग से मृदा की प्रत्यारोधन क्षमता (Buffering Capacity) बढ़ जाती है।	14. उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की प्रत्यारोधन क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

गोबर की खाद (Farm Yard Manures)–

गोबर की खाद का प्रयोग हमारे देश में प्राचीन काल से हो रहा है। गोबर की खाद से तात्पर्य ऐसी खाद से है जिसमें घरेलू पशुओं (गाय, भैंस, बैल, भेड, बकरी, ऊँट आदि) के ठोस तथा द्रव मल–मूत्र से युक्त बिछावन (पुआल, भूसा, चारा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ आदि) को गड्डो में सड़ाकर तैयार किया जाता है।

गोबर की खाद के मुख्य घटक–

गोबर की खाद के तीन मुख्य घटक (अवयव) गोबर, मूत्र तथा बिछावन हैं–

1. गोबर– पशुओं के मल (गोबर) के ठोस पदार्थ में कई अघुलनशील व बिना पचे पदार्थ होते हैं। इसके अतरिक्त 0.3–0.7 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.1–0.5 प्रतिशत फॉस्फोरस व 0.3–0.5 प्रतिशत पोटेशियम तथा कुछ गौण व सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं।

2. मूत्र – मूत्र का मुख्य अवयक यूरिया है, यह 2 प्रतिशत होता है। इसके अतरिक्त मूत्र में अनेक रासायनिक पदार्थ घुलनशील अवस्था में होते हैं। मूत्र में नाइट्रोजन 0.4–1.35 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.05–0.10 प्रतिशत व पोटेशियम 0.5–2.0 प्रतिशत होता है।

3. बिछावन – पशुओं के मूत्र को शोषित करने के लिए बिछावन का प्रयोग करते हैं, बिछावन में पौधे के लिए आवश्यक पोषक तत्व भी पाये जाते हैं। बिछावन से खाद के ढेर में वायु का संचार अच्छा होता है जिससे जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है व खाद सड़ने में मदद मिलती है।

गोबर की खाद में पोषक तत्व–

गोबर की खाद में सभी आवश्यक पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, केल्शियम, मैग्नीशियम, गन्धक, लोहा, ताँबा, जस्ता तथा मैग्नीज आदि पाये जाते हैं।

गोबर की खाद में मुख्य तत्वों की मात्रा –

नाइट्रोजन 0.5–10 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.25–0.5 प्रतिशत एवं पोटेशियम 0.5–1.0 प्रतिशत होता है। गोबर की खाद में उपस्थित तत्वों की मात्रा, पशुओं की किस्म, पशुओं की आयु, उनके भोजन, कार्य, बिछावन व खाद संग्रह करने की विधि पर निर्भर करती है।

गोबर की खाद तैयार करने की विधि :–

1. वर्तमान प्रचलित विधि– हमारे देश में गोबर की खाद तैयार करने की वर्तमान प्रचलित विधि दोषपूर्ण है। इससे प्राप्त खाद में पोषक तत्वों की मात्रा कम होती है व खाद की गुणवत्ता निम्न स्तर की होती है। मिट्टी द्वारा सोखा गया मूत्र तथा बचा हुआ चारा ढेर के रूप में खुले गड्ढों में इकट्ठा कर लेते हैं और प्राकृतिक रूप से सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। अधिकांश गोबर को ईंधन के रूप में काम में लिया जाता है।

2. संशोधित गड्ढा विधि– इस विधि से खाद बनाने के लिए एक पशु के लिए 1 मीटर गहरा 2 मीटर चौड़ा तथा 3 मीटर लम्बा गड्ढा एक वर्ष के लिए पर्याप्त रहता है। पशुओं की संख्या अधिक होने पर गड्ढो की गहराई, लम्बाई व चौड़ाई बढ़ाने की अपेक्षा उनकी संख्या बढ़ाना उचित रहता है। रेतीली भूमि में गड्ढे पक्के बनाने चाहिए जिससे पोषक तत्वों का ह्रास रिसकर न हो। चिकनी भूमि में कच्चे या पक्के दोनों प्रकार के गड्ढे बनाये जा सकते हैं। गड्ढे छायादार व ऊँचे स्थान पर बनाने चाहिए जिससे वर्षा का पानी गडढों में न भरे।

सर्वप्रथम गड्ढे के पेंदे में 10–20 से.मी. परत चारे या बिछावन की लगानी चाहिए इसके बाद गोबर व मूत्र की 75–100 से.मी. परत डालनी चाहिए। तीसरी परत पुनः बिछावन की 75–100 से.मी. मोटी डालें। इस क्रम में गड्ढे की भराई भूमि सतह से 50 से.मी. ऊचाई तक करें इसके बाद ढेर को समतल कर 10 से.मी. मिट्टी की परत से गड्ढे को बन्द कर देना चाहिए। गड्ढे में खाद 5–6 माह में सड़कर तैयार हो जाती है।

3. ट्रेंच (Trench) विधि– इस विधि में 60 मीटर लम्बाई, 1.5 मीटर चौडाई व 1.0 मीटर गहराई की ट्रेच (खाई) तैयार की जाती है इस विधि में ट्रेंच की लम्बाई व चौड़ाई बढ़ाई जा सकती है परन्तु गहराई नहीं बढ़ाते हैं।

इस विधि में बिछावन मूल–मूत्र आदि को गड्ढे के आधे भाग में भरते हैं जब गड्ढे का आधा भाग भरते–भरते भूतल से आधा मीटर ऊँचा हो जाता है तो उसे गोलाकर या डोम आकार का रूप देकर गोबर तथा मिट्टी के मिश्रण से लेप कर देते हैं। आधा भाग भर जाने के बाद गड्ढे के दूसरे भाग को भर कर इसी प्रकार लेप करते हैं।

इस विधि की विशेषता यह है कि जब तीन माह में दूसरा ढेर बनता है तब तक पहले ढेर की खाद सड़ कर प्रयोग के लिए तैयार हो जाती है इसी तरह एक ही गड्ढे से पूरे वर्ष सड़ी हुई खाद खेत में देने के लिए प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार तैयार की गई खाद में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है।

सड़ी हुई गोबर की खाद की पहचान–

अच्छी सडी हुई गोबर की खाद का कोई भी घटक अलग से नहीं दिखाई देता है, खाद में किसी तरह की दुर्गन्ध नहीं आती है, खाद भुरभुरी तथा उसका रंग हल्का भूरा होता है।

गोबर के खाद की प्रयोग विधि–

साधारणतया सभी फसलों में 10–15 टन प्रति हैक्टर व सब्जियों में 20–25 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद की मात्रा प्रयोग में लेते हैं। बुवाई के 3–4 सप्ताह पूर्व अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करते हैं। खेत में खाद को समान रूप से बिखेर कर हल से जुताई करके मिट्टी में मिलाते हैं। खेत में खाद डालने के बाद ज्यादा समय तक खुले में नहीं छोड़ना चाहिए अन्यथा खाद से नाइट्रोजन का ह्रास होता है।

कम्पोस्ट (Compost)–

कम्पोस्टिंग एक जैव रासायनिक क्रिया है जिसमें वायवीय (aerobic) तथा अवायवीय (anaerobic) जीवाणु कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर बारीक खाद बनाते हैं यह पूर्ण सड़ा हुआ कार्बनिक पदार्थ ही कम्पोस्ट कहलाता है।

भारत में तैयार किया जाने वाला कम्पोस्ट इस प्रकार है –

1. फार्म अवशिष्टों से तैयार कम्पोस्ट – इसमें खरपतवार, फसल अवशेष, पशुओं का बचा हुआ चारा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ आदि काम में लिये जाते हैं।

2. शहर व कस्बों के अवशिष्ट से तैयार कम्पोस्ट – यह शहर का मल, कूडा–करकट व अन्य कार्बनिक कचरा आदि से तैयार किया जाता है।

कम्पोस्ट बनाने की विधियाँ–

1. इन्दौर विधि
2. बैंगलौर विधि
3. नाडेप विधि

इनमें नाडेप विधि अच्छी है जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है–

1. नाडेप कम्पोस्ट (Nadep compost)–

यह विधि महाराष्ट्र के कृषक 'नाडेप काका' द्वारा विकसित की गई। इस विधि में निम्न सामग्री काम में ली जाती है –

(अ) फार्म अवशेष, अपशिष्ट, कम्पोस्ट बनाने के लिए आवश्यक सामग्री–कपास व अरहर के डंठल, गन्ने की पत्तियाँ आदि करीब 1400–1500 कि.ग्रा.

(ब) पशुओं का गोबर 90–100 कि.ग्रा.

(स) सूखी छनी मृदा 1750 कि.ग्रा.

(द) पानी मौसम के अनुसार

इस विधि में पशुओं के गोबर का कम प्रयोग किया जाता है। इस विधि में वायवीय प्रक्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थो का विघटन होता है। कम्पोस्ट तैयार होने में 90–120 दिन का समय लगता है। इस विधि से तैयार कम्पोस्ट में 0.5–1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.5–0.9 प्रतिशत फॉस्फोरस व 1.2–1.4 प्रतिशत पौटेशियम पाया जाता है।

नाडेप कम्पोस्ट टैंक –

ईटें या पत्थर आदि से जमीन के ऊपर टेंक तैयार की जाती है। टेंक का आकार आयताकार जिसके अन्दर लम्बाई 10 फीट, चौड़ाई 6 फीट तथा ऊँचाई 3 फीट रखते हैं। सतह तक की दीवार 9 इंच मोटी होनी चाहिए। ईंटों की जुड़ाई मिट्टी से करते हैं सिर्फ टेंक की ऊपरी ईंटें सीमेन्ट से जोड़ते हैं जिससे टैंक के गिरने का डर न रहे। हवा के आवागमन के लिए टैंक की चारों दीवारों में 7 इंच चौड़े छेद छोड़ने चाहिए, ईंट की दो परत के बाद तीसरी परत को जोड़ते समय प्रत्येक ईंट की जुड़ाई के बाद 7 इंच का छेद छोड़कर जुड़ाई करते हैं इसी प्रकार तीसरी, छठी तथा नवीं परत में छेद रखते हैं, यह छिद्र एकान्तर में छोड़े जाते हैं। एक के ऊपर दूसरा छिद्र न आये यह ध्यान रखना आवश्यक

है। टैंक के अन्दर व बाहर की दीवारों और फर्श के टेंक भरने से पूर्व गोबर व मिट्टी के मिश्रण से भली प्रकार लीप देना चाहिए। टेंक सूखने के बाद ही प्रयोग में लाये।

टैंक भरने की विधि–

टेंक भरने से पूर्व गोबर के घोल का छिड़काव टेंक के नीचे तथा दीवारों के अन्दर कर लेना चाहिए। टेंक की भराई 48 घण्टो में पूर्ण कर लेनी चाहिए अन्यथा कम्पोस्ट बनने की प्रक्रिया में बाधा आती है।

प्रथम परत (वानस्पतिक पदार्थ)– पहली 6 इंच की परत फार्म के वानस्पतिक अवशेषों से भर देनी चाहिए जो करीब 100 कि.ग्रा. होते है।

दूसरी परत (गोबर का घोल) – गोबर या गोबर की लेही (slurry) (करीब 4–5 कि.ग्रा. गोबर की सम्पूर्ण सामग्री 125–150 लीटर पानी में घोल) का पहली परत पर एक सार छिड़काव करते हैं।

तीसरी परत (साफ सूखी छनी मिट्टी)– इस परत में 50–60 कि.ग्रा. (4–5 टोकरी) साफ सूखी छनी मिट्टी गोबर की परत पर एकसार बिछा देते हैं तथा इसके ऊपर पानी का छिड़काव कर गीला कर लेते हैं।

इस प्रकार के तीन क्रमों में टेंक में परत बनाते रहते हैं जब तक ढेर टेंक की दीवारों से 1.5 फीट ऊपर तक न आ जाये। साधारणतया 11–12 तहों में टेंक भर जाता है। टेंक के ऊपरी भाग को झोपड़ीनुमा आकार देते हैं। टेंक भरने के बाद ढक देते है तथा 3 इंच मोटी मिट्टी की परत (करीब 300–400 कि.ग्रा. मिट्टी) की सहायता से अच्छी तरह बन्द कर देते हैं। इस बात का ध्यान रखे कि टेंक के ढेर में दरार न पड़े क्योंकि दरारों से गैस निकलती रहती है, इसलिए इसके ऊपर पुनः लीपन करते रहें।

दूसरी भराई– 15–20 दिन बाद कूड़ा–करकट दब कर नीचे बैठ जाता है तथा टेंक करीब 8–9 इंच तक खाली हो जाता है तदुपान्त इसको उपरोक्त क्रमानुसार तीन परतों में भरकर गोबर व मिट्टी से लीप देना चाहिए। इस विधि से कम्पोस्ट तैयार होने में 3–4 माह का समय लगता है, कम्पोस्ट में 15–20 प्रतिशत नमी बनाये रखने के लिए गोबर व पानी के मिश्रण का छिडकाव करें जिससे खाद में आवश्यक पोषक तत्व संरक्षित रह सके। साधारणतया एक टेंक से 160–175 घन फीट कम्पोस्ट, जिसका वजन 3 टन के करीब होता है, प्राप्त होती है।

कम्पोस्ट प्रयोग विधि–

सामान्यतया फसलों में 10–15 टन प्रति हैक्टर व सब्जियों में 20–25 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट की मात्रा को बुवाई के 3–4 सप्ताह पूर्व खेत में डालकर हल चलाकर मिट्टी में भली–भॉति मिला लेना चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट (Vermicompost)– वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मृदा के भौतिक रासायनिक व जैविक गुणो में सुधार होता है जिससे मृदा की उत्पादकता में टिकाऊपन आता है।

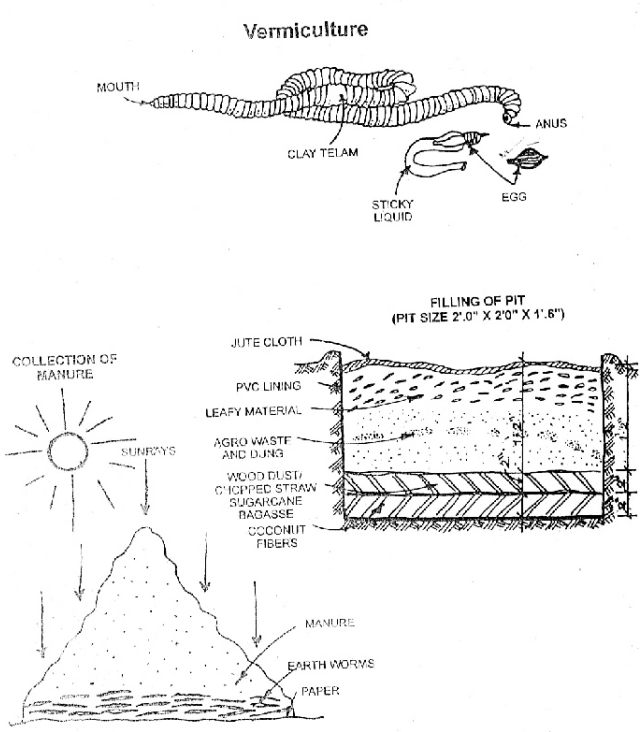





चित्र–केंचुआ खाद तैयार करने की प्रक्रिया

वर्मी टैक्नोलोजी के अन्तर्गत तीन तकनीक आती हैं– (i) वर्मीकल्चर, (ii) वर्मीकम्पोस्टिंग और (iii) वर्मीकंजरवेशन–

वर्मीकल्चर (Vermiculture)– वर्मीकल्चर, वह तकनीक है जिसके अन्तर्गत केंचुओं का प्रजनन व रख–रखाव किया जाता है, साधारण भाषा में केचुओं के संवर्धन को वर्मीकल्चर कहते हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंग– केंचुओं द्वारा बेकार कार्बनिक पदार्थों से जैविक खाद बनाने की प्रक्रिया को वर्मीकम्पोस्टिंग कहते हैं। दूसरे शब्दों में वर्मी कम्पोस्टिंग वह विधि है जिसमें कूड़ा–कचरा व गोबर को केंचुओं व सूक्ष्म जीवों की सहायता से उपजाऊ खाद (वर्मीकास्ट) में बदला जाता है, जिसको वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं।

वर्मीकंजरवेशन– वह प्रक्रिया है, जिसमें केंचुओं को वर्मी कम्पोस्ट से अलग किया जाता है। केंचुओं के अपशिष्ट मल, उनके कोकून सभी प्रकार के लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व और विघटित जैविक पदार्थों का मिश्रण वर्मीकम्पोस्ट कहलाता है।

वर्मीकास्ट (Vermicast)– केंचुए कार्बनिक पदार्थ को खाते है और यह कार्बनिक पदार्थ केंचुओं के पाचनतंत्र से होता हुआ जटिल जैव रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरता है और मिट्टी की महक वाली सूक्ष्म गोलिकाओं के रूप में बाहर निकलकर आता है। कोकून के साथ निकला यह पदार्थ और गैर पचा हुआ पदार्थ ''वर्मीकास्ट'' कहलाता है।

वर्मीकम्पोस्ट में गोबर की खाद की अपेक्षा अधिक मात्रा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश होता है। वर्मीकम्पोस्ट में नाइट्रोजन 1.75–2.5 प्रतिशत, फॉस्फोरस 1.5–1.8 प्रतिशत तथा 1.0–1.5 प्रतिशत पोटेशियम की मात्रा पायी जाती है, वर्मीकम्पोस्ट में एक्टीनोंमाइसिटीज की मात्रा गोबर की खाद की तुलना में 8 गुना अधिक पायी जाती है। इसके एन्टीबायोटिक गुणो से फसलें कीट व व्याधियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी हो जाती है, इसके अतिरिक्त वर्मीकम्पोस्ट में सूक्ष्म पोषक तत्व संतुलित मात्रा में तथा कई एन्जाइम व विटामिन भी पाये जाते हैं। उपरोक्त वर्णित पोषक तत्वों के परिमाण का संगठन प्रयुक्त सामग्री पर निर्भर करता है।

केंचुओ के प्रकार (Types of Earth Worm)–

प्रकृति में लगभग 2500–3000 केचुएँ की प्रजातियाँ पायी जाती हैं, इनमें से 350 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती है जिनमें 293 प्रजातियों को कृषि में लाभकारी पाया गया है। मुख्यतः तीन प्रकार के केंचुए अधिक लाभकारी है–

1. एपिजिक– ये भूमि में एक मीटर की गहराई तक ही जाते हैं और कृषि अपशिष्टों को अधिक खाते हैं। वर्मीकम्पोस्ट





बनाने में इन्ही केचुओं का प्रयोग किया जाता है। इनकी कुछ प्रजातियाँ है पेरेनिप्स आर्वोशीकोली, फेरेटिमा इलोन्गेटा, आईसीनिया फोईटिडा आदि।

2. इन्डोजिक – ये केंचुए भूमि में गहरी सुरंग बनाते हैं (3 मीटर से अधिक) ये केचुएँ कृषि अपशिष्ट को कम व मिट्टी को अधिक खाते हैं। यह किस्म जल निकास में उपयोगी है।

3. डायोजिक – ये केंचुए 1–3 मीटर की गहराई पर रहते हैं एवं दोनों प्रजातियों की बीच की श्रेणी में आते हैं।

राजस्थान की परिस्थितियों से आइसीनिया फोईटिड़ा प्रजाति के केचुएँ सबसे उपयुक्त पाये गये हैं। इनकी लम्बाई 3–4 ईंच और वजन आधा से एक ग्राम तक होता है। ये लाल रंग के होते हैं जो 90 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ व 10 प्रतिशत मिट्टी खाते हैं तापमान, नमी एवं खाद्य पदार्थों की उपयुक्त परिस्थितियों में केंचुए चार सप्ताह में वयस्क होकर प्रजनन करने योग्य हो जाते हैं। एक केंचुआ एक सप्ताह में 2–3 कोकून देता है एवं एक कोकून में तीन से चार अण्डे होते हैं। इस तरह एक प्रजनक केंचुआ 6 माह में 250 केचुएँ पैदा कर सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि–

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करते है जो ऊँचा तथा छायादार हो। छाया नहीं होने की स्थिति में वर्मीबेड के ऊपर छप्पर डाल कर छाया करनी चाहिए, क्योंकि केंचुओं को अधिक प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। केंचुएँ अंधेरे में अधिक क्रियाशील रहते हैं। प्रजनन एवं खाद निर्माण क्रिया के लिए 30 प्रतिशत नमी एवं 25–30° सेल्सियस तापमान

आवश्यक है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए बेड (क्यारी) की लम्बाई 40–50 फीट और चौड़ाई 3–4 फीट रखते है। लम्बाई व चौड़ाई को आवश्यकतानुसार कम या ज्यादा कर सकते है, परन्तु वर्मीकम्पोस्ट तैयार होने पर उसको एकत्र करने में सुविधा के लिए चौड़ाई 4 फीट तक ही रखते है। आवश्यकतानुसार एक छप्पर के नीचे एक से अधिक क्यारियाँ बना सकते है।

क्यारी में मामूली सड़ा हुआ भूसा, तिनके, कड़बी, जूट आदि को सतह पर 3 इंच की मोटाई में तह लगाकर बिछौना बनाया जाता है। बिछावन को पानी से नम कर दिया जाता है। इस बिछावन में 2 इंच मोटाई की एक परत कम्पोस्ट या गोबर की बिछाई जाती है और पुनः इस परत को पानी से नम कर देते है। इस परत पर वर्मीकास्टिंग, जिसमें केंचुएँ व कोकून होते है, डाल दी जाती है। इस परत पर गोबर व मामूली सड़ा हुआ कृषि अपशिष्ट पदार्थ मिलाकर बिछा दिया जाता है। इस तरह परतों की कुल ऊंचाई लगभग डेढ़ फीट तक हो जाती है इसको टाट या घास–फूस से ढक दिया जाता है। इस ढेर पर समय समय पर पानी का छिड़काव करना चाहिए।

उचित परिस्थितियों में वर्मीकम्पोस्ट 60 दिन में बनकर तैयार हो जाती है। वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाने पर पानी का छिड़काव बन्द कर देते हैं जिससे केंचुए क्यारी में नीचे की परत में चले जाते हैं, इसके बाद उपर से वर्मीकम्पोस्ट को इकट्ठा कर लेते हैं।

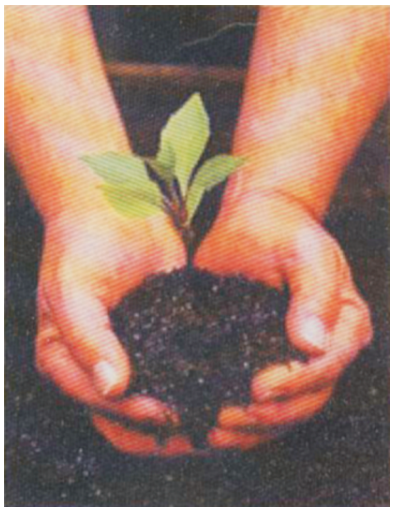

चित्र–तैयार वर्मीकम्पोस्ट

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ–

1. वर्मीकम्पोस्ट देशी खाद की तुलना में अधिक श्रेष्ठ किस्म का होता है। इसमें गोबर की खाद की तुलना में प्रायः अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते हैं तथा यह प्रयुक्त सामग्री पर भी निर्भर करता है।
2. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है अतः भूमि का कटाव रूकता है।
3. वर्मीकम्पोस्ट में एक्टीनोमाइसिटीज की मात्रा देशी खाद की तुलना में 8 गुणा अधिक होने से फसलों में रोग प्रतिरोधकता बढ़ती है।
4. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत में ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है।
5. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत में खरपतवार व दीमक का प्रकोप कम होता है।
6. केंचुए, ऑक्जिन व साइटोकाइनिन नामक हार्मोन का स्राव करते हैं जो पौधों की वृद्धि एवं रोगरोधी क्षमता बढ़ाते हैं।
7. वर्मीकम्पोस्ट टिकाऊ खेती के लिए बहुत महत्वपूर्ण है तथा यह जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम है।

प्रयोग विधि –

वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग विभिन्न फसलों में अलग–अलग मात्रा में किया जाता है। खेत की तैयारी के समय 2.5–3.0 टन प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग कर जुताई कर मिला लेते हैं। खाद्यान्न फसलों में 5–6 टन प्रति हेक्टर तथा सब्जियों में 10–12 टन प्रति हेक्टर वर्मीकम्पोस्ट प्रयोग किया जाता है, वर्मीकम्पोस्ट का रंग भूरा होने के कारण किसान इसका उपयोग बुआई के समय ऊरकर भी कर सकते हैं।

प्रयोग की मात्रा–

फसल के अनुसार केंचुआ खाद के प्रयोग की मात्रा 2–5 टन प्रति एकड़ निर्धारित की जा सकती है। सामान्यतया विभिन्न फसलों में इसे निम्न मात्रा में प्रयोग किया जाता हैं– धान्य फसलें–2 टन/एकड़, दालें–2 टन/एकड़, तिलहनी फसलें–3–5 टन/एकड़, मसालें की फसलें–4 टन/एकड़, शाकीय फसलें– 4–6 टन/एकड़, फलदार वृक्ष 2–3 किग्रा. प्रति वृक्ष, नकदी फसलें– 5 टन/एकड़, शोभाकारी पौधे 4 टन/एकड़, प्लांटेशन फसलें 5 किग्रा. प्रति पौधा।

स्रोत– राधा डी. काले, 2003

जैव उर्वरक (Biofertilizers)–

एकीकृत पोषण पद्धति में रासायनिक उर्वरकों एवं जीवांश खाद का प्रयोग ऐसे संतुलित अनुपात में किया जाता है जिससे कृषि उपज में वृद्धि के साथ–साथ भूमि और पर्यावरण पर रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सके। जैविक खेती में भी जैव उर्वरकों का काफी महत्व है, क्योंकि जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग न्यून अथवा वर्जित

है। ऐसी परिस्थिति में फसलोत्पादन में जैविक उर्वरक प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि जैविक उर्वरकों के उपयोग से हम प्राकृतिक संसाधनों से उचित जीवाणुओं के माध्यम से पौधों के लिए पोषक तत्व सुलभ करा सकते हैं।

जैव उर्वरक, वास्तव में प्राकृतिक उर्वरक हैं जिनमें एक या अधिक जीवाणुओं की मिश्रित संरचनाओं का समावेश होता है, जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने की क्षमता रखते हैं एवं अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाते हैं, जो पौधों को सुगमता से उपलब्ध होता है। ये जैव उर्वरक वृद्धिकारक हार्मोन्स की आपूर्ति करने में भी सक्षम होते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रकार (Types of biofertilizers)–

नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरक :

1. राइजोबियम (Rhizobium)– यह जीवाणु राइजोबिएसी कुल में आता है जो दलहनी फसलों की जडों पर पाई जाने वाली ग्रन्थियों में रहता है। ये जीवाणु वायुमण्डल से नाइट्रोजन का अवशोषण कर उसका स्थिरीकरण करते हैं जो अन्ततः पौधों को उपलब्ध होती है। यह बैक्टीरिया 50 से 100 कि. ग्रा. वायुमण्डलीय नाइट्रोजन प्रति हैक्टर तक स्थिरीकृत करने में सक्षम है। ये जैव उर्वरक मृदा में अम्लीयता व क्षारीयता के प्रभाव को कम करता है जिससे मृदा में पादप वृद्धि अच्छी होती है। इनके उपयोग से रबी, खरीफ, जायद की दलहनी फसलों का उत्पादन लम्बे समय तक अच्छा प्राप्त होता रहता है।

विभिन्न दलहनी फसलों के लिए भिन्न–भिन्न राइजोबियम की प्रजातियों के कल्चर काम में लिए जाते हैं जो इस प्रकार हैं– राइजोबियम मेलीलोटी (मेथी, रिजका, सेंजी), राइजोबियम ट्राईफोलाई (बरसीम), राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम (मटर, मसूर), राइजोबियम फेसियोलि (सेम), राइजोबियम जेपोनिकम (सोयाबीन), राइजोबियम लुपिनी (लुपिन) राइजोबियम स्पीशीज (मूँगफली, मूँग, उडद, चना, मोठ, अरहर)

2. एजोटोबेक्टर (Azotobacter)– यह जीवाणु एजेटोबेक्टिरिएसी कुल में आता है तथा स्वतन्त्र रूप से मृदा में रहते हैं और वायुमण्डल से नाइट्रोजन ग्रहण कर उसका स्थिरीकरण करते हैं, इस जैव उर्वरक का प्रयोग गेहूँ, जौ, मक्का, सब्जियों आदि में किया जाता है। एजोटोबेक्टर के प्रयोग से 10–20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन की बचत की जा सकती है। ये वृद्धि को बढ़ाने वाले पदार्थ (growth promoting subtances) पैदा करते हैं जिससे बीजों के अंकुरण में वृद्धि होती है तथा पौधों की जड़ों का विकास होता है। एजोटोबेक्टर के प्रयोग से अनाज वाली फसलें जैसे–ज्वार, मक्का, सरसों तथा कपास की उपज में वृद्धि के साथ–साथ पौधों की संख्या में भी बढ़ोतरी होती है। ये जैव उर्वरक पॉलिसैकराइड उत्पन्न करते हैं जिससे मृदा संरचना में सुधार होता है।

3. एजोस्पिरिलम (Azospirillum)– यह जीवाणु Spirilliaceae कुल में पाया जाता है। यह जीवाणु राई, बाजरा तथा ज्वार के पौधों की जड़ों के साथ रहता हुआ पाया जाता है। ये वृद्धि नियामक पदार्थों को भी उत्सर्जित करता है। यह पर्णहरित की मात्रा को भी बढ़ाता है। इससे पौधों की वृद्धि भी अच्छी होती है और गहरा हरा रंग होता है। यह पौधों की जड़ों में माइकोराइजल इन्फेक्शन को भी बढ़ाता है।

यह जीवाणु भी मृदा में स्वतन्त्र रहकर वातावरणीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इस जैव उर्वरक का उपयोग धान, ज्वार, गन्ना, बाजरा, सब्जियों आदि में किया जाता है। यह वायुमण्डलीय नाइट्रोजन 15 से 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर स्थिरीकृत करते हैं। इनसे I.I.A. तथा GA 3 वृद्धि नियामक पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनसे अनाज वाली फसलों में 15 से 30 प्रतिशत उपज बढ़ती है तथा नकदी फसलों की 10 से 20 प्रतिशत उपज में बढ़ोतरी होती है।

नत्रजनी जैव उर्वरकों की उपयोग विधि–

नील हरित शैवाल तथा एजोला के अलावा सभी जैव उर्वरकों का निम्न प्रकार प्रयोग किया जाता है –

(i) बीज उपचार– इस विधि में 1.5–2.5 लीटर पानी को गर्म करके उसमें गुड़ मिलाकर घोल तैयार करते हैं। घोल के ठण्डा होने पर उसमें 600 ग्राम (3 पैकेट) कल्चर मिलाते हैं। एक हैक्टर के लिए उपयोग में लाये जाने वाले बीजों को फर्श या पॉलिथीन शीट पर फैला लेते हैं। बीजों के ऊपर कल्चर घोल को छिड़क कर भली–भाँति मिला लेते हैं जिससे बीजों पर जैव उर्वरक (कल्चर) के घोल की परत चढ़ जाये। साधारणतया 200 ग्राम राइजोबियम कल्चर 10 से 15 कि.ग्रा. दालों के बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है।

उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर बुआई कर लेते हैं। जैव उर्वरकों से बीज उपचार हेतु विभिन्न फसलों के लिए पानी की मात्रा निम्न प्रकार हैः– फसल– मूंग, उडद, चावल, (पानी 1 लीटर एवं गुड़ 250 ग्राम), अरहर (पानी 1.5 लीटर एवं गुड़ 300 ग्राम), चना, मूंगफली, सोयाबीन (पानी 2.5 लीटर एवं गुड़ 300 ग्राम) बीज उपचार विधि, जैव उर्वरक उपयोग की सबसे प्रभावी विधि है।

(ii) मृदा उपचार– इस विधि में 2–3 कि.ग्रा. कल्चर की मात्रा को 50 कि.ग्रा. छनी हुई गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई से पूर्व गीले खेत में छिड़क दिया जाता है।

(iii) पौध उपचार— इस विधि उन फसलों में काम लाई जाती है जिनकी पौध तैयार कर रोपण किया जाता है। एक बाल्टी में 10 लीटर पानी लेकर उसमें 4–5 पैकेट कल्चर के डालकर घोल तैयार करते हैं। इस घोल में पौधों की जड़ों को 10–20 मिनट तक डूबोकर रोपाई की जाती है। घोल की मात्रा आवश्यकतानुसार घटायी व बढ़ायी जा सकती हैं।

(iv) कंद उपचार — 1 कि.ग्रा. कल्चर का 40–50 लीटर पानी में घोल तैयार करते हैं। घोल में आलू, लहसुन, गन्ना, आदि के टुकड़ों को 10 मिनट तक डुबोकर बुवाई करते हैं।

4. नील हरित शैवाल (Blue green algae)–

नील हरित शैवाल को साइनोबैक्टीरिया (Cynobacteria) भी कहते हैं। यह शैवाल 15–53 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रति हैक्टर धान के खेत में यौगिकीकरण करता है (गोयल 1993, वैंकटरमन 1989)। यह 15–20 प्रतिशत धान की पैदावार को बढ़ाता है। यह पादप वृद्धि नियामक पदार्थ जैसे–इन्डोल एसिटिक एसिड, ऑक्जिन तथा जिब्रेलियन्स पैदा करता है। इसका उपयोग धान के खेतों में किया जाता है। यह प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपनी वृद्धि एवं विकास कर धान की फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध कराता है। इसकी कुछ मुख्य प्रजातियाँ है– एनाबिना, नोस्टॉक, साइटोनिया, आसीलेटोरिया आदि।

प्रयोग विधि–

इसका उपयोग धान की रोपाई के 7 दिन बाद करते हैं तथा जिस खेत मे इसका उपचार करते हैं उसमें पानी स्थिर एवं 8–10 से.मी. हमेशा भरा रहना चाहिए। खेत में 8–12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से नील हरित शैवाल का छिड़काव करते है। कल्चर डालने के बाद 4–5 दिनों तक पानी स्थिर रहना चाहिए।

5. एजोला (Azolla)–

एजोला का का खाद के रूप में प्रयोग वियतनाम तथा चीन में कई सदियों पूर्व से होता आ रहा है। भारत तथा अन्य देशों में इसका प्रयोग अभी हाल ही में शुरू हुआ है। एजोला एक जलीय फर्न है जो एजोलेसी (Azollaceae) कुल में आता है। भारत में एजोला पिन्नेटा (Azolla pinnata) पाया जाता है।

यह अपने भीतर नील हरित शैवाल (Anabaena Azollae) को समेटे रखने वाला जलीय पौधा है, जो कि प्रायः झीलो, तालाबों, नहरों, तथा कहीं–कहीं धान के खेत में पानी की सतह पर तैरता हुआ मिलता है। एजोला एनाबीना एजोली के साथ सहजीवन (Symbiosis) क्रिया के द्वारा धान के खेतों में नत्रजन स्थिरीकरण करता है। तमिलनाडु में एजोला माइक्रोफाइला (Azolla microphylla) जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। एजोला धान की फसल में लगभग 40–50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्रति फसल प्रदान करता है। एजोला को धान की फसल में हरी खाद के रूप में देने से धान की उपज 3–38 प्रतिशत बढ़ जाती है (सिंह 1997)।

एजोला प्रतिदिन 1.0–1.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक नाइट्रोजन जमा करने की क्षमता रखता है। 20–25 दिन के भीतर इससे प्रति हैक्टर औसतन 20–40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्राप्त हो जाता है। एजोला सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा 150 से 200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन स्थिरीकृत करता है।

एजोला प्रयोग विधि–

एजोला का उपयोग धान के खेत में रोपाई के पहले हरी खाद के रूप में या रोपाई के बाद धान के साथ इसका संवर्धन किया जाता है। प्रथम विधि में इसका प्रयोग केवल उन्हीं क्षैत्रों में सम्भव है जहॉ रोपाई के पहले पर्याप्त पानी उपलब्ध हो। खेत को तैयार कर छोटी–छोटी क्यारियों में बाँट कर 5–10 से.मी. भर देते हैं। क्यारियों में 1.0–2.0 टन प्रति हैक्टर की दर से एजोला डाल देते हैं। 10 कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट प्रति हैक्टर की दर से तीन बराबर भागों में खेत में डालें। 15–20 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाने पर खेत से पानी निकाल कर हल चलाकर एजोला को मिट्टी में मिला दें, बाद में धान की रोपाई कर दें।

धान के साथ एजोला प्रयोग के लिए 0.5–1.0 टन एजोला प्रति हैक्टर की दर से रोपाई के एक सप्ताह बाद खेत में डालें। 20–25 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाती है इसको मिट्टी में मिला दें। मिट्टी में नहीं मिलाने पर एजोला अपने आप सड़ जाता है और फसल को पर्याप्त लाभ देता है।

फॉस्फोरस विलेय जैव उर्वरक (Phosphate solubilising bio fertilizers)— इस जैव उर्वरक में बैक्टीरिया, फफूँद, व एक्टीनोमाइसीटीज की कोशिकाऐं जीवित अवस्था में होती हैं जो मृदा में अघुलनशीन फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने का कार्य करती हैं। ये पौधों की वृद्धि हेतु हारमोन्स, विटामिन आदि भी प्रदान करते हैं। फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने वाले सूक्ष्म जीव जिनमें बैक्टीरिया की प्रजाति बैसिलस तथा स्यूडोमोनाज, कवक की प्रजाति एस्परजीलस तथा पैनिसिलियम मुख्य हैं। बैक्टीरिया एवं फन्जाई की निम्न प्रजातियाँ बेसिलस सर्कुलॉन्स, बेसिलस पोलीमिक्सा, सुडोमोनास स्ट्राइटा आदि काफी सक्रियता से मृदा में पाए जाने वाले अप्राप्य फॉस्फोरस को घुलनशील करके प्राप्य रूप में परिवर्तित करते हैं जिससे पौधा आसानी से फॉस्फोरस को ग्रहण कर लेता है।

प्रयोग विधि–

फॉस्फोरस घोलक बैक्टीरिया (पी.एस.बी.)/पी.एस.एम. (Phosphorus solubilizing micro-organisms) कल्चर का उपयोग भी एजोटोबेक्टर या राइजोबियम की तरह ही बीज उपचार, भूमि उपचार व पौध उपचार के रूप में किया जाता है, जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

माइकोराइजा (Mycorrhizae)–

यह एक विशेष प्रकार का कवक होता है जो बहुशाखीय लम्बे तंतुओं से बना होता है। पौधों व फसलों की जडों में इसके तंतु प्रवेश कर जाते हैं। तंतुओं का वह भाग जो जड़ों के बाहर रहता है मिट्टी से लगातार फॉस्फोरस अवशोषित करता रहता है।

यह फॉस्फोरस, तंतुओं के अन्दर गति कर पौधों की जड़ क्षेत्र के अन्दर पहुँच जाता है। कवक व पौधों की जड़ों के बीच सह–जीविता होती है जिससे कवक मृदा से जल एवं खनिज लवणों को अवशोषित कर पौधों को प्रदान करता है तथा पौधे कवक को कार्बनिक भोज्य पदार्थ प्रदान करते हैं।

वेसिकूलर आरबसक्यूलर माइकोराइजा (Vesicular arbsuclar mycorrhiza)

इस माइकोराइजा में कवक पौधों की जड़ों में संक्रमण करके पौधों की जड़ों की कोशिकाओं के अन्दर पहुंच जाते हैं तथा वहाँ पर कवक एक विशेष प्रकार की रचना बेसिल्लस और अरबसल्लस का निर्माण करता है, बेसिल्लस एक गुब्बारे के आकार की रचना होती है जो कि अरबसल्लस के द्वारा जुड़ी रहती है तथा इनके कवक सूत्र मृदा में स्पोरोकारपस में स्पोर्स भरे रहते हैं जिनके फटने से स्पोर्स मृदा में फैल जाते हैं तथा अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने पर यह दूसरे पौधे (host) में संक्रमण करते हैं। इस माइकोराइजा की पाँच प्रमुख प्रजातियाँ होती हैं– 1. ग्लोमस, जिगस्पोरउ, एकुलोस्पोरा, एण्डोगन और स्किलिरोसिस्टस ज्ञात है जिनमें से ग्लोमस प्रजाति प्रमुख हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में वाम फंन्जाई का उत्पाद 'Nutrink' नामक जैव उर्वरक तैयार किया गया है जिसके एक पैकिट का मूल्य 20 रु. प्रति कि.ग्रा. है। एक एकड़ भूमि को उपचारित करने के लिए 3–5 कि.ग्रा. मात्रा चाहिए।

माइकोराइजा के लाभ–

1. यह जड़ तंत्र के बाहरी भाग का विस्तार करता है जिससे कि कवक सूत्र अधिक गहराई में जाकर पोषक तत्वों (फॉस्फोरस, नत्रजन, पोटैशियम, जिंक तथा गंधक) को मृदा में अवशोषित करके उनका संचयन कवक सूत्रों के मेन्टल/अरबसटलस में करते हैं।
2. यह कुछ वृद्धि कारकों ऑक्जीन, साइटोकाइनिन एवं जिबरालिन्स तथा विटामिन का स्राव करते हैं जिससे पौधों की वृद्धि होती है।
3. दलहनी फसलों में माइकोराइजा को राइजोबियम के साथ निवेशन करने से फॉस्फोरस के साथ–साथ नत्रजन की मात्रा में भी वृद्धि होती है।
4. माइकोराइजा वृक्ष दूसरे वृक्षों में माइकाराइजल सहजीविता स्थापित कर लेते हैं तथा दूसरे वृक्षों में पोषक तत्वों की कमी होने पर यह उस वृक्ष में पोषक तत्वों का स्थानान्तरण करते हैं।
5. माइकोराइजा के कवक सूत्र मृदा में गहराई तक फैल जाते हैं तथा सूखने की स्थिति में पौधों के लिए पानी की पूर्ति करते हैं।

जैव उर्वरकों के लाभ–

जैव उर्वरकों के उपयोग से होने वाले लाभ निम्नानुसार है–

1. जैव उर्वरक पौधों को नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की आपूर्ति करते हैं।
2. ये पौषक तत्वों के सस्ते स्रोत हैं।
3. कुछ जैव उर्वरक जैसे एजोटोबेक्टर, एजोला व नीलहरित शैवाल हार्मोन्स, विटामिन आदि का स्राव भी करते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
4. इनके उपयोग से फसलों की उपज में 10–20 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।
5. कुछ जैव उर्वरक एन्टीबायोटिक उत्पन्न करते हैं जिससे मृदा जनित रोगों का प्रभाव कम होता है।
6. इनके उपयोग से मृदा की भौतिक अवस्था में सुधार होता है।
7. नील हरित शैवाल व एजोला नाइट्रोजन के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोहा, तांबा, मैगनीज, जस्ता आदि उपलब्ध कराते हैं।

सारणी– विभिन्न जैव उर्वरकों की नत्रजन स्थिर/फॉस्फोरस घुलनशील बनाने की क्षमता

जैव उर्वरकों का नाम		नाइट्रोजन स्थिर क्षमता (कि.ग्रा./है./वर्ष)	फसलें	उत्पादन वृद्धि (प्रतिशत में)
अ.	**नत्रजनीय जैव उर्वरक**			
1.	राइजोबियम कल्चर	250–300	दलहनी फसलें	0–60
2.	एजोटोबैक्टर	10–60	धान्य फसलें	5–30
3.	एजोस्पीरिलम	0–40	ज्वार, धान आदि	0–20
4.	नील हरित शैवाल	25–30	धान	0–15
5.	एजोला	25–30	धान	0–15
ब.	**फॉस्फोरस जैव उर्वरक**			
1.	पी.एस.बी. कल्चर	20–25	सभी फसलें	20–30
2.	माइकोराइजा (वाम)	15–20	मक्का, धान, गेंहू अलसी, प्याज,	20–30

सारणी– विभिन्न दलहनी फसलों की नत्रजन स्थिर करने की क्षमता

	फसल	नाइट्रोजन स्थिर क्षमता (कि.ग्रा./है.)
1.	लूसर्न (Alfalfa)	100–300
2.	तिपतिया (Clover)	100–150
3.	मोठ (Cluster bean)	37–196
4.	मटर (Peas)	46
5.	मसूर (Lentil)	35–100
6.	सौंफ (Fenugreek)	44
7.	सोयाबीन (Soyabean)	49–130
8.	लोबिया (Cowpea)	80–125
9.	अरहर (Pigeonpea)	68–200
10.	उड़द (Blackgram)	50–55
11.	चना (Chickpea)	85–110
12.	सेम (Commanbean)	3–57
13.	मूंगफली (Groundnut)	50–206
14.	मूंग (Greengram)	50–66

Source : Wani & Lea (1992), subba Rao et al (1990)

जैव उर्वरकों के प्रयोग करने में सावधानियाँ :–

1. जीवाणु कल्चर किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से ही खरीदें तथा पैकेट पर लिखी अन्तिम तिथि व फसल का नाम अवश्य देख लें।
2. कल्चर का भण्डारण ठंडे स्थान पर ही करें।
3. पैकेट पर लिखे दिशा–निर्देशों का पालन करें।
4. घोल बनाने के लिए पानी को निर्जर्मीकृत (Sterilized) किया जाना आवश्यक होता है। ऐसा न करने से पानी में स्थित जीवाणु, कल्चर से जीवाणुओं को हानि पहुंचा सकते हैं।
5. कल्चर को रासायनिक खाद तथा कृषि रसायनों के साथ न मिलाये।
6. यदि बीज को किसी पारायुक्त रसायन से उपचारित करना हो तो पहले रसायन का प्रयोग कर लें उसके पश्चात कल्चर की दोगुनी मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।
7. यदि मिट्टी अम्लीय हो तो कल्चर से उपचारित बीजों पर पहले चूने की और यदि क्षारीय भूमि है तो जिप्सम की परत चढ़ा कर बुआई करें।
8. पैकेट को उपचारित करते समय ही खोलना चाहिए तथा उपचारित बीजों को तुरन्त बो दें, धूप में ना रखें।
9. उपचारित बीज तथा मृदा रासायनिक उर्वरक सीधे सम्पर्क में न आने पायें। अतः रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बुवाई के समय न किया जाये।
10. बुवाई के उपरान्त बचे हुए बीजों को खाने के उपयोग में

हरी खाद के लिए प्रयोग होने वाली फसलों को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जाता हैं–

(1) दलहनी फसलें (Leguminous Crops)– सनई, ढैंचा, मूँग, उडद, ग्वार, लोबिया, नील, बरसीम, सैंजी, सोयाबीन, रिजका आदि।

(2) अदलहनी फसलें (Non-leguminous Crops)– राई, जौ, जई, तोरिया, सरसों, मक्का, ज्वार, सूरजमुखी आदि।

हरी खाद की फसल के आवश्यक गुण (Desirable characteristics of green manuring crop)–

(1) फसल खूब बढ़ने वाली तथा खूब पत्तियों वाली तथा शाखादार हो, ताकि प्रति हैक्टर अधिक से अधिक मात्रा में मृदा में कार्बनिक पदार्थ मिलाया जा सके। फसल के वनस्पति भाग मुलायम हो ताकि वे आसनी से सड़ सके।

(2) फसल फलीदार होनी चाहिए, क्योंकि इन पौधों की जड़ों में ग्रन्थियाँ होती हैं, जिनमें रहने वाले बैक्टीरिया वायुमण्डल की स्वतंत्र नाइट्रोजन को मृदा में अधिक मात्रा में स्थिरीकरण (fixation) करते हैं।

(3) इनका बीज सस्ता हो और आसानी से उपलब्ध हो सके।

(4) फसलों की जड़े नीचे गहरी जाए जिससे मिट्टी भुरभुरी बन सके और पोषक तत्वों को अधोमृदा (Subsoil) से निकाल कर ऊपर ले आए।

(5) हरी खाद ऐसी हो जो कि कम उपजाऊ मृदा पर भी सफलता पूर्वक उगायी जा सके तथा जल की आवश्यकता भी कम हो।

(6) फसल को कीट न लगें और उसमें रोगों के आक्रमण न होते हों तथा विषम जलवायु सहन कर सके।

(7) फसल चक्र में उसका उचित स्थान होना चाहिए। फसल की तैयारी में अधिक समय न लगता हो, उसके अधिक प्रबंध तथा देख–रेख करने की आवश्यकता न पड़ती हो।

(8) मिट्टी में उपयोगी अवशेष छोड़े।

खली की खाद (Oilcake Manure)–

तिलहनों से तेल निकालने के बाद जो अवशिष्ट पदार्थ बचा रह जाता है, उसे खली (Oilcake) कहते हैं। जब इसे खेत में खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है तो इसे खली की खाद कहते हैं। खली की खाद सान्द्र कार्बनिक खादों के वर्ग में आती हैं।

खलियों में पोषक तत्व–

खलियों में गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट की तुलना में नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पायी जाती हैं। इसके साथ ही फास्फोरस और पोटाश भी पाया जाता है।

खलियों के प्रकार (Types of oilcakes)–

खलियाँ दो प्रकार की होती हैं–(1) खाद्य खलियाँ व (2) अखाद्य खलियाँ।

(1) खाद्य खलियाँ (Edible Cakes)– ये वे खलियाँ हैं जिन्हें पशुओं को खिलाने के काम में लाया जाता है। जैसे–बिनौला, मूँगफली, सरसों, तारामीरा, तिल, नारियल आदि।

(2) अखाद्य खलियाँ (Non-edible Cakes)– ये वे खलियाँ हैं जिन्हें पशु नहीं खाते तथा इनको खेतों में खाद्य के रूप में काम में लिया जाता है। जैसे–अरण्डी, महुआ, नीम, करंज आदि।

खलियों की प्रयोग विधि –

खलियों को खेत में डालने के बाद उनके अपघटन के लिए मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी होना अतिआवश्यक है। अतः इन्हें सिंचित अर्थात् पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है। खलियों का बुवाई पूर्व कूट–पीसकर चूर्ण बना लेना चाहिए। उसके बाद उपर्युक्त समय पर एक बार में एकसार बिखेर कर जुताई कर खेत में मिला देनी चाहिए। खलियों में जितनी अधिक मात्रा में तेल होगा उतना ही उन मृदा में अपघटन देर से होगा। खलियों का उपयोग बुवाई पूर्व और पश्चात् दोनों ही तरह से किया जा सकता है।

(1) बुवाई पूर्व खलियों का प्रयोग–

(अ) महुआ की खल के अतिरिक्त सभी खलियों का चूर्ण बुवाई के 10–15 दिन पूर्व खेत में प्रयोग करना चाहिए।

(ब) महुआ की खल का प्रयोग बुवाई के लगभग दो माह पूर्व करना चाहिए। इसमें सेपोनिक नामक रसायन पाया जाता है जिसकी उपस्थिति के कारण धान की फसल के लिए सर्वोत्तम खली है।

(स) खलियों को खेत में बिखेरकर हल्की जुताई कर मिट्टी में मिला देनी चाहिए।

(2) बुवाई पश्चात् प्रयोग विधि–

(अ) अंकुरण पश्चात् पौधों के जमने के बाद पौधों के पास बारीक पिसी हुई खली के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

(ब) कन्दमूल वाली फसलों में मिट्टी चढ़ाते समय खलों का प्रयोग करना चाहिए।

विभिन्न खलियों की पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा

	खली का नाम	नाइट्रोजन	फास्फोरिक अम्ल	पोटाश
A.	**न खाने योग्य खलियाँ**			
1.	अरण्डी की खली	4.37	1.85	1.39
2.	बिनौले (बिना छिले) की खली	3.99	1.89	1.62
3.	करंज की खली	3.97	0.94	1.27
4.	महुआ की खली	2.51	0.80	1.85
5.	नीम की खली	5.22	1.08	1.48
6.	कुसुम की खली (बिना छिली)	4.92	1.44	1.23
7.	अंडों की खली	3.63	1.52	2.05
B.	**खाने योग्य खली**			
1.	नारियल की खली	3.02	1.90	1.77
2.	छिले बिनौले की खली	6.41	2.89	2.17
3.	मूँगफली की खली	7.29	1.53	1.33
4.	अलसी की खली	5.56	1.44	1.28
5.	जामुन की खली	4.95	1.65	1.90
6.	राम तिल की खली	4.73	1.83	1.31
7.	सरसों की खली	5.21	1.84	1.19
8.	कुसुम की खली (छिली हुई)	7.88	2.20	1.92
9.	तिल की खली	6.22	2.09	1.26

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. नाइट्रोजनधारी जैव उर्वरक हैं– राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पिरिलम, नील हरित शैवाल, एजोला, आदि तथा फॉस्फोरस जैव उर्वरक– पी.एस.एम./पी.एस. बी. व माइकोराइजा हैं।
2. राइजोबियम का उपयोग दलहनी फसलों में किया जाता है।
3. नील हरित शैवाल व एजोला का उपयोग धान में किया जाता है।
4. एजोटोबेक्टर व एजोस्पिरिलम जैव उर्वरकों का प्रयोग अदलहनी फसलों में किया जाता है।
5. पी.एस.एम./पी.एस.बी. का प्रयोग सभी प्रकार की फसलों व सब्जियों में किया जाता है।
6. जैव उर्वरकों का प्रयोग बीज उपचार, मृदा उपचार, पौध उपचार व कन्द उपचार के लिए किया जाता है।
7. पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ती के लिए व सभी कार्बनिक पदार्थ जो भूमि में मिलाये जाने पर, भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करते हैं, खाद कहलाते हैं।
8. जैविक खादों के उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक अवस्था में सुधार होता है।
9. प्रमुख जैविक खाद हैं– गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, पोल्ट्री खाद, मछली की खाद, हरी खाद, खली की खाद, कड्वी की खाद आदि।
10. जैविक खेती में फसल को पोषक तत्वों की आपूर्ति जैविक/कार्बनिक खाद से की जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. चने के बीजों को कौनसे जैव उर्वरकों से उपचारित करते है ?

   (अ) राइजोबियम (ब) एजोटोबेक्टर

   (स) एजोला (द) एजोस्पिरिलम

2. एजोला का उपयोग कौनसी फसल में करते है ?

(अ) गेंहूँ (ब) जौ

(स) मक्का (द) धान

3. जैविक खाद भूमि की कौनसी अवस्था पर प्रभाव डालता है ?

(अ) जैविक (ब) रासायनिक

(स) भौतिक (द) उपरोक्त सभी

4. फॉस्फेट विलेय बेक्टीरिया है–

(अ) राइजोबियम (ब) एजोटोबैक्टर

(स) स्यूडोमोनास (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. मक्का के लिए कौनसा नाइट्रोजनधारी जैव उर्वरक काम में लेते है ?
2. धान के खेत में एजोला की कितनी मात्रा प्रयोग करते हैं ?
3. जैविक खाद भूमि की संरचना में कैसे सुधार करती हैं ?
4. खाद की परिभाषा लिखिए।
5. वर्मीकम्पोस्ट बनाने में केंचुऐ की कौनसी प्रजाति सबसे अधिक प्रचलित है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. जैव उर्वरकों के लाभ बताइये ?
2. माइकोराइजा क्या है ?
3. एजोला की उपयोग विधि लिखिये।
4. वर्मीकल्चर क्या है ?
5. वर्मीकास्ट क्या है ?
6. जैविक खाद पर टिप्पणी लिखिये।
7. वर्मीकम्पोस्ट के लाभ लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. विभिन्न जैव उर्वरकों के प्रकार एवं उनकी प्रयोग विधि पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।
2. वर्मीकम्पोस्ट क्या है ?वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि का वर्णन करो।
3. गोबर की खाद बनाने की ट्रैंच विधि पर विस्तार से प्रकाश डालें।
4. नाडेप विधि से कम्पोस्ट बनाने की विधि का सविस्तार वर्णन करो।

उत्तरमाला –

1. (अ) 2. (द) 3. (द) 4. (द)

अध्याय – 12

दुग्ध रसायन
(Dairy Chemistry)

दूध (Milk)

दूध हमारे भोजन का एक आवश्यक अंग होता है। इसमें भोजन के सभी आवश्यक पोषक तत्त्व– कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ, विटामिन तथा जल पाए जाते हैं जिसके कारण दूध को सम्पूर्ण आहार की संज्ञा दी जाती है।

दूध की परिभाषाएँ:–

''दूध स्तनधारी पशुओं की दुग्ध ग्रन्थियों से प्राप्त एक तरल पदार्थ है जो नवजात शिशु के पैदा होने के तुरन्त पश्चात् उसके पोषण के लिए स्रावित होता है।''

यह परिभाषा जैविक दृष्टिकोण से दी गई है। इससे साधारण एवं असाधारण दूध जैसे खीस आदि में कोई भेद नहीं रखा गया है।

व्यापारिक दृष्टिकोण से परिभाषा (Commercial Definition)– एक या एक से अधिक स्वस्थ पशुओं से जिनका भली प्रकार से पालन–पोषण हुआ हो, वत्स–जनन के 15 दिन पूर्व और 10 दिन पश्चात् जो स्वच्छ एवं ताजा लैक्टियल क्षरण प्राप्त होता है, उसे दूध कहते हैं, इस दूध में न्यूनतम वसा की मात्रा 3.25 प्रतिशत और वसा रहित ठोस पदार्थों की मात्रा 8.5 प्रतिशत होनी चाहिए।

दूध की रासायनिक परिभाषा (Chemical Definition)– रासायनिक दृष्टि से दूध एक विषमांग उत्पाद है जिसमें वसा, प्रोटीन, शर्करा, खनिज पदार्थ तथा अन्य अवयव क्रमशः इमल्सन, कोलाईडी निलम्बन तथा वास्तविक विलयन के रूप में जल की सतत तरल प्रावस्था में उपलब्ध रहते हैं।

वास्तव में दूध की परिभाषा करते समय दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

1. परिभाषा के अन्तर्गत खीस रहित दूध आना चाहिए।
2. अपमिश्रित दूध भी इसके अन्तर्गत नहीं आना चाहिए अतः कुछ अवयवों की न्यूनतम मात्रा निर्धारित कर देनी चाहिए।

दूध के अवयवः– दूध एक अपारदर्शी द्रव है जो वसा, प्रोटीन, लैक्टोज, खनिज पदार्थ एवं जल से मिलकर बना होता है। दूध में विभिन्न अवयव समान मात्रा में नहीं पाए जाते है इनमें सदैव भिन्नता पाई जाती है। भिन्नता बहुत से कारणों से जैसे– पशुओं को खिलाया जाने वाला चारा, पशु की उम्र, जलवायु इत्यादि से होती है। विभिन्न जातियों के पशुओं जैसे– गाय, भैंस, भेड़, बकरी तथा ऊँट आदि के दूध का संघटन भिन्न होता है।

दूध में पाए जाने वाले अवयवों को उपस्थिति के आधार पर दो भागों में बाटाँ गया है– वसा एवं वसा रहित ठोस पदार्थ, जल इन दोनों प्रकार के अवयवों के वाहक के रूप में होता है। दूध में पाए जाने वाले मुख्य अवयवों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है–

1. **दुग्ध वसा (MilkFat) :** दुग्ध वसा दूध का एक मुख्य अवयव है जो कि सबसे अधिक भिन्नता रखता है। वसा दूध में पायस (Emulsion) के रूप में उपस्थित रहती है। इसलिए यह आसानी से पच जाती है। दूध में उपस्थित वसा गोलिकाओं के रूप में पाई जाती है जिसे आसानी से दूध से अलग किया जा सकता है।

   दूध की वसा के मुख्य अवयव, वास्तविक वसा (True Fat), फॉस्फोलिपिड, स्टीरॉल तथा स्वतंत्र वसीय अम्ल पाए जाते हैं। दुग्ध वसा में सर्वाधिक ओलिक अम्ल 33 प्रतिशत तथा पामेटिक अम्ल 25 प्रतिशत पाए जाते हैं। दुग्ध वसा में कुल मिलाकर 43 प्रतिशत असंतृप्त वसीय अम्य तथा 57 प्रतिशत संतृप्त वसीय अम्ल पाए जाते हैं। वसा ऊर्जा का एक अच्छा स्त्रोत होता है। एक ग्राम दुग्ध वसा से 9.3 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है और लगभग 55–60% दूध की ऊर्जा केवल दुग्ध वसा से आती है। वसा में घुलनशील विटामिन A, D, E तथा K प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। सामान्यतः गाय के दूध में 4.8 प्रतिशत मुर्रा भैंस के दूध में

7.6 प्रतिशत एवं मानव दूध में 3.7 प्रतिशत वसा पाई जाती है।

दुग्ध वसा का पोषक महत्व (Nutritive importance of milk fat) :

1. भारतीय अधिकतर शाकाहारी है अतः उनके भोजन में पशु वसा का मुख्य स्रोत है।
2. घी से कार्बोहाइड्रेटस की तुलना में लगभग 2.25 गुणा अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है।
3. दुग्ध वसा के अवयव फास्फोलिपिंड का जैविक महत्व बहुत अधिक है जिसका विवरण निम्नवत् है–
   (i) यह रक्तस्कन्दन में सहायक होता है।
   (ii) ऊतकों के चयापचय में सहायक होता है।
   (iii) वसा प्रोटोप्लाज्म की संरचना का प्रमुख अवयव है।
   (iv) यह प्रजनन एवं शरीर विकास दोनों में सहयोग देता है।
   (v) यह कोशिकाओं के पोषण का कार्य करता है।
   (vi) लैसिथिन दुग्ध वसा को सुरक्षित रखने में मददगार है।
4. दुग्ध वसा से शरीर को विटामिन तथा कोलस्टैरोल प्राप्त होते हैं।
5. दुग्ध वसा में शरीर के लिए आवश्यक वसीय अम्ल जैसे लिनोलेइक अम्ल मिलते हैं।
6. इसमें कम द्रवणांक बिन्दु वाले वसीय अम्ल होने के कारण पाचन संस्थान में इनका पाचन शीघ्र होता है।

2. **दुग्धम (Lactose) :** दुग्धम दूध में पाया जाना वाला मुख्य कार्बोहाइड्रेट है। दूध में मीठापन दुग्धम के कारण ही होता है। दुग्धम एक द्विशर्करीय है जो ग्लूकोस और एक गैलेक्टोस अणुओं के मिलने से बनता है।

$$\underset{\text{ग्लूकोज}}{C_6H_{12}O_6}+\underset{\text{गैलेक्टोस}}{C_6H_{12}O_6} \longrightarrow \underset{\text{सूक्रोज}}{C_{12}H_{22}O_{11}}+\underset{\text{जल}}{H_2O}$$

दूध के अंदर यह घुलनशील अवस्था में होता है। दुग्धम ऊर्जा का अच्छा साधन है एक ग्राम दुग्धम में 4.0 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है यह शर्करा की अपेक्षा लगभग 1/4 भाग मीठा होता है। सामान्यतः गाय के दूध में 4.9 प्रतिशत, भैंस के दूध में 5.48 प्रतिशत एवं मानव दूध में 6.98 प्रतिशत दुग्धम पाया जाता है।

लैक्टोज का पोषक महत्व
(Nutritive importance of lactose) :

1. लैक्टोज दूध के ऊर्जा मान में वृद्धि करता है।
2. यह शरीर में विटामिन संश्लेषण में सहायक होता है।
3. यह आंत द्वारा कैल्शियम एवं फास्फोरस के अवशोषण में सहायता करता है।
4. लैक्टोज आंत में लैक्टिक अम्ल उत्पन्न करता है जो अम्ल उत्पादक जीवों के विकास को प्रोत्साहित कर पैथोजैनिक (रोगकारी) जीवाणुओं की वृद्धि को रोक देता है।
5. दूध मस्तिष्क तथा तंत्रिका तन्तुओं में उपस्थित लैक्टोज के लिए मुख्य स्रोत है। लैक्टोज का अवयव ग्लैक्टोज मस्तिष्क तथा नाड़ी संस्थान के लिए आवश्यक है।
6. यह अन्य शर्कराओं की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यवर्धक है।

3. **प्रोटीन (Protein) :** यह दूध के अन्य मुख्य अवयवों में से एक है जो शरीर की कोशिका के निर्माण लिए परमावश्यक है। दूध में मुख्यतः तीन प्रकार की प्रोटीन कैसीन, एलब्यूमिन, एवं ग्लोब्यूलिन पाई जाती है। दूध प्रोटीन में कैसीन 80 प्रतिशत होती है जो पायस के रूप में पाई जाती है। ये तीनों प्रोटीन एमिनों अम्ल की बनी होती है तथा पचने से यह प्रोटीन एमिनों अम्ल में टूट जाती है तभी इनका शोषण हो पाता है। दूध का सफेद रंग केसीन के कारण होता है। दूध में केसीन की मात्रा 2.0 से 3.5 तक पाई जाती है। गाय के दूध में 3.5 प्रतिशत तथा भैंस के दूध 3.6 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है।

केसीन की पोषक उपयोगिता (Nutritive importance of Casein) :

1. इस प्रोटीन में लगभग सभी अनिवार्य अमनो अम्ल (थियोनीन, वेलीन, ल्यूसिन, आइसोल्यूसिन, लाइसिन, मिथियोनीन, फिनाइलेनाइन, ट्रिप्टोफेन, आर्जीनीन तथा हिस्टीडीन) प्राप्त हो जाते हैं।
2. यह प्रोटीन पाचन प्रणाली में लगभग 97–98 प्रतिशत तक पच जाती है तथा लगभग 76 प्रतिशत तक शरीर में शोषित हो जाती है।
3. यह आयोडीन तथा भारी धातुओं में संयुक्त होकर एक उपयोगी वाहक के रूप में कार्य करती है।
4. केसीन से फास्फोरस तथा कैल्शियम भी प्राप्त होता है।

4. **खनिज पदार्थ (Mineral Matter) :** अन्य अवयवों की तरह दूध के खनिज शरीर को ऊर्जा तो प्रदान नहीं करते परन्तु यह जीवन के लिए परमावश्यक होते है। दूध के मुख्य खनिज पदार्थ निम्न है– कैल्शियम (Ca), फॉस्फोरस (P), आयरन (Fe), पोटेशियम (K), मैगनीशियम (Mg), सोडियम (Na), गंधक (S), कॉपर (Cu), कोबाल्ट (Co), जिंक (Zn), आयोडीन (I), इत्यादि है। दूध कैल्शियम एवं फास्फोरस प्राप्ति का अच्छा स्रोत होता है। कैल्शियम और फास्फोरस बच्चों की हड्डियों के निर्माण एवं विकास के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। दूध में खनिज पदार्थों की मात्रा 0.70 से 0.90 प्रतिशत तक होती है।

खनिज लवणों की पोषक उपयोगिता (Nutritive importance of Minerals) :

1. फास्फोरस हड्डी, दांत तथा मांस निर्माण में कार्य करता है।
2. शरीर को आकार तथा दृढ़ता प्रदान करने वाला कंकाल खनिज लवणों का बना होता है।
3. शरीर के अवयवों की रचना में प्रयुक्त प्रोटीन तथा वसा के साथ जुड़ कर लवण योगदान करते हैं। खनिज लवणों (कैल्शियम, फास्फोरस आदि) की कमी से बच्चों में रिकेट तथा वयस्कों में आस्टियोमेलेशिया व आस्टोपोरोसिस हो जाता है।
4. शरीर विकास, दुग्ध उत्पादन, प्रजनन तथा शरीर एवं रख–रखाव में लवण उपापचयी क्रियाओं में भाग लेते हैं। लवणों की कमी होने पर उत्पादन घटता है तथा बांझपन भी हो सकता है।
5. **विटामिन (Vitamins) :** दूध में पाई जाने वाली विटामिनों को घुलनशीलता के आधार पर दो भागों में बाटाँ गया हैं–

1. जल में घुलनशील विटामिन–विटामिन बी काम्पलेक्स के थायमीन, राईबोफ्लेविन, बायोटिन, फोलिक अम्ल, पाइरीडॉक्सीन आदि तथा विटामिन सी सम्मिलित है।
2. वसा में घुलनशील विटामिन– विटामिन ए, डी, इ, तथा विटामिन–के पाई जाती है। विटामिन शरीर की साधारण वृद्धि के लिए परमावश्यक है । यदि इन विटामिनों को खुराक में नहीं दिया जाए तो कई तरह की बीमारियाँ हो जाती है।

6. **किण्वक (Enzymes) :** किण्वकों का क्षरण जीवित कोषों से होता है तथा यह कार्बनिक उत्प्रेरक की भाँति कार्य करते है। किण्वक अपने कार्य में बहुत ही विशिष्ट होते है। दूध में मुख्य किण्वक– लेग्टेज, फास्फेटेज, एमाइलेज, परआक्सीडेज, ईस्टरेजेज तथा लाईपेज, जेन्थीन आक्सीडेज, प्रोटीएज, कैटालेज, हाइड्रोजिनेज तथा एल्डोलेज पाए जाते है जो इसके पोषक तत्त्वों को विघटित करते है।
7. **जल (Water):** दूध में जल की मात्रा अन्य घटकों की तुलना में सबसे अधिक होती है। गायों के दूध में लगभग 86 प्रतिशत और भैंस के दूध में 83 प्रतिशत होता है। दूध में अधिक जल होने से दूध के घटकों की पाचकता बढ़ जाती है। यह दूध के अन्य अवयवों का वाहक होता है।

दूध का संघटन (Composition of Milk)–दूध में मुख्य रूप से जल वसा, प्रोटीन, दुग्धम (शर्करा), खनिज पदार्थ, विटामिन व किण्वक पाए जाते है लेकिन सभी स्तनधारियों के दूध में इनकी मात्रा अलग–अलग होती है तथा पशुओं के नस्ल के अनुसार भी बदल जाती है। दूध का औसत संघटन तालिका के माध्यम से निम्न प्रकार है–

सारणी–विभिन्न प्रजातियों के दूध का औसत रासायनिक संघटन

क्र. सं	जाति	जल	कुल ठोस	वसा रहित ठोस पदार्थ	वसा	प्रोटीन	दुग्धम	खनिज पदार्थ
1	गाय	86.61	13.19	9.25	4.14	3.58	4.96	0.71
2	भैंस	82.76	17.24	9.86	7.38	3.60	5.48	0.78
3	औरत	87.43	12.57	8.82	3.75	1.63	6.98	0.21
4	बकरी	87.00	13.00	7.75	4.25	3.52	4.27	0.86
5	भेड़	80.71	19.29	11.39	7.90	5.23	4.81	0.90
6	ऊंटनी	87.61	12.39	7.01	5.38	2.98	3.29	0.70
7	गधी	89.03	10.97	8.44	2.53	2.01	6.07	0.41
8	घोड़ी	89.04	10.96	9.37	1.59	2.69	6.14	0.51

दूध के संघटन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting composition of milk) : दूध का संघटन कई कारकों से प्रभावित होता है जो निम्न प्रकार से है–

1. **पशु की जाति (Animal Species) :** स्तनधारियों की जातियों के अनुसार दूध का संघटन बदल जाता है उदाहरण के लिए गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट, आदि के संघटन में।
2. **पशु की नस्ल (Animal Breed) :** दूध की मात्रा व संघटन पर पशुओं की नस्ल का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए गाय की नस्ल–साहीवाल, हरियाणा, सिंधी व नागौरी आदि के दूध का संघटन भिन्न होता है तथा मुर्रा भैंस के दूध में वसा की मात्रा 7.4% मिलती है जबकि भदावरी भैंस के दूध में 11–13%तक वसा पाई जाता है।
3. **पशु की आयु (Age of animal) :** निश्चित आयु के बाद पशु का दुग्ध उत्पादन घटता जाता है तथा उसके संघटन

में अंतर आ जाता है।

4. **चारे का प्रयोग :** पशु को दिए जाने वाले चारे से दूध में संघटन पर काफी प्रभाव पड़ता है। पशुओं को दलहनी चारा खिलाने से दूध की मात्रा बढ़ती है तथा बिनौला खिलाने से दूध में वसा की मात्रा बढ़ जाती है।
5. **मौसम का प्रभाव (Effect of weather) :** पशुओं के दूध का संघटन अलग–अलग मौसमों में बदलता रहता है। वर्षा के मौसम में हरा चारा अधिक मिलने के कारण दूध की मात्रा में वृद्धि के साथ संघटन में अंतर आता है।
6. **बीमारियों का प्रभाव (Effect of Disease) :** पशुओं में रोगों के कारण भी दूध का संघटन बदल जाता है उदाहरण के लिए थनैला रोग में दूध की मात्रा व वसा की मात्रा प्रभावित होती है। रोगों के कारण दूध की सुगंध भी बदल जाती है।
7. **ब्याँत की अवस्था :** ब्यात की अवस्था के अनुसार भी दूध का संघटन व उसकी मात्रा प्रभावित होती है ब्याँत के प्रारम्भ, मध्य तथा अंत में दूध का संघटन भिन्न–भिन्न होता है। प्रारम्भ अवस्था में दूध में वसा की मात्रा कम तथा बाद में बढ़ जाती है।
8. **दूध दोहन की अतंरावधि :** दूध दोहन की समयावधि दूध की मात्रा व संघटन दोनों को प्रभावित करती है। सुबह के दूध की मात्रा सांयकाल के दूध की अपेक्षा अधिक होती है।
9. **व्यायाम का प्रभाव :** नियमित व्यायाम से पशु की दूध की मात्रा में कुछ कमी आ जाती है परन्तु वसा की मात्रा बढ़ जाती है।

दूध के भौतिक गुणः–

1. दूध का रंग सफेद होता है। गाय का दूध कुछ पीलापन लिए होता है। दूध में पीलापन कैरोटीन की मात्रा के कारण होता है।
2. दूध का स्वाद मीठा होता है।
3. गाय के दूध का आपेक्षिक घनत्व 1.028 से 1.030 तथा भैंस के दूध का आपेक्षिक घनत्व 60°F तापक्रम पर 1.032 होता है।
4. दूध का उबाल बिन्दु 101°C तथा हिंमाक बिन्दु –0.52 से 0.56°C होता है।
5. दूध की पी.एच. मान 6.4 से 6.7 तक होता है। अतः कुछ अम्लीय होता है।
6. दूध का अपवर्तनांक 1.3440–1.3480 होता है जबकि पानी का अपवर्तनांक 1.33 होता है।
7. दूध की विद्युत संचालकता 0.005 म्होज होती है।
8. दूध में अम्लता दो प्रकार की होती है प्राकृतिक व विकसित। प्राकृतिक अम्लता का कारण CO_2 साइटेटस, एलब्यूमिन, केसीन और फास्फेट होते है। ताजे दूध में यह 0.11–0.14% होती है।
9. दूध का गाढ़ापन 68°F पर 1.5 से 2.0 सेंटी पाइस होता है केसीन, वसा एलब्यूमिन आदि दूध के गाढ़ेपन को प्रभावित करते है।

दूध के वैधानिक मानक– गाय व भैंस के दूध के वैधानिक मानक अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग निर्धारित किए गए है जिससे कि दूध में मिलावट को रोका जा सके तथा उसकी गुणवत्ता बनी रहें। राजस्थान में वैधानिक मानक गाय के दूध में वसा– 3.5 प्रतिशत, तथा वसा रहित ठोस पदार्थ 8.5 प्रतिशत एवं भैंस के दूध में वसा–6.07 प्रतिशत, वसा रहित पदार्थ–9.0 प्रतिशत निश्चित कियें गये है।

विपणित दूध (Market Milk)–

विपणित दूध से अभिप्रायः उस पूर्ण, प्रसंस्करित एवं सुरक्षित दूध से है जो व्यक्ति उपभोक्ता को सीधे उपभोग हेतु बाजार में क्रय के लिए उपलब्ध कराया गया हो इसमें वह दूध सम्मिलित नहीं है जो उत्पादक द्वारा अपने परिवार में उपभोग हेतु रख लिया जाता है या उद्योगों में दुग्ध उत्पाद निर्माण के लिए उपयोग होता है।

स्वास्थ्य दुधारु पशुओं के पूर्ण दोह से प्राप्त पूर्ण, ताजा एवं स्वच्छ स्राव जिसमें ब्याने से 15 दिन पूर्व तथा 5 दिन बाद का स्राव सम्मिलित न किया गया हो तथा इसमें वसा तथा वसा सहित ठोस की निर्धारित मात्रा भी उपस्थित होनी चाहिए।

विपणन–दूध के प्रकार (Types of Market Milk):–

1. **सम्पूर्ण दूध (Whole Milk):–** स्वस्थ पशु से प्राप्त किया गया दूध जिसके संघटन में कोई परिवर्तन न किया गया हो, पूर्ण दूध कहलाता है। पूर्ण दूध में वसा तथा वसाविहीन ठोस पदार्थ की न्यूनतम मात्रा गाय के दूध में 3.5 तथा 8.5 और भैंस के दूध में 6 तथा 9 प्रतिशत क्रमशः रखी गई है।
2. **मानकीकृत दूध (Standardized Milk):–** यह वह दूध जिसमें वसा तथा वसाविहीन ठोस पदार्थ की मात्रा दूध से क्रीम निकाल कर या उसमें सप्रेटा मिलाकर दूध में न्यूनतम वसा 4.5 प्रतिशत तथा वसाविहीन ठोस (solid not fat, SNF) 8.5 प्रतिशत रखी जाती है।

3. **टोण्ड दूध (Tonad Milk):–** पूर्ण दूध में पानी तथा सप्रेटा दूध के पाउडर को मिलाकर टोण्ड दूध प्राप्त किया जाता है। वसा तथा वसाविहीन ठोस की न्यूनतम मात्राएँ 3 तथा 8.5 प्रतिशत निर्धारित की गई है।

4. **डबल टोण्ड दूध (Double Tonad Milk):–** वसा तथा वसाविहीन ठोस की न्यूनतम मात्राएँ 1.5 तथा 9 प्रतिशत रखी गई है।

5. **पुनःरचित दूध (Reconstituted Milk):–** जब दूध के पाउडर को पानी में घोलकर दूध तैयार किया जाता है (लगभग 1 भाग दूध पाउडर 7 से 8 भाग पानी में) तो इसे रिकन्सटिट्यूटेड मिल्क कहते है।

6. **पुनः संयोजित दूध (Recombined Milk):–** वह दूध जो बटर आयल, सप्रेटा दूध पाउडर तथा पानी की निश्चित मात्राओं को मिलाकर तैयार किया जाता है उसे पुनः संयोजित दूध कहते है। जिसमें वसा तथा वसाविहीन ठोस की न्यूनतम मात्राएँ क्रमशः 3 तथा 8.5 प्रतिशत निर्धारित की गई है।

7. **पूरित दूध (Filled milk):–** जब पूर्ण दूध में से दुग्ध वसा को निकाल कर उसके स्थान पर वनस्पति वसा को स्थापित कर दिया जाता है तो इसे पूरित दूध कहते है।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध संसाधन (Clean Milk Production & Milk Processing)

स्वच्छ दूध (Clean Milk) :– स्वस्थ एवं स्वच्छ पशुओं से स्वच्छ वातावरण में साफ हाथों से साफ बर्तन में निकाला गया दूध स्वच्छ दूध कहलाता है।

अधिकतर स्वस्थ पशुओं से प्राप्त गंदगी एवं हानिकारक जीवाणुओं से मुक्त दूध को स्वच्छ दूध कहते है। जब तक दूध पशुओं के अयन में रहता है वह स्वच्छ ही रहता है जब तक कि पशु को कोई रोग न हो। दूध को अयन से बाहर निकालते ही दूषित वायु (वातावरण) के सम्पर्क में आने से उसमें अनेकों हानिकारक जीवाणु प्रवेश कर जाते है जो दूध के गुणों को प्रभावित करते है।

सुरक्षित दूध (Safe Milk):– यह वह दूध है जिसमें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अशुद्विया बिल्कुल नहीं पायी जाती हैं और जीवाणुओं की संख्या भी बहुत कम होती है तथा मनुष्य के उपयोग के लिए स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से पूर्णतः सुरक्षित होता है। इसके रख–रखाव गुण भी प्रत्येक स्वच्छ दूध से अधिक होते हैं। वास्तव में सुरक्षित दूध सदैव ही एक स्वच्छ दूध ही है परन्तु प्रत्येक स्वच्छ दूध हमेशा सुरक्षित होना प्रमाणित नहीं होता।

दूध के दूषित होने के कारण :– दूध को दूषित करने वाली अशुद्धियाँ दो प्रकार की पाई जाती हैं।

1. **प्रत्यक्ष अशुद्धिः–** जो आँख से दिखाई देती है जैसे चारे–दाने के तिनके या कण, गोबर के कण, बाल, मक्खी–मच्छर व धूलकण आदि आते है इनको कपड़े या छलनी से छानकर दूर कर सकते है।

2. **अप्रत्यक्ष अशुद्धिः–** इसके अन्तर्गत वे सभी गंदगी आती है जो आँख से प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती है सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है जैसे– जीवाणु इत्यादि। दूध में यह गंदगी दो स्थानों से आती है।

(अ) अयन के भीतर सेः– अयन के द्वारा हानिकारक जीवाणु रोगग्रस्त अवस्था में टूटी–फूटी अयन कोशिकाएँ व रक्त कण हो सकते है। जीवाणु चोट ग्रस्त होने पर घाव के द्वारा जीवाणु दूध में प्रवेश कर जाते है।

(ब) अयन के बाहर सेः– इसमें हर प्रकार की गंदगी संभव है। यह ज्यादातर दूषित वस्तुओं से जीवाणुओं का दूध बर्तन, दूषित वस्तुओं से दूध में प्रवेश कर जाने से होती है। यह अनेकों कारणों से हो सकती है जैसेः– 1.पशु द्वारा 2. दूध दोहने वाले के द्वारा 3. दुग्धशाला या पशुशाला से 4. जल से 5. दूध के बर्तनों से 6. वातावरण से 7. चारे–दाने से तथा 8. दूध निकालने वाली मशीन द्वारा।

स्वच्छ दूध उत्पादनः– स्वच्छ दूध उत्पादन करने के लिए निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखते है।

1. **स्वच्छ एवं साफ पशु (Clean & Healthy Animal):–** जिस पशु से दूध प्राप्त करना हो वह संक्रामक रोगों से, थनैला रोग से तथा क्षय रोग से ग्रस्त नहीं हो क्योंकि इन बीमारियों के जीवाणु दूध में आ जाते है ऐसे दूध का उपयोग करने पर मनुष्य भी रोगी हो सकता है। अतः दूध देने वाले पशुओं का नियमित समय पर स्वास्थ परीक्षण कराते रहते है।

   दूध निकालने से एक से डेढ़ घंटा पूर्व पशु के शरीर की सफाई भी आवश्यक है। विशेषकर पशु के पिछले व निचले भागों की सफाई अच्छी तरह से करते है। इन भागों पर खुरेरा कर के शरीर पर लगी गोबर या मिट्टी के कणों को हटाकर पानी से धोकर साफ कर लेते है। शरीर पर लगे बाह्य परजीवियों जुएँ, कलीली आदि को हटा देते है।

2. **स्वच्छ दुग्धशाला (Clean Milking Barn):–** दुग्धशाला जिस स्थान पर पशुओं का दूध निकाला जाता है वह सदैव ही स्वच्छ तथा खुला होना चाहिए। दूध निकालने से लगभग एक से डेढ़ घंटा पूर्व दुग्धशाला से

गोबर हटाकर फर्श व नालियों को पानी से ठीक तरह से धो लेते है तथा प्रत्येक सप्ताह फिनाइल द्वारा भी धो देते है। दुग्धशाला की दीवारें तथा फर्श पक्के होने चाहिए तथा वर्ष में कम से कम दो बार सफेदी करानी चाहिए।

दुग्धशाला की बनावट इस प्रकार की हो कि उसमें सूर्य के प्रकाश तथा वायु का प्रवेश आसानी से हो सके खिड़की एवं दरवाजो पर जाली लगाकर मक्खी मच्छरों के प्रवेश को रोक देना चाहिए।

3. **स्वस्थ्य एवं स्वच्छ ग्वाला (Clean & Healthy Milker):–** दूध निकालने व्यक्ति का स्वास्थ भी अच्छा हो, उसमें किसी प्रकार की गंदी आदत जैसे– बीड़ी पीना, थूकना, इत्र लगाना आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। दूध दुहने वाले व्यक्ति के सिर के बाल छोटे अथवा कढ़े हुए तथा नाखून अच्छी तरह से कटे हुए होने चाहिए।

4. **दूध के बर्तनों की बनावट एवं सफाई (Clean & Shaped Untensils):–** गंदे बर्तनों में निकाला गया दूध शीघ्र खराब हो जाता है। दूध निकालने के बर्तन छोटे मुँह वाले, तथा बिना जोड़ वाले बर्तन होने चाहिए। बड़े मुँह का बर्तन होने पर जीवाणु शीघ्र तथा अधिक मात्रा में प्रवेश कर सकते है। बर्तनों को साफ तथा जीवाणु रहित करने के लिए उनको साफ पानी से धोकर बाद में गर्म पानी, भाप अथवा क्लोरीनयुक्त जल से धोकर उल्टा रखकर सुखा देते है।

5. **पशु को चारा–दाना खिलाने की विधि:–** पशु का दूध निकालने एक से डेढ़ घंटा पूर्व चारा–दाना खिलाना चाहिए जिससे दूध निकालने के समय तक चारे के तिनके वातावरण में उड़ना बंद हो जाए। कुछ चारे जैसे– गोभी, गाजर, मेथी, साइलेज आदि खिलाने से दूध में गंध आ जाती है अतः ऐसे चारों को दूध निकालने से कम से कम दो घंटा पूर्व खिलाना चाहिए।

6. **दूध दुहने की विधि (Method of milking):–** आम तौर पर ग्वाला दूध से थनों को गीला कर लेता है। ऐसा नहीं करना चाहिए। बछड़े को दूध पिलाने के बाद दूध निकाला जाए तो थनों को साफ पानी से धोकर कपड़े से पोछकर दूध निकालना चाहिए।

7. **दूध दुहने वाले यंत्र या मशीन:–** जिन डेयरी फार्मों पर दूध निकालने के लिए मशीनों का प्रयोग किया जाता है। वहाँ दूषण सबसे अधिक होता है क्योंकि मशीन का रबड़ वाला भाग अच्छी तरह साफ नहीं हो पाता। दूध निकालने के बाद मशीन को साफ पानी, गर्म पानी तथा क्लोरीनयुक्त जल से अच्छी तरह साफ करनी चाहिए।

8. **दूध को दुग्धशाला से हटाना:–** दूध दुहने के तुरन्त बाद दुग्धशाला से हटा देते है जिससे पशुशाला की गंध दूध में प्रवेश करके उसे दूषित न कर सकें।

9. **छानना (Strainer):–** दूध दुहने के बाद आवश्यक रूप से स्वच्छ कपड़ा अथवा छलनी से छान लेते है। कपड़े को प्रयोग करने पर इसको समय–समय पर बदलते रहना चाहिए।

10. **दूध का संग्रह (Colection of milk):–** दूध को हमेशा हवादार, ठंडे स्थान पर ढककर रखना चाहिए। यदि संभव हो तो 5°C ताप पर ठंडा करके दूध रखना चाहिए। गर्मी में दूध को ठंडा करके रखना आवश्यक है अन्यथा अम्लीयता बढ़ने से दूध फट सकता है।

स्वच्छ दूध उत्पादन का महत्त्व:– स्वच्छ दूध उत्पादन निम्नलिखित कारणों से महत्त्वपूर्ण है–

1. स्वच्छ दूध का उपयोग करना स्वास्थ की दृष्टि से अतिआवश्यक है क्योंकि दूषित दूध स्वास्थ के लिए हानिकारक होता है इससे उपभोक्ताओं में रोग फैल सकते है जैसे– तपेदिक, हैजा, आंत्रज्वर, अतिसार, आंत्रशोध आदि।
2. स्वच्छ दूध को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है जबकि दूषित दूध शीघ्र खराब हो जाता है।
3. स्वच्छ दूध को एक स्थान से अधिक दूरी वाले स्थान पर सुगमता से भेजकर अधिक मूल्य प्राप्त कर सकते है।
4. स्वच्छ दूध से बने पदार्थ जैसे– दही, छाछ, लस्सी, क्रीम, आइसक्रीम, घी, खोआ, रबड़ी, पनीर, छैना आदि उच्च श्रेणी के होते है।

दुग्ध संसाधन / प्रसंस्करण (Milk Processing)

कच्चा दूध जो डेयरी पर प्राप्त किया जाता है, उसकी गुणवत्ता परीक्षण करने पर यदि परीक्षण नकारात्मक है तो दूध को स्वीकार करके इसका प्रशीतन (Cooling of milk), पास्तुरीकरण (Pasteurization) निर्जमीकरण (Sterilization) व समांगीकरण (Homogenization) जैसी क्रियाएँ करके टैंक में भरकर वितरण के लिए भेजा जा सकता है या फिर दुग्ध पदार्थो में परिवर्तन कर सकते है। दुग्ध संसाधन में निम्न क्रियाएँ करते है–(अ) दुग्ध को ठंडा करना (ब) दूध कापास्चुराइजेशन (स) निर्जमीकरण (द) संमागीकरण

(अ) दुग्ध ठंडा करना (Cooling of Milk):– यदि दूध को उत्पादन के तुरन्त बाद ठण्डा कर लिया जाता है तो उसके जीवाणुओं की संख्या नही बढ़ पाती है, और दूध को शहरों तक पहुचाने में यह दूषित भी नही होता है। दूध को ठण्डा करना

और भी आवश्यक हो जाता है क्योकि अधिक तापक्रम होने के कारण दूध में जीवाणु बहुत अधिक संख्या में पैदा हो जाते हैं जिससे दूध शीघ्र खराब हो जाता है। अधिक तर जीवाणु 10°–$40^{\circ}C$ तापक्रम पर शीघ्र वृद्वि करते हैं अतः दूध को कम तापक्रम ($5^{\circ}C$) पर रखने से जीवाणुओं की वृद्विको काफी रोका जा सकता है और इससे दूध खट्टा नही हो पायेगा।

दूध को ठंडा करने की विधियाँ–इसकी मुख्यतः दो विधियाँ है–

(I) देशी विधि (Indigenous Method) :– दुग्ध व्यवसाय में लगे हुए ऐसे व्यक्ति जो गाँवों से दूध इक्ट्ठा करके लाते हैं उनको इस शर्त पर लाइसेंस दिया जाता हैकि वे अपने दूध के बर्तन के चारो और कपड़ा लगाकर गीला रखें जिससे वाष्पीकरण से अन्दर का दूध ठण्डा रहें । इसलिए दूधियां अपने डिब्बों के चारों और भीगा हुआ कपड़ा लपेट लेते हैं और उसे बराबर तर रखते है।

(ii) वैज्ञानिक विधि (Scientific Method):– प्रायः चार प्रकार के शीतक दूध को ठण्डा करने के काम में लाये जाते है तल शीतक, कैबिनेट शीतम, प्लेट टाईप शीतक तथा दूहरी ट्यूब वाले शीतक/ये शीतक दूध को भिन्न–भिन्न मात्रा को ठण्डा करने के काम आते है इन शीतकों में दूध को ठण्डा करने के लिए विभिन्न प्रकार के माध्यम प्रयोग में लाते है–

I ठण्डा पानी:– इससे पास्चुराइज्ड दूध को $15.5^{\circ}C$ से $21^{\circ}C$ तक ठण्डा कर लिया जाता है।

II अमोनिया:– इससे दूध को $3^{\circ}C$ से $4^{\circ}C$ तक ठण्डा कर लिया जाता है।

III ब्राइन विलयन (बर्फ व नमक मिश्रण):– इससे दूध के तापक्रम को $3^{\circ}C$ से $4^{\circ}C$ तक ठण्डा किया जा सकता है।

(ब) दूध का पास्तुरीकरण (Pasteurization of Milk):– पास्तुरीकरण विधि का नाम फ्रांस के वैज्ञानिक लुईस पास्चर के नाम से लिया गया था।

परिभाषा:– पास्तुरीकरण वह क्रिया है जिसमें दूध को निश्चित तापक्रम पर निश्चित समय तक रखकर प्रायः उसके सभी जीवाणुओं को नष्ट कर दिया जाता है लेकिन दूध के खाद्य महत्व तथा क्रीम लेयर पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

पास्तुरीकरण की प्रक्रिया:– इसमें तीन प्रक्रिया सम्मिलित है–

I गर्म करना:– दूध को एक निश्चित तापक्रम तक गर्म करते है ($63^{\circ}C$ या $72^{\circ}C$)

II धारण (Holding):– गर्म दूध को एक निश्चित समय तक उसी तापक्रम पर रखना जिससे हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जायें।

III ठण्डा करना:– दूध को तुरन्त इतने तापक्रम तक ठण्डा करना जिस पर बचे जीवित जीवाणु वृद्विन करसकें।

पास्तुरीकरण की विधियाँ:– इसकी अधिक प्रचलित दो विधियाँ हैं–

(अ) कम ताप अधिक समय विधि (Low Temperature Long Time Method):– इस विधि को धारण या बैच पास्तुरीकरण भी कहते हैं। इस विधि में दूध को $63^{\circ}C$ तक गर्म करके 30 मिनट तक धारण अथवा स्थिर रखकर $5^{\circ}C$ तक तुरन्त ठण्डा कर लेते हैं। यह विधि दोहरी दीवार वाले कुण्ड में पूरी की जाती है। दो दीवारों के बीच की जगह जो रिक्त होती है उसे जैकिट कहते हैं। इसमें कुण्ड के अन्दर दूध को गर्म करने के लिए जैकिट के अन्दर प्रथम तो गर्म पानी भरते है जब दूध ठण्डा करना होता है तो इसमें से गर्म पानी निकालकर ठण्डा पानी भरा जाता है। कुण्ड की दीवारे स्टेनलेस स्टील से बनी होती है और कुण्ड के अन्दर ऐजीरेटर लगा होता है। दूध को हिलाकर सभी कणों को पूर्ण रूप से गर्म करने में सहायता करता है। पास्तुरीकरण की तीनों क्रियाएँ तापन, धारण और ठण्डा करना इसी के अन्दर पूरी की जाती है।

(ब) उच्च ताप अल्प समय विधि (High Temperature Short Time Method):– इस विधि का दूसरा नाम सतत पास्तुरीकरण भी है क्योंकि इसमे दूध लगातार बहता रहता है। इसमे दूध को $72^{\circ}C$ तक गर्म करके 15 सैंकड तक स्थिर रखते है और तुरन्त ही $5^{\circ}C$ या और कम तापक्रम तक ठण्डा कर लिया जाता है।

इस पास्तुरीकरण के छः भाग होते हैं, जो निम्न चित्रों द्वारा दर्शाये गए हैं–

(1) पुनर्जनन भाग (Regenerative Section)

(2) फ्लोट कन्ट्रोल टैंक और फ्लो कन्ट्रोल वाल्ब (Float

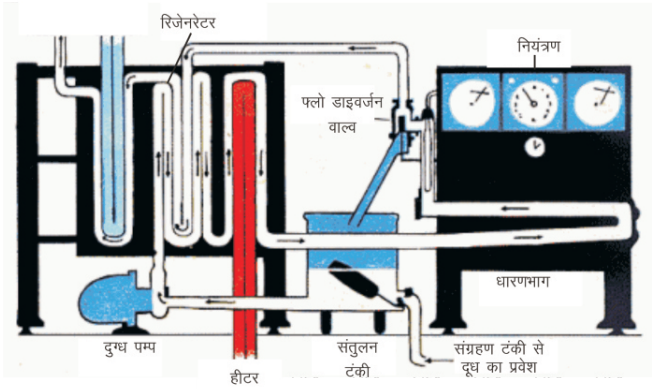



चित्र–उच्च ताप अल्प समय निरोगन विधि

Control Tank Or Flow Control Valve)

(3) गर्म करने वाला भाग (Final Heating Section With Filter)

(4) धारण भाग (Holding Tube)

(5) फ्लो डाइवर्जन बाल्व (Flow Diversion Valve)

(6) शीतलन भाग (Final Cooling Section)

सबसे पहले कच्चा दूध संग्रह कक्ष से मशीन के पुनर्जनन भाग में आता है। दूध के बहाव को समान रखने के लिए फ्लो कन्ट्रोल वाल्ब तथा टेंक की सतह को समान रखने के लिए फ्लोर वाल्ब होता है। पुनर्जनन भाग में दो ट्यूब एक दूसरे के अन्दर होती हैं। अन्दर वाली ट्यूब में पास्तुरीकृत दूध बाहर निकलता है। इसके साथ इन दोनों ट्यूब के बीच में जो स्थान खाली रहता है उसमें से कच्चा दूध बहता है और पास्तुरीकरण यन्त्र में चला जाता है। इन दोनों प्रकार के दूधों के साथ–साथ बहने से दोनों को ही समान लाभ होता है अर्थात् पास्तुरीकृत कच्चा दूध कुछ गर्म हो जाता है इसलिए पास्तुरीकृत दूध को ठण्डा करने में कम शीतल कारक तथा मामूली गर्म हुए दूध को पास्तुरीकरण करने में कम ताप की आवश्यकता होती है। पुनर्जनन भाग के बाद दूध छनने के लिए छन्ने में या स्वच्छक के लिए स्वच्छन में प्रवेश करता है। उसके बाद दूध अन्तिम बार गर्म होने के लिए तापक में चला जाता है जहाँ से यह पास्तुरीकृत दूध एक उल्टा प्रवाह वाल्ब में से बाहर निकलता है उल्टा प्रवाह वाल्ब का मुख्य कार्य पूर्ण रूप से पास्तुरीकृत नहीं हुए दूध को पुनः वापिस मशीन में भेजना होता है। दूध तापकों से निकल कर ठण्डा होने के लिए शीतकों में चला जाता है। वहाँ से ठण्डा होने के बाद शहर को भेज दिया जाता है।

लाभः–

1. अधिक दूध के लिए उत्तम विधि हैं।
2. समय कम लगता है।
3. सम्पूर्ण प्रक्रियाएँ एक ही मशीन से पूरी हो जाती है।
4. श्रम व चालू व्यय कम लगता है
5. रिजनेरेशन में गर्म भाग के तापक्रम को कच्चे दूध को गर्म करने में काम में लेते है । ऊष्मा का अच्छा उपयोग होता हैं
6. कम जगह की आवश्यकता होती है।
7. अन्य विधियों की अपेक्षा इसमें लगभग सभी थरमोफिलिक जीवाणु भी नष्ट हो जाते है।
8. बड़े दुग्ध व्यवसाय के लिए उपयोगी है।

(स) निर्जर्मीकरण (Sterilization):– व्यापारिक रूप से निर्जर्मीकरण से तात्पर्य दूध को 200°F से 211°F तापक्रम पर 30 मिनट तक गर्म करने से है यद्यपि इस दूध में जीवाणुओं की संख्या बहुत ही कम होती है तथा बहुत अधिक समय तक ठण्डी अवस्था में रखा जा सकता है।

विधिः–पहले दूध को स्वच्छ किया तथा छाना जाता है। स्वच्छ करने (Clearification) के लिए दूध को पहले 100°F से 120°F तापक्रम तक गर्म करना पड़ता है। इसके बाद दूध को समरूप तरल बनाने के लिए इसको 150°F से 160°F तापक्रम तक गर्म करते है और छानने के बाद समाांगीकरण यन्त्र में 2000 से 2500 पौंड प्रति वर्ग इंच का दाब डालकर निकालते हैं यह क्रिया 160°F पर करते है। इससे दूध की वसा की गोलिका छोटे–छोटे कणों में विभाजित हो जाती है तथा क्रीम लेयर के रूप में दूध के ऊपर प्रकट नहीं होती है इसके बाद निर्जर्मीकृत कूपियों में भरकर, सीलकर इनको एक घण्टे के लिए एक टैंक जिसमें 212°F से 230°F के तापक्रम का पानी भरा होता है । डुबो देते है फिर बोतलों को निकाल कर ठण्डा करके शहर भेज देते हैं।

समांगीकरण (Homogenization):– यह दूध की वह प्रक्रिया है जिसमें यांत्रिक विधि द्वारा दूध की वसा गोलिकाओं तथा दूध के सीरम को एक समान आकार वाले छोटे–छोटे कणों में विभाजित कर दिया जाता है जिससे दूध को संग्रह करते समय उसके ऊपर क्रीम लेयर के रूप में वसा एकत्र न हो सकें और सारे दूध में समान रूप से उपस्थित रह सकें। इस क्रियाको समांगीकरण यन्त्र द्वारा अधिक दबाव पर दूध को संचालित करके पूरा किया जाता है।

दूध की गुणवत्ता परीक्षण (Quality control of milk)

दूध गुणवत्ता कोई विकल्प नहीं है बल्कि आवश्यकता और अनिवार्यता है जो दुग्ध व्यवसाय में एक बहुत महत्त्वपूर्ण कारक है। दूध का परीक्षण उसकी शुद्धता जानने के लिए किया जाता है इसलिए इन परीक्षणों को गुणवत्ता नियंत्रण परीक्षण

कहते है। गुणवत्ता परीक्षण दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध संसाधन दो स्तरों पर करते हैं।

दुग्ध उत्पादन स्तर पर गुणवत्ता नियंत्रणः–

1. संक्रामक रोगों से ग्रसित पशुओं का परीक्षण करके पशुशाला से हटाकर तथा उनके दूध का उपयोग न करके।
2. थनैला रोगों से ग्रस्त पशुओं के समूह से पृथककर उनके दूध को उपयोग अथवा विपणन न करके।
3. ताजे दूध का C.D.B. परीक्षण करके दूध में खीस मिलावट का पता कर अलग करके।

संसाधन स्तर पर गुणवत्ता परीक्षणः– डेयरी संयत्र पर दूध को संसाधित करने से पहले उसकी शुद्धता व ताजेपन की जाँच करने के लिए कुछ परीक्षण करते है उन्हें चबूतरा ध की अम्लता 0.12 से 0.18 प्रतिशत होती है जीवाणुओं द्वारा इसकी अम्लीयता बढ़कर 0.32 या इससे भी अधिक हो जाती है। इस अम्लता तथा खीस की मिलावट का पता लगाने के लिए यह परीक्षण करते है। एक परखनली में 15–20 मि.ली. दूध लेकर गर्म करते है अगर दूध फट जाता है तो दूध रखा हुआ या खराब या खीस मिला हुआ है ऐसे दूध को अलग कर देते है।

1. **अम्लता परीक्षण (Acidity Test):–** दूध के ताजेपन की जानकारी के लिए यह परीक्षण किया जाता है। दूध में अम्लीयता दो प्रकार की होती है।

   (अ) प्राकृतिक अम्लता (Natural Acidity) :– यह दूध में फास्फेट, साइट्रेट लवण, केसीन, एलब्यूमिन, तथा दूध में घुली हुई कार्बनडाइऑक्साइड की उपस्थिति के कारण होती है। ताजे दूध में यह अम्लता 0.12 से 0.14 प्रतिशत के बीच होती है।

   (ब) विकसित अम्लता (Developed Acidity) :– यह अम्लता दूध में पाए जाने वाले लैक्टोज के किण्वन (farmentation) द्वारा उत्पन्न लैक्टिक अम्ल के कारण होती है।

सिद्धान्तः– जब अम्ल एवं क्षार एक साथ मिलाए जाते तो आपस में क्रिया करके एक–दूसरे को उदासीन कर देते है। इस उदासीन बिन्दु की अवस्था को सूचक द्वारा ज्ञात कर लिया जाता है।

दूध में अम्लता की गणना, $\frac{N}{9}$ या $\frac{N}{10}$ सोडियम हाइड्रॉक्साइड (NaOH) विलियन से अनुमापन करके करते है। इसमें फिनोल्फ्थेलिन सूचक का प्रयोग करते है। जिसकी गणना सूत्र निम्न प्रकार है–

$$\text{अम्लता प्रतिशत} = \frac{\text{NaOH की प्रयुक्त मात्रा} \times 0.01}{\frac{N}{9} \text{ दूध की मात्रा}} \times 100$$

या

$$\text{अम्लता प्रतिशत} = \frac{\text{NaOH की प्रयुक्त मात्रा} \times 0.009}{\frac{N}{10} \text{ दूध की मात्रा}} \times 100$$

विधिः– परीक्षण में काम आने वाले उपकरणों जैसे– ब्यूरेट, पिपेट, बीकर, पोर्सिलीन की प्याली आदि को आसुत जल से धो लेते है। ब्यूरेट में अथवा NaOH भरकर पाठ्यांक नोट कर लेते है। दूध को $\frac{N}{9}$ हिलाकर $\frac{N}{10}$ पिपेट द्वारा 10 मि.ली. दूध पोर्सिलीन प्याली अथवा बीकर में डालते है। इसके बाद 1 मि.ली. पिपेट द्वारा फिनौलफ्थैलिन सूचक दूध में डालकर काँच की छड़ से अच्छी तरह से मिला लेते है दोनों मिश्रण को अच्छी मिलाकर हिलाए। ब्यूरेट के नोजल के नीचे रखकर ब्यूरेट से बूँद–बूँद N/9 या N/10 NaOH विलियन दूध में डालते हैं और तब तक डालते है जब तक कि दूध का रंग हल्का गुलाबी न हो जाए। दूध में हल्का गुलाबी रंग स्थायी होने पर NaOH डालना बंद करके पाठ्यांक ले लेते है।

ब्यूरेट में NaOH के प्रथम पाठ्यांक को द्वितीय पाठ्यांक में से घटाने पर उपयोग आने वाली NaOH की मात्रा ज्ञात हो जाती है। यह प्रक्रिया दो से तीन बार तक दोहराते है जब तक कि दो समान पाठ्यांक प्राप्त नहीं होते है।

$$\text{अम्लता प्रतिशत} = \frac{\text{NaOH की प्रयुक्त मात्रा} \times 0.01}{} \times 100$$



चित्र : दूध की अम्लता ज्ञात करने के उपकरण

प्रेक्षण सारणीः–

क्र.स.	दूध का नमूना	दूध की मात्रा मि.ली. में	ब्युरेट का पाठ्यांक		प्रयुक्त NaOH की मात्रा मि.ली.
			प्रारम्भिक (मि.ली.)	अन्तिम (मि.ली.)	
1	A	10	10.0	11.7	1.7
2	A	10	11.7	13.3	1.6
3	A	10	13.3	14.9	1.6

$\frac{N}{9}$ दूध की मात्रा

$$\text{अम्लता प्रतिशत} = \frac{1.6 \times 0.01}{10} \times 100$$

$= 0.16\%$ अम्लीयता

नोट– 1. N/10 NaOH के घोल का उपयोग करने पर 0.009 अंश से गुणा करें। 1 मि.ली. N/10 NaOH = 0.009 दुग्धाम्ल

2. N/10 सान्द्रता का प्रमाणिक NaOH का विलियन बनाने के लिए 4.0 ग्राम शुष्क NaOH की मात्रा तथा N/9 सान्द्रता का प्रमाणिक NaOH का विलियन बनाने के लिए 4.5 ग्राम शुष्क NaOH की मात्रा को अलग–अलग 1 लीटर वॉल्यूमैट्रिक फ्लास्कों में लेकर आसुत जल में घोलकर 1 लीटर आयतन बनाते हैं तथा इन दोनों विलियनों का ऑक्जेलिक अम्ल के N/9 या N/10 सान्द्रता के मानक विलियनों से मानकीकरण (Standardization) कर लेते हैं।

परिणामः– दिए गए दूध के नमूने में अम्लता प्रतिशत 0.16 है अर्थात् दूध ताजा है।

सावधानियाँः–

(i) जिस स्थान पर गंदगी हो वहाँ परीक्षण नहीं करना चाहिए क्योंकि कार्बनडाइऑक्साइड के दूध में प्रवेश कर जाने से अम्लता बढ़ जाती है।

(ii) दूध में NaOH को सदैव ही एक–एक बूंद–बूंद करके डालकर उसे निरन्तर हिलाते रहना चाहिए।

(iii) हल्का गुलाबी रंग कुछ ही सैकण्ड स्थिर रहता है इसलिए ज्योंहि रंग में परिवर्तन दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि उदासीनीकरण की क्रिया पूर्ण हो चुकी है।

(iv) ब्यूरेट में NaOH का पाठ्यांक अर्द्धचन्द्रक के निम्नतम स्तर को पढ़कर नोट करते है।

(v) ब्यूरेट की रीडिग लेने के लिए यह प्रक्रिया उस समय तक दोहरानी चाहिए जब तक कि दो पाठ्यांक समान न मिल जाए।

लैक्टोमीटर द्वारा दूध का परीक्षणः– लैक्टोमीटर द्वारा दूध का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात करते है। दूध के इकाई आयतन के भार तथा समान आयतन के पानी के भार के अनुपात को दूध का आपेक्षिक घनत्व कहते है। शुद्ध पानी का इकाई आयतन का भार सदैव 1 होता है।

दूध में पानी व सप्रेटा दूध की मिलावट का पता लगाने के लिए दूध का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात करते है।

1.प्रेक्षण सारणी– दूध का तापक्रम °F में होने पर

क्र.सं.	अवलोकित लैक्टोमीटर पाठ्यांक O.L.R	लैक्टोमीटर पाठ्यांक L.R	दूध का तापक्रम °F	संशोधित लैक्टोमीटर पाठ्यांक C.L.R	दूध का आपेक्षिक घनत्व
1	30	30.5	72°F	30.5 + 1.2= 31.7	1.0317
2	28	28.5	60°F	28.5 + 00= 28.5	1.0285
3	34	34.5	52°F	34.5 - 0.8= 33.7	1.0332



चित्र : दूध का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात करने के उपकरण

सामग्री:– 1. लैक्टोमीटर 2. डेयरी फ्लोटिंग थर्मामीटर 3. लैक्टोमीटर जार 4. पेट्रीडिश 5. दूध का नमूना

विधि:– लैक्टोमीटर, डेयरी थर्मामीटर, लैक्टोमीटर जार को आसुत जल से धोकर सुखा लेते है। लैक्टोमीटर जार को पैट्रीडिश में रखकर दो तिहाई भाग तक दूध भर लेते है। इसके बाद लैक्टोमीटर को लैक्टोमीटर जार में इस प्रकार तैराते हैं कि वह दूध के बीचों–बीच तैरता रहें। जार को ऊपर तक दूध से भर देते हैं। जब लैक्टोमीटर दूध में सीधा खड़ा हो जाए तो उसका पाठ्यांक पढ़ लेते है। लैक्टोमीटर को दूध से बाहर निकालकर बीकर में रख देते है। इसके उपरान्त डेयरी थर्मामीटर की सहायता से दूध का तापक्रम ज्ञात कर लेते है। दूध में थर्मामीटर की घुण्डी को तब तक डुबोए रखते है जब तक पारा स्थिर नहीं हो जाता तापमापी में पारे के स्थिर हो जाने पर दूध का तापक्रम नोट कर लेते है। अवलोकित लैक्टोमीटर पाठ्यांक (Observed Lectometer Reading/O.L.R) को संशोधित लैक्टोमीटर पाठ्यांक (Correct Lectometer Reading/C.L.R) में बदलने के लिए आँख से देखकर जो पाठ्यांक लिया गया उसमें संशोधन कारक 0.5 जोड़कर लैक्टोमीटर पाठ्यांक (L.R) प्राप्त होता है। दूध का तापक्रम इसलिए ज्ञात करते है क्योंकि आपेक्षिक घनत्व इसके तापक्रम के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। तापक्रम को आधार मानकर लैक्टोमीटर के पाठ्यांक में निम्न प्रकार संशोधन करते है। लैक्टोमीटर पर 60°F फॉरेनहाइट अंकित होने पर दूध का तापक्रम अंकित तापक्रम से अधिक होने पर प्रत्येक °F के लिए 0.1 पाठ्यांक में जोड़ लेते है तथा कम होने पर 0.1 पाठ्यांक में से घटा देते है। इसी प्रकार यदि लैक्टोमीटर का तापक्रम सेंटीग्रेड में है तो 20°C अंकित होने पर दूध का तापक्रम अंकित तापक्रम से अधिक होने पर प्रत्येक 1°C के लिए 0.2 पाठ्यांक में जोड़ देते है। इसी प्रकार दूध का तापक्रम अंकित तापक्रम से कम होने पर 0.2 पाठ्यांक में घटा देते है।

उदाहरण :– उपरोक्त तीन नमूनों में से प्रथम की गणना निम्न प्रकार है–

2. प्रेक्षण सारणी– दूध का तापक्रम °C में होने पर

क्र.सं.	अवलोकित लैक्टोमीटर पाठ्यांक (O.L.R)	लैक्टोमीटर पाठ्यांक (L.R) + 0.5	दूध का तापक्रम °C	संशोधित लैक्टोमीटर पाठ्यांक (C.L.R)	दूध का आपेक्षिक घनत्व
1	32	32.5	28°C	32.5 + 1.6= 34.1	1.0341
2	27	27.5	20°C	27.5 + 00= 27.5	1.0275
3	24	24.5	14°C	24.5 - 1.2= 23.3	1.0233

1. दूध का अवलोकित लैक्टोमीटर पाठ्यांक = 30
2. दूध का तापक्रम = 72°F
3. लैक्टोमीटर पर अंकित तापक्रम = 60°F
4. दूध का लैक्टोमीटर पाठ्यांक (L.R) = अवलोकित लैक्टोमीटर पाठ्यांक(O.L.R)+ संशोधन कारक (0.5)

(L.R) = 30+0.5 = 30.5

दूध का संशोधित लैक्टोमीटर पाठ्यांक (C.L.R) = एल.आर + तापक्रम संशोधन

(चूंकि दूध का तापक्रम लैक्टोमीटर के तापक्रम से 12°F अधिक है इसलिए एल.आर. में 0.1 × 12 = 1.2 तापक्रम संशोधन जोड़ देते है।)

दूध की सी.एल.आर = 30.5 + 1.2 = 31.7

सूत्र– दूध का आपेक्षिक घनत्व = $1 + \frac{\text{C.L.R}}{1000}$

$= 1 + \frac{31.7}{1000}$

सूत्र– दूध का आपेक्षिक घनत्व = 1 + ----------

1000

= 1.0317

परिणाम– दिए गए दूध के नमूने का आपेक्षिक घनत्व = 1.0317 है जो भैंस के दूध के आ.घ. के समान है अतः दूध शुद्ध है।

नोटः– इसी प्रकार नमूना दो और तीन के दूध का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात किया जा सकता है।

गणनाः–

1. दूध का अवलोकित लैक्टोमीटर पाठ्यांक = 32
2. दूध का तापक्रम = 28°C
3. लैक्टोमीटर पर अंकित तापक्रम = 20°C
4. दूध का लैक्टोमीटर पाठ्यांक (L.R) = अवलोकित लैक्टोमीटर पाठ्यांक(O.L.R)+ संशोधन कारक (0.5)

   (L.R) = 32 + 0.5 = 32.5
5. दूध का संशोधित लैक्टोमीटर पाठ्यांक (C.L.R) = एल.आर + तापक्रम संशोधन

   (चूंकि दूध का तापक्रम लैक्टोमीटर के तापक्रम से 8°C अधिक है इसलिए एल.आर. में

   0.2 × 8 = 1.6 तापक्रम संशोधन जोड़ देते है।

   दूध की सी.एल.आर = 32.5 + 1.6 = 34.1

C.L.R

सूत्र– दूध का आपेक्षिक घनत्व = 1 + ----------

1000

34.1

सूत्र– दूध का आपेक्षिक घनत्व = 1 + ----------

1000

= 1.0341

परिणाम– दिए गए दूध के नमूने का आपेक्षिक घनत्व = 1.0341 है जो भैंस के दूध के आ.घ. से अधिक है अतः दूध में सप्रेटा की मिलावट की गयी है।

नोटः– इसी प्रकार नमूना दो और तीन के दूध का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात किया जा सकता है।

सावधानियाँः–

1. प्रयोग से पूर्व सभी उपकरणों को आसुत जल से धोकर सुखा लेना चाहिए।
2. दूध का नमूना ठीक प्रकार से हिलाकर लैक्टोमीटर जार में दूध को भरना चाहिए।
3. दूध का आपेक्षिक घनत्व दूध निकालने के लगभग 1 से 1½ घंटे बाद ज्ञात करना चाहिए क्योंकि ताजे दूध में कार्बनडाईऑक्साइड होने के कारण आपेक्षिक घनत्व पर प्रभाव पड़ता है।
4. लैक्टोमीटर जार में लैक्टोमीटर बीचो–बीच तैरना चाहिए दीवार से नहीं छूना चाहिए।
5. लैक्टोमीटर पाठ्यांक नोट करते समय नवचन्द्रक की ऊपरी सतह पढ़नी चाहिए।
6. दूध का नमूना ठीक प्रकार से हिलाकर लेना चाहिए।

नोटः– शुद्ध गाय के दूध का आपेक्षिक घनत्व 1.028 और भैंस के दूध का आपेक्षिक घनत्व 1.032 होता है यदि परीक्षण द्वारा निकाला गया आपेक्षिक घनत्व कम है तो उसमें पानी की मिलावट है और अधिक आने पर उसमें सप्रेटा दूध की मिलावट है या क्रीम निकाला हुआ है।

5. दूध का वसा परीक्षणः– दूध के गुणों का नियंत्रण करने के लिए वसा परीक्षण आवश्यक है। दूध में मिलावट का पता लगाने के साथ–साथ वसा की प्रतिशत मात्रा के आधार पर ही उत्पादक को दूध की कीमत प्राप्त होती है।

दूध में वसा परीक्षण की मुख्य दो विधियाँ प्रचलित है–

(अ) आयतनमितीय विधिः– इसकी दो विधियाँ है–(i) गरबर विधि (ii) बैबकॉक विधि

(ब) भारमित्तीय विश्लेषण विधिः– इसकी भी दो विधियाँ है 1. एडम्प पेपर कोयल विधि 2. रोज गोटलिब विधि

उपरोक्त विधियों में से गरबर विधि सबसे उत्तम विधि है अतः गरबर विधि से दूध की वसा प्रतिशत मात्रा निम्न प्रकार से ज्ञात कर सकते हैं –



चित्र : गबर मशान

सिद्धान्तः– ब्यूटाइरोमीटर में एक निश्चित मात्रा में दूध, गंधक का अम्ल, (H_2SO_4) तथा एमाइल एल्कोहल मिलाते है। मिश्रण को अच्छी प्रकार मिलाने के बाद अपकेन्द्रित कर लिया

जाता है इससे वसा ब्यूटाइरोमीटर के अंकित स्टेम में एकत्रित हो जाती है जिसे पढ़कर वसा की प्रतिशत मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। गंधक का अम्ल दूध की प्रोटीन को घोल देता है जिससे दूध की वसा घोल में निलंबित हो जाती है। एमाइल एल्कोहल वसा को इस घोल से अलग करने में मदद करता है घोल पर अपकेन्द्रिय बल लगने पर वसा हल्की होने के कारण ऊपर आ जाती है।



ब्यूटायरोमीटर



लॉक स्टॉपर की



लॉक स्टॉपर



वाटर बाथ



स्वाचालित टिल्ट नपना

उपकरण एवं सामग्री–

I. गर्बर अपकेन्द्रिक मशीन II. ब्यूटाइरोमीटर व पिपेट स्टैण्ड III.दुग्ध ब्यूटाइरोमीटर IV. लॉक स्टॉपर, V. लॉक स्टॉपर ''की'' VI.ऑटोमेटिक टिल्ट मेजर, 1 मिली. व 10 मिली. VII. मिल्क पिपेट 10.75 मिली., VIII.बीकर, IX. गंधक का अम्ल (H_2SO_4) 1.82 आ.घ. वाला 60°F पर, X. एमाइल एल्कोहल (0.81 आ.घ.–0.816 आ.घ. वाला 60°F पर) XI. दूध का नमूना, XII. पानी

विधि– एक स्वच्छ व सूखा ब्यूटाइरोमीटर लेकर उसे ब्यूटाइरोमीटर स्टैण्ड पर लगा लेते है। ऑटोमेटिक टिल्ट मेजर द्वारा 10 मि.ली. गंधक का अम्ल (H_2SO_4)ब्यूटाइरोमीटर में डालते है। दूध के नमूने से 10.75 मि.ली. दूध मिल्क पिपेट की सहायता से ब्यूटाइरोमीटर धीरे–धीरे इस प्रकार डालेंगे कि दूध गंधक के अम्ल पर परत के रूप में इक्ट्ठा हो जाए। अब टिल्ट मेजर द्वारा 1 मि.ली. एमाइल एल्कोहल ब्यूटाइरोमीटर में दूध के उपर धीरे–धीरे डाल देतें है। ब्यूटाइरोमीटर की गर्दन में लॉक स्टॉपर ''की'' की सहायता से लॉक स्टॉपर लगाकर उसे अच्छी तरह से बंद कर देते है। ब्यूटाइरोमीटर के दोनों सिरों को कपड़े से पकड़कर अच्छी तरह से हिलाते है जिससे उसमें दिखाई देने वाले थक्के अच्छी तरह घुल जाए। इसके उपरान्त अच्छी तरह से हिलाने के पश्चात् घोल का रंग भूरा होना चाहिए। ब्यूटाइरोमीटर को 4–5 मिनट तक 70°C ताप पर जल ऊष्मक में उल्टा करके रखेंगे। ब्यूटाइरोमीटर को गर्बर अपकेन्द्रीय यंत्र में इसके बंद सिरे को मशीन के केन्द्र की ओर करके रखकर 4–5 मिनट तक 1100 चक्कर प्रति मिनट की दर से घुमाएगें। इस यंत्र में आमने–सामने समान संख्या में ब्यूटाइरोमीटर रखेंगे जिससे यंत्र का संतुलन बना रहे अन्यथा वसा ठीक से ज्ञात नहीं होगी। ब्यूटाइरोमीटर को गर्बर यंत्र से निकालते समय इस बात का ध्यान रखते है कि ब्यूटाइरोमीटर का लॉक स्टॉपर वाला भाग नीचे की तरफ हो इसके बाद लॉक स्टॉपर ''की'' की सहायता से वसा के निचले तल को शून्य अथवा किसी पूर्ण अंक के सामने कर लेते है। सदैव ही वसा के निचले अर्धचन्द्रक को पढ़ना चाहिए। इसमें ब्यूटाइरोमीटर के स्टैम पर वसा के ऊपरी तथा निचले तल का पाठ्यांक नोट कर इसका अन्तर ज्ञात करेंगे और यही अन्तर दूध की वसा प्रतिशत होगी।

1. **परिणाम–** दिए गए दूध के नमूने में वसा 3.8 प्रतिशत है

सारणी

क्र0स0	दूध का नमूना	पाठयांक का अन्तर			वसा प्रतिशत	यदि नमूने एक से अधिक लिए हैं तो औसत वसा प्रतिशत
		ब्यूटाइरोमीटर का ऊपर का पाठ्यांक	ब्यूटाइरोमीटर का नीचे का पाठ्यांक	ऊपर का पाठ्यांक – नीचे का पाठ्यांक 3–4		
1	2	3	4	5	6	7
1	A	4.8	1.00	3.8	3.8	3.8+3.9+3.7
2	B	4.9	1.00	3.9	3.9	=11.4/3
3	C	3.7	0.00	3.7	3.7	=3.8

एवं गाय का दूध है।

2. सावधानियाँ–

1. ब्यूटाइरोमीटर की गर्दन गंधक के अम्ल दूध तथा एमाइल एल्कोहल से नहीं भीगनी चाहिए।
2. गंधक का अम्ल (H_2SO_4)-1.80 से 1.83 तक आपेक्षिक घनत्व एवं एमाइल एल्कोहल 0.814 से 0.817 तक आपेक्षिक घनत्व वाला 15.5°C पर होना चाहिए।
3. एमाइल एल्कोहल वसा रहित होना चाहिए।
4. सभी द्रव पदार्थों को ब्यूटाइरोमीटर की भीतरी दीवार से लगाकर डालना चाहिए।
5. ब्यूटाइरोमीटर को हिलाने से पहले इसको मोटे कपड़े द्वारा ठीक से पकड़ लेना चाहिए।
6. जल ऊष्मक में जल का तापक्रम 70°C होना चाहिए।
7. गर्बर मशीन को कभी भी एक साथ नहीं रोकना चाहिए।

नोटः– गाय के शुद्ध दूध में औसत वसा की प्रतिशत मात्रा 4.5 प्रतिशत और भैंस के दूध में 7.5 प्रतिशत वसा होती है इससे कम या अधिक होने पर अपमिश्रित है।

कृत्रिम दूध (Synthetic milk):– कृत्रिम रूप से बनाया गया दूध होता है जो गाय या भैंस के दूध से वसा निकालकर बचे हुए सपरेटा दूध में यूरिया, डिटरर्जेंट, कास्टिक सोडा, स्टार्च, ऑयल, चाक चूना आदि मिलाकर बनाया जाता है।

हानियाँः– कृत्रिम दूध मानव के लिए धीमा जहर होता है, इसका उपयोग करने से निम्न हानियाँ होती है–

1. कृत्रिम दूध का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव छोटे बच्चों पर होता है इसके सेवन से बच्चा कुपोषित हो जाता है क्योंकि उसे इससे प्रोटीन विटामिन आदि पोषक तत्व नहीं प्राप्त होते हैं।
2. कृत्रिम दूध में यूरिया, पेंट और डिटरजेंट मिला होने के कारण किडनी फेल होने काखतरा बढ़ जाता है।
3. कैंसर होने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है क्योंकि इसमें उपस्थित प्लास्टिक पेंट गर्म होने पर खतरनाक कार्सिनोन का निर्माण करता है।
4. इसका वर्षों तक लगातार सेवन करने से महिलाओं में बार–बार गर्भपात होने की संभावनाबढ़ जाती है।
5. इस दूध की अस्वच्छता कई संक्रामक रोगों के लिए उत्तरदायी है जैसे– डायरिया, पेचिश,टाइफाइड, अल्सर।

कृत्रिम दूध व प्राकृतिक दूध में अन्तरः–

1. कृत्रिम दूध की पहचान करने के लिए उसे सूंघने पर उसमें साबुन जैसी गंध आती है तो सिंथेटिक दूध है जबकि असली दूध में प्राकृतिक गंध अर्थात् सुवास होती है।
2. कृत्रिम दूध का स्वाद बहुत तीखा अच्छा नहीं कड़वा होता है जबकि असली दूध का स्वाद बहुत अच्छा रूचिकर, मीठा होता है।
3. कृत्रिम दूध को कमरे के तापक्रम 3°C रखने पर पीलापन लिए होता है जबकि असली दूध के रंग में कोई परिवर्तन नहीं होता कभी–कभी अधिक देर तक रखा रहने के कारण खट्टापन आता है।
4. कृत्रिम दूध को अंगुलियों के बीच मलने पर साबुन जैसा चिकनापन आता है जबकि शुद्ध दूध को अंगुलियों के बीच रगड़ने पर चिकनापन नहीं महसूस होता है।
5. कृत्रिम दूध को उबालने पर पीले रंग का हो जाता है व साबुन जैसी गंध आती है जबकि असली दूध में कोई पीलापन नहीं होता और न कोई गंध आती है।
6. कृत्रिम दूध का पी.एच.मान क्षारीय 10.5 तथा असली दूध का पी.एच.मान हल्का अम्लीय 6.8 होता है।
7. कृत्रिम दूध में यूरिया की मात्रा 1400 मि.ग्रा प्रतिशत में जबकि असली दूध 20–70 मि.ग्रा प्रतिशत में होती है।
8. कृत्रिम दूध में शर्करा परीक्षण धनात्मक जबकि असली दूध में ऋणात्मक होता है।

दुग्ध अपमिश्रण/मिलावट का परीक्षण (Milk Adulteration):

दूध में अपमिश्रण/मिलावट के लिए प्रयुक्त विभिन्न पदार्थ एवं उनका परिक्षण निम्न प्रकार है :

1. दूध में पानी मिलावट की जाँच (Testing of added water in milk) : दूध में पानी आपकी सेहत के लिए नहीं बल्कि अपनी जेब के लिए जरूर खराब हो सकता है, इसकी जांच करने के लिए किसी भी तिरछी सतह पर दूध की एक बूंद डाल और इसे नीचे प्रवाह करते हैं। यदि दूध पीछे एक निशान छोड़ देता है, तो यह शुद्ध अन्यथा इसमें पानी की मिलावट की गई है। लेक्टोमीटर द्वारा आपेक्षिक घनत्व से इसी जाँच की जाती है।

2. दूध में स्टार्च मिलावट की जाँच (Testing of added starch in milk) : आटा, अरारोट, आलू तथा साबूदाना के चूर्ण में स्टार्च बहुतायत में पया जाता है। स्टार्च को दूध में मिलाने से दूध गाढ़ा हो जाता है। दूध में स्टार्च के परीक्षण के लिए सबसे पहले परखनली में 10.0 मि.ली. दूध के नमूने को डालकर उबालें व फिर ठण्डा कर लें।

द्रव को ठण्डा करने के बाद उसमें 1–2 बूँद आयोडीन

विलयन की (1.0 प्रतिशत) मिलाएं और परखनली को हिलाने के बाद इसके द्रव के रंग का निरीक्षण करें।

यदि परखनली के द्रव का रंग हल्का भूरा दिखायी दे तो मान लेना चाहिए कि दूध में स्टार्च का मिश्रण नहीं किया गया है, लेकिन यदि परखनली के द्रव का रंग हल्के से गहरा नीला दिखाई दे तो मान लेना चाहिए कि सैम्पल के दूध में स्टार्च मिला हुआ है।

3. दूध में यूरिया की मिलावट की जाँच (Testing of Urea in milk) : दूध में यूरिया की मिलावट की जाँच करने के लिए 5.0 मि.ली. दूध के नमूने को एक परखनली में लें। दूध डालने के बाद उसमें पैरा–डाई–मिथाइलएमिन–बेन्जाइल्डिहाइड (डी.ए.एम.बी.) विलयन (1.6 प्रतिशत) 5.0 मि.ली. डालें।

इसके बाद परखनली को हिलाकर दूध तथा इस विलयन को मिश्रित करें। मिश्रित होने के बाद यदि परखनली में दूध का रंग गहरा पीला हो जाता है तो यह समझना चाहिए कि दूध में यूरिया मिलाया गया है। यदि दूध का रंग हल्का पीला हो तो इस दूध में यूरिया नहीं मिलाया गया है।

4. दूध में ग्लूकोज के मिलावट की जाँच (Testing of Glucose in milk) : मिलावटी दूध में ग्लूकोज की जाँच के लिए 1.0 मि.ली. दूध परखनली में डालें। फिर इस परखनली के दूध में 1.0 मि.ली. 'बारफॉयड रसायन' मिलाकर तीन मिनट की अवधि के लिए परखनली को उबलते पानी में रखें। तीन मिनट के बाद परखनली को बाहर निकालकर उसे तुरन्त ठण्डा करें तथा उसमें 1.0 मि.ली. 'फास्फोमालिब्डिक एसिड' मिलायें।

दोनों द्रवों का मिश्रण हो जाने के बाद परखनली में दूध के रंग की जाँच करें। यदि परखनली का द्रव हल्के नीले रंग का दिखायी दे तो इस सैम्पल के दूध में ग्लूकोज नही मिला है। यदि परखनली का द्रव का रंग गहरा नीला हो जाता है तो इस सैम्पल में ग्लूकोज मिलाया गया है।

5. दूध में चीनी मिलावट की जाँच (Testing added sugars in milk) : एक परखनली में 10.0 मि.ली. दूध का नमूने लेकर उसमें 1.0 मि.ली. 'सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड तथा 100 मि.ग्रा. 'रिसारसिनाल फ्लेक्स' मिलाकर 10 मिनट तक उबलते पानी में परखनली को रखें। 10 मिनट बाद परखनली के द्रव की जाँच करें।

यदि परखनली के द्रव का रंग ईंट के समान लाल दिखाई दे तो यह मान लेना चाहिए कि सैम्पल के दूध में चीनी मिली हुई है। यदि परखनली के द्रव में कोई रंग नहीं आता है तो यह संकेत करता है कि सैम्पल के दूध में चीनी की मिलावट नहीं है।

6. दूध में सोडा की जाँच (Testing of Soda in milk) : दूध में सोडा की जाँच के लिए परखनली में सबसे पहले 5.0 मि.ली. दूध का नमूना लें। फिर इसमें 5.0 मि.ली. इथाइल एल्कोहोल डालें। इसके बाद उसमें एक बूँद रोजेलिक एसिड का विलयन (1 प्रतिशत) हिलाकर मिलाएं व परखनली के द्रव के रंग का निरीक्षण करें।

यदि द्रव का रंग गुलाबी लाल रंग का दिखायी दे तो मान लेना चाहिए कि दूध में सोडा मिला हुआ है। यदि द्रव पीलापन लिए हुए लाल रंग का दिखाई दे तो समझ लेना चाहिए कि दूध में सोडा की मिलावट नहीं है।

7. फॉरमेलिन मिलावट की दूध में जाँच (Testing of added formalin in milk) : एक परखनली में 3.0 मि.ली. दूध का नमूना लें, फिर उसमें 1.0 मि.ली. फेरिक क्लोराइड विलयन (1 प्रतिशत) मिलाकर परखनली की दीवार के साथ–साथ 5.0 मि.ली. सान्द्र सल्फ्यूरिक एसिड धीरे–धीरे डालें जिससे कि परखनली में एसिड व दूध की परत अलग–अलग बनी रहें। फिर दोनों परतों के मिलने की सतह का निरीक्षण करें।

यदि मिलने वाली सतह पर बैंगनी रंग का घेरा दिखायी दे तो यह मान लेना चाहिए कि सैम्पल में फॉरमेलिन मिलाई गयी है। यदि दोनों परतों की सतह पर कोई रंग न दिखायी दे तो यह मानना चाहिए कि दूध के सैम्पल में फॉरमेलिन की मिलावट नहीं की गयी है।

8. वनस्पति तेल मिलावट की जाँच (Testing of added vegetable oil in milk) : वनस्पति तेल की मिलावट की जांच करने के लिए कि दूध परखनली में 10 मि.ली. दूध का नमूना लें, फिर उसमें 1.0 मि.ली हाइड्रोक्लोरिक एसिड और 1 चम्मच चीनी मिलने पर यदि मिश्रण लाल हो जाता है, तो इसमें वनस्पति तेल की मिलावट है।

9. कृत्रिम दूध की जाँच (Testing of Synthetic milk) : कृत्रिम दूध के लिए जांच रसायनों और प्राकृतिक दूध में साबुन की तरह की चीजों को मिलाकर बनाया है । कृत्रिम दूध को आसानी से खराब स्वाद से पहचाना जा सकता है । यह साबुन जैसा लगता है जब अंगुलिओं के साथ रगड़ा जाता है तो साबुन सी चिकनाहट मालूम होती है, किसी पात्र में थोड़ा दूध लेकर थोड़ी ऊंचाई से पानी मिलाते हैं तो साबुन की तरह के झाग पैदा होते हैं और जब गरम करते हैं तो दूध पीले रंग का हो जाता है ।

इस दूध को बनाने में डिटर्जेंट का उपयोग होता है, जिसके परीक्षण के लिए एक परखनली में पांच मिलीलीटर दूध में दो बूंद ब्रोमोक्रिसोल पर्पल का घोल डालकर हिलाने पर यदि दूध का रंग

हल्का नीला हो जाता है तो दूध में डिटर्जेंट के मिलाए जाने की पुष्टि होती है। इसके अलावा कृत्रिम दूध में यूरिया भी होता है अतः उपरोक्त यूरिया जाँच भी कर सकते हैं।

खीस (Colostrum)

परिभाषा :–

''खीस एक विशेष प्रकार का क्षरण होता है, जो कि मादा पशुओं के ब्याने के तुरन्त पश्चात् उनके अयन से प्राप्त होता है जो गर्म करने पर स्कंदित अर्थात् जम जाता है। खीस का संघटन पशु के ब्याने के प्रथम दिन के पश्चात् से ही बदलने लगता है और लगभग तीन या चार दिनों में दूध में बदल जाता है। वस्तुतः खीस नवजात शिशु के लिए अतिउपयोगी तरल है जो नवजात को सभी बीमारियों से बचाता है।''

खीस का संघटन (Composition of Colostrum) : गाय एवं भैंस के खीस का औसत संघटन प्रतिशत में निम्नलिखित है–

खीस के भौतिक गुणः–

क्र.सं.	अवयव	गाय		भैंस
1.	प्रोटीन	17.51		21.80
2.	केसीन	5.08		6.70
3.	एल्ब्यूमिन एवं ग्लोब्यूलिन	11.34		14.90
4.	दुग्धम (लैक्टोज)	2.19		2.30
5.	वसा	5.10		4.10
6.	खनिज पदार्थ	1.01		1.10
7.	जल	74.19		72.01

1. खीस सामान्यतः दूध की अपेक्षा गाढ़ा, पीलापन लिए हुए लसलसा तरल पदार्थ होता है। यह तरल कैरोटीन की अधिकता के कारण पीले रंग का होता है। यदा कदा इसका रंग हल्का लाल भी देखने में आता है जो खीस में रक्त की उपस्थिति के कारण होता है अयन की नसें अधिक दबाव के कारण फट जाती जिससे रक्त खीस में मिल जाता है जिससे खीस ललाई लिए होता है।
2. खीस में उपस्थित वसा गोलिकाएँ दूध की तरह पूर्ण रूप से गोल न होकर अनियमित आकार की होती है।
3. इसका स्वाद तीखा एवं सुगंध साधारण दूध से भिन्न होती है।
4. इसकी प्राकृतिक अम्लता दूध (0.12–0.14) की अपेक्षा अधिक अर्थात् 0.2–0.4 के मध्य होती है इसका मुख्य कारण खीस में प्रोटीन एवं ठोस पदार्थों की अधिकता है।
5. घुलनशील पदार्थों की अधिकता के कारण इसका हिमांक -0.605 सेण्टीग्रेड दूध से अधिक होता है।
6. इसमें क्लोराइड्स की मात्रा अधिक होने के कारण इसकी विद्युत संचालकता (Electro Conductivity) भी अधिक होती है।
7. इसका आपेक्षिक घनत्व भी दूध की अपेक्षा अधिक, 1.040 से 1.080 होता है।

दूध एवं खीस के संघटन में बहुत कम अन्तर पाया जाता है। खीस में दूध की अपेक्षा दुग्धम कम मात्रा में व क्लोराइड अधिक मात्रा में पाया जाता है। खीस में वसा की मात्रा पशु की अवस्था पर निर्भर करती है। खीस में कुछ ठोस पदार्थ राख, क्लोराइड, केसीन, एल्ब्यूमिन व ग्लोब्यूमिन अधिक मात्रा में पाए जाते है।

खीस का महत्त्व : पशु के नवजात शिशु के पोषण में खीस का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

खीस व दूध के भौतिक गुणों का तुलनात्मक अध्ययनः–

1. खीस नवजात शिशु के लिए आरेचक (Laxative) होता है

गुण	खीस	दूध
रंग	पीलापन या लालपन लिए	सफेद रंग का
स्वाद	तीखा	मीठा
सुगंध	असामान्य	सामान्य
प्राकृतिक अम्लता	0.2 से 0.4 प्रतिशत	0.12 से 0.14 प्रतिशत
आपेक्षिक घनत्व	1.04 से 1.08	1.028 से 1.032
क्लोराइड्स	0.149 से 1.156 प्रतिशत	0.14 प्रतिशत
हिमांक	– 0.605°C	– 0.52°C – 0.56 °C
वर्तनाक	दूध से अधिक	1.3440 – 1.3480
विद्युत संचालकता	दूध से अधिक	0.005 म्हो (Mho)
गाढ़ापन	दूध से अधिक	1.5 से 2.0 सेण्टीपाइस

जो पेट में जमे हुए मल को बाहर निकालने में सहायक होता है।

2. खीस शिशु के रक्त में वास्तविक रोग प्रतिरोधकता लाता है जो माता के खून से बच्चे के खून में खीस द्वारा प्रवेश करती है।
3. खीस नवजात शिशु के लिए मुख्य पोषण होता है इसमें सभी पोषक पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते है जिनकी प्रारम्भ में बच्चे को आवश्यकता होती है।
4. इसमें विटामिन ''ए'' एवं विटामिन ''बी काम्पलेक्स'' की मात्रा अधिक होने से बच्चे का संक्रामक रोगों से बचाव होता है।
5. खीस में अधिक लोहा एवं ग्लोब्यूलिन में अधिक प्रोलीन की मात्रा बच्चे में हीमाग्लोबिन बनाने में बहुत सहायक होती है।

क्रीम (cream):– क्रीम दूध से पृथक किया गया वह पदार्थ है जिसमें वसा की मात्रा कम से कम 20 प्रतिशत से अधिक होती है।

क्रीम के प्रकार:– वसा प्रतिशत मात्रा के आधार पर क्रीम को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

1. **पतली क्रीम (Table cream):–** इसमें वसा की मात्रा 20–25 प्रतिशत होती है।
2. **मध्यम क्रीम (Whipping cream):–** इसमें वसा की मात्रा 25–45 प्रतिशत तक होती है
3. **गाढ़ी क्रीम (Rich Cream):–** इसमें 45 प्रतिशत से अधिक वसा होती है।

क्रीम का संगठन:–

क्रीम पृथक्करण (Cream Separation)

क्रीम (cream)

अवयव	क्रीम में वसा प्रतिशत			
	20	25	45	60
पानी	72.8	68.8	50.0	36.5
वसा विहीन ठोस पदार्थ	7.2	6.7	5.0	3.6
कुल ठोस पदार्थ	27.2	31.2	50.0	63.5

क्रीम पृथक्करण का सिद्धान्त:– दूध का आपेक्षिक घनत्व 1.028 से 1.032 होता है। इसमे उपस्थित वसा का आपेक्षिक घनत्व 0.93 होता है जबकि सप्रेटा दूध का आपेक्षिक घनत्व 1.037 होता है।

दूध में पाई जाने वाली वसा सूक्ष्म आकार की गोलिकाओं के रूप में विद्यमान होती है यह वसा गोलिकाएँ दूध में उपस्थित अन्य अवयवों से हल्की होती है जिससे गुरूत्वाकर्षण प्रभाव के कारण हल्की वसा गोलिकाएँ दूध के नीचे से उठकर एक परत के रूप में दूध के रूप में एकत्रित हो जाती है। इस परत को क्रीमलेयर कहते है इसे चम्मच की सहायता से एकत्र कर लेते है।

क्रीम निकालने की विधियाँ:–

1. गुरूत्वाकर्षण विधि
2. अपकेन्द्रिय विधि

1. गुरूत्वाकर्षण विधि (Gravity Method):– प्राचीन समय में जब क्रीम निकालने के यंत्र की खोज नहीं हुई थी उस समय से इस विधि से क्रीम निकाली जाती है। इस विधि में दूध को बर्तन में भरकर ठंडे स्थान पर 10–24 घंटे तक रखा जाता था ऐसा करने से वसा परत के रूप में ऊपर आ जाती है जिसे चम्मच की सहायता अलग कर लिया जाता है भारतवर्ष के ग्रामीण क्षेत्रों में यह विधि आज भी प्रचलन में है। इस विधि से क्रीम एकत्रित करने के निम्न तरीके है–

(अ) उथली कढ़ाही विधि (Shallow pan method):– इस विधि में 18–24 इंच व्यास व 4 इंच समान गहराई की कढ़ाही का प्रयोग करते है इसमें दूध भरकर 10°C तापक्रम पर 20 घंटे रखा जाता है इससे वसा दूध के ऊपर परत के रूप में एकत्रित हो जाती है जिसे चम्मच से एकत्र कर लेते है। इस विधि में एक प्रतिशत तक वसा सप्रेटा दूध में रह जाती है।

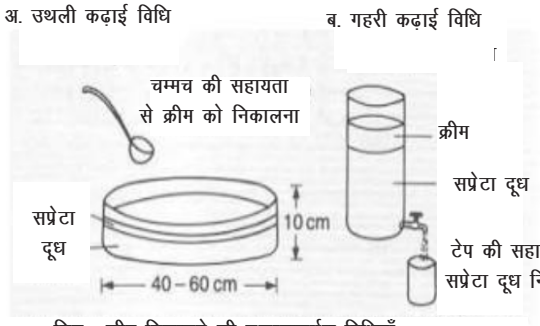

चित्र : क्रीम निकालने की गुरूत्वाकर्षण विधियाँ
अ. उथली कढ़ाई विधि ब. गहरी कढ़ाई विधि

iod):–

इस विधि में 20 इंच गहरी तथा 8–12 इंच व्यास की कढ़ाही का प्रयोग किया जाता है। इसमें दूध भरकर 10°C तापक्रम पर 24 घंटे तक रखा जाता है जिससे दूध की वसा एक परत के रूप में ऊपर एकत्रित हो जाती है जिसे साफ चम्मच से अलग कर लेते हैं। इस विधि से सप्रेटा दूध में वसा की मात्रा 0.5 प्रतिशत रह जाती है।

(स) दूध में पानी मिलाकर क्रीम निकालना (Water dilution method):– इस विधि में दूध में समान मात्रा में स्वच्छ पानी मिलाकर उथली या गहरी कढ़ाही विधि से क्रीम निकालते है ऐसा करने से वसा के कण नीचे से ऊपर आसानी से आ जाते हैं। इस विधि से सप्रेटा दूध में वसा की मात्रा 0.5 प्रतिशत रह जाती है।

(द) जर्सी क्रीम विधि:– इस विधि में दो दीवारों वाला बर्तन काम में लेते है दो दीवारो के बीच रिक्त सीन में 88°C वाला पानी भरा जाता है और बर्तन में दूध भरते है जिससे दूध का तापक्रम 43°C तक पहुँच जाताहै। इसके बाद गर्म पानी के स्थान पर ठंडा पानी अथवा बर्फ के टुकड़े डालते है जिससे दूध का तापक्रम 10°C हो जाए। 24 घंटे तक रखने के बाद वसा की तह को अलग कर लिया जाता है। इस विधि से सप्रेटा दूध में वसा की मात्रा 0.5 प्रतिशत रह जाती है।



चित्र : क्रीम निकालने की जर्सी विधि

2. अपकेन्द्रीय विधि (Centrifugal method):– हमारे देश में जलवायु गर्म होने के कारण दूध रखने पर जल्दी खराब हो जाता है अतः ऐसी परिस्थिति में दूध का यांत्रिक विधि द्वारा क्रीम पृथक्करण आवश्यक हो जाता है इस विधि द्वारा क्रीम पृथक्करण करना एक भौतिक नियम पर निर्भर है जब अलग–अलग आपेक्षिक घनत्व वाले द्रव पदार्थ एक ही केन्द्र पर, समान गति से एक ही दूरी पर घुमाते है तब अधिक आपेक्षिक घनत्व वाले द्रव पर अधिक और कम आपेक्षिक घनत्व वाले द्रव पर कम अपकेन्द्रीय बल लगता है जिससे कम आपेक्षिक घनत्व वाले वसा जैसे पदार्थ केन्द्र की तरफ क्रीम के रूप में बाउल में प्रवेश कर जाते है जहाँ से क्रीम स्पाउट द्वारा बाहर निकाल लिया जाता है और अधिक आपेक्षिक घनत्व वाले पदार्थ जैसेः– सप्रेटा दूध केन्द्र से दूर बाउल की बाहरी परिधि की ओर सप्रेटा दूध के रूप में सप्रेटा स्पाउट द्वारा बाहर निकल जाता है और इस प्रकार दूध से क्रीम अलग हो जाती है।

इस विधि से दूध से क्रीम अलग करने के लिए जिस मशीन का प्रयोग किया जाता है उसे क्रीम सेपरेटर कहते है।

यह दो प्रकार के होते है:–

1. हस्तचालित क्रीम सेपरेटर
2. बिजली या इंजन से चालित क्रीम सेपरेटर

जब कम मात्रा में क्रीम निकालनी हो तो वहाँ हस्वचालित क्रीम सेपरेटर तथा अधिक मात्रा में क्रीम निकालनी हो तो इंजन या बिजली चालित क्रीम सेपरेटर काम में लेते है लेकिन दोनों की बनावट व क्रिया विधि लगभग एक जैसी होती है।



हस्तचालितक्रीम सेपरेटर



बिजली चालित क्रीम सेपरेटर

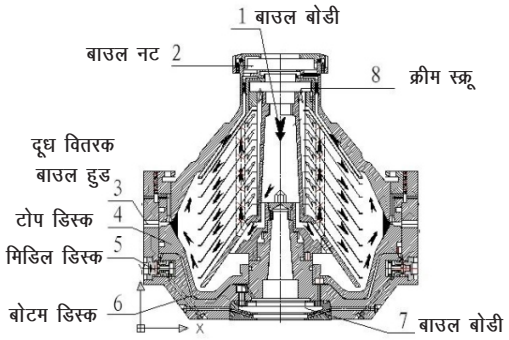

चित्र : क्रीम पृथक्करण मशीन का बाउल

क्रीम सेपरेटर की बनावट:– क्रीम सेपरेटर के मुख्य भाग निम्नलिखित है–

1. **बॉडी (Body):–** यह मशीन का वह भाग होता है जिसके भीतर मशीन को चलाने वाले कल पुर्जे जुड़े रहते है। इसके ऊपरी भाग पर बाउल घूमता है।
2. **दुग्ध पात्र (Milk Basin):–** इसमें वह दूध जिसकी क्रीम निकालनी हो भरा जाता है। यह सबसे ऊपरी भाग है यह

दो प्रकार के होते है। एक के टोटी ठीक बीच में और दूसरे प्रकार के पात्र में टोटी एक ओर लगी होती है। टोटी दूध को बाउल में प्रवेश करने की गति को नियत्रित करती है। इस टोटी का नहीं खोलने पर दूध बाउल में प्रवेश नहीं करता है।

3. **दूध नियंत्रक** (Milk Regulatar):— इस भाग में दूध दुग्ध पात्र से आता है तथा यहाँ से बाउल में प्रवेश करता है। यह भाग दूध को बाउल में जाने पर नियंत्रण रखता है। बाउल के भीतर उतना ही दूध जाने देता है जितना कि आसानी से पृथक्करण हो जाए।
4. **मिल्क फ्लोट** (Milk Float):— यह मशीन का बहुत हल्का भाग होता है। यह दुग्ध नियंत्रक के अदंर रहता है। जब नियामक दूध से भर जाता तो यह मिल्क फ्लोट तैरना आरम्भ कर देता है और बेसिन की टोटी के मुँह को बंद कर देता है जिससे दूध के बाउल में प्रवेश करने की गति धीमी हो जाती है।
5. **क्रीम स्पाउट (Cream Spout)**:— इस भाग द्वारा बाउल से क्रीम बाहर आती है। यह भाग स्क्रू से जुड़ा रहता है। यह सप्रेटा दूध स्पाउट की अपेक्षा उथला होता है।
6. **सप्रेटा दूध स्पाउट (Separated Milk Spout)**:— यह क्रीम स्पाउट की तरह का होता है लेकिन उसकी अपेक्षा अधिक गहरा होता है। इससे सप्रेटा दूध बाउल से बाहर आता है।
7. **बाउल (Bowl)**:— यह मशीन का मुख्य भाग है इसे मशीन का हृदय भी कहते है। इसमें कई भाग सम्मिलित होते है। इन सभी को मिलाकर बाउल बनता है। इसके निम्नलिखित भाग होते है।

(अ) बाउल बॉडी (Bowl Body):— यह वह भाग है जिस पर बाउल के अन्य भाग आधारित रहते हैं।

(ब) रबर का छल्ला (Rubber Ring):— यह रबर का छल्ला होता है जिसको बाउल बॉडी के कटाव में रख देते है। इससे दूध का रिसाव रूक सकता है।

(स) दूध वितरक (Milk Distributer):— इसका मुख्य कार्य दूध को बाउल में पतली झिल्लियों के रूप में वितरित करना है।

(द) बाउल डिस्क (Bowl Disk):— यह बाउल बॉडी पर लगी हुई कटोरीनुमा होती है। इनकी संख्या यंत्र के आकार व मशीन क्षमता पर निर्भर करती है। ये तीन प्रकार की होती हैं।

(i) बॉटम डिस्क (Bottom Disk):— यह बाउल की

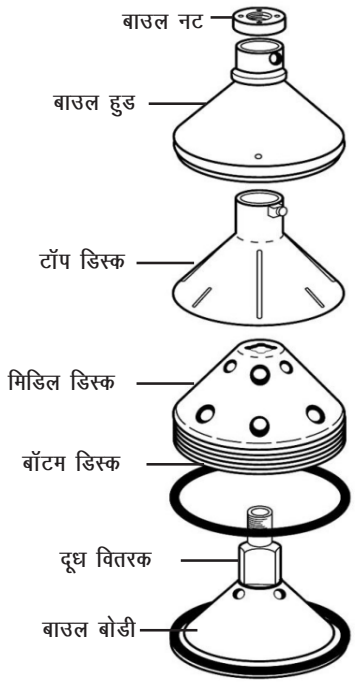

चित्र : बाउल के विभिन्न भाग

पैंदे वाली कटोरी कहलाती है। इसे कटोरी के दोनों ओर तीन–तीन उभरे हुए निशान होते है। यह नीचे की ओर दूध वितरक एवं ऊपर की ओर बीच वाली कटोरी के मध्य कुछ जगह खाली बनाए रखती है। इन खाली जगह से ही दूध पतली झिल्ली के रूप में निकलता है।

(ii) मध्य डिस्क (Middle Disk):— बीच वाली कटोरियों की संख्या प्रत्येक मशीन में प्रायः अलग–अलग होती है इनकी संख्या 16 से 44 तक होती है। परन्तु किसी मशीन में यह संख्या कम या अधिक भी हो सकती है। इन कटोरियों में केवल ऊपरी भाग पर ही उभरे निशान होते है जिनके कारण दूध का पतली झिल्लियों में वितरण हो जाता है।

(iii) टॉप डिस्क (Top Disk):— इसकी संख्या केवल एक ही होती है इसकी गर्दन लम्बी होती है। इस गर्दन में एक सुराख होता है जो बाउल हुड के सुराख से मिलता है जिसको क्रीम का सुराख भी कहते है।

(य) बाउल हुड (Bowl Hood):— यह बाउल के विभिन्न भागों को ढकने एवं सुरक्षित रखने का कार्य करता है।

इसकी गर्दन लम्बी होती है। इसमें दो छिद्र होते है। इन छिद्रो के समीप एक स्क्रू होता है जिसे क्रीम स्क्रू कहते है इससें क्रीम को पतली या गाढ़ी बनाने में मदद मिलती है। इसकी गर्दन के दो छिद्रों द्वारा क्रीम और सप्रेटा दूध अलग–अलग बाहर निकलते है।

(र) बाउल नट (Bowl Nut):– यह बाउल की डिबरी कहलाती है। इसका कार्य बाउल हुड को भली–भाँति कसे रखना है जिससे बाउल के अन्य भाग भी कसे रहते है।

क्रीम सेपरेटर की कार्य विधिः– क्रीम सेपरेटर के सभी भागों को अच्छी तरह से साफ करके दूध से क्रीम निकालने के लिए दूध को 'मिल्क बेसिन' में भरते हैं इसके बाद मशीन को चलाना प्रारम्भ कर देते हैं। मशीन की गति ठीक हो जाने पर टोंटी को खोल देते है जिससे दूध बाउल में जाना प्रारम्भ कर देता है। अपकेन्द्रीय बल लगने पर दूध जब पतली परत के रूप में डिस्क में प्रवेश करता है उस समय क्रीम केन्द्र की ओर पहुँचकर टॉप डिस्क में बने छिद्र में से होती हुई क्रीम स्पाउट में से बाहर निकलती है। सप्रेटा दूध बाउल हुड में बने छिद्र में से होती हुआ सप्रेटा दूध स्पाउट से बाहर निकलता है।

क्रीम सेपरेटर से क्रीम निकालने के लाभः–

1. इसके द्वारा प्राप्त क्रीम स्वच्छ, स्वादिष्ट तथा खटास रहित होती है।
2. इससे क्रीम निकालने में समय कम लगता है।
3. इस विधि द्वारा क्रीम निकालने पर सप्रेटा दूध में वसा 0. 05% से कम तथा अधिकतम 0.1% होती है।
4. इसके द्वारा पतली, मध्यम व गाढ़ी क्रीम आवश्यकतानुसार प्राप्त कर सकते हैं।
5. क्रीम सेपरेटर से प्राप्त क्रीम में वसा की मात्रा सदैव अधिक होती है। कभी–कभी इसमें वसा की मात्रा 60–70% तक पाई जाती है।
6. क्रीम सेपरेटर द्वारा कम समय में अधिक दूध की क्रीम निकाली जा सकती है।

क्रीम सेपरेटर की कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

1. **दूध का तापक्रमः–** क्रीम सेपरेटर से क्रीम निकालने के लिए दूध का तापक्रम 30–37°C के बीच हो तो क्रीम ठीक निकलती है। इससे कम या अधिक तापक्रम होने पर ठीक प्रकार से क्रीम नहीं निकलती है।
2. **दूध के प्रवेश करने की गतिः–** क्रीम सेपरेटर में दूध उचित मात्रा में प्रवेश करना चाहिए। दूध की मात्रा अधिक प्रवेश करती है तब क्रीम पतली प्राप्त होती है।
3. **क्रीम सेपरेटर की गतिः–** क्रीम सेपरेटर चलाने पर वही गति रखनी चाहिए जिसे उसके बनाने में निर्धारित किया है। शक्तिचालित मशीन की गति 2000–4000 चक्कर प्रति मिनट होती है तथा हस्तचालित क्रीम सेपरेटर की गति 45–60 चक्कर प्रति मिनट रखते है।
4. **क्रीम स्क्रू:–** इसके निश्चित आकार से अधिक अंदर तथा बाहर हो जाने से क्रीम की वसा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अधिक अदंर होने से क्रीम गाढ़ी और बाहर होने से क्रीम पतली होती है।
5. क्रीम सेपरेटर का फर्श अथवा किसी ठोस आधार पर कसकर रखते है अन्यथा इसके हिलने से इसकी कार्य क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मक्खन (Butter)

मक्खन (Butter):– मक्खन एक दुग्ध पदार्थ है, जो दूध या क्रीम को मथने के उपरान्त प्राप्त किया जाता है
जिसमें वसा 80 प्रतिशत से कम नहीं और पानी की मात्रा 16 प्रतिशत से अधिक नहीं होती है, और वसाविहीन
पदार्थ 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

मक्खन बनाने की विधियाँः–

मक्खन बनाने की दो विधियाँ–(i) देशी विधि (Ii) वैज्ञानिक तथा क्रीमरी विधि

(i) देशी विधिः– दूध को उबालने के बाद कमरे के तापक्रम तक ठंडा करते है और उसमें उचित मात्रा में जामन/दही या मट्ठा मिला दिया जाता है इसके दस घंटे तक रखने पर दही के रूप में बदल जाता है तब उसे मथानी में मथा जाता है, मथने से पहले गर्मियों में ठंडा पानी तथा सर्दियों में गर्म पानी मिलाते है इससे मथना आसानी से हो जाता है कुछ समय मथने के पश्चात् मक्खन के दाने से बन जाते हैं। इनको हाथ से एकत्र करके पानी में डालकर धोते है इसे ही देशी मक्खन कहा जाता है।

(I) वैज्ञानिक तथा क्रीमरी विधिः– यह देशी विधि की अपेक्षा कठिन है परन्तु बाजार में उपलब्ध होने वाला मक्खन इसी विधि द्वारा तैयार किया जाता है। इस विधि में क्रीम प्राप्त करने से मक्खन बनाने के अंत तक किसी भी स्थान तक क्रीम अथवा मक्खन को हाथ से नहीं छूते है और प्रयोग में आने वाली सभी वस्तुओं को पूर्ण रूप से स्वच्छ रखा जाता है।

घी (Ghee)

परिभाषा– घी वह दुग्ध पदार्थ होता है जिसमें वसा की मात्रा 99 प्रतिशत होती है तथा सामान्य ताप 20°C पर अर्द्धतरल अवस्था में रहता है ।

घी का औसत संगठनः– गाय एवं भैंस के दूध से तैयार घी का संघटन निम्न प्रकार है–

घी बनाने की विधियाँः– घी बनाने की निम्नलिखित विधियाँ

क्र.सं.	अवयव	गाय का दूध	भैंस का दूध
1	वसा	99.0 से अधिक	99.0 से अधिक
2	नमी	0.5 से कम	0.5 से कम
3	स्वतन्त्र वसा	0.5	0.5
4	स्वतंत्र वसा अम्ल	2.8%	2.8%
5	कैरोटीन	3.2 से 7.2 आई.यू./ग्राम	3.2 से 7.2 आई.यू./ग्राम
6	विटामिन A	19 से 33 आई.यू.	17 से 38 आई.यू.
7	विटामिन C	26 से 48 आई.यू.	18 से 37 आई.यू.

प्रचलन में हैं –

1. देसी विधि 2. मक्खन से घी बनाने की विधि 3. क्रीम से घी बनाने की विधि 4. पूर्व स्तरण विधि

देसी विधि– ग्रामीण क्षेत्रों में इस विधि का अधिकतर प्रयोग किया जाता है । इस विधि में दूध को गर्म (उबालकर) करके ठण्डा (21°C से 22°C तक) कर लिया जाता है । इसमें इसी तापक्रम पर जामन (दही या छाछ) मिलाया जाता है । जामन की मात्रा एक से डेढ़ प्रतिशत मिलाकर 10 से 15 घण्टे तक रखकर दही तैयार हो जाता है । दही को मथनी से मथा जाता है, जिससे मक्खन के कण इकट्ठा होकर मट्ठे की सतह पर तैरने लगते हैं । इस मक्खन को बर्तन में गर्म किया जाता है । गर्म करने की क्रिया मंद आग पर करने से गठन एवं सुवास अच्छी आती है । उसे आंच से उतारकर थोड़ा ठण्डा करके कपड़े या छलनी से छानकर घी प्राप्त कर लेते हैं।

2. **मक्खन से घी बनाने की विधिः–** इस विधि द्वारा घी बहुत थोड़ी मात्रा में बनाया जाता है। इस विधि में पहले क्रीम बनाई जाती है इसके बाद क्रीम से मक्खन तथा फिर मक्खन से घी बनाया जाता है इस प्रकार घी बनाने में कम पैसा व्यय होता है मक्खन को 110°C तक गर्म करते है इससे जल वाष्प के रूप में उड़ जाता है तथा अन्य ठोस पदार्थ घी से अलग हो जाते है इसके बाद साफ कपड़े से छानकर घी को अलग कर लिया जाता है।

3. **क्रीम से घी बनानाः–** इस विधि में क्रीम को 110°C से 115°C तापक्रम पर गर्म करके घी तैयार करते हैं। क्रीम को हल्की आँच पर गर्म करना प्रारम्भ करते है तथा धीरे–धीरे तापमान 111°C से 115°C तक बढ़ाते है जिससे घी और अन्य ठोस पदार्थ अलग–अलग हो जाते है इसके बाद बर्तन को आग से अलग करके कुछ समय तक ठंडा कर लेते है इसके बाद घी को एक दूसरे बर्तन में छानकर ठंडे स्थान पर कण निर्माण हेतु रख देते है।

4. **पूर्वस्तरण विधिः–** इस विधि में मक्खन को 80°C से 85°C के तापक्रम पर 30 मिनट के लिए बिना हिलाए रख देते है और मक्खन तीन परतों में विभाजित हो जाता है इसमें ऊपर की परत कर्ड के विकृत कणों की मध्य परत वसा की एवं नीचे की परत वसा रहित ठोस पदार्थ की होती है इसके बाद ऊपर व मध्य परतों को बिना हिलाए नीचे की परत को 110°C से 120°C तक गर्म करते है इस विधि से घी बनाने में खर्च कम आता है, घी में अम्लता की मात्रा कम होती है तथा घी अधिक समय तक खाने योग्य बना रहता है।

घी का उपयोगः– दैनिक जीवन में घी का अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। भारतीय भोजन का अभिन्न अंग है इसमें विटामिन A अधिक मात्रा में तथा विटामिन D व E भी कम मात्रा में पाई जाती हैं। घी की उपस्थिति में आंतों में विटामिन B काम्पलेक्स अधिक बनता है। गाय के घी में कैरोटीन की मात्रा भी अधिक पाई जाती है। घी से मिठाई, पूड़ी, सब्जी तथा अन्य व्यंजन बनाए जाते है। धार्मिक कार्यों हवन आदि में भी घी का उपयोग किया जाता है।

घी खराब होने के कारण एवं निवारणः– घी खराब होने के अनेक कारण हो सकते है–

1. घी को संग्रह करने से उसमें अम्लता बढ़ जाती है ऐसा अधिक तापक्रम एवं घी में मट्ठे की मात्रा रह जाने के कारण होता है अतः घी को कम तापक्रम पर संग्रह करें तथा घी बनाते समय उसमें मट्ठा न रहने दें।
2. घी ताँबा, लोहा के बर्तन में संग्रह करने पर शीघ्र खराब होने लगता है अतः घी को काँच, टिन, के बर्तन में संग्रह करना चाहिए।
3. घी को वायु या ऑक्सीजन की उपस्थिति में संग्रह करने पर घी में खटास पैदा हो जाती है अतः घी को वायु या

ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में संग्रह करना चाहिए।

4. घी का प्रकाश में संग्रह करने पर घी में दुर्गुण बहुत शीघ्रता से उत्पन्न हो जाते है। अतः घी को अंधेरे स्थान पर संग्रहित करना चाहिए।

घी को अधिक तापक्रम पर संग्रह करने पर घी में दुर्गुण शीघ्रता से बढ़ते है अतः घी को कम तापक्रम (0°C) पर संग्रहित करना चाहिए।

घी के सामान्य गुणः–

1. **कणिकताः–** उचित आकार के कणों (रवों) का पाया जाना घी की पहचान है अतः घी रवेदार होता है।
2. **रंगः–** भैंस का घी सफेद रंग का एवं गाय का घी हल्के पीले रंग का होता है।
3. **सुवास (गंध)ः–** साधारणतया हल्की, प्रिय, सोंधी सी गंध घी की पहचान है प्रायः गंध थोड़ी सी मात्रा में हथेली पर रगड़ने के पश्चात् ली जाती है।
4. **अम्लताः–** घी में खटास नहीं होनी चाहिए खटास अच्छे घी की पहचान नहीं है।

विकृत गंधिताः– यह एक दोष है जो घी में नमी की अधिकता के कारण पैदा होता है अच्छे घी में नमी की मात्रा 0.5 प्रतिशत अधिक नहीं होनी चाहिए।

दही (Dahi)

दही की परिभाषाः– यह एक किण्वत दुग्ध पदार्थ है जो दूध को गर्म करने के बाद 21°C तक ठंडा करके उसमें उचित मात्रा में जामन मिलाने के पश्चात् 8–10 घंटे इन्कूवेशन अवधि पर प्राप्त किया जाता है।

दही का संघटन (Composition of Dahi):– दही में प्रायः वे सभी पोषक अवयव पाए जाते है जो किसी साधारण दूध में होते है केवल अंतर इतना होता है कि दुग्धम व पानी की मात्रा दूध की अपेक्षा कम होती है और साथ–साथ दुग्धाम्ल की मात्रा काफी बढ़ जाती है।

दही बनाने की विधियाँः– दूध से दही बनाने की मुख्य

क्र.सं.	अवयव	सम्पूर्ण दूध का दही	सप्रेटा दूध का दही
1	पानी	84-88	88-90
2	वसा	5-7	0.01-0.1
3	दुग्धम	4.4-4.9	4.6-5.0
4	प्रोटीन	3.2-3.5	3.4-3.6
5	खनिज पदार्थ	0.5-0.6	0.7-0.8
6	कैल्सियम	0.11-0.12	0.11-0.13
7	फास्फोरस	0.09-0.11	0.08-0.11
8	दुग्धाम्ल	0.7-0.8	0.7-1.0

दो विधियाँ हैः–

1. **देशी विधिः–** इस विधि से दही जमाने के लिए सबसे पहले दूध को धीमी आग पर रखकर गर्म कर लेते है जिससे उसमें उपस्थित जीवाणु पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद इस दूध को किसी मिट्टी के बर्तन में लेकर 21°C तक ठंडा करते है तत्पश्चात् उसमें थोड़ा सा जामन (छाछ या दही) मिला देते है और स्थिर अवस्था में जमने के लिए रख देते है। जामन मिलाने के बाद दूध को सर्दी के मौसम गर्म स्थान पर व गर्मी के मौसम में ठंडे स्थान पर रखते है। दूध से दही बनने की प्रक्रिया 8–10 घंटे में पूरी होती है।
2. **वैज्ञानिक विधिः–** इस विधि से दही बनाने में निम्नलिखित चरण सम्मिलित है–

1. **दूध का चुनाव व छाननाः–** स्वस्थ पशु से प्राप्त स्वच्छ व ताजा दूध जिसमें अम्लता 0.17% कम हो को चुनाव करते है। इसको साफ कपड़े से छान लिया जाता है।
2. **दूध को गर्म करनाः–** स्वच्छ दूध को 72–75°C पर आधा घंटे तक गर्म करते है अथवा 10 मिनट तक उबाल लेते है जिससे उसमें उपस्थित सभी जीवाणु नष्ट हो जाते है।
3. **दूध को ठंडा करनाः–** दूध को गर्म करने के बाद 21–22°C तक ठंडा कर लेना चाहिए इस तापक्रम पर दुग्धाम्ल जीवाणु सबसे अधिक सक्रिय होते है।
4. **दूध में जामन मिलानाः–** दूध को उपयुक्त तापमान तक ठंडा करने के पश्चात् उसमें जामन मिला देना चाहिए। जामन मिलाने के बाद दूध को अच्छी तरह हिला देना चाहिए जिससे जामन समान रूप में सारे दूध में फैल जाए। जामन की मात्रा कुल दूध की मात्रा का 1–3 प्रतिशत होना चाहिए।
5. **इन्कूवेशन तथा तापक्रम नियंत्रणः–** दूध में जामन

मिलाने के पश्चात् जितना समय दही जमने में लगता है उसे इन्कूवेशन अवधि कहते है। ठीक प्रकार से जामन मिलाने के बाद, दूध को अंधेरे में अथवा ढककर 22°C ताप पर एक निश्चित स्थान पर रख देते है, दही बनने में गर्मी में 6–8 घंटे तथा सर्दियों में 10–12 घंटे लगते है।

जामन (Starter):– जामन वह पदार्थ है जो लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया से तैयार किया हुआ है जो कि दूध को दही में बदलने के लिए प्रयुक्त होता है।

जामन तीन प्रकार के होते है:–

1. **प्राकृतिक जामन (Natural Starters):–** जब दूध को वातावरण के तापक्रम 60°C पर रख दिया जाता है। कभी–कभी उसमें अम्लता पैदा करने वाले जीवाणु उत्पन्न हो जाते है। इस प्रकार स्वाभाविक ही दूध दही में बदल जाता है परन्तु इस दही का स्वाद सुवास अच्छा नहीं होता है।
2. **शुद्ध जामन (Pure Starters):–** यह जामन प्रयोगशाला में तैयार किया जाता है यह जीवाणुओं का शुद्ध कल्चर पाउडर के रूप में होता है इसमें स्ट्रेप्टोकोकस अथवा लैक्टोबैसीलस समूह का कोई एक प्रकार का जीवाणु होता है।
3. **सामान्य जामन (Comman Starters):–** यह एक दिन पूर्व का दही होता है इसमें स्टैप्टोकोकस लैक्टिस, स्टैप्टोकोकस कैसाई अथवा लैक्टोबैसीलस एसिडोफिलसबैक्टीरिया तथा कभी–कभी लैक्टोबैसीलस बुलगेरीकस भी पाए जाते है।

दही का महत्त्व:– हमारे देश में दही भोजन का एक प्रमुख खाद्य पदार्थ है, इसे दूध से बनाया जाता है। इसकी माँग सर्दी की अपेक्षा गर्मी में अधिक रहती है। दही में वे सभी पोषक तत्त्व पाए जाते है जो दूध में उपलब्ध होते है। दही की भौतिक अवस्था दूध से भिन्न होती है। दही को दूध में जामन लगाकर तैयार किया जाता है। जामन में जीवाणु पाए जाते है, ये जीवाणु दही में विटामिन B तथा विटामिन X बनाने में सहायक होते है। दही के उपयोग से कैल्सियम एवं फॉस्फोरस खनिज पदार्थ दूध की अपेक्षा अधिक मिलते है क्योंकि दही की अम्लता 0.7–0.9 प्रतिशत होने के कारण इन खनिजों की घुलनशीलता अधिक होती है। दही में पाई जाने वाली प्रोटीन (केसीन) भी अधिक पाचक होती है। आयुर्वेद एवं घरेलू नुस्खों में दही का उपयोग दस्त, पेचिश एवं आंतो की खराबी में उपचार हेतु किया जाता है। दही के नियमित सेवन से दस्त, अपच एवं गैस की शिकायत दूर होती है।

दही का उपयोग:– दैनिक जीवन में दही का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है–

1. दही का सीधे ही भोजन के साथ उपयोग किया जाता है अर्थात् छाछ के रूप प्रयोग करते हैं।
2. दही को मथकर लौनी या मक्खन प्राप्त कर उसे उचित तापक्रम पर गर्म कर मक्खन से घी तैयार किया जाता है।
3. गर्मी के दिनों में दही के अंदर शक्कर मिलाकर लस्सी या नमक मिलाकर नमकीन लस्सी के रूप में उपयोग में लाते है।
4. दही का उपयोग श्रीखंड बनाने में किया जाता है।
5. दही को सब्जी बनाने तथा कढ़ी बनाने में उपयोग किया जाता है।
6. दही बड़ा व चाट पकोड़ा के रूप में भी दही का उपयोग किया जाता है।
7. दही पंचामृत का एक घटक होता है जो धार्मिक उत्सवों पर तैयार किया जाता है।

खोआ या मावा (Khoa or Mawa)

खोआ की परिभाषा:– दूध के जल को तीव्र वाष्पीकरण द्वारा निकालकर आंशिक रूप से सुखाया हुआ एक दुग्ध पदार्थ है, जिसमें दुग्ध ठोस पदार्थ 70 से 75% होते हैं, जिसे खोया/खोआ/मावा कहते हैं ।

खोआ का संघटन (Composition of Khoa)– गाय व भैंस के दूध से बने हुए खोआ का रासायनिक संघटन निम्नानुसार है।

खोआ बनाने की विधि (Khoa making method):–

क्र. स.	दूध की किस्म	नमी%	वसा%	प्रोटीन%	दुग्धम%	राख%	लोहा%
1	गाय	25.5	26.0	19.0	26.0	3.5	139
2	भैंस	19.5	37.0	17.7	22.0	3.8	125

सर्वप्रथम गहरे पैंदे की कढ़ाही में दूध डालकर गर्म करना प्रारम्भ करते है तथा गर्म करते समय दूध को पलटे से लगातार चलाते रहते है ऐसा करने से दूध में वाष्पन शीघ्रता से होता है। इस प्रकार दूध का आयतन धीरे–धीरे कम होने लगता है जो कि दूध की प्रोटीन फट जाने के कारण होता है इस समय दूध को तेजी से चलाना आरम्भ कर देना चाहिए जिससे वाष्पन तेजी से हो तथा दूध कढ़ाही की सतह पर जलने न पाए ऐसा न करने पर खोआ का सुवास (गंध) एवं रूप खराब हो जाता है। इसके पश्चात् जब दूध पूर्ण रूप से गाढ़ा हो जाता है तो वह कढ़ाही की दीवारों को छोड़ने लगता है समझना चाहिए कि खोआ तैयार हो गया है तथा

कढ़ाही को आग से हटा लेना चाहिए। खोआ बनाने के लिए प्रारम्भ में दूध को उबालते रहना चाहिए और दूध जब एक निश्चित अवस्था तक गाढ़ा हो जाए तब उसका तापमान 80°C कर देना चाहिए अंत में अधिक तापमान पर रखने से खोआ की क्वालिटी खराब हो जाती है।

खोआ बनाते समय ध्यान में रखने योग्य बातें:–

1. शुरू में आग तेज रखते हैं जिससे वाष्पीकरण तेजी से हो।
2. कढ़ाई में दूध की मात्रा उसके आयतन का 1/4 से 1/5 भाग ही रखना चाहिये ।
3. शुरू में दूध को पलटे से चलाने की गति लगभग 40 चक्कर प्रतिमिनट तथा गाढ़ा होने पर तीव्र गतिलगभग 150 चक्कर प्रतिमिनट होनी चाहिये।
4. आखिरी अवस्था में तापक्रम घटाकर लगभग 75 से 80°C रखना चाहिये, जिससे जलने की सम्भावना न रहे ।

खोआ का उत्पादन:– सामान्यतः भैंस के दूध से 20–23 प्रतिशत तथा गाय के दूध से 18–20 प्रतिशत खोआ प्राप्त होता है।

$$\text{खोआ का उत्पादन \%} = \frac{\text{प्राप्त खोआ की मात्रा (कि.ग्रा. में)}}{\text{प्रयोग किए गए दूध की मात्रा (कि.ग्रा. में)}} \times 100$$

खोआ का उपयोग:– खोआ का उपयोग अनेक प्रकार की मिठाईया बनाने में किया जाता है। जैसे–पेड़ा, गुलाबजामुन, बर्फी, कलाकंद, मिल्क केक, पंटुआ आदि।

खोआ के सामान्य गुण:–

1. **सामान्य स्वरूप:–** गाय के दूध से बने हुए खोआ का स्वरूप हल्का पीला तथा भैंस के दूध से बने हुए खोआ का स्वरूप सफेद होता है।
2. **गठन:–** अच्छी क्वालिटी के खोआ में पानी व वसा उसके गठन में ठीक प्रकार से मिली होनी चाहिए।
3. **सुवास (गंध):–** प्रायः खोआ गंध रहित होता है परन्तु रासायनिक परिवर्तनों के कारण इसका सुवास आक्सीकृत अवश्य हो जाता है।
4. **संघनता:–** खोआ की सतह चिकनी, सख्त एवं कणदार होती है।

छैना (Chhana)

परिभाषा:– छैना फटे हुए दूध से तैयार किया हुआ एक विशेष प्रकार का दुग्ध पदार्थ है। उबलते हुए दूध को अम्ल द्वारा फाड़कर तैयार किया जाता है। दूध को फाड़ने के लिए दुग्धाम्ल या साइट्रिक अम्ल अथवा साइट्रिक फलों के रस का प्रयोग किया जाता है। उत्तम प्रकार का छैना प्राप्त करने के लिए उत्तम प्रकार का दूध लेकर उसमें उत्तम प्रकार के फलों का रस प्रयोग किया जाता है।

उत्तम प्रकार का छैना तैयार करने के लिए उत्तम प्रकार का दूध चाहिए।

संघटन:– गाय तथा भैंस के दूध से बने हुए छैना का रासायनिक संघटन निम्न है–

छैना का रासायनिक संघटन

दूध की किस्म	पानी%	वसा%	प्रोटीन%	दुग्धम%	खनिज पदार्थ%
गाय का दूध	53.4	24.7	17.6	2.2	2.1
भैंस का दूध	51.5	29.6	14.6	2.4	1.9

छैना तैयार करने की विधि:– छैना तैयार करने के लिए निम्न सामग्री की आवश्यकता होती है–

1. शुद्ध ताजा दूध (गाय का हो तो उत्तम है)।
2. दुग्धाम्ल या साइट्रिक अम्ल या नींबू का रस।
3. इस्पात का भगोना या कढ़ाही।
4. इस्पात का चमचा।
5. साफ बारीक कपड़ा।

विधि:– सर्वप्रथम भगोना या कढ़ाही, चमचा और बारीक कपड़े को गर्म पानी से साफ कर लेते हैं। दुग्ध जिससे छैना बनाना है उसकी वसा, अम्लता एवं पूर्ण ठोस पदार्थ की मात्रा ज्ञात कर लेनी चाहिए। इसके बाद दूध का मानकीकरण कर लेना चाहिए क्योंकि उत्तम प्रकार का छैना तैयार करने के लिए दूध में वसा रहित ठोस पदार्थ की मात्रा वसा की मात्रा का 1.9 से 2.1 गुनी होनी चाहिए। यह अनुपात दूध में सप्रेटा मिलाकर प्राप्त कर सकते है।

मानकीकृत दूध को मापकर भगोने या कढ़ाही में डाल लेते है तथा उबालने के लिए गैस स्टोव पर रखकर गर्म करते है। जब दूध उबलने लगे तो स्टोव से उतारकर उसमें 1 से 2 प्रतिशत दुग्धाम्ल, नींबू का रस या साइट्रिक अम्ल डालकर चमचा द्वारा धीरे–धीरे पूर्ण रूप से हिलाते हैं तथा ध्यान रखते हैं कि अम्ल पूर्ण रूप से 40 सैकण्ड में 82°C के तापमान पर दूध में मिल जाए। इसी समय में पूर्ण रूप से फटे हुए दूध को साफ बारीक कपड़े पर पलटकर पनीर जल को अलग करने के लिए कपड़े को अच्छी तरह बाँधकर लटका देते हैं, इस प्रकार 3–4 घंटे में जल निकल जाएगा और छैना कपड़े में रह जाएगा।

छैने की पैदावार:– गाय के दूध से 14% व भैंस के दूध से 20% छैना प्राप्त होता है। उत्तम प्रकार का छैना तैयार करने के

लिए दूध में वसा की मात्रा 4% होनी आवश्यक है।

छैना का प्रतिशत उत्पादन = $\frac{\text{प्राप्त छैना की मात्रा} \times 100}{\text{प्रयोग किए गए दूध की मात्रा}}$

उपयोगिता:– छैना का उपयोग विभिन्न प्रकार की मिठाईयाँ जैसे रसगुल्ला संदेस तथा खीर तैयार करने के लिए किया जाता है।

छैना के गुण:–

1. **सामान्य रूप–** गाय के दूध से बने छैना का रंग हल्का पीला और भैंस के दूध से बने छैना का रंग सफेद होता है क्योंकि गाय के दूध में कैरोटिन की मात्रा अधिक होती है।
2. **काया व बनावट–** छैना की काया मुलायम और बनावट ठोस होती है।
3. **सुवास या गंध–** छैना प्रायः गंध रहित होता है परन्तु कभी–कभी थोड़ी सी खटास की गंध की होती है।
4. **सघनता:–** छैना की सघनता में युद्ध मुख्य गुण होना चाहिए कि वह अपने अन्दर मीठी वस्तु को अच्छी तरह मिला सकें।

पनीर (Cheese)

पनीर वह दुग्ध पदार्थ है जो दूध जमने/स्कंदन (Coagulation) के पश्चात् व्हे (दुग्ध जल) के निकलने के बाद प्राप्त होता है ।

पनीर का पोषकता मूल्य –

1. पनीर प्रोटीन का उत्तम स्रोत् है ।
2. यह कैल्शियम एवं फास्फोरस का भी अच्छा स्रोत् है ।
3. ऊर्जा का भी अच्छा स्रोत् है ।
4. यह सुपाच्य एवं पाचक है ।

पनीर का संघटन (Cheese Composition):–पनीर का संघटन उसकी किस्म पर निर्भर करता है। सभी किस्मों के पनीर में प्रायः एक ही प्रकार के अवयव पाये जाते हैं, केवल उनकी मात्रा में अंतर होता है । चेड्डार पनीर का संघटन निम्न प्रकार है – जल– 34 से 36%, वसा– 35 से 37%, प्रोटीन–24 से 26% खनिज पदार्थ– 3 से 4%

चेड्डार पनीर बनाना (Cheddar Cheese Making):– चेड्डार पनीर एक सख्त किस्म का पनीर है जो भारत में सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है । इसको बनाने के निम्न चरण हैं –

1. **दूध का चुनाव (Selection of Milk):–** गाय का दूध पनीर के लिए अच्छा होता है । इसको साफ एवं पतले मलमल के कपड़े द्वारा छानकर साफ कर लेते हैं।
2. **दूध का पास्तुरीकरण (Pasteurization of Milk):–** पनीर बनाने वाले दूध को धारण विधि द्वारा अर्थात् 61°C से 62°C पर 30 मिनट तक अथवा उच्च अल्पकालीन विधि (H.T.S.T.) द्वारा 72°C से 73°C पर 15 से 16 सैकण्ड तक गर्म करना चाहिए इसके पश्चात् दूध को 30°C तक ठंडा कर लेना चाहिए।
3. **कल्चर मिलाना (Inoculation of Milk):–** कोई भी प्रमाणिक लैक्टिक कल्चर जो ताजा हो, को 1 से 2% की दर से ठीक तरह से मिलाते हैं ताकि 30 से 45 मिनट में अम्लता 0.01% प्रारम्भिक अम्लता से अधिक बढ़ जाये । दही स्टार्टर भी प्रयोग कर सकते हैं ।
4. **रंग मिलाना (Colouring):–**वांछित रंग को दूध के साथ तनु बनाकर आवश्यकतानुसार दूध में कल्चर मिलाने से पूर्व मिलाया जा सकता है ।
5. **रैनेटिंग (Renneting):–** सूखेरेनेट चूर्ण को 2.5 ग्राम प्रति 100 किलोग्राम दूध की दर से 20 से 40 गुना पानी में घोलकर मिलाया जाता है । यदि रेनेट द्रव में है तो 20 मिलीलीटर प्रति 100 लीटर दूध की दर से मिलाया जाता है । रेनेट डालने के बाद दूध को तेजी से अच्छी तरह मिलाते हैं और फिर दूध को 35 से 45 मिनट तक शांत छोड़ देते हैं जिससे दही की तरह थक्का जम जाए ।
6. **काटना (Cutting):–** स्कंदित (Coagulism) को पहले क्षैतिज चाकू से काटते हैं और स्कंदित दूध को अनुलम्ब चाकू से काटते हैं ।
7. **पकाना (Cooking):–** अब दही के काटे हुए टुकड़ों को धीरे–धीरे हिलाते–डुलाते–पलटते जाते हैं और तापक्रम इस दर से बढ़ाते हैं कि तापक्रम 1°C प्रतिमिनट की दर से बढ़े और 38°C तक कर लेते हैं। इस क्रिया में एक घण्टे का समय लगता है और अम्लता 0.01 से 0.02% काटने के बाद से बढ़ जाती है।
8. **पनीर जल अथवा व्हे को निकालना (Whey Draining):–** अब कर्ड curd के टुकड़े सुकड़कर छोटे हो जाते हैं और रबर के समान जान पड़ते हैं, तो व्हे को बाहर निकाल दिया जाता है ।
9. **चेडरिंग (Cheddaring):–** अब कर्ड curd के टुकड़ों को बेट के अन्दर दो तरफ एकत्रित इस प्रकार करते हैं कि बीच में नाली बन जाए ताकि व्हे इसमें से धीरे–धीरे निकलती रहे । अब व्हे की अम्लता 0.17 से 0.2% हो जाती है। कर्ड curd के टुकड़े आपस में जुड़ जाते हैं । तापक्रम 3°C ही रखते हैं। अब कर्ड की पट्टी को प्रत्येक 10 से 15 मिनट के अंतर पर पलटते रहते हैं तत्पश्चात् दोनों पट्टियों को एक के ऊपर एक एकत्रित करते हैं और 20 मिनट के अंतर पर अलग करते हैं, जब तक व्हे की अम्लता
10. **काटना (Citting):–** कर्ड की पट्टियों को चाकू अथवा

ग्राइन्डर से उचित आकार के टुकड़ों में काटते हैं ।

11. **वायवीय बनाना (Aeration):–** कर्ड के काटने के बाद और वैट के अन्दर ही ऊपर–नीचे करके हिलाते हैं ताकि हवा प्रवेश कर सके ।

12. **नमक मिलाना (Salting):–** काटने के 15 मिनट बाद 2.5 से 3.0 नमक को तीन चरणों में मिलाते हैं ताकि ठीक प्रकार मिश्रित किया जा सके, तब कर्ड के टुकड़ों को पहले की तरह वैट के एक तरफ एकत्रित करते हैं, जिससे व्हे ठीक प्रकार से बाहर निकल जाए ।

13. **हूपिंग (Hooping):–** नमक मिलाने के 30 मिनट बाद मखमली पनीर को Hoops में बंद कर देते हैं और तापक्रम अब 30°C तक गिर जाता है । इस समय पनीर चिकना स्पष्ट दिखाई पड़ता है ।

14. **दबाना (Pressing):–** पनीर के हूप्स को प्रेस में कुछ घण्टों के लिए दबाया जाता है, जिससे अधिक नमी को दूर किया जा सके । प्रेस का दबाव धीरे–धीरे बढ़ाते हैं ताकि वसा की हानि न हो । इस क्रिया में पनीर को 12 से 14 घंटे लगते हैं ।

15. **प्रेस से बाहर निकालना (Removal from Press):–** पनीर के ब्लाकों को प्रेस से बाहर निकालते हैं।

16. **रिड्रेसिंग (Redressing):–** अगले दिन पनीर के ब्लाकों को बाहर निकालकर कपड़े की सिकुड़न दूर करके पानी से धोकर साफ करके दुबारा प्रेस में रख देते हैं ।

17. **गर्म पानी बाथ (Hot Water Bath):–** प्रेस से निकालने के बाद पनीर ब्लाक को 66°F तापक्रम वाले पानी में कुछ सेकण्ड के लिए रखते हैं ।

19. **मोम चढ़ाना (Parafinning):–** मोम को 125°C ताप पर पिघलाते हैं और उसमें सूखे पनीर ब्लाकों को डुबोकर बाहर निकालते हैं ताकि मोम की परत चढ़ जाए ।

20. **पकाना (Ripening):–** मोम चढ़े हुए पनीर के ब्लाकों को 4 से 10°C पर और 95% आपेक्षिक आर्न्द्रता पर कोल्ड स्टोर में 4 से 12 माह के लिए रख देते हैं । स्वतः पककर इसकी बनावट व स्वरूप में वांछित परिवर्तन होते हैं । जितना समय रखने का लम्बा होगा उतना ही तीव्र सुवास इसमें आयेगी ।

पनीर का उपयोग – पनीर का उपयोग विभिन्न प्रकार की स्वादिष्ट सब्जियाँ बनाने के लिए किया जाता है।

पनीर के गुण –

1. **रंग–** पनीर का रंग हल्का पीला या सफेद होना चाहिए।
2. **सुवास या गंध–** प्रायः पनीर में कोई गंध नहीं होती है कभी–कभी पनीर में कुछ खटास की गंध आती है। इसका कारण पनीर में जल की मात्रा का कम रह जाना है।
3. **स्वरूप एवं गठन–** पनीर का स्वरूप और गठन सदैव दृढ़ या मृदु तथा चिकना होना चाहिए।

दुग्धशाला के बर्तनों एवं यंत्रों की सफाई एवं निर्जीवीकरण (Dairy Farm Utensils & Equipments Cleaning & Sterilization)

दूध, में जीवाणुओं के प्रवेश का मुख्य स्त्रोत बर्तन व यंत्र ही है। दुग्ध पदार्थों में जीवाणु मुख्य रूप से बर्तनों तथा यत्रों द्वारा ही प्रवेश करते है जो पदार्थों को शीघ्र ही खराब कर देते है इसलिए दूध के लिए प्रयुक्त बर्तनों व यंत्रो को उचित रूप से धोना तथा निर्जीवीकरण अतिआवश्यक होता है।

दुग्धशाला के बर्तनों की सफाई का सिद्धान्तः– दुग्धशाला के बर्तनों को धोने का मुख्य उद्देश्य बर्तनों तथा यंत्रो से दूध अथवा दुग्ध ठोस पदार्थों का साफ करना होता है। बर्तनों में उपस्थित जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए निर्जीवीकरण किया जाता है जिसमें वे संख्या में वृद्धि करके प्रदूषण ना बढ़ा सके।

दुग्धशाला के बर्तनों को साफ करने की विधियाँः–

सूखी विधि (Dry method):– इस विधि में बर्तनों को पानी से धोकर बारीक रेत, राख अथवा मिट्टी से अच्छी तरह रगड़कर साफ करके कपड़े से पोंछ दिया जाता है। पानी की कमी वाले क्षेत्रों में यह विधि उपयुक्त रहती है।

1. **वैज्ञानिक विधि (Scientific method):–** दुग्धशाला के बर्तनों को वैज्ञानिक ढ़ग से सफाई करने में निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती है–

   (अ) साधारण पानी से धोनाः– सबसे पहले दूध के बर्तनों को साफ पानी से धोना चाहिए जिससे उन पर लगी छोटी–छोटी गंदगी आसानी से धुल जाती है। ठंडे पानी की अपेक्षा गर्म पानी से धोने पर दुग्ध प्रोटीन गर्मी पाकर फट जाती है तथा बर्तन की सतह से चिपक जाती है धीरे–धीरे वह दुग्ध धातु (Milk stone) में बदल जाती है। ताजे पानी से धोने पर यह समस्या पैदा नहीं होती है।

   (ब) सोडा मिले गर्म पानी से धोनाः– साफ पानी को 50°C तापक्रम तक गर्म करके उसमें सोडा मिलाकर 0.25 से 0.5 प्रतिशत का घोल तैयार करके उससे बर्तनों को धोया जाता है इस तापक्रम पर दूध वसा पिघल जाती है तथा अन्य पदार्थ भी नरम हो जाते है। इन पदार्थों को ब्रुश अथवा मोटे कपड़े की सहायता से आसानी से हटाया जा सकता है। बर्तनों को मशीन द्वारा धोना है तो सोडा की मात्रा 0.5 से 1.8 प्रतिशत तक रखी जाती है बाद में बर्तनों को पर्याप्त पानी से अच्छी तरह धो लिया जाता है।

(स) गर्म पानी से धोना:– साधारण व ताजे पानी, गर्म पानी व सोडा के घोल से बर्तनों को धोने के बाद अंत में अधिक गर्म पानी से धोने पर बर्तनों की चिकनाई एवं शेष बचे दुग्ध ठोस पदार्थ साफ हो जाते है।

(द) बर्तनों का निर्जीवीकरण :– निर्जीवीकरण करने हेतु उबलते पानी, भाप अथवा क्लोरीन घोल का प्रयोग किया जाता है। क्लोरीन जल से धोने के बाद बर्तनों को गर्म पानी से धोना आवश्यक है। बर्तनों को भाप में या उबलते पानी में 15–20 मिनट तक रखने पर बर्तन जीवाणु रहित हो जाते है।

धोवन पदार्थ (Cleaning material) :– यह वे पदार्थ होते है जिन्हें बर्तनों की सफाई के काम में लिया जाता है। एक अच्छे धोवन पदार्थ में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

1. आर्द्रक शक्ति– धोने वाले घोल का अच्छा आर्द्रक होना आवश्यक है जिससे बर्तनों की सतह से ठीक से फैलकर गंदगी दूर कर सकें।
2. यह विलोष्टनकारी प्रभाव वाला हो जिससे दूध के कणों को बर्तनों की सतह से दूर कर सकें।
3. यह उत्तम पायसीकारक हो जिससे वसा के कणों को बर्तनों की सतह से अलग करके सफाई में आसानी हो।
4. जीवाणु को मारने की क्षमता हो जिससे बर्तनों के जीवाणुओं को नष्ट किया जा सकें।
5. अच्छा घोलक हो जिससे प्रोटीन के कणों को घोलकर बर्तनों की सतह से दूर कर सकें।
6. पानी में पूर्णतः घुलनशील हो।
7. सस्ता और सुगमता से प्राप्त होने वाला हो।
8. बर्तनों व यंत्रों के लिए हानिकारक नहीं हो तथा मनुष्यों के हाथों के लिए भी हानिकारक न हों।
9. अच्छी बेधन शक्ति वाला हो जो गंदगी के अंदर जाकर उसकी पूर्णतः सफाई में सहायक हो
10. अच्छी प्रतिरोधक क्षमता वाला हो।

धोवन पदार्थों का वर्गीकरण:–

1. क्षारीय धोवक
2. अम्लीय धोवक
3. जटिल फास्फेट्स
4. आर्द्रक धोवक

1. क्षारीय धोवक:– दुग्धशाला में बर्तनों की सफाई हेतु प्रायः क्षारीय शोधक ही काम में लिए जाते है। इनका 1 से 2 प्रतिशत घोल जिसका पी.एच. मान 9.8 से 12.2 हो प्रयोग में लाते है। कुछ साधारण क्षारीय शोधक निम्नलिखित है।

(अ) दाहक सोडा:– यह एक तीव्र क्षारीय रासायनिक पदार्थ है इसलिए बर्तनों की सफाई के लिए इसे काम में नहीं लेते है। इसका 1–2 प्रतिशत घोल दूध की बोतलों तथा काँच के बर्तनों की सफाई हेतु प्रयोग किया जाता है।

(ब) सोडा राख:– बर्तनों की सफाई हेतु इसका प्रयोग किया जाता है। खारे पानी में सोडा राख उपयोगी नहीं है।

(स) ट्राई सोडियम फॉस्फेट:– यह एक अच्छा शोधक है जिसका उपयोग सभी प्रकार के बर्तनों तथा यंत्रो की सफाई में किया जाता है। यह कीटाणुनाशक भी है।

(द) सोडियम बाईकार्बोनेट:– यह एक हल्का धोवन–पदार्थ है इसलिए प्रायः कलई किए हुए बर्तनों की सफाई के लिए काम में लाया जाता है।

2. अम्लीय धोवक:– विशेष प्रकार के बर्तनों की सफाई के लिए अम्लीय शोधकों का प्रयोग किया जाता है। इनमें टार्टरिक अम्ल, साइट्रिक अम्ल, ग्लूकोनिक अम्ल, फास्फोरिक अम्ल तथा फॉरमिक अम्ल आदि का प्रयोग होता है। अम्लों के 1 प्रतिशत घोल जिसका पी.एच. मान 6.5 से 6.8 हो उपयोग दूध के डिब्बों को धोने के लिए किया जाता है।

3. जटिल फॉस्फेट:– कठोर पानी वाले क्षेत्रों में इसका उपयोग किया जाता है क्योंकि यह कठोर पानी को मृदु बना देते है। इसमें सोडियम टेट्रा–फास्फेट यौगिक अधिक लाभदायक है क्योंकि इसका उपयोग हर प्रकार के बर्तन धोने में किया जा सकता है। इसके अन्य उदाहरण सोडियम हेक्सामेटाफास्फेट व सोडियम ट्राइपोलीफास्फेट है इनका 1 से 2 प्रतिशत घोल जिसका पी.एच. मान 7.5 हो काम में लेते है। 10 प्रतिशता फास्फेट की मात्रा पानी की कठोरता दूर करने के लिए उपयोगी है।

4. आर्द्रण कारक:– आजकल इनका उपयोग बढ़ रहा है। यौगिक बर्तनें में चिपके हुए वसा कणों के साथ मिलकर उनको तेजी से पृथक कर देते है। साबुनीकरण की क्रियाओं को बनाए रखते है जिससे बर्तन एवं यंत्रों की अच्छी प्रकार से सफाई हो जाती है। उदाहरण के लिए सल्फोनेल्विक ऐल्कोहॉल व टीपोल।

धोने के लिए एक अच्छा डेयरी डिटर्जेन्ट मिश्रण:–

ट्राइसोडियम फास्फेट– 40 भाग
सोडियम बाईकार्बोनेट– 40 भाग
सोडियम सिलिकेट– 20 भाग

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. दूध एक विषमांगी द्रव पदार्थ है।
2. दूध में वसा 3–8 प्रतिशत, वसा रहित ठोस (SNF) 8.5–11 प्रतिशत, प्रोटीन 3.5 प्रतिशत तथा कार्बोहाइड्रेट (लेक्टोस) 5 प्रतिशत होता है।
3. दूध संगठन दो कारकों से प्रभावित होता है : (i) पशु कारक : प्रजाति, नस्ल, आहार एवं पोषण स्तर, बीमारी, पशु की उम्र आदि; (ii)वातावरणीय कारक : दूध दुहने का समयांतराल, दुहने की क्षमता, मौसम आदि।
4. दही, मक्खन तथा घी– दूध के उत्पाद हैं।
5. दही में लेक्टोस की मात्रा सबसे कम होती है।
6. मक्खन में वसा 80 प्रतिशत जबकि घी में 99 प्रतिशत से अधिक होती है।
7. मक्खन एवं घी में विशेष सुगंध डाई–एसिटिल के कारण होती है।
8. दूध में वसा रहित ठोस की मात्रा बढ़ाने के लिए स्टार्च, यूरिया, चीनी आदि मिलते हैं।
9. कृत्रिम दूध बनाने में वनस्पति तेल, डिटर्जेंट, यूरिया, स्टार्च, चीनी आदि मिलाते हैं।
10. खीस एक विशेष प्रकार का क्षरण होता है जो कि मादा पशुओं के ब्याने के तुरन्त बाद उनके अयन से प्राप्त होता है।
11. खीस गर्म करने पर स्कंदित अथवा जम जाता है। यह नवजात शिशुओं के अति उपयोगी तरल है जो सभी बीमारियों से बचाता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्नः–

1. खीस का आपेक्षिक घनत्व होता है–
   (अ) 1.040 से 1.080 (ब)1.020 से 1.030
   (स) 1.01021.020 (द) 0.067 से 0.098
2. गाय के दूध में दुग्धम पाया जाता है–
   (अ) 5.48% (ब) 4.90%
   (स) 6.98% (द) 3.50%
3. दूध का सफेद रंग किस कारण होता है–
   (अ) कैल्सियम (ब)कैरोटीन
   (स) फास्फोरस (द)कैसीन
4. दूध को दूषित करने वाली अप्रत्यक्ष अशुद्धि है –
   (अ) धूलकण (ब)बाल
   (स) मक्खी–मच्छर (द)जीवाणु
5. कम ताप अधिक समय विधि में दूध को ताप व समय तक धारण करते है–
   (अ) 72°C ताप 15 सेकंड (ब) 63°C ताप 30 मिनट
   (स) 72° F ताप 30 मिनट (द) 65°F ताप 15 सैकंड
6. ताजे दूध में अम्लता प्रतिशत होती है–
   (अ) 0.16 से 0.28 प्रतिशत (ब)0.11 से 0.16 प्रतिशत
   (स) 1.00 से 1.28 प्रतिशत (द) 0.05 से 0.10 प्रतिशत
7. लैक्टोमीटर पर 60°F तापक्रम अंकित है और दूध का तापक्रम 68°F है तो लैक्टोमीटर पाठ्यांक (L.R) में तापमान संशोधन होगा।
   (अ) L.R + 1.2 (ब) L.R - 1.2
   (स) L.R + 0.8 (द) L.R - 0.8
8. क्रीम सेपरेटर से क्रीम निकालने के लिए दूध का तापक्रम होता है–
   (अ) 10°C से 15°C (ब) 30°C से 37°C
   (स) 20°C से 27°C (द) 40°C से 47°C
9. भैंस के घी की अपेक्षा गाय का घी अधिक पीला होता है, इसका कारण है –
   (अ) प्रोटीन (ब) कैल्शियम
   (स) कैरोटीन (द) पोटेशियम
10. दही में दुग्धम की मात्रा होती है–
    (अ) 4.4 से 4.9 (ब) 3.4 से 3.9
    (स) 5.4 से 5.9 (द) 2.4 से 2.9
11. दूध में जामन लगाने से पूर्व दूध ठंडा करते है–
    (अ) 10°C से 15°C (ब) 30°C से 37°C
    (स) 20°C से 27°C (द) 40°C से 47°C
12. गाय के शुद्ध दूध से तैयार मावा का उत्पादन होता है–
    (अ) 20 से 25% (ब) 18 से 20%
    (स) 15 से 16% (द) 22 से 27%
13. गाय के दूध से निर्मित छैना में प्रोटीन की प्रतिशत मात्रा होती है –
    (अ) 17.6 (ब) 16.5
    (स) 18.5 (द) 15.5
14. पनीर बनाते समय दूध के पास्चुरीकरण में 61 से 62°C तापक्रम पर रखते हैं –
    (अ) 20 मिनट तक (ब) 25 मिनट तक
    (स) 30 मिनट तक (द) 15 मिनट तक
15. दुग्धशाला के बर्तनों की मशीन द्वारा सफाई करने के लिए सोडा का घोल तैयार किया जाता है
    (अ) 0.40 से 0.85% (ब) 0.5 से 1.8%
    (स) 2.05 से 2.85% (द) 3.15 से 4.25%
16. दूध में न्यूनतम वसा की मात्रा कितने प्रतिशत होती है–
    (अ) 5.0 (ब) 2.5
    (स) 3.0 (द) 8.0

17. दूध के संगठन को प्रभावित करने वाले पशु–कारक हैं–
(अ) प्रजाति (ब) नस्ल
(स) आहार (द) सभी
18. किस माह में दूध में वसा की मात्रा सर्वाधिक होती है?
(अ) मार्च (ब) मई
(स) जुलाई (द) नवम्बर
19. दही में कौन सा अम्ल पाया जाता है?
(अ) एसीटिक (ब) ब्यूटायरिक
(स) प्रोपिओनिक (द) लेक्टिक
20. दूध में पाये जाने वाले कार्बोहाईड्रेट हैं –
(अ) सुक्रोस (ब) माल्टोस
(स) लेक्टोस (द) कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1. दूध की परिभाषा लिखिए।
2. गर्मी से दूध के संगठन में क्या परिवर्तन होता है?
3. मक्खन एवं घी में वसा की मात्रा लिखिए।
4. कृत्रिम दूध के घटक लिखिए।
5. वसा रहित ठोस की मात्रा को बढ़ाने वाले पदार्थों के नाम लिखो।
6. दूध का उबाल बिन्दु कितना होता है ?
7. खीस में कितनी अम्लता होती है ?
8. स्वच्छ दूध को अधिक समय तक सुरक्षित रखने हेतु कितने तापक्रम पर रखते है?
9. दूध की वास्तविक अम्लता किसे कहते है?
10. सी.ओ.वी. का पूरा नाम लिखिए।
11. बाउल हुड क्या है?
12. घी को कितने तापक्रम पर भण्डारित किया जाता है ?
13. घी में पाये जाने वाले एक विटामिन का नाम लिखिए ।
14. छाछ का एक महत्व लिखिए।
15. भैंस के मावा में खनिज पदार्थ की मात्रा कितनी होती है?
16. गाय के दूध से छेना कितनी मात्रा में प्राप्त होता है।
17. पनीर का एक उपयोग लिखिए।
18. एक अच्छे आर्द्रकारक का नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1 खीस का महत्त्व लिखिए।
2. दूध में संघटन को प्रभावित करने वाले कारकों के नाम लिखिए।
3. दूध में अम्लता कितने प्रकार की होती है?
4. बाउल डिस्क कितने प्रकार की होती है?प्रत्येक का वर्णन कीजिए।
5. घी का उपयोग क्यों करना चाहिये ?
6. दही का क्या महत्त्व है?
7. खोआ की परिभाषा दीजिए।
8. चेड्डार पनीर का संघटन लिखिए।
9. सिंथेटिक दूध व असली दूध में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
10. दुग्ध धातु क्या है?
11. दाहकसोडा पर टिप्पणी लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्नः–

1. दूध का आपेक्षिक घनत्व निकालने की विधि का वर्णन कीजिए।
2. गरबर विधि द्वारा दूध की वसा ज्ञात करने की विधि का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. सिंथेटिक दूध क्या है?इसका परीक्षण करने की विधियों का वर्णन कीजिए।
4. खीस के भौतिक गुणों का वर्णन कीजिए।
5. दूध में पाए जाने वाले अवयवों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
6. दूध को ठंडा करने की विधियों का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
7. पास्चुराइजेशन को परिभाषित कीजिए। इसकी धारण विधि का विस्तार से वर्णन कीजिए।
8. क्रीम सेपरेटर किसे कहते है?इसके मुख्य भागों का वर्णन कीजिए।
9. घी से आपका क्या आशय है ?इसे बनाने की किसी एक विधि का वर्णन कीजिए ।
10. दही को परिभाषित कीजिए तथा इसका मानव के दैनिक जीवन में क्या उपयोग है?विस्तार से वर्णन कीजिए।
11. खोआ तैयार करने की विधि का विस्तार से वर्णन कीजिए।
12. चेड्डार पनीर बनाने की विधि का विस्तार से वर्णन कीजिए ।
13. दुग्धशाला के बर्तनों की सफाई करने की विधियों का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला

1. (अ) 2. (ब) 3. (द) 4. (द) 5. (ब) 6. (ब) 7. (स) 8. (ब)
9. (स) 10. (अ) 11. (स) 12. (ब) 13.(अ) 14. (स) 15. (ब)
16. (स) 17. (द) 18. (द) 19. (द) 20. (स)

कृषि रसायन प्रायोगिक
(Agriculture Chemistry - Practical)

प्रयोग–1

मृदा परीक्षण हेतु नमूना लेना (Sampling for Soil testing) :

मृदा – ''पृथ्वी की वह उपरी सतह जो पौधे को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है तथा जड़ो को सहारा देती है मृदा कहलाती है।''

मृदा नमूना– किसी भी खेत की मृदा भौतिक, रासायनिक, जैविक एवं खनिजिक गुणों की दृष्टि से समरूप नही होती है। मृदा परीक्षण हेतु खेत में से अलग–अलग जगह से नमूने लेते है जो सारे खेत का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हों।

मृदा परीक्षण के उद्देश्य –

1. मृदा में उपस्थित उपलब्ध पोषक तत्वों की सही मात्रा ज्ञात करना।
2. परीक्षण के आधार पर फसल हेतु आवश्यक उर्वरकों की मात्रा का सही निर्धारण करना।
3. विभिन्न क्षेत्रों का मृदा उर्वरता मानचित्र तैयार करना।
4. मृदा का पी.एच. मान ज्ञात कर अम्लीयता एवं क्षारीयता का पता करना।
5. समस्याग्रस्त मृदाओं हेतु मृदा सुधारकों की मात्रा का निर्धारण करना।

उपकरण एवं सामग्री –

(1) खुरपी (2) फावड़ा

(3) बरमा (Auger) (4) पैमाना

(5) तगारी (6) लकड़ी की खरल एव मूसल

(7) छलनी (2 मि.मी.)

(8) पौलिथीन एवं कपड़े की थैलियाँ

(9) गत्ते के डिब्बे

मृदा नमूना एकत्रित करना

(अ) साधारण क्षेत्र के नमूने–

(1) उद्देश्य तथा खेत की स्थिति को ध्यान में रखकर उपयुक्त उपकरणों से मृदा नमूना लेवे।

(2) उपरोक्त चित्र 1 के अनुसार खेत को समान रूप से 10 से 20 स्थानों से मृदा नमूना लेवे।

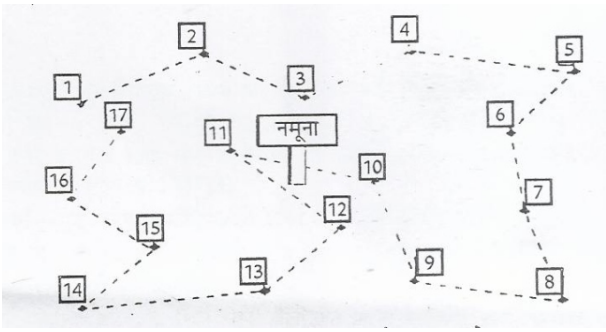

चित्र–1.1 मृदा की सतह से उप नमूने प्रत्येक खेत से कम से कम 10 से 20 स्थानों से एकत्रित करने चाहिये

(3) निर्धारित स्थानों से खुरपी की सहायता से ''V'' आकार के गढ्ढे से इस तरह काटे की गढ्ढे के तल तक का एक सा भाग दीवार के साथ–साथ मृदा आ जाये। इसे स्वच्छ तगारी में एकत्रित कर लें। इस प्रकार सभी स्थानों से मृदा नमूना लेवें।

(4) एकत्रित सभी मृदा नमूनों की मृदा को एकत्रित कर एक

ढेर बनाये तथा उसके चार हिस्से चित्रानुसार (चित्र–2) करे । फिर इसमें आमने सामने का ढेर हटाकर शेष का एक ढेर बनायें तथा उसके भी चार हिस्से करके आमने सामने का हिस्सा हटाकर एक ढेर बनावे यह क्रिया तब तक करें जब तक कि अन्त में आधा किलोग्राम मृदा रह जाये।

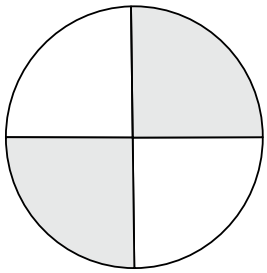

चित्र–1.2

अन्तिम आधा किलोग्राम नमूने को मृदा की थैलियों में भरकर उस पर एक लेबल लगा दे। लेबल पर कृषक का नाम, पता, खेत की स्थिति, खेत का नम्बर, नमूने की गहराई, नमूना एकत्रित करने की तिथि आदि सूचनाऐं तीन प्रतियों में तैयार कर दो प्रतियाँ थैली के अन्दर रखे तथा तीसरी प्रति थैली के साथ बाहर बांध दीजिए।

(ब) ऊसर मृदा सुधार हेतु मृदा नमूना लेना–

इस उद्देश्य के लिए नमूने अप्रैल या मई में लेना चाहिये क्योंकि इन मृदाओं में धान की फसल पहले लेनी होती है। गेंहूँ उगाने वाले क्षेत्रों में नमूने मार्च–अप्रेल में लेने चाहिये। इस समय लवण मृदा की ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाते हैं।

वर्षा के तुरन्त बाद नमूने नहीं लेने चाहिये क्योंकि वर्षा में विलेय लवण नीचे की सतहों में चले जाते हैं। जहाँ तक सम्भव हो, नमूना ऐसे स्थान से लिया जावे जो लवण प्रभावित सम्पूर्ण क्षेत्र का प्रतीक हो। साधारणतया ऊसर भूमि के निदान हेतु ऑगर या 90 से.मी. गहरा गड्ढा खोदकर मृदा नमूना लिया जाता है। यदि गढ्डा खोदकर मृदा नमूना लेना है तो निम्न विधि के अनुसार नमूना एकत्रित करते है –

(1) गढडे की एक तरफ की दीवार को समतल करके 15, 30, 60 तथा 90 से.मी. की गहराई तक निशान लगा देते है।

(2) एक छोटी बाल्टी 15 से.मी. के निशान के नीचे लगाकर उसमें मृदा सतह से इस निशान तक (15 से.मी. गहराई), 1.5–2 से.मी. मोटी परते काटकर एकत्रित करते है। इस मिट्टी को साफ कपड़े की थैली में एकत्रित करके लेबिल पर 0–15 से.मी. लिखकर थैली में डाल देते हैं।

(3) इसी प्रकार निम्न सतहों 15–30, 30–60 तथा 60–90 से.मी. की गहराइयों से आधा–आधा किलोग्राम मृदा एकत्रित करते है और उसे अलग–अलग थैलियों में एकत्रित कर लेते है।

(4) पृष्ठ पपड़ी (Surface crust) का भी अलग से नमूना एकत्रित करते है।

(5) प्रत्येक थैली में लेबिल जिस पर मृदा की गहराई, कृषक का नाम, जल–स्तर (Water lable) सिंचाई का स्रोत आदि सूचनायें लिखी होती हैं, डाल देते हैं। दूसरा लैबिल थैली के बाहर बाँध देते हैं।।

(स) बगीचा लगाने हेतु मृदा नमूना एकत्रित करने की विधि –

फलदार वृक्षों की अच्छी फसल अब मृदा के भौतिक–रासायनिक गुणों तथा उर्वरता स्तर पर निर्भर होती है। इसलिये बगीचा लगाने से पहले मृदा परीक्षण आवश्यक होता है। इनके लिये मृदा नमूना निम्न प्रकार एकत्रित करते है।

(1) एक गड्ढा 1.80 मीटर गहरा खोदकर इसकी एक दीवाल को समतल बना लेते है और इस पर 15, 30, 60, 90, 120, 150 और 180 से.मी. गहराइयों पर निशान लगा लेते हैं।

(2) लवणीय मृदा से नमूना एकत्रित करने की विधि की तरह 0–15, 15–30, 30–60, 60–90, 90–120, 120–150 तथा 150–180 से.मी. गहराइयों से अलग–अलग नमूने एकत्रित कर लेते हैं।

(3) यदि कोई कठोर परत गडढे में उपस्थित है तो इसमें से अलग नमूना एकत्रित करते है और इसकी गहराई तथा मोटाई लिख लेते हैं।

(4) प्रत्येक गहराई के मृदा नमूने को अलग–अलग थैली में भर लेते हैं।

(5) प्रत्येक थैली में एक लेबिल लगा लेते हैं, जिस पर सतह की गहराई, कृषक का नाम, गाँव का नाम, खेत संख्या आदि सूचनायें लिख देते हैं।

मृदा नमूना एकत्रित करने में सावधानियाँ –

(1) खेत के कोने, मेड़, उर्वरक के ढ़ेर, वृक्षों तथा मकानों के नजदीक से मृदा नमूना न लें।

(2) खड़ी फसल में नमूना न लें।

(3) नमूना एकत्रित करने में साफ उपकरण एवं थेलियों का प्रयोग करें।

(4) वर्षा ऋतु में नमूना एकत्रित न करें।

(5) मृदा नमूने की मात्रा आधा किलो से कम न हो।

(6) फसल बुवाई के 20–30 दिन पूर्व नमूना लें ताकि विश्लेषण के परिणाम बुवाई से पहले प्राप्त हो सकें।

(7) फल बगीचों एवं समस्या ग्रस्त मृदाओं का नमूना विशिष्ठ विधि से लें।

प्रयोगशाला में मृदा नमूना तैयार करना –

खेत में मृदा नमूना एकत्रित करना कुल कार्य का आधा काम है। कम से कम 50% कार्य प्रयोगशाला या नमूना तैयार करने के कमरे में होता है। विश्लेषण हेतु लाये गये मृदा नमूने को प्रयोगशाला में सुखाया, कूटा तथा छाना जाता है।

सुखाना (Drying)– गीले मृदा नमूने को प्रयोगशाला में नही रख सकते क्योंकि कुछ आयन्स की रासायनिक प्रकृति तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है।

नमूने प्रायः छाया में सुखाये जाते हैं। कुछ निश्चित निर्धारणों जैसे नाइट्रेट नाइट्रोजन, विनिमेय पोटेशियम तथा अमोनिकल नाइट्रोजन अम्ल निस्सार (Acid extractable) फास्फोरस तथा फैरस आयरन के लिये ताजे नमूने खेत से लिये जाते हैं और उन्हें सुखाया नहीं जाता है।

छानना (Sieving)– मृदा के नम नमूनों को सुखाने से पहले बड़े–बड़े ढेलों को हाथ से रगड़ कर तोड़ लेते हैं। यह प्रक्रम भारी मृदाओं में अधिक लाभप्रद होता है। उपयुक्त नम अवस्था में मिट्टी 2mm छलनी से छानी जा सकती है। यदि कंकड़ो की मात्रा (2mm से बड़े) अधिक है तो निश्चित प्रतिशतता ज्ञात कर लेते हैं।

कूटना (Grinding)– सुखाने के बाद मृदा नमूने को लकड़ी के हथौड़े से धीरे–धीरे कूटकर महीन कर लेते है जिससे कण अलग–अलग हो जाएं। कंकड तथा प्राथमिक रेत कणों को नही कूटना चाहिये। भारी मृदाओं को पूर्ण रूप से वायु शुष्क करने से पहले ही 2mm छलनी से छान लेना चाहिये।

संग्रह करना (Storing)– इन मृदा नमूनों को पॉलीथिन के थैलों, कपड़े की थैलियों या काँच की बोतलों में भर लेते हैं। इस पर कृषक का नाम, नमूना, संख्या, दिनांक तथा अन्य आवश्यक सूचनाये लिखकर विश्लेषण के लिये रख देते हैं।

मृदा का संतृप्त अर्क तैयार करना (Preparation of Saturated extract of soil) :

मृदा नमूने को किसी पात्र में लेकर उसमें यदि आसुत जल मिलाकर मृदा संतृप्त पेस्ट (Soil Saturation paste) बनाया जाये तो पेस्ट में विस्तृत रंध्र का पानी भी मृदा में समागत रहता है। मृदा संतृप्त से निर्वात पम्प (Vaccum Pump) के माध्यम से निष्कर्ष / निस्सारण (extract) निकाला जा सकता है।

इस निस्सारण से रासायनिक विश्लेषण द्वारा मृदा के बारे में कई जरूरी जानकारी प्राप्त की जा सकती हैं।

साधारण परीक्षण हेतु मृदा नमूने के भार का दुगना आसुत जल डालकर 30 मिनट तक अच्छी तरह कांच की छड़ से हिलाकर मृदा जल निलम्बन तैयार किया जाता है। जल निलम्बन के माध्यम से मृदा पी.एच. (pH) एवं विधुत चालकता (EC) ज्ञात की जाती है।

1. उपकरण एवं सामग्री –

(1) तैयार मृदा नमूना

(2) 500 मि.ली. क्षमता वाले बीकर

(3) स्टेनलेस स्टील स्पेचुला

(4) निर्वात पम्प एसेम्बली

(5) बुकनर फनल (Buchner funnel)

(6) फिल्टरिंग फ्लास्क

(7) वाटमेन फिल्टर पेपर संख्या –44

(8) संतृप्त अर्क को एकत्रित करने हेतु 50 मि.ली. क्षमता की ढक्कनदार प्लास्टिक की छोटी बोतलें।

विधि –

(अ) मृदा संतृत पेस्ट तैयार करना –

(1) 200 ग्राम शुष्क मृदा नमूने को 500 मि.ली. क्षमता वाले बीकर या पोरर्सोलिन डिश में लें।

(2) ब्यूरेट में शून्य बिन्दु तक आसुत जल भरकर मृदा नमूने में ब्यूरेट से बूंद–बूंद कर पानी मृदा को बिना हिलाये डालते रहे जब तक की सारी मृदा गीली न हो जावे।

(3) पानी की बूंदे जब तक डाले जब तक कि मृदा सतह पर पानी की बूंदे चमकने लग जाये लेकिन पानी ऊपर भरा हुआ दिखाई न दे।

(4) स्पेचुला से मिटटी को अच्छी तरह से मिश्रण कर पेस्ट तैयार करें।

(5) स्पेचुला से मिट्टी न चिपके इस हेतु आवश्यक हो तो कुछ बूंदे पानी की ओर मिला ले।

(6) मृदा पेस्ट को स्पेचुला से बीच में से कट लगा कर दो भागो में विभक्त करें ओर देखे यदि पेस्ट की कटी हुई सतह खिसक कर स्वतः ही मिल रही हो तो मान लेना चाहिए कि मृदा संतृप्त अवस्था पर पहुँच गयी है।

(7) पेस्ट को संतुलन हेतु ढक कर छोड़ देवें यदि चिकनी मिटटी है तो रात्रि भर के लिये संतुलन हेतु

छोड़े। चिकनी मृदाओं का पेस्ट बनाते समय प्रारम्भ में धीमी गति से हिलाये तथा मोटे गठन वाली मृदाओं को प्रारम्भ में तेज गति से हिलाना चाहिए।

(8) मृदा के संतृप्त अवस्था पर पुनः परीक्षण करें कि मृदा स्पेचुला से चिपके तो थोड़ा पानी और डालकर मिलाये लेकिन स्वतंत्र जल की परत न आये।

(9) कुल मिलाये गये पानी की मात्रा नोट कर लें।

(ब) गणना –

(1) मृदा नमूना का भार ..... ग्राम

(2) मृदा पेस्ट बनाने हेतु उपयोग आसुत जल ..... मि.ली.

संतृप्ति प्रतिशत =

$$\frac{\text{आसुत जल जो मिलाया गया (मि.ली.) X100}}{\text{मृदा नमूना का भार (ग्राम)}}$$

(स) मृदा संतृप्त पेस्ट से निस्सारण निकालना –

(1) बुकनर फनल एवं फिल्टरिंग फ्लास्क को आसुत जल से धोकर निथारने के बाद एक दूसरे से इस प्रकार जोड़े कि जोड़ वायुरोधी हो जाये।

(2) बुकनर फनल के रंध्रों को वाटमेन 44 फिल्टर पेपर को रिंग से इस पकार से ढ़के कि रिंग की साइज बुकनर फनल के आधार के बराबर हो।

(3) फिल्टरिंग फ्लास्कों को निर्वात पम्प एसेम्बली से रबर ट्यूबों द्वारा जोड़े।

(4) फिल्टर पेपर की रिंग को कुछ आसुत जल की बूंदे डाल कर नम कर दें तथा निर्वात पम्प का स्विच ओन करें।

(5) बुकनर फनल में संतृप्त मृदा पेस्ट को स्पेचुला की मदद से फिल्टर पेपर की नम रिंग पर एक साथ डालें। यह प्रक्रिया सेट पर लगायी गयी सभी फनलों पर एक साथ होनी चाहिए या फिर निर्वात पम्प को चालू कर एसेम्बली से जुड़े हुए फ्लास्क की एक–एक नोजल खोलते हुए पेस्ट को फिल्टर पेपर रिंग पर गिराये।

(6) बुनकर फनल से जब अरक फ्लास्क में टपकना बन्द हो जाये तब निर्वात पम्प को बन्द कर देना चाहिए। निर्वात पम्प को बन्द करने के साथ ही बुकनर को फिल्टरिंग फ्लास्क से अलग कर देना चाहिए, अन्यथा फ्लास्क का अरक निर्वात पम्प द्वारा विपरीत खींचा (Suction) हो सकता है।

(7) फ्लास्क में एकत्रित मृदा संतृप्त अरक को 20 से 50 मि.ली. क्षमता की प्लास्टिक बोतल में स्थानान्तरण कर ढक्कन लगाए।

(8) मृदा संतृप्त अरक से भरी बोतलों को रासायनिक विश्लेषण हेतु किसी ठंडे स्थान पर भण्डारण करें।

❑

प्रयोग–2

पानी का pH एवं EC ज्ञात करना (Determination of pH and EC of Water):

विश्व में पेयजल समस्या बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही कृषि में भी सिंचाई जल की कमी आती जा रही है। राजस्थान में सिंचाई जल की काफी कमी है तथा जो सिंचाई जल उपलब्ध है उसकी गुणवत्ता अच्छी नहीं है।

सिंचाई जल में विभिन्न प्रकार के लवण पाए जाते हैं। इन लवणों की मात्रा एवं प्रकार पर सिंचाई जल की गुणवत्ता निर्भर करती है। सिंचाई जल में हानिकारक लवणों की मात्रा अधिक होने पर ऐसे जल से सिंचाई करने से मृदा में लवणीयता, क्षारीयता एवं विषैलापन आ जाता है तथा फसलों की पैदावार भी अच्छी नहीं होती है। इसलिए पेयजल की भांति सिंचाई जल का उपयोग में लेने से पहले परीक्षण करना आवश्यक है।

सिंचाई जल में इसका pH एवं EC ज्ञात करना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है किन्तु इन परीक्षणों हेतु सिंचाई जल का नमूना एकत्रित करना महत्त्वपूर्ण है। अतः यहां पर सिंचाई जल के नमूने कैसे एकत्रित करें इसकी संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है।

सिंचाई जल के नमूने एकत्रित करना (Collection of Sample in Irrigation Water) -

(1) उपकरण (Apparatus)-

(i) पॉलीथीन या पायरेक्स कांच की बोतलें। (ii) रस्सी तथा बाल्टी। (iii) मार्कर पेन। (iv) टेग। (v) पेन्सिल।

(2) विधि (Procedure)-

(i) जिस बोतल में सिंचाई का जल का नमूना लेना है उसे गर्म जल अथवा क्रोमिक अम्ल से अच्छी तरह धो लेना चाहिए। नई बोतल में 1–2 दिन पानी भरकर रखें तथा फिर अच्छी तरह धोकर काम में लें।

(ii) सिंचाई जल का नमूना ट्यूबवैल या कूएं से लेना हो तो पहले 10–15 मिनट पम्प चलने दें तत्पश्चात् नमूना लें। नमूना लेने वाली बोतल को नमूना लेने वाले नल से अच्छी तरह धोकर भरें।

(iii) तालाब, बांध, नहर से नमूना लेना हो तो किनारे से नमूना न लेकर थोड़ा आगे से लेना चाहिए तथा बोतल पूरी भरें, खाली न रखें।

(iv) सिंचाई जल के सम्पूर्ण विश्लेषण करने के लिए नमूने में 500 मि.ली. जल अवश्य लेना चाहिए।

(v) खुले कुओं में रस्सी बाल्टी से नमूना ले रहे हों तो बाल्टी एवं रस्सी अच्छी तरह साफ कर लेनी चाहिए। नमूने के पानी से बोतल धोकर उसमें पानी भरकर बोतल को बाल्टी में डुबोकर पानी के अन्दर ही ढक्कन लगा दें ताकि पानी खराब न हो। इससे पूर्व जल से हाथ भी अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए।

(vi) पानी के नमूने को अधिक समय तक संग्रहित करना हो तो बोतल भरकर अन्त में पानी के ऊपर 2–3 बूंदें शुद्ध टोल्यूइन की अवश्य डाल दें ताकि किसी प्रकार की सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि न हो सकें।

(vii) यदि पानी में सिल्ट अथवा क्ले के कण हों तो उसे निथारकर विश्लेषण कर लेवें अथवा फिल्टर पत्र से छान लेना चाहिए।

(viii) बोतल पर लगाया जाने वाला ढक्कन भी बोतल की भांति साफ करें तथा नमूने के पानी में अच्छी तरह धोकर ढक्कन लगायें।

(ix) बोतल पर ढक्कन लगाने के बाद बाहर से पोंछकर, सुखाकर उस पर लेबल लगायें। लेबल मार्कर पेन अथवा पेन्सिल से टेग पर लिखकर लगायें।

(x) लेबल पर किसान का नाम, पता, कुए का नाम, नमूना लेने की तिथि आदि सूचनाएं अंकित कर दें।

(xi) कुछ किसान ट्यूबवैल में पहले अच्छा पानी फिर खारा पानी आने को कहते हैं तो 1–2 घंटे के अंतराल पर एक से अधिक नमूने लिए जा सकते हैं तथा इस अवधि को लेबल पर अवश्य अंकित करें।

(xii) नमूने का pH जितना शीघ्र हो ज्ञात करें तथा नमूने का EC छः माह के अन्दर तक ज्ञात किया जा सकता है। इस हेतु न्यूनतम 100 मि.ली. पानी की विश्लेषण हेतु आवश्यकता होती है।

(xiii) विभिन्न विश्लेषणों हेतु नमूने लेने के पात्र, नमूने की मात्रा, परीक्षण का तरीका, नमूना संग्रहित रखने की समय सीमा भिन्न–भिन्न होती है।

प्रयोग

उद्देश्य– **pH** मीटर द्वारा सिंचाई जल का **pH** ज्ञात करना।

(1) आवश्यक सामग्री (Required Material)–

(अ) उपकरण (Apparatus)

(i) pH मीटर।

(ii) कांच की छड़।

(iii) धोने की बोतल।

(iv) बीकर 50 मि.ली. क्षमता।

(ब) अभिकर्मक (Reagents) -

(i) उभयप्रतिरोधी विलयन **(Buffer Solution)** 4.0, 7.0 एवं 9.2 pH (pH मीटर के मानकीकरण हेतु) ।

(ii) आसुत जल। (iii) सिंचाई जल का नमूना।

(2) सिद्धान्त (Principle)

pH पानी का वह गुण है, जिससे उसकी अम्लीयता, उदासीनता तथा क्षारीयता को मापा जा सकता है। H^+ आयन्स अधिक होने पर अम्लीयता तथा इनकी कमी होने पर क्षारीयता होती है।

जल का pH ज्ञात करने हेतु pH मीटर का उपयोग किया जाता है। pH मीटर में दो इलेक्ट्रॉड होते हैं (वर्तमान में एक संयुक्त इलेक्ट्रॉड वाला pH मीटर एवं डिजिटल भी उपलब्ध है) – (i) सूचक इलेक्ट्रॉड (Indicator Electrode) (ii) सन्दर्भ इलेक्ट्रॉड (Reference Electrode)

जब इलेक्ट्रॉड जल में डुबोए जाते हैं तो जल में विभव (Potential) उत्पन्न होता है। दोनों इलक्ट्रॉडों के मध्य विभव (Potential) का अन्तर pH मीटर द्वारा मापा जाता है। जिसका पाठ्यांक नोट कर लिया जाता है।

(3) विधि (Procedure)-

(i) 50 मि.ली. क्षमता वाले बीकर में 25 मि.ली. नमूने का सिंचाई जल लें।

(ii) pH मीटर के दोनों इलेक्ट्रॉडों को आसुत जल से धोकर (Rinse) नमूने के जल में डुबोयें। (एक संयुक्त इलेक्ट्रॉड वाला हो तो एक ही इलेक्ट्रॉड जल में डुबोयें)

(iii) pH मीटर को सही समायोजित कर पाठ्यांक नोट करें। (iv) ज्ञात पाठ्यांक को परीक्षण सारणी में यथा स्थान लिख लेवें।

(4) प्रेक्षण (Observation)-

क्र. सं.	सिंचाई जल का नमूना संख्या एवं विवरण	**pH** मान	नमूने की श्रेणी निष्कर्ष
1.			
2.			

(5) परिणाम (Result)-

दिए गए सिंचाई जल के नमूना सं.....का pH मान ..... है जो.....श्रेणी का है।

pH मान	**जल की श्रेणी**
pH 7	उदासीन
pH 7 से कम	अम्लीयता
pH 7 से अधिक	क्षारीयता

(6) विवेचन (Discussion)-

परिणाम के आधार पर निम्न विवेचन सारणी के अनुसार श्रेणी अंकित करते हैं।

क्र. सं.	लिटमस पत्र सिंचाई जल में डुबोने पर	जल की श्रेणी
1.	लाल तथा नीला लिटमस पत्र पर कोई प्रभाव नहीं	उदासीन
2.	नीला लिटमस पत्र लाल हो जाता है	अम्लीयता
3.	लाल लिटमस पत्र नीला हो जाता है	क्षारीयता

ध्यान देने योग्य बिन्दु–

(i) pH मीटर उपलब्ध न होने पर सिंचाई जल की उदासीनता, अम्लीयता तथा क्षारीयता लिटमस पत्र तथा यूनिवर्सल इण्डिकेटर द्वारा ज्ञात की जा सकती है।

(ii) यूनिवर्सल इण्डिकेटर की कुछ बूंदे 10 मि.ली. पानी में लेकर उसके रंग का मिलान इण्डिकेटर की बोतल पर लगे चार्ट के रंग से करते हैं तथा pH मान ज्ञात कर लिया जाता है।

प्रयोग

उद्देश्य– EC मीटर द्वारा सिंचाई जल की विद्युत चालकता EC ज्ञात करना (Determination of Electrical Conductivity in Irrigation Water by EC Meter)

(1) आवश्यक सामग्री (Required Material)-

(अ) उपकरण (Appatarus) -

(i) चालकता सेतु (EC मीटर)

(ii) कांच की छड़।

(iii) धोने की बोतल।

(iv) बीकर 50 मि.ली. क्षमता।

(ब) अभिकर्मक (Reagents) -

(i) 0.02 M पोटेशियम क्लोराइड (KCl) इसकी

25°C पर EC 2.768 मिलीम्होज या dSm^{-1} होती है। इसे बनाने हेतु 1.4912 ग्राम पोटेशियम क्लोराइड को आसुत जल में घोलकर आयतन 1 लीटर बनावें (EC मीटर के मानकीकरण में प्रयोग हेतु)

(2) सिद्धान्त (Principle) -

किसी माध्यम द्वारा विद्युत आवेश के स्थानान्तरण का गुण विद्युत चालकता (Electrical Conductivity) कहलाता है। विद्युत चालकता प्रतिरोधकता (R) का व्युत्क्रमानुपाति (Reciprocal) होता है। इसे व्युत्क्रम ओम (ओम$^{-1}$) प्रतिवर्ग सेन्टीमीटर यानि म्होज प्रति से.मी. अथवा डेसी साइमन प्रति मीटर (dSm^{-1}) में व्यक्त करते हैं।

$$\frac{1}{R} = \frac{1}{ohm} = ohm^{-1} = mho \text{ (व्युत्क्रम ओम)}$$

जल में घुलनशील लवणों की मात्रा अधिक होने पर विद्युत चालकता बढ़ती है। अतः सिंचाई जल की विद्युत चालकता जल की गुणवत्ता निर्धारण में बहुत ही आवश्यक अभिलक्षण है। यह एक बहुत उपयोगी मापदण्ड है, जिसे आसानी एवं शुद्धता से ज्ञात किया जा सकता है। वर्तमान में EC की इकाई dSm^{-1} (डेसी साइमन प्रति मीटर) प्रयुक्त होती है।

(3) विधि (Procedure)

(i) 50 मि.ली. क्षमता वाले बीकर में 25 मि.ली. सिंचाई जल का नमूना लें।

(ii) विद्युत चालकता सेतु के सेल को आसुत जल से धोकर (Rinse) सेल को जल के नमूने में इस प्रकार डुबोयें कि जल में किसी प्रकार का वायु का बुलबुला न रहे।

(iii) विद्युत चालकता सेतु को 25°C पर समायोजित कर पाठ्यांक नोट करें तथा dSm^{-1} अथवा mhos cm^{-1} में पाठ्यांक प्रेक्षण सारणी में यथा स्थान पर लिखें।

(4) प्रेक्षण (Observation)

क्र.स.	सिंचाई जल का नमूना संख्या एवं विवरण	सिंचाई जल के नमूने की विद्युत चालकता (EC) 25°C पर dSm^{-1} में	नमूने की श्रेणी निष्कर्ष
1. 2. 3.			

(5) परिणाम (Result)

दिए गए सिंचाई जल के नमूना सं..... की 25°C पर की विद्युत चालकता (EC)..... dSm^{-1} है एवं नमूना..... .....श्रेणी का है।

(6) विवेचन (Discussion)

परिणाम के आधार पर निम्न विवेचन सारणी के अनुसार श्रेणी निष्कर्ष अंकित करें –

सारणी : विद्युत चालकता के आधार पर सिंचाई एवं फसलोत्पादन में कठिनाई स्तर –

क्र.सं.	सिंचाई जल की विद्युत चालकता (dSm^{-1})	जल की किस्म/श्रेणी निष्कर्ष	फसलोत्पादन का कठिनाई स्तर
1.	0.25 dSm^{-1} से कम	निम्न लवणीय जल	कुछ भी कठिनाई नहीं
2.	0.25 से 0.75 dSm^{-1} तक	मध्यम लवणीय जल	कुछ भी कठिनाई नहीं
3.	0.75 से 2.25 dSm^{-1} तक	उच्च लवणीय जल	बढ़ती हुई कठिनाईयाँ
4.	2.25 से 5.0 dSm^{-1} तक	अति उच्च लवणीय जल	उग्र कठिनाईयां
5.	5.0 से 20 dSm^{-1} तक अथवा अधिक	अत्यधिक उच्च लवणीय जल	अत्यधिक उग्र कठिनाईयां

मृदा का pH एवं EC ज्ञात करना (Determination of pH & EC of Soil):

अम्लीय तथा लवण प्रभावित मृदायें कृषि के लिए अनुपयोगी हैं अथवा कम उत्पादन देने वाली हैं। नम जलवायु वाले क्षेत्रों में मृदा कोलाइड्स पर अधिशोषित धनायनों के अधिक वर्षा के साथ अपक्षालन होने से हाइड्रोजन आयन्स (H^+) की सान्द्रता बढ़ने से मृदायें अम्लीय हो जाती हैं। इस प्रकार की अम्लीय मृदायें भारत में 90 मिलियन हैक्टर के लगभग है। शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क प्रदेशों में लवण प्रभावित मृदाओं की समस्या होती है।

भारत में 6.73 मिलियन हैक्टर में लवणीय एवं क्षारीय प्रभावित मृदायें हैं। राजस्थान की कुल काश्त का लगभग 3.74 लाख हैक्टर क्षेत्र लवण एवं क्षारीयता से प्रभावित मृदाओं का है। वर्तमान बढ़ती जनसंख्या के दबाव को ध्यान में रखकर इस प्रकार की मृदाओं को सुधार कर पैदावार लेना आवश्यक हो गया है। अतः सर्वप्रथम इस प्रकार की समस्याग्रस्त (अम्लीय, लवणीय व क्षारीय) मृदाओं की साधारण पहचान करना आवश्यक है। मृदा में pH एवं EC महत्वपूर्ण कारक है जिसके आधार पर इनकी पहचान आसानी से की जा सकती है।

प्रयोग

मृदा का pH मान ज्ञात करना (Determination of Soil pH):

(1) आवश्यक सामग्री (Required Material)

(अ) उपकरण (Apparatus)

(i) बीकर 50 मि.ली. क्षमता।

(ii) पिपेट 20 मि.ली. क्षमता।

(iii) pH मीटर।

(iv) परखनली।

(v) फिल्टर पत्र।

(ब) अभिकर्मक (Reagents)

(i) लिटमस पत्र लाल व नीला। (ii) सर्वव्यापी सूचक। (iii) आसुत जल।

(2) सिद्धान्त (Principle)

pH मृदाओं का एक ऐसा अभिलक्षण है जो यह दर्शाता है कि मृदा उदासीन, अम्लीय अथवा लवण प्रभावित है।

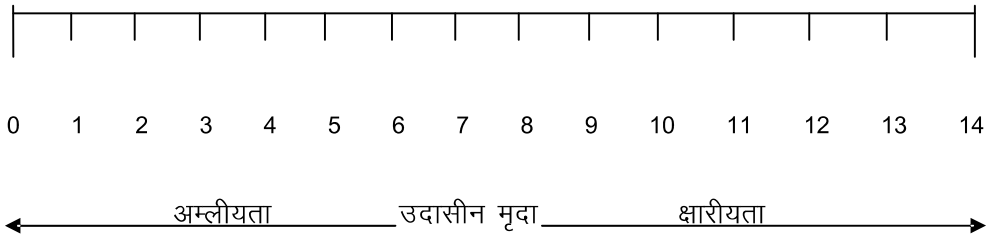

चित्र–2.1 pH स्केल

कृषि की दृष्टि से pH 6.5 से 7.5 के मध्य उदासीन मृदायें मानी जाती हैं। pH 6.5 से कम वाली मृदायें अम्लीय तथा pH 7.5 से ऊपर वाली मृदायें लवण प्रभावित कहलाती हैं। pH 8.5 से अधिक होने पर क्षारीय मृदायें कहलाती हैं।

(3) विधि (Procedure)

अम्लीय एवं लवण प्रभावित मृदाओं की pH के आधार पर पहचान हेतु निम्नलिखित विधियां काम में लेते हैं (विद्यालय की प्रयोगशाला में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर किसी एक विधि द्वारा पहचान की जा सकती है) – (i) लिटमस पत्र द्वारा। (ii) रंगमापी विधि द्वारा। (iii) pH मीटर द्वारा।

(i) लिटमस पत्र द्वारा– इस विधि में लाल एवं नीला लिटमस पेपर काम में लिया जाता है। 10 मि.ली. संतृप्त मृदा पेस्ट का निष्कर्ष अथवा मृदा जल निलम्बन लेकर उसमें लिटमस पत्र डुबोकर देखते हैं तथा लिटमस पत्र के रंग बदलने के आधार पर मृदा की पहचान की जाती है। यह विधि ज्यादा विशुद्ध नहीं हैं, यह सरल एवं सस्ती विधि है।

सारणी–2.1 लिटमस पत्र द्वारा **pH** मान ज्ञात करते समय रंग परिवर्तन

क्र.स.	लिटमस पत्र को मृदा अरक अथवा मृदा जल निलम्बन में डुबोने पर रंग परिवर्तन	प्रेक्षण	निष्कर्ष
1.	नीला तथा लाल लिटमस पत्र डुबोने पर	कोई परिवर्तन नहीं	उदासीन मृदा
2.	नीला लिटमस पत्र डुबोने पर	लाल हो जाता है	अम्लीय मृदा
3.	लाल लिटमस पत्र डुबोने पर	नीला हो जाता है	लवण प्रभावित मृदा

(ii) रंगमापी विधि द्वारा – रंगमापी विधि में कुछ विशेष प्रकार के सूचकों का प्रयोग होता है। यह सूचक एक निश्चित pH पर अपना रंग परिवर्तित कर देता है। इन रंगों को pH 4.0 से 11. 0 तक विस्तार सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। रंगीन पदार्थों के इस प्रकार के सूचक को सर्वव्यापी सूचक (Universal Indicator) कहते हैं।

इस विधि में एक परखनली में 10 मि.ली. संतृप्त मृदा पेस्ट अरक अथवा मृदा जल निलम्बन लेकर उसमें 4–5 बूंदें इस सर्वव्यापी सूचक की मिलाकर अच्छी तरह हिलाते हैं। इस मिश्रण को कुछ समय रख देते हैं। इस रंग को मानक रंग तालिका (Standard Colour Chart) से तुलना करके मृदा का pH मान ज्ञात कर लेते हैं। मानक रंग तालिका सूचक की बोतल पर ही लगी हुई होती है अथवा अलग से भी आता है। यह विधि अत्यन्त सरल एवं सस्ती है किन्तु इसके परिणाम अधिक विश्वसनीय नहीं होते हैं क्योंकि इस विधि द्वारा ज्ञात pH मान में कम से कम 0.5 pH की त्रुटि रह सकती है।

सारणी – 2.2

सर्वव्यापी सूचक का pH मान एवं वर्गीकरण

pH मान	वर्गीकरण
4.0	अत्यधिक अम्लीय
5.0	मध्यम अम्लीय
5.5	हल्की मध्यम अम्लीय
6.0	हल्की अम्लीय
6.5	बहुत हल्की अम्लीय
7.0	उदासीन
7.5	हल्की क्षारीय
8.0	मध्यम क्षारीय
8.5	अत्यधिक क्षारीय
9.0	अत्यधिक क्षारीय
9.5	अत्यधिक क्षारीय
10.0	अत्यधिक क्षारीय
11.0	अत्यधिक क्षारीय



चित्र–2.2 pH मीटर

(iii) pH मीटर द्वारा – इस विधि में संतृप्त मृदा पेस्ट निष्कर्ष अथवा मृदा जल निलम्बन (1 : 2) में pH मीटर के इलेक्ट्रॉड डुबोकर pH मान ज्ञात करते हैं तथा पाठ्यांक को प्रेक्षण सारणी में लिख लेते हैं। यह मृदा pH मान ज्ञात करने का सही तरीका है। इससे मृदा में अम्लीयता या लवणीयता की सही पहचान होती है।

सारणी – 2.3

मृदा pH के आधार पर पहचान

क्र.स.	pH मान		वर्गीकरण पहचान
	संतृप्त मृदा पेस्ट का निष्कर्ष	मृदा जल निलम्बन (1: 2)	
1.	5.5 से कम	5.0 से कम	अत्यधिक अम्लीय
2.	6.0 से 5.5	6.0 से 5.0	मध्यम अम्लीय
3.	6.5 से कम	6.0 से कम	हल्की अम्लीय मृदा
4.	6.5 से 7.5	6.0 से 8.5	उदासीन मृदा
5.	7.5 से 8.5	8.5 से 9.0	लवणीय मृदा
6.	8.5 से अधिक	9.0 से अधिक	क्षारीय मृदा

(4) प्रेक्षण (Observation)

(i) लिटमस पत्र का रंग .....से..... हो जाता है अतः मृदा.....है।

अथवा

(i) रंगमापी विधि द्वारा ज्ञात करने पर pH मान..... ..... है अतः मृदा.....है।

अथवा

(i) मीटर द्वारा संतृप्त मृदा पेस्ट निष्कर्ष/मृदा जल निलम्बन का pH मान.....है अतः मृदा..... .....श्रेणी की है।

(5) परिणाम (Result)

दिए गए मृदा नमूने का pH .....है जो ....(अम्लीय, लवणीय, क्षारीय) मृदा है तथा ....श्रेणी की है।

प्रयोग

मृदा विद्युत चालकता (EC) ज्ञात करना (Determination of soil electrical conductivity):

किसी माध्यम में विद्युत–संचलन का गुण विद्युत चालकता कहलाता है जो कि विद्युत प्रतिरोध का व्युत्क्रम होता है। इसे dSm^{-1} (डेसी साइमोन प्रति मीटर) या म्होज प्रति सेमी में व्यक्त करते हैं। विद्युत चालकता अधिक होने का तात्पर्य है कि लवणों की मात्रा भी बढ़ती है। अतः विद्युत चालकता के माध्यम से मृदा में उपस्थित घुलनशील लवणों की मात्रा को ज्ञात किया जाता है।

लवणीय मृदाओं में घुलनशील लवण प्रचुर मात्रा में होने से विद्युत चालकता अधिक होती हैं घुलनशील लवणों की मात्रा अधिक होने से मृदा गुणों तथा पौधों की वृद्धि पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

मृदा का pH मान अधिक होने पर सोडियम की मात्रा अधिक होती है जो मृदा गुणों को ज्यादा खराब करता है। इसमें मृदा pH 8.5 से अधिक और कभी–कभी 10–11 तक पहुँच जाती है। जिससे मृदा की संरचना अत्यन्त खराब हो जाती है और पादप पोषण में बाधा उत्पन्न होने से फसलोत्पादन नहीं हो पाता है। ऐसी मृदाओं को जिप्सम डालकर सुधारा जा सकता है। इसी प्रकार अम्लीय मृदाओं का pH चूना डालकर बढ़ाया जा सकता है।

सारणी–2.4

विद्युत चालकता के आधार पर मृदाओं का विवेचन –

विद्युत चालकता (dSm^{-1})		लवण स्तर	मृदा विवेचन
संतृप्त मृदा पेस्ट / निष्कर्ष	मृदा जल निलम्बन (1 : 2)		
(i) 3 से कम	1 से कम	अलवणीय	सामान्य
(ii) 3 से 5	1 से 2	अल्प लवणीय	अंकुरण के लिए क्रांतिक घुलनशील लवण अंश
(iii) 5 से 10	2 से 3	मध्यम लवणीय	लवण संवेदी फसलों की वृद्धि के लिए क्रांतिक लवण अंश
(iv) 10 से अधिक	3 से अधिक	उच्च लवणीय	अधिकतर फसलों के लिए क्षति

उपकरण एवं सामग्री–

(1) 50 मि.ली. क्षमता वाला बीकर
(2) 250 मि.ली. क्षमता वाला बीकर
(3) काँच की छड़
(4) स्पेचुला
(5) चालकता सेतु, (Conductivity bridge)
(6) मृदा नमूने
(7) आसुत जल
(8) पिपेट 20 मि.ली. क्षमता वाली



चित्र 2.3 : चालकता सेतु

2. विधि–

(अ) संतृप्त मृदा पेस्ट निष्कर्ष –

(1) संतृप्त मृदा पेस्ट अर्क तैयार करें।
(2) संतृप्त मृदा पेस्ट अर्क में चालकता सेतु के डिप टाइप या पिपेट टाइप चालकता सेल को इस तरह से डुबोयें कि अरक में वायु बुलबुला न रहे।
(3) चालकता सेतु पर चालकता को मापिए और dSm^{-1} में पाठ्यांक प्रेक्षण सारणी में लिखिए। इसे ECe से इंगित किया जाता है।

(ब) मृदा जल निलम्बन –

(1) तैयार मृदा नमूने से 10 ग्राम मृदा 50 मि.ली. क्षमता वाले बीकर में लेवें।
(2) बीकर में ली गई मृदा में 20 मि.ली. आसुत जल मिलाइए।
(3) मिश्रण को कांच की छड़ से 30 मिनट तक अच्छी तरह हिलाकर साम्यवस्था लाने हेतु थोड़ी देर रख दीजिए।
(4) मृदा जल निलम्बन को फिल्टर पेपर द्वारा छान लें अथवा निलम्बन को थोड़े समय तक पड़ा रहने दे जिससे मृदा नीचे बैठ जाने पर अधिप्लवी (Supernatent) द्रव को परीक्षण नली में लेवें।

(5) डिप टाइप या पिपेट टाइप चालकता सेल की सहायता से चालकता सेतु पर चालकता को मापिए।

(6) पाठ्यांक को dSm^{-1} के मान को प्रेक्षण सारणी में लिखिए। इसे ECe से इंगित किया जाता है।

3. प्रेक्षण सारणी –

क्र. सं.	मृदा नमूना विवरण	विद्युत चालकता dSm^{1}	लवणता स्तर
1			
2			

4. परिणाम एवं विवेचन

दिए गए मृदा नमूने की विद्युता चालकता .....
.....है तथा मृदा.....श्रेणी की हैं।

❑

प्रयोग–3

मृदा/सिंचाई जल में CO_3^- एवं HCO_3^-/ Cl^- की उपस्थित ज्ञात करना

कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट का मृदा/सिंचाई जल में निर्धारण :

सिद्धान्त (Principle) :–

मृदा अर्क/सिंचाई जल में कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट का निर्धारण प्रमाणिक अम्ल से अनुमापन करने किया जाता है। इस अनुमापन में दो सूचक प्रयोग करते हैं। यह क्रिया दो पदो में पूर्ण होती है। प्रथम पद में जब फिनॉल्फथॅलीन सूचक का रंग गूलाबी से रंगहीन हो जाता है तो इस बिन्दु पर उपस्थित कार्बोनेट ही आधी मात्रा का उदासीनीकरण (Neutralization) होकर बाईकार्बोनेट में बदल जाती है।

द्वितीय पद में अब इसी द्रव्य में मिथाइल ऑरेन्ज सूचक डालते हैं तो द्रव्य का रंग पीला हो जाता है तथा प्रमाणिक हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) से आगे फिर से अनुमापन करने तथा क्रियान्त बिन्दु आने पर पीला रंग गुलाबी लाल (rose red) रंग में बदल जाता है, जो सम्पूर्ण बाइकार्बोनेट उदासीनीकरण का घोतक है। इसमें होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियायें निम्न प्रकार है–

$$Na_2CO_3 + HCl \rightarrow NaCl + NaHCO_3 \text{ (phenolphthalein)}$$

$$NaHCO_3 + HCl \rightarrow NaCl + H_2O + CO_2 \text{ (Methayal orange)}$$

$$Na_2CO_3 + 2HCl \rightarrow 2NaCl + H_2O + CO_2$$

उपकरण एवं सामग्री :–

1. एक लीटर क्षमता के आयतनी फ्लास्क, 2. बीकर, 3. पिपेट, 4. ब्यूरेट, 5. पोर्सेलीन डिश, 6. आसुत जल,

3. अभिकर्मक (Reagents) :–

(अ) मानक सोडियम कार्बोनेट (0.1N) :– 5.3 ग्राम शुष्क सोडियम कार्बोनेट लवण को तोल कर ताजा आसुत जल में घोलने के बाद कुल आयतन 1 लीटर बनायें।

(ब) मानक हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (0.1N):– 1 लीटर 0.1 N HCl विलियन बनाने के लिए 9.5 मि.ली. से कुछ अधिक सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल 1 लीटर के मापन फ्लास्क में लेते हैं तथा आसुत जल से निशान तक आयतन पूरा कर लेते हैं तथा कॉच की डाट लगाकर ऊपर–नीचे हिलाकर रख देते हैं। इस घोल को फिनॉल्फथॅलीन सूचक को काम में लेते हुऐ मानक 0.1 N सोडियम कार्बोनेट विलियन से अनुमापन करें।

(स) फिनॉल्फथॅलीन सूचक (1%) :– 1 ग्राम फिनाल्फथॅलीन रसायन को 100 मि.ली. रेक्टीफाइड स्प्रिट (rectified spirit) में घोल लेते हैं।

(द) मिथाइल औरेंज (1%) :– 1 ग्राम मिथाइल औरेंज रसायन को 100 मि.ली. आसुत जल में घोल लेते हैं।

विधि :–

प्रथम चरण :– पिपेट की सहायता से मृदा संतृप्त निष्कर्ष या सिंचाई जल का 10 मि.ली. आयतन पोर्सेलिन डिश में लेते हैं।

फिनॉल्फथॅलीन सूचक की 2 या 3 बूँदे डालने पर कार्बोनेट की उपस्थिति में घोल का रंग गुलाबी हो जाएगा। गुलाबी रंग कार्बोनेट आयन्स की उपस्थिति का सूचक है।

अब ब्यूरेट से 0.1N हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को बूंद–बूंद डालते हुए अनुमापन करते हैं, क्रियान्त बिन्दु पर घोल का रंग गुलाबी से रंगहीन हो जाता है। अब ब्यूरेट से 0.1N मानक HCl अम्ल विलियन का अनुमापन में लगे आयतन को अवलोकन तालिका में लिख लेते हैं।

द्वितीय चरण :– अब पोंसेलिन डिश में रंगहीन घोल में पुनः दूसरे सूचक मिथाइल औरेंज की 1–2 बूंद मिलाते हैं जिससे विलियन का रंग पीला हो जाता है। अब ब्यूरेट से 0.1N हाइड्रोक्लोरिक अम्ल विलयन डालते हुऐ आगे अनुमापन करते हैं। क्रियान्त बिन्दु (end point) पर घोल का रंग पीले से गुलाबी लाल (rose red) हो जाता है जो बाइकार्बोनेट आयन्स की पूर्ण उदासीनीकरण का सूचक है।

अवलोकन तालिका :

क्र. सं.	मृदा संतृप्त निष्कर्ष या सिंचाई जल का आयतन	फिनाल्फथैलीन की उपस्थिति में अनुमापन			मिथाइल औरेन्ज की उपस्थिति में अनुमापन			कार्बोनेट में लगे अम्ल का आयतन	बाइकार्बोनेट स में लगे अम्ल का आयतन
		प्रारम्भिक पाठ्यांक	अन्तिम पाठ्यांक	अन्तर	प्रारम्भिक पाठ्यांक	अन्तिम पाठ्यांक	अन्तर		
	10 (मि.ली.)	अ (मि.ली.)	ब (मि.ली.)	(ब–अ) (मि.ली.)	स (मि.ली.)	द (मि.ली.)	(द–स) (मि.ली.)	2(ब –अ)	(द–स) – (ब–अ)
1									
2									
3									

गणना –

नार्मलता– आयतन उत्पाद समीकरण द्वारा कार्बोनेट की मात्रा ज्ञात करना

$N_1 x V_1 = N_2 x V_2$

कार्बोनेट की गणना –

$N_1 x V_1 = N_2 x V_2$

यहाँ V_2 = 2(ब–अ) मि.ली. (अम्ल का आयतन)

N_2 = अम्ल की नार्मलता

V_1 = कार्बोनेट विलियन का आयतन

N_1 = कार्बोनेट की नार्मलता

$$N_1 = \frac{N_2 x V_2}{V_1}$$

कार्बोनेट की सांद्रता = नार्मलता x तुल्यांकी द्रव्यमान = $N_1 x 30$ = ... ग्राम प्रति लीटर

कार्बोनेट की पी.पी.एम. में मात्रा = CO_3^{2-} की ग्राम प्रति लीटर मात्रा x 1000

बाईकार्बोनेट की गणना –

$N_1 x V_1 = N_2 x V_2$

यहाँ V_2 = [(द–स)–(ब–अ)] मि.ली. (अम्ल का आयतन)

N_2 = अम्ल की नार्मलता

V_1 = बाईकार्बोनेट विलियन का आयतन

N_1 = बाईकार्बोनेट की नार्मलता

N_1 = कार्बोनेट की नार्मलता

$$N_1 = \frac{N_2 x V_2}{V_1}$$

बाइकार्बोनेट की सांद्रता = नार्मलता x तुल्यांकी द्रव्यमान = $N_1 x 61$ = ... ग्राम प्रति लीटर

बाइकार्बोनेट की पी.पी.एम. में मात्रा = CO_3^{2-} की ग्राम प्रति लीटर मात्रा x 1000

फैक्टर विधि

कार्बोनेट की गणना :

1 मिली $\frac{N}{10}$ HCl विलियन = 0.003 ग्राम कार्बोनेट

2 (ब–अ) $\frac{N}{10}$ HCl = 2 (ब–अ) x 0.003 ग्राम कार्बोनेट

यहाँ 2 (ब–अ) = प्रमाणिक अम्ल का आयतन जो अनुमापन में लगा है।

कार्बोनेट की ग्रा./ली. में मात्रा = $\frac{2\ (\text{ब–अ})\ \text{x}\ 0.003\ \text{x}\ 1000}{10\ (\text{लिये गये मृदा संतृप्त निष्कर्ष या सिंचाई जल का आयतन मि.ली.})}$

बाइकार्बोनेट की गणना :

1 मि.ली. $\frac{N}{10}$ HCl विलयन = 0.0061 ग्राम बाइकार्बोनेट

[(द–स)–(ब–अ)] = [(द–स)–(ब–अ)] X 0.0061 ग्राम

यहाँ [(द–स)–(ब–अ)] = प्रमाणिक अम्ल का आयतन जो बाइकार्बोनेट के अनुमापन में लगा है।

बाइकार्बोनेट की ग्रा./ली. में मात्रा =

$$\frac{[(\text{द–स})–(\text{ब–अ})]\ \text{x}\ 0.0061\text{x}1000}{10}$$

बाइकार्बोनेट की पी.पी.एम. में मात्रा =

$$\frac{[(\text{द–स})–(\text{ब–अ})]\ \text{x}\ 0.0061\ \text{x}1000\ \text{x}\ 1000}{10}$$

परिणाम–

दिये गये मृदा निष्कर्ष/सिंचाई जल में कार्बोनेट एवं बाइकार्बोनिट की = ? मात्रा ग्राम ली.

मृदा/सिंचाई जल में क्लोराइड का निर्धारण :

सिद्धान्त (Principle) :–

मृदा संतृप्त अर्क या सिंचाई जल में क्लोराइड का निर्धारण उदासीन सिलवर नाइट्रेट विलियन द्वारा पोटेशियम क्रोमेट सूचक की उपस्थिति में किया जाता है। क्रियान्त बिन्दु पर निलम्बन का पीला रंग (क्रोमेट आयन के कारण) भूरे लाल रंग में बदल जाता है। यह रंग लाल रंग वाले अविलेय सिल्वर क्रोमेट के अवक्षेपण के कारण आता है, जो सभी क्लोराइड का अविलेय क्लोराइड के रूप में अवक्षिप्त हो जाने के पश्चात बनना शुरू होता है। इसमें निम्न अभिक्रियायें होती हैं –

$$NaCl + AgNO_3 \rightarrow AgCl + NaNO_3$$

$$K_2CrO_4 + 2AgNO_3 \rightarrow 2KNO_3 + Ag_2CrO_4$$

पोटेशियम क्रोमेट — सिल्वर क्रोमेट (लाल अवक्षेष)

उपकरण एवं सामग्री–

1. 1–लीटर क्षमता के आयतनी फ्लास्क,
2. बीकर 3. पिपेट
4. ब्यूरेट 5. पोर्सेलिन डिश 6. आसुत जल

अभिकर्मक (Reagents)–

(1) मानक पोटेशियम क्लोराइड विलियन (0.01N)– 0.7456 ग्राम शुष्क पोटेशियम क्लोराइड को आसुत जल में घोल कर आयतन एक लीटर बनाते हैं।

(2) मानक सिल्वर नाइट्रेट विलियन (0.01N)– 1.7 ग्राम सिल्वर नाइट्रेट लवण को आसुत जल में घोल कर आयतन 1 लीटर कर लेते हैं तथा इस घोल का पोटेशियम क्लोराइड मानक विलयन (Standard Solution) के साथ अनुमापन करके मानकीकृत (Standarize) कर लेते हैं।

पोटेशियम क्रोमेट सूचक (5%)– 5 ग्राम पोटेशियम क्रोमेट लवण को 50 मि.ली. आसुत जल में घोल कर उसमें 1N सिल्वर नाइट्रेट बूंद–बूंद कर तब तक डालते है जब तक कि कुछ स्थिर लाल अवशेष उत्पन्न न हो जाये। अब इसे छान कर घोल का कुछ आयतन आसुत जल से 100 मि.ली. कर लेते हैं।

विधि :–

एक पोर्सलीन डिश में 5 मि.ली. मृदा अर्क या सिंचाई जल डाल कर उसे आसुत जल से लगभग 25 मि.ली. आयतन तक तनु कर लेते हैं। पोटेशियम क्रोमेट सूचक की 5–6 बूंदे डालकर प्रमाणिक सिल्वर नाइट्रेट (0.01N) से ईंट जैसा लाल रंग आने तक अनुमापन करते हैं।

अवलोकन तालिका –

क्र. सं.	मृदा संतृप्त निष्कर्ष या सिंचाई जल का आयतन	ब्यूरेट की रीडिंग		प्रयोग में लाये गये $AgNO_3$ के विलियन का आयतन
		प्रारम्भिक	अन्तिम	
1.				
2.				
3.				
4.				

गणना – नार्मलता आयतन – उत्पादन समीकरण द्वारा –

$$N_1 \times V_1 = N_2 \times V_2$$

N_1 = क्लोराइड की नार्मलता

V_1 = क्लोराइड का आयतन

N_2 = सिल्वर नाइट्रेट की नार्मलता

V_2 = सिल्वर नाइट्रेट का आयतन

$$N_1 = \frac{N_2 x V_2}{V_1}$$

क्लोराइड की सांद्रता = नार्मलता x 35.5 = N_1 x 35.5 = ... ग्राम प्रति लीटर

क्लोराइड की पी.पी.एम. में मात्रा = क्लोराइड ग्राम/लीटर मात्रा x 1000

फैक्टर विधि द्वारा गणना –

चूँकि, 1 मि.ली. $\frac{N}{100}$ $AgNO_3$ विलयन = 0.000355 ग्राम Cl

इसलिए, 'अ' मि.ली. $\frac{N}{100}$ $AgNO_3$ विलयन = अ x 0.000355 ग्राम Cl

('अ' = प्रामाणिक $AgNO_3$ का वह आयतन जो अनुमापन में लगा है।)

क्लोराइड की ग्राम/लीटर में मात्रा =

$$\frac{\text{अ x } 0.000355 \text{ x } 1000}{10 \text{ (संतृप्त मृदा निष्कर्ष या सिंचाई जल का लिया गया आयतन)}}$$

परिणाम–

दिये गये विलयन में क्लोराइड की मात्रा = ... ? ग्राम प्रति ली. (पी.पी.एम.) है।

❑

प्रयोग–4

मृदा में जैविक कार्बन/कैल्शियम कार्बोनेट का निर्धारण

(अ) मृदा में जैविक कार्बन का निर्धारण (Walkley & Black's (1934) Method)

सिद्धान्त– मृदा में कार्बनिक पदार्थ का क्रोमिक अम्ल (जो पोटेशियम डाईक्रोमेट एवं सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से बनता है) के साथ ऑक्सीकरण होता है। क्रोमिक अम्ल की अधिकता, जो मृदा के कार्बनिक पदार्थ के ऑक्सीकरण के उपरान्त शेष रहती है, का आयतन प्रामाणिक फैरस अमोनियम सल्फेट विलयन के साथ अनुमापक करके ज्ञात कर लिया जाता है। इस प्रकार कार्बनिक पदार्थ के ऑक्सीकरण में प्रयुक्त पोटेशियम डाईक्रोमेट की मात्रा ज्ञात की जाती है।

अभिक्रियाएं–

(अ) कार्बन का ऑक्सीकरण

$$K_2Cr_2O_7 + 4H_2SO_4 \rightarrow K_2SO_4 + Cr_2(SO_4) + 4H_2O + 3[O] \text{ x } 2$$

$$C + 2[O] \rightarrow CO_2$$

$$2K_2Cr_2O_7 + 8H_2SO_4 + 3C \rightarrow 2K_2SO_4 + 2Cr_2(SO_4)_3 + 8H_2O + 3CO_2$$

(ब) अनुमापन

$$FeSO_4(NH_4)_2SO_4 6H_2O \rightarrow$$

$$FeSO_4 + (NH_4)_2SO_4 + 6H_2O \text{ x } 2$$

$$2FeSO_4 + H_2SO_4 + [O] \rightarrow Fe_2(SO_4)_3 + H_2O$$

$$2FeSO_4(NH_4)_2SO_4 6H_2O + H_2SO_4 + [O] \rightarrow 2(NH_4)_2SO_4 + Fe_2(SO_4)_3 + 13H_2O$$

(स) सूचक की क्रिया + O + O

$$2C_6H_5NHC_6H_5 \xrightarrow{-H_2O} 2(C_6H_5NHC_6H_4) \xrightarrow{-H_2O}$$

Diphenylamine — Diphenyl benzidine (colourless)

$$C_6H_5N - C_6H_4{}_N - C_6H_4.C_6H_5$$

Diphenyl benzidine (violet)

प्रतिकारक (**Reagents**)–

(1) N/2 फैरस अमोनियम सल्फेट ($FeSO_4(NH_4)_2SO_4$)– 196.10 ग्राम फैरस अमोनियम सल्फेट तोलकर उसे 1.0 लीटर वाले मापन फ्लास्क में लेवें। उसमें 800 मि.ली. आसुत जल एवं 20 मि.ली. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल डालकर अच्छी तररह मिलावें। अभिकर्मक के घुलने पर आसुत जल से जार को एक लीटर घोल

बना लें। इसका प्रमाणीकरण N/2 पोटेशियम डाइक्रोमेट विलियन से करते हैं।

(2) प्रमाणिक 1N पोटैशियम डाइक्रोमेट (1N $K_2Cr_2O_7$)– 49.04 ग्राम पोटेशियम डाइक्रोमेट (ए. आर. ग्रेड) को आसुत जल के साथ मिलाकर एक लीटर घोल बना लेवें।

(3) सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4)– 96% शुद्ध।

(4) सान्द्र ऑर्थोफास्फोरिक अम्ल (H_3PO_4)– 85% शुद्ध।

(5) डाइफिनाइल एमीन सूचक ($C_6H_5NHC_6H_5$) – 0.5–1 ग्राम डाइफिनाइल एमीन 100 मि.ली. सल्फ्यूरिक अम्ल में विलेय कर लेते हैं तथा इसे रंगीन बोतल में रखें।

विधि–

0.5 मि.मी. व्यासी की छलनी से छनी हुई मृदा का 2–5 ग्राम 500 मि.ली. के कॉनीकल फ्लास्क में लेते हैं। इसमें 10 मि. ली. 1N पोटेशियम डाइक्रोमेट विलयन तथा 20 मि.ली. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाते हैं। फ्लास्क के पदार्थों को लगभग 2 मिनट तक अच्छी तरह हिलाते हैं और ऑक्सीकरण प्रतिक्रिया पूर्ण होने के लिए इसको लगभग 30 मिनट तक अंधेरे में रख देते हैं। अब इस फ्लास्क में 200 मि.ली. आसुत जल 10 मि.ली. फास्फोरिक अम्ल तथा 1 मि.ली. डाइफिनाइल अमीन सूचक मिलाते हैं जिससे गहरा बैंगनी रंग पैदा होता है। अब इसका अनुमापन N/2 फैरस अमोनियम सल्फेट विलयन के साथ गहरा हरा रंग आ जाने तक करते हैं।

बिना मृदा लिए हुए उपरोक्त सभी प्रतिकारकों को लेकर एवं सभी पदों को पूर्ण करके अनुमापन करते हैं जिसके द्वारा प्रतिकारकों में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ की अशुद्धि का निर्धारण (Blank) होता है।

अवलोकन (**Observations**)–

(i) ली गयी मृदा का भार = अ ग्राम

(ii) N/2 फैरस अमोनियम सल्फेट का वह आयतन जो 10 मि.ली. $K_2Cr_2O_7$ को अवकृत करने में लगा (Blank Reading) = ब मि.ली.।

(iii) N/2 फैरस अमोनियम सल्फेट का वह आयतन जो डाइक्रोमेट की अधिकता को अवकृत करने में लगा (Experimental Reading) = स मि.ली.

पोटेशियम डाइक्रोमेट का वह आयतन जो ऑक्सीकरण में लगा = Blank Reading - Sample Reading (ब–स)

गणना– कार्बनिक कार्बन तथा कार्बनिक पदार्थ की गणना निम्न सूत्र से करते हैं।

(i) मृदा में कार्बनिक कार्बन की प्रतिशतता = $\frac{(\text{ब}-\text{अ}) \times 0.003 \times 100}{2 \times \text{मृदा का भार (अ)}}$

(ii) मृदा में कार्बनिक पदार्थ की प्रतिशतता = मृदा में कार्बनिक कार्बन की प्रतिशतता मात्रा x 1.724

परिणाम– मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा = ? प्रतिशत

(i) कार्बनिक कार्बन की गणना के लिए फैक्टर निकालना– सिद्धान्त में दिये गये समीकरण में यह स्पष्ट है कि 1 ग्राम मोल पोटेशियम डाइक्रोमेट से ऑक्सीजन के 3 ग्राम परमाणु पैदा होते हैं।

अतः

$$K_2Cr_2O_7 \longrightarrow 3\,[O]$$

294 ग्राम $K_2Cr_2O_7$ = 48 ग्राम ऑक्सीजन

या 49 ग्राम $K_2Cr_2O_7$ = 8 ग्राम ऑक्सीजन

∵ 1000 मि.ली. $NK_2Cr_2O_7$ विलयन = 8 ग्राम O_2

∴ 1 मि.ली. $NK_2Cr_2O_7$ विलयन 8 / 1000 ग्राम O_2

= 0.008 ग्राम O_2

चूँकि $C + O_2 = CO_2$

अर्थात् 32 ग्राम ऑक्सीजन ऑक्सीकृत करती है 12 ग्राम कार्बन को

∴ 0.008 ग्राम ऑक्सीजन ऑक्सीकृत करती है =

$$\frac{0.008 \times 12}{32} = 0.003 \text{ ग्राम}$$

अतः 1 मि.ली. $NK_2Cr_2O_7$ विलयन = 0.003 ग्राम कार्बन

(ii) यह माना जाता है कि कार्बनिक पदार्थ में 50 प्रतिशत कार्बन होता है जिसके आधार पर कार्बन कार्बनिक पदार्थ में बदलने के लिए 1.724 $\left(\frac{100}{58}\right)$ से गुणा करते हैं।

(ब) मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट का निर्धारण–शीघ्र अनुमापन विधि द्वारा (**By Rapid Titration Method of C.S. Piper 1944**)

अभिकारक–

(i) 1N हाइड्रोक्लोरिक अम्ल विलियन (1N.HCL)-175 मि.ली. सान्द्र HCL को 2 लीटर के मापन फ्लास्क में लेकर आसुत जल से तनु करके आयतन चिन्ह तक पूरा कर लेते हैं। इस विलयन का प्रमाणीकरण करने की आवश्यकता नहीं है।

(ii) 1N प्रमाणिक सोडियम हाइड्रोऑक्साइड विलियन (1N.NaOH)-40 ग्राम से अधिक NaOH तोलकर आसुत जल में विलेय करके आयतन एक लीटर पूरा कर लेते हैं तथा इसका प्रमाणीकरण N ऑग्जेलिक अम्ल (Oxalic Acid) से कर लेते हैं। 1N ऑग्जेलिक अम्ल (Oxalic Acid) का प्रमाणीकरण विलियन

बनाने के लिए 63 ग्राम मात्रा आसुत जल में घोलकर आयतन 1 लीटर बना लेते हैं।

(iii) ब्रोमोथाइमोल ब्लू सूचक – 0.1 ग्राम सूचक 100 मि. ली. आसुत जल में विलेय कर लेते हैं तथा इसमें 1.6 मि.ली. 0.1 N.NaOH विलियन मिलाते हैं और आयतन आसुत जल से 250 मि.ली. कर लेते हैं।

विधि– 5 ग्राम वायु शुष्क मृदा लेकर एक 100 मि.ली. के कॉनीकल फ्लास्क में लेते हैं। अब इसमें 100 मि.ली. 1N -HCL विलयन मिलाते हैं और एक घण्टे तक थोड़ी–थोड़ी देर के बाद हिलाकर मृदा को स्थिर होने के लिए रख देते हैं। मृदा के पूर्ण स्थिर होने पर साफ विलयन (Supernatant) की 20 मि.ली. पिपेट से लेकर एक 100 मि.ली. के कॉनीकल फ्लास्क में स्थानान्तरित करते हैं। इसमें 6–8 बूँदे ब्रोमोथाइमोल ब्लू सूचक ही मिलाकर 1N-NaOH विलयन से अम्ल के आधिक्य का अनुमापन करते हैं। अनुमापन पूर्ण होने पर नीला रंग आता है। एक Blank प्रयोग भी करते हैं जिसमें मृदा के अतिरिक्त अन्य सभी प्रतिकारकों को मिलाकर उपरोक्त विधि के अनुसार अनुमापन करते हैं।

नोट– यदि मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा 30 प्रतिशत से अधिक है तो निर्धारण में 2.5 ग्राम मृदा लेते हैं।

अवलोकन–

(i) मृदा नमूना का भार = 5 ग्राम

(ii) अनुमापन हेतु लिये गये ब्लैक का आयतन = 20 मि. ली.

(iii) 1N NaOH विलयन का अनुमापन में प्रयुक्त आयतन (मृदा सैम्पल) = अ मि.ली.

(iv) 1N NaOH विलयन का अनुमापन में प्रयुक्त आयतन ((Blank) = ब मि.ली.

गणना–

$CaCO_3 + 2HCL = CaCl_2 + H_2O + CO_2$

73 ग्राम HCL = 100 ग्राम $CaCO_3$

36.6 ग्राम HCl = 50

∵ 1000 मि.ली. N.HCl विलयन = 50 ग्राम $CaCO_3$

∴ 1 मि.ली. N.HCl विलयन = 50/1000 = 0.05 ग्राम $CaCO_3$

∵ 1 मि.ली. N.HCl = 0.05 ग्राम $CaCO_3$

∴ (ब – अ) मि.ली. N.HCl = (ब – अ) x 0.05 ग्राम $CaCO_3$

∵ 20 मि.ली. निष्कर्ष में उपस्थित $CaCO_3$ = (ब – अ) x 0.05 ग्राम

∴ 100 मि.ली. निष्कर्ष में उपस्थित $CaCO_3$ =

$$\frac{100 \text{ x } (\text{ब} - \text{अ}) \text{ x } 0.05}{20}$$

∴ 5 ग्राम मृदा में उपस्थित $CaCO_3$ =

$$\frac{100 \text{ x } (\text{ब} - \text{अ}) \text{ x } 0.05}{20}$$

∴ 100 ग्राम मृदा में उपस्थित $CaCO_3$ =

$$\frac{100 \text{ x } 100 \, (\text{ब} - \text{अ}) \text{ x } 0.05}{20 \text{ x } 5}$$

= (ब – अ) x 5

मृदा में $CaCO_3$ की प्रतिशतता = (ब – अ) x 5

प्रयोग–5

जैविक खाद की परिपक्वता जाँच

जैविक खाद में की परिक्वता जांचने के स्टार्च का परीक्षण करते हैं कारण कि जैविक खाद बनाने हेतु प्रयोग लिए जाने वाली सामग्री में कार्बोहाइड्रेट (लिग्निन, सेल्यूलोस, स्टार्च आदि)की प्रचुरता होती है।

यह सभी जैविक पदार्थ जीवाणु, कवक तथा एक्टिनोमाईसिटिस आदि द्वारा अपने सूक्ष्म अवयवों में विघटित हो जाते हैं जो अंत में कार्बन डाई ऑक्साइड, जल, सल्फर डाई ऑक्साइड आदि में अपघटित हो जाते हैं, अतः जैविक खाद में शुरूआती पदार्थों की उपस्थिति/ अनुपस्थिति की जाँच कर उसकी परिक्वता का पता लगा सकते हैं, इस हेतु सबसे आसान जाँच स्टार्च की अनुपस्थिति की आयोडीन से कर सकते हैं। स्टार्च सूक्ष्म जीवों द्वारा स्रावित एन्जाइमों द्वारा अपघटित हो जाने से आयोडीन अभिकर्मक के साथ कोई प्रतिक्रिया नहीं दर्शाता है।

उद्देश्य (Object) :

जैविक खाद की परिपक्वता जाँच के लिए स्टार्च आयोडीन परीक्षण ।

आवश्यक सामग्री (Required material)

(अ) उपकरण (Apparatus):

1. बीकर 100 मिली
2. फ़िल्टर पेपर
3. ड्रॉपर
4. परखनली
5. कीप

(ब) अभिकर्मक (Reagents):

1. अल्कोहल
2. परक्लोरिक–अम्ल (Perchloric Acid)
3. आयोडीन अभिकर्मक

सिद्धान्त (Principle):

यह जाँच इस सिद्धांत पर आधारित है की स्टार्च में उपस्थित एमायलोस (Amylose), जो की ग्लूकोस का रेखीयबहुलक है वह आयोडीन (भूरा) से मिलने परनीला स्टार्च–आयोड़ो काम्प्लेक्स बनाता है।

यह आयोडीन अन्य किसी कार्बोहाइड्रेट से क्रिया नहीं करता अतः इस नीले रंग से स्टार्च की उपस्थिति/अनुपस्थिति मालूम कर सकते हैं–

स्टार्च + आयोडीन अभिकर्मक → स्टार्च–आयोड़ो कॉम्प्लेक्स
(भूरा) (नीला)

विधि (Method):

1. एक ग्राम जैविक खाद (सूखा चूर्ण) को 100 मि.ली. के बीकर में लेते हैं।
2. इस खाद चूर्ण में कुछ बूँदे अल्कोहल की डाल कर गीला करते हैं।
3. अब इसमें 20 मि.ली. परक्लोरिक अम्ल अच्छी तरह मिलाते हैं।
4. इस मिश्रण को फ़िल्टर पेपर से छान कर एक परखनली में एकत्रित करते हैं।
5. अब परखनली में से कुछ बूँदें सफेद टाइल/सतह पर डालते हैं और इसमें दो बूँद आयोडीन अभिकर्मक की मिलाते हैं।

परिपक्व खाद होने पर इसमें पीले रंग के साथ कुछ अवक्षेप दिखेगा जबकि अपरिपक्व या कम परिपक्व खाद में गहरा नीला रंग एवं ज्यादा अवक्षेप दिखेगा, रंग में हुए परिवर्तन को प्रेक्षण सारणी में लिखते हैं।

प्रेक्षण (Obervation) :

मिश्रण के रंग में परिवर्तन को दर्ज करें ।

नमूना सं.	अभिकर्मक मिलाने पर मिश्रण कारंग

परिणाम (Result) :

दिए गए खाद के नमूने सं. .... में स्टार्च ..... है।

निष्कर्ष (Conclusion) :

जांच की गई जैविक खाद परिपक्व/अपरिपक्व है।

❑

प्रयोग–6

दूध में अपमिश्रण की जाँच
(Testing Adulteration in Milk)

दूध में अपमिश्रण / मिलावट की जाँच :

दूध में वसा रहित ठोस की मात्रा बढ़ाने के लिए यूरिया एवं स्टार्च तथा त्रिम दूध बनाने में यूरिया, डिटर्जेंट, वनस्पति तेल, स्टार्च, चीनी का उपयोग किया जाता हैं, अतः त्रिम दूध में यूरिया के साथ–साथ डिटर्जेंट की जाँच से कर सकते हैं।

उद्देश्य :

दुग्ध में यूरिया मिलावट की जाँच करना

आवश्यक सामग्री (Required material)

(अ) उपकरण (Apparatus):

(i) परखनली

(ii) पिपेट 5 मि.ली.

(iii) कोनिकल फ्लास्क 150 मिली.

(ब) अभिकर्मक (Reagents):

पैरा–डाई–मिथाइलएमिन–बेन्जाइल्डिहाइड (डी.ए.एम.बी) विलयन(1.6%) :

यह विलयन बनाने के लिए उक्त रसायन की 1.6 ग्रा. मात्रा को 100 मि.ली. अल्कोहल में घोल कर इसमें 10 मि.ली. तनु HCl मिलाते हैं।

सिद्धान्त (Principle) :

दूध में मिलायी गई यूरिया पैरा–डाई–मिथाइलएमिन–बेन्जाइल्डिहाइड (डी.ए.एम.बी.) से तनुअम्लीय माध्यम में क्रिया करके चमकीले पीले रंग का कॉम्प्लेक्स बनाती है –

यूरिया + डी.ए.एम.बी. → चमकीला पीला कॉम्प्लेक्स

विधि (Method):

1. एक परखनली में 5.0 मि.ली. दूध के नमूने को लें।
2. दूध डालने के बाद उसमें पैरा–डाई–मिथाइलएमिन–बेन्जाइल्डिहाइड (डी.ए.एम.बी.) विलयन (1.6%) 5.0 मि. ली. डालें।
3. इसके बाद परखनली को हिलाकर दूध तथा इस विलयन को मिश्रित करें। मिश्रित होने के बाद यदि परखनली में दूध के रंग को देखें और प्रेक्षण सारणी में लिखें।
4. यदि यह रंग चमकीला पीला हो जाता है तो यह समझना चाहिए कि दूध में यूरिया मिलाया गया है। यदि दूध का रंग हल्का पीला हो तो इस दूध में यूरिया नहीं मिलाया गया है।

प्रेक्षण (Obervation):

परखनली के मिश्रण के रंग में परिवर्तन को दर्ज करें –

दूध नमूना सं	अभिकर्मक मिलाने पर मिश्रण का रंग

परिणाम (Result) :

दिए गए दूध के नमूने सं. .... में यूरिया की मिलावट..... है ।

उद्देश्य :

दुग्ध में स्टार्च मिलावट की जाँच करना

आवश्यक सामग्री (Required material)–

(अ) उपकरण (Apparatus):

(i) परखनली

(ii) पिपेट 10 मि.ली.

(iii) स्प्रीट लेम्प

(ब) अभिकर्मक (Reagents):

आयोडीन विलयन 1.0%

सिद्धान्त (Principle) :

दूध में मिलाए गए स्टार्च के लिए इसमें आयोडीन मिलाने पर यह स्टार्च से क्रिया कर स्टार्च–आयोडो कॉम्प्लेक्स बनाते है, जो नीला होता है–

स्टार्च +आयोडीन → स्टार्च–आयोडो कॉम्प्लेक्स (नीला)

विधि (Method) :

(1) परखनली में 10.0 मि.ली. दूध के सैम्पल को डालकर उबालें व फिर ठण्डा कर लें। द्रव को ठण्डा करें।

(2) उसमें 1–2 बूँद आयोडीन विलयन की (1.0%) मिलाएं और परखनली को हिलाने के बाद इसके द्रव के रंग का निरीक्षण करें।

यदि परखनली के द्रव का रंग हल्का भूरा दिखायी दे तो मान लेना चाहिए कि दूध में स्टार्च का मिश्रण नहीं किया गया है, लेकिन यदि परखनली के द्रव का रंग हल्के से गहरा नीला दिखाई दे तो मान लेना चाहिए कि सैम्पल के दूध में स्टार्च मिला हुआ है।

प्रेक्षण (Obervation) :

परखनली के मिश्रण के रंग में परिवर्तन को दर्ज करें –

दूध नमूना सं	अभिकर्मक मिलाने पर मिश्रण का रंग

परिणाम (Result) :

दिए गए दूध के नमूने सं..... में स्टार्च की मिलावट ..... है।

उद्देश्य :

दुग्ध में डिटर्जेण्ट की मिलावट जाँच करना।

आवश्यक सामग्री (Required material) :

(अ) उपकरण (Apparatus):

(i) परखनली

(ii) पिपेट 10 मि.ली.

(ब) अभिकर्मक (Reagents):

सिद्धान्त (Principle) :

त्रिम दूध डिटर्जेंट से बनाया जाता है, यह ब्रोमोक्रिसोल पर्पल से क्रिया कर नीले रंग का कॉम्प्लेक्स बनाता है–

डिटर्जेंट + ब्रोमो क्रिसोल पर्पल → नीलाकॉम्प्लेक्स

विधि (Method) :

1. परखनली में 10.0 मि.ली. दूध का नमूना लें ।
2. इसमें 2 बूंदें की ब्रोमोक्रिसोल पर्पल मिलाएं और परखनली को हिलाने के बाद इसके द्रव के रंग का निरीक्षण करें। यदि परखनली के द्रव का रंग नीला दिखायी दे तो मान लेना चाहिए कि दूध में डिटर्जेंट मिला हुआ है अर्थात दूध त्रिम है।

प्रेक्षण (Obervation):

परखनली के मिश्रण के रंग में परिवर्तन को दर्ज करें।

दूध नमूना सं	अभिकर्मक मिलाने पर मिश्रण का रंग

परिणाम (Result) :

दिए गए दूध के नमूने सं ..... में डिटर्जेंट की मिलावट ..... है, अर्थात दूध त्रिम ..... है।

या ❑

(i) उद्देश्य– दिये गये दूध के नमूने में गरबर विधि द्वारा वसा प्रतिशत ज्ञात करना।

उपकरण एवं सामग्री–

1. गरबर अपकेन्द्रिक मशीन
2. ब्यूटाइरोमीटर व पिपेट स्टैण्ड
3. दुग्ध ब्यूटाइरोमीटर
4. लॉक स्टॉपर
5. लॉक स्टॉपर ''की''
6. ऑटोमेटिक टिल्ट मेजर, 1 मिली. व 10 मिली.
7. मिल्क पिपेट 10.75 मिली.
8. बीकर (1.820–1.82)
9. गंधक का अम्ल (H_2SO_4) (1.82 आ.घ.) 60°F पर
10. एमाइल एल्कोहल (0.81 आ.घ.–0.816 आ.घ. वाला 60°F पर)
11. दूध का नमूना
12. पानी

सिद्धान्त– इस परीक्षण में दुग्ध ब्यूटाइरोमीटर में निश्चित मात्रा में गंधक का अम्ल (H_2SO_4) एमायल एल्कोहल एवं दूध लेकर अच्छी तरह मिश्रित करके अपकेन्द्री किया जाता है। ऐसा करने से दूध की वसा अलग होकर ब्यूटाइरोमीटर के तने पर आ जाती है। जिसे पढ़कर वसा प्रतिशत ज्ञात कर लेते हैं। गंधक का अम्ल दूध की प्रोटीन को घोल देता है। जिससे दुग्ध वसा गोलिकाएँ बाहर आ जाती हैं और एमाइल एल्कोहल वसा को इस घोल से पृथक करने में मदद करता है।

विधि– एक स्वच्छ व सूखा ब्यूटाइरोमीटर लेकर उसे ब्यूटाइरोमीटर स्टैण्ड पर लगा लेते हैं। तथा ऑटोमेटिक टिल्ट मेजर द्वारा 10 मि.ली. गंधक का अम्ल (H_2SO_4) ब्यूटाइरोमीटर में डालते है। दूध के नमूने से 10.75 मि.ली. दूध मिल्क पिपेट की सहायता से लेकर ब्यूटाइरोमीटर में धीरे–धीरे इस प्रकार डालेंगे कि दूध गंधक के अम्ल पर परत के रूप में इक्ट्ठा हो जाए। अब



गरबर मशीन

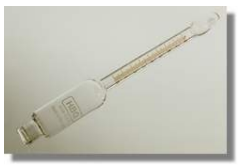

ब्यूटायरोमीटर



लॉक स्टॉपर की

लॉक स्टॉपर



वाटर बाथ



स्वाचालित टिल्ट नपना

चित्र : वसा ज्ञात करने के यंत्र

टिल्ट मेजर द्वारा 1 मि.ली. एमाइल एल्कोहल ब्यूटाइरोमीटर में दूध के ऊपर धीरे–धीरे डालेगे। ब्यूटाइरोमीटर की गर्दन में लॉक स्टॉपर "Key" की सहायता से लॉक स्टॉपर लगाकर उसे अच्छी तरह से बंद कर देते हैं। ब्यूटाइरोमीटर के दोनों सिरों को कपड़े से पकड़कर अच्छी तरह से हिलाएगें जिससे उसमें दिखाई देने वाले थक्के अच्छी तरह घुल जाए। इसके उपरान्त अच्छी तरह से हिलाने के पश्चात् घोल का रंग भूरा होना चाहिए। ब्यूटाइरोमीटर को 4–5 मिनट तक 70°C ताप पर जल ऊष्मक में उल्टा करके रखेंगे। ब्यूटाइरोमीटर को गरबर अपकेन्द्रीय यंत्र में इसके बंद सिरे को मशीन के केन्द्र की ओर करके 4–5 मिनट तक 1100 चक्कर प्रति मिनट की दर से घुमाएगें। इस यंत्र में आमने–सामने समान संख्या में ब्यूटाइरोमीटर रखेंगे जिससे यंत्र का संतुलन बना रहे अन्यथा वसा ठीक से ज्ञात नहीं होगी। ब्यूटाइरोमीटर को गरबर मशीन से निकालते समय इस बात का ध्यान रखें कि ब्यूटाइरोमीटर का लाक स्टॉपर वाला भाग नीचे की तरफ हो, इसके बाद लॉक स्टॉपर "Key" की सहायता से वसा के निचले तल को शून्य अथवा किसी पूर्ण अंक के सामने कर लेते हैं। सदैव ही वसा के निचले अर्धचन्द्रक को पढ़ना चाहिए। इसमें ब्यूटाइरोमीटर के स्टैम पर वसा के ऊपरी तथा निचले तल का पाठ्यांक नोट कर इसका अन्तर ज्ञात करेंगे और यही अन्तर दूध की वसा प्रतिशत होगी।

सारणी–

क्र0स0	दूध का नमूना	पाठयांक का अन्तर			वसा प्रतिशत	यदि नमूने एक से अधिक लिए हैं तो औसत वसा प्रतिशत
		ब्यूटाइरोमीटर का ऊपर का पाठ्यांक	ब्यूटाइरोमीटर का नीचे का पाठ्यांक	ऊपर का पाठ्यांक – नीचे का पाठ्यांक 3–4		
1	2	3	4	5	6	7
1	A	4.8	1.00	3.8	3.8	3.8+3.9+3.7
2	B	4.9	1.00	3.9	3.9	=11.4 / 3
3	C	3.7	0.00	3.7	3.7	=3.8

2. सावधानियाँ–

1. ब्यूटाइरोमीटर की गर्दन द्रवों से अन्दर से नहीं भीगनी चाहिए।
2. गंधक का अम्ल (H_2SO_4)–1.80 से 1.83 तक आपेक्षिक घनत्व 15.5°C तापक्रम पर एवं एमाइल एल्कोहल 0.814 से 0.817 तक आपेक्षिक घनत्व वाला 15.5°C तापक्रम पर होना चाहिए।
3. एमाइल एल्कोहल वसा रहित होना चाहिए।
4. सभी द्रव पदार्थों को ब्यूटाइरोमीटर की भीतरी दीवार से लगाकर डालना चाहिए।
5. ब्यूटाइरोमीटर को हिलाने से पहले इसको मोटे कपड़े द्वारा ठीक से पकड़ लेना चाहिए।
6. जल ऊष्मक में जल का तापक्रम 70°C होना चाहिए।
7. गरबर मशीन को कभी भी एक साथ नहीं रोकना चाहिए।

(ii) उद्देश्य– दिये गये दूध के नमूने में अम्लता प्रतिशत ज्ञात करना।

उपकरण एवं सामग्री–

1. ब्यूरेट स्टैण्ड
2. ब्यूरेट

3. पोर्सलीन प्याली
4. 10 मिली. पिपेट
5. काँच की छड़
6. बीकर
7. 1 मिली. पिपेट
8. दूध का नमूना
9. सोडियम हाइड्रॉक्साइड (NaOH) $\frac{N}{9}$ या $\frac{N}{10}$
10. 0.5 प्रतिशत फिनोल्फ्थेलीन सूचक

सिद्धान्त– जब अम्ल व क्षार एक साथ मिलाए जाते हैं तो एक यौगिक बन जाता है और अम्ल तथा क्षार दोनों ही एक दूसरे को उदासीन कर देते हैं। एक दूसरे को उदासीन करने की अवस्था तभी मालूम हो सकती है जब हम किसी सूचक का प्रयोग करें ताकि सूचक हमको सही अवस्था पर सूचना दे कि अब उदासीन अवस्था आ गई है।

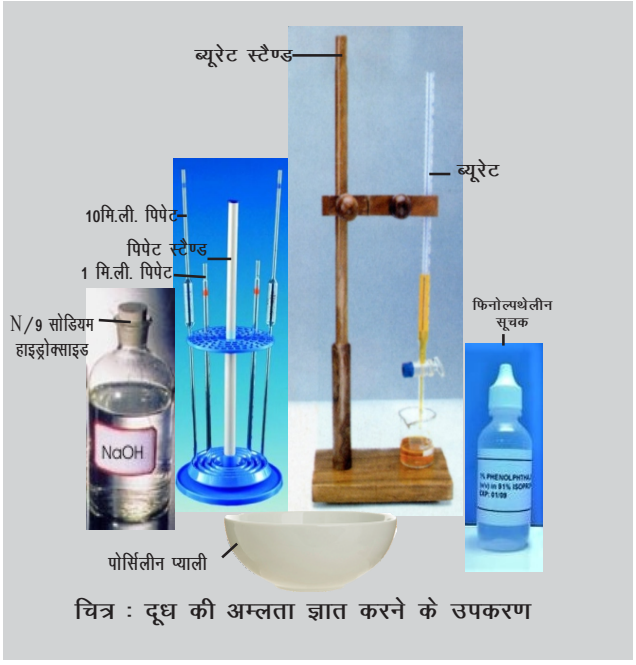

चित्र : दूध की अम्लता ज्ञात करने के उपकरण

विधि– सभी उपकरणों को आसुत जल से धोकर सुखा लेंगे। ब्यूरेट को ब्यूरेट स्टैण्ड में लगाकर उसमें $\frac{N}{9}$ सोडियम हाइड्रॉक्साइड ($\frac{N}{9}$ NaOH) भरकर उसका पाठ्यांक नोट कर लेते है। दूध को सावधानी से हिलाकर उसमें से 10 मि.ली. पिपेट द्वारा फोर्सलीन की प्याली में डाल देते है। इसके पश्चात् इसमें 1 मि.ली. फिनोल्फ्थेलीन सूचक डालकर काँच की छड़ से अच्छी तरह मिला देते है। फोर्सलीन प्याली को ब्यूरेट के नीचे रखकर बूंद–बूंद करके $\frac{N}{9}$ NaOH तब तक डालते रहेंगे जब तक दूध में हल्का गुलाबी रंग उत्पन्न न हो जाए। $\frac{N}{9}$ NaOH की प्रत्येक बूंद डालने पर दूध को छड़ द्वारा हिलाते रहेंगे और जैसे ही हल्का गुलाबी रंग आ जाएगा तब $\frac{N}{9}$ NaOH डालना बंद कर देंगे। जब हल्का गुलाबी रंग 1–2 मिनट तक स्थिर हो जाएगा तब ब्यूरेट में $\frac{N}{9}$ NaOH का पाठ्यांक नोट कर लेंगे। इस क्रिया को जब तक दोहराते हैं। तब तक दो ब्यूरेट पाठ्यांक समान न आ जाए।

प्रेक्षण सारणी–

क्र.सं.	दूध की मात्रा (मिली.)	ब्यूरेट पाठ्यांक		प्रयुक्त NaOH की (मि.ली.)
		प्रथम पाठ्यांक मि.ली.	द्वितीय पाठ्यांक मि.ली.	
1.	10	10.0	11.5	1.5
2.	10	11.5	12.9	1.4
3.	10	12.9	14.3	1.4

सूत्र–

$$\text{अम्लता प्रतिशत} = \frac{\text{प्रयोग में आए } \frac{N}{9}\text{ NaOH की मात्रा} \times 0.01}{\text{दूध की मात्रा}} \times 100$$

(यदि $\frac{N}{10}$ NaOH के घोल का उपयोग करने पर 0.009 अंश से गुणा करते है।)

प्रयोग में आए $\frac{N}{9}$ NaOH की मात्रा = 1.4 मि.ली.

दूध की मात्रा = 10 मि.ली.

$$\text{अम्लता प्रतिशत} = \frac{1.4 \times 0.01}{10} \times 100$$

$$= \frac{0.014}{10} \text{ x100}$$

$$= 0.14 \text{ प्रतिशत}$$

परिणाम– दिए गए दूध के नमूने में 0.14 प्रतिशत अम्लता है, अर्थात् दूध ताजा है।

सावधानियाँ–

1. यह परीक्षण गंदगी वाले स्थान पर नहीं करना चाहिए क्योंकि कार्बनडाइऑक्साइड के दूध में प्रवेश कर जाने से अम्लता बढ़ जाती है।
2. सोडियम हाइड्राक्साइड को हमेशा बूंद–बूंद करके डालना चाहिए।
3. काँच की छड़ से दूध को बराबर हिलाते रहना चाहिए।
4. हल्का गुलाबी रंग कुछ ही सेकण्ड स्थिर रहता है अतः जैसे ही रंग में परिवर्तन दिखाई पड़े तो समझना चाहिए उदासीनीकरण पूरा हो गया है।
5. ब्यूरेट की रीडिग पढ़ते समय आँख अर्धचन्द्रक की सीध में होनी चाहिए।

नोटः– $\frac{N}{9}$ सान्द्रता का सोडियम हाइड्राक्साइड (NaOH) तैयार करने के लिए 4.5 ग्राम जलहीन सोडियम हाइड्रॉक्साइड (NaOH) घोलकर 1 लीटर घोल बनाना चाहिए अथवा $\frac{N}{10}$ सान्द्रता का सोडियम हाइड्रॉक्साइड (NaOH) घोल तैयार करने के लिए 4 ग्राम जलहीन (NaOH) को घोलकर 1 लीटर घोल बनाना चाहिए। इन तैयार किए गए घोलों को $\frac{N}{9}$ या $\frac{N}{10}$ ओक्जेलिक अम्ल से मानकीकरण कर लेते है।

(iii) उद्देश्य– दिये गये दूध के नमूने का लेक्टोमीटर द्वारा आपेक्षिक घनत्व ज्ञात करना।

उपकरण एवं सामग्री–

1. लेक्टोमीटर
2. डेयरी फ्लोटिंग थर्मामीटर
3. लेक्टोमीटर जार
4. पैट्रीडिश जार
5. बीकर
6. दूध

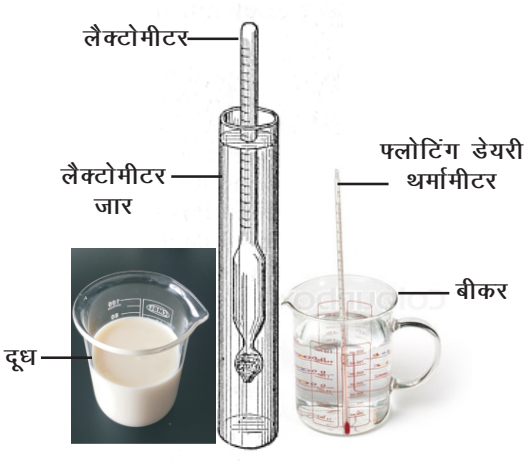

चित्र : दूध का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात करने के उपकरण

सिद्धान्त– जब कोई वस्तु द्रव पर तैरती है तो उस पर एक बल कार्य करता है। जिसे उत्प्लावित बल कहते है। किसी वस्तु का भार उस वस्तु द्वारा हटाए जाने वाले द्रव के भार के तुल्य होता है। इसी सिद्धान्त पर दूध का आपेक्षिक घनत्व लेक्टोमीटर विधि से ज्ञात किया जाता है।

$$\text{सूत्र– दूध का आपेक्षिक घनत्व} = 1 + \frac{\text{C.L.R}}{1000}$$

C.L.R = Correct Lactometer Reading अर्थात् संशोधित लेक्टोमीटर पाठ्यांक

विधि– सर्वप्रथम लेक्टोमीटर, थर्मामीटर तथा लेक्टोमीटर जार को ठीक प्रकार से धोकर सुखा लेते हैं, इसके बाद लेक्टोमीटर जार को पैट्रिडिश में रख कर जार में दूध को आधे भाग तक भर लेते हैं फिर लेक्टोमीटर को जार में सीधा करके छोड़ते हैं, जार में ऊपर तक दूध भर देते है तथा लेक्टोमीटर को जार के बीच में स्थिर करके उसकी रीडिग पढ़कर नोट कर लेते हैं जिसे (अवलोकित लेक्टोमीटर पाठ्यांक)कहते है। इसके बाद लेक्टोमीटर को दूध से बाहर निकाल कर बीकर में रख लेते हैं तथा डेयरी फ्लोटिंग थर्मामीटर द्वारा दूध का तापक्रम ज्ञात कर लेते हैं, दूध का तापक्रम ज्ञात करते समय थर्मामीटर का पारे वाला बल्ब दूध में डूबा रहना चाहिए तथा थर्मामीटर को हाथ से पकड़े रहते हैं। अवलोकित लेक्टोमीटर पाठ्यांक (O.L.R) वह पाठ्यांक है जो लेक्टोमीटर को दूध में छोड़ने पर ज्ञात करते है। दूध गाढ़ा होने के कारण लेक्टोमीटर रीडिंग पढ़ने में कुछ कठिनाई होती है अतः O.L.R में संशोधन मान 0.5 जोड़ देते है जिसे लेक्टोमीटर पाठ्यांक (L.R) कहते है।

लेक्टोमीटर पाठ्यांक में दूध के तापक्रम के अनुसार संशोधन किया जाता है अतः इसे(संशोधित लेक्टोमीटर पाठ्यांक) = C.L.R कहते है जो निम्नानुसार ज्ञात किया जाता है–

1. यदि डेयरी फ्लोटिंग थर्मामीटर सेल्सियस में है और दूध का तापक्रम 27°C है तो L.R मे कोई संशोधन नही किया जाता है परन्तु अगर तापक्रम 27°C से अधिक हो तो प्रत्येक 1°C वृद्विके लिए 0.2 जोड़ देते है और अगर 27°C से कम हो तो प्रत्येक 1°C कमी के लिए 0.2 कम कर देते है।

2. यदि डेयरी फ्लोटिंग थर्मामीटर फारनेहाइट में है और दूध का तापक्रम $60^{\circ}F$ है तो L.R मे कोई संशोधन नही किया जाता है परन्तु अगर तापक्रम $60^{\circ}F$ से अधिक हो तो प्रत्येक $1^{\circ}F$ के लिए 0.1 जोड़ देते हैं और अगर $60^{\circ}F$ से कम हो तो प्रत्येक $1^{\circ}F$ कमी के लिए 0.1 कम कर देते हैं।

गणना–

1. दूध कीओ.एल.आर = 27
2. दूध का तापक्रम = $32^{\circ}C$
3. लेक्टोमीटर का तापक्रम = $27^{\circ}C$

दूध की एल.आर = ओ.एल.आर + संशोधन कारक–(0.5)

27.0+0.5=27.5

(दूध की सी.एल.आर = एल.आर + तापक्रम संशोधन)

(चूंकि दूध का तापक्रम $27^{\circ}C$ से $5^{\circ}C$ अधिक है इसलिए एल.आर. में 0.2 × 5 = 1.0 तापक्रम संशोधन जोड़ देंगे।)

दूध कीसी.एल.आर = 27.5 +1.0=28.5

$$\text{दूध का आपेक्षिक घनत्व} = 1 + \frac{\text{C.L.R}}{1000}$$

$$= 1 + \frac{28.5}{1000}$$

= 1.028 है।

क्र.स.	अवलोकित लेक्टोमीटर पाठ्यांक O.L.R	लेक्टोमीटर पाठ्यांक L.R = O.L.R+0.5	दूध का तापक्रम	संशोधित लेक्टोमीटर पाठ्यांक C.L.R	आपेक्षिक घनत्व
1	27	27.5	$32^{\circ}C$	28.5	1.028

परिणाम– दिए गए दूध के नमूने का आपेक्षिक घनत्व = 1.028 है अतः यह गाय का शुद्ध दूध है।

सावधानियाँ–

1. पाठ्यांक लेते समय लेक्टोमीटर, जार की दीवार से नहीं छूना चाहिए।
2. जार में दूध भरने से पहले ठीक प्रकार से हिला लेना चाहिए।
3. लेक्टोमीटर तथा थर्मामीटर दोनों ही ठीक प्रकार से साफ होने चाहिए।
4. दूध के जार को एक समतल धरातल पर रखना चाहिए जिससे लेक्टोमीटर जार मे सीधा व बीच मे तैर सके।

लेक्टोमीटर जार के दूध में थर्मामीटर की घुंडी तब तक डुबाए रखनी चाहिए तब तक थर्मामीटर का पारा स्थिर न हो जाए।

प्रयोग–7

उर्वरकों में ऋणायन एवं धनायन की पहचान (Identification of Cations and Anions in Fertilizers) :

उर्वरक विभिन्न धनायनों एवं ऋणायनों से मिलकर बने होते हैं। इन उर्वरकों को मृदा में मिलाने पर ये अपने धनायन एवं ऋणायन में मुक्त होते हैं। कुछ धनायनों एवं ऋणायनों को पौधे सीधे ग्रहण करते हैं लेकिन कुछ पर विभिन्न सूक्ष्म जीवों की क्रिया द्वारा पौधों को उपलब्ध रूप (Available Form) में प्राप्त होते हैं। अतः उनकी पहचान करना आवश्यक है।

यहां उर्वरकों के उन धनायनों एवं ऋणायनों की पहचान दी जा रही है जिनका विद्यालय की प्रयोगशाला में आसानी से विश्लेषण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ–

सारणी 7.1

क्र.सं.	उर्वरक का नाम	सूत्र	धनायन	ऋणायन
1.	अमोनियम सल्फेट	$(NH_4)_2SO_4$	NH_4^+	SO_4^{2-}
2.	अमोनियम क्लोराइड	NH_4Cl	NH_4^+	Cl^-
3.	सोडियम नाइट्रेट	$NaNO_3$	Na^+	NO_3^-
4.	कैल्शियम नाइट्रेट	$Ca(NO_3)_2$	Ca^{2+}	NO_3^-
5.	पोटेशियम नाइट्रेट	KNO_3	K^+	NO_3^-
6.	अमोनियम नाइट्रेट	NH_4NO_3	NH_4^+	NO_3^-
7.	कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	$NH_4NO_3+CaCO_3$	NH_4^+ व Ca^{2+}	NO_3^- व CO_3^{2-}
8.	अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	$(NH_4)_2SO_4+NH_4NO_3$	NH_4^+	NO_3^- व SO_4^{2-}
9.	पोटेशियम क्लोराइड	KCl	K^+	Cl^-
10.	पोटेशियम सल्फेट	K_2SO_4	K^+	SO_4^{2-}
11.	पोटेशियम कार्बोनेट	K_2CO_3	K^+	CO_3^{2-}

उपर्युक्त सारणी से यह पता चलता है कि उर्वरकों में उपस्थित ऋणायनों एवं धनायनों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है–

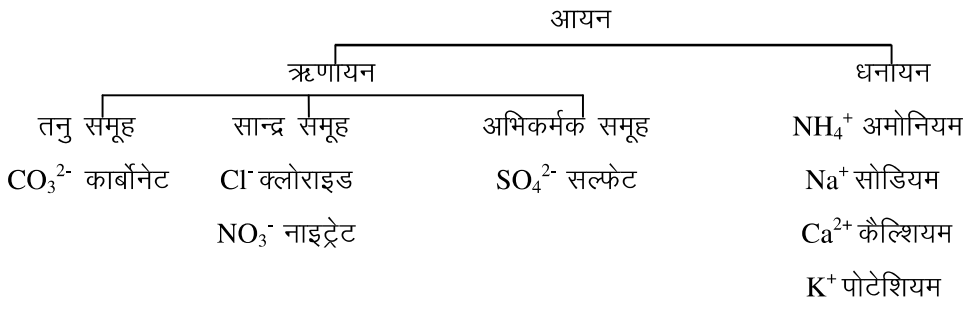

प्रयोग

उद्देश्य– दिए गए उर्वरक में उपस्थित एक ऋणायन एवं धनायन की पहचान करना।

(1) आवश्यक सामग्री (Required Material)-

(अ) उपकरण (Apparatus)

(i) परखनली

(ii) परखनली होल्डर।

(iii) परखनली स्टेण्ड।

(ब) विभिन्न अभिकर्मक (Different Reagents)

(ब) प्रेक्षण सारणी (Observation Table) :

सारणी 7.2 – ऋणायनों की पहचान करना

क्र.सं.	प्रयोग	प्रेक्षण	निष्कर्ष
(i)	**प्रारम्भिक परीक्षण (तनु समूह)–** एक परखनली में थोड़ा सा उर्वरक का चूर्ण लेकर उसमें तनु H_2SO_4 डालिये। आवश्यक हो तो धीरे–धीरे गर्म कीजिये।	तेजी से झाग के साथ रंगहीन, गंधहीन गैस निकलती है।	CO_3^{2-} हो सकता है।
(ii)	**निश्चयात्मक परीक्षण–** उत्पन्न गैस को चूने के पानी में प्रवाहित करने पर।	दूधिया हो जाता है।	CO_3^{2-} निश्चित है।
(iii)	गैस को अधिक देर तक चूने के पानी में प्रवाहित करने पर।	दूधिया रंग गायब हो जाता है।	CO_3^{2-} निश्चित है।
(i)	**प्रारम्भिक परीक्षण (सान्द्र समूह) –** एक परखनली में थोड़ा सा उर्वरक का चूर्ण लेकर उसमें सान्द्र H_2SO_4 डालिये। आवश्यक हो तो गर्म कीजिये।	रंगहीन, धूम्रयुक्त, तीव्र गन्ध वाली गैस निकलती है।	Cl^- हो सकता है।
(ii)	**निश्चयात्मक परीक्षण–** परखनली के मुँह पर गैस निकलते समय NH_4OH से भीगी छड़ लाने पर।	श्वेत धूम्र बनते हैं।	Cl^- निश्चित है।
(iii)	(अ) उर्वरक का चूर्ण + तनु $HNO_3 + AgNO_3$ का विलयन मिलाने पर।	दही जैसा श्वेत अवक्षेप बनता है।	Cl^- निश्चित है।
	(ब) अवक्षेप में NH_4OH का विलयन तथा HNO_3 डालने पर।	अवक्षेप पूर्णतया घुल जाता है। तथा HNO_3 से वापस अवक्षेप आता है।	Cl^- निश्चित है।
(iv)	क्रोमाइल क्लोराइड परीक्षण करने पर	लाल रंग की वाष्प निकलती है।	Cl^- निश्चित है।
(i)	**प्रारम्भिक परीक्षण –** एक परखनली में थोड़ा सा उर्वरक का चूर्ण लेकर उसमें सान्द्र H_2SO_4 डालकर गर्म करने पर।	भूरे रंग के धूम्र निकलते हैं।	NO_3^- हो सकता है।
(ii)	**निश्चयात्मक परीक्षण–** उक्त परखनली के विलयन में तांबे की छीलन डालकर गर्म करने पर।	गहरे भूरे रंग के अधिक धूम्र निकलते हैं।	NO_3^- निश्चित है।
(iii)	वलय परीक्षण (Ring Test)- उर्वरक के चूर्ण का जलीय विलयन + ताजा बना हुआ $FeSO_4$ का विलयन डालकर परखनली की दीवार के सहारे धीरे–धीरे सान्द्र H_2SO_4 को बूंद–बूंद कर डालने पर।	दोनों द्रवों के मिलने की सतह पर काले भूरे रंग का छल्ला बनता है।	NO_3^- निश्चित है।

(i)	**प्रारम्भिक परीक्षण (अभिकर्मक समूह)–** उर्वरक के चूर्ण का जलीय विलयन + कुछ बूंदें तनु HNO_3 मिलाकर थोड़ी सी मात्रा $BaCl_2$ का विलयन मिलाने पर।	दही जैसा श्वेत अवक्षेप आता है।	SO_4^{2-} हो सकता है।
	निश्चयात्मक परीक्षण (अभिकर्मक समूह)– अवक्षेप के दो भाग करें–		
(ii)	(अ) एक भाग में सान्द्र HNO_3 मिलाकर उबालने पर।	अवक्षेप अविलेय रहता है।	SO_4^{2-} निश्चित है।
(ii)	(ब) दूसरे भाग में सान्द्र HCl मिलाकर उबालने पर।	अवक्षेप अविलेय रहता है।	SO_4^{2-} निश्चित है।

सारणी 7.3 –धनायनों की पहचान करना –

क्र.सं.	प्रयोग	प्रेक्षण	निष्कर्ष
(i)	**हथेली परीक्षण–** उर्वरक का थोड़ा सा चूर्ण + खाने का चूना मिलाकर हथेली पर रगड़कर सूंघने पर।	अमोनिया की गंध आती है।	NH_4^+ हो सकता है।
(ii)	**प्रारम्भिक परीक्षण–** परखनली में लगभग 1 ग्राम उर्वरक का चूर्ण लेवें तथा इसमें लगभग 2 मि.ली. 40% NaOH का घोल डालकर सूंघने पर।	अमोनिया की गंध आती है।	NH_4^+ निश्चित है।
	निश्चयात्मक परीक्षण–		
(iii)	परखनली के मुंह पर गैस निकलते समय लाल लिटमस पत्र लाने पर।	लाल लिटमस पत्र नीला हो जाता है।	NH_4^+ निश्चित है।
(iv)	गैस को नैसलर अभिकर्मक में प्रवाहित करने पर।	भूरा अवक्षेप आता है।	NH_4^+ निश्चित है।
(i)	**निश्चयात्मक परीक्षण–** परखनली में लगभग 1 ग्राम उर्वरक का चूर्ण लेकर उसमें लगभग 10 मि.ली. आसुत जल मिलायें। इसे अच्छी तरह हिलाकर छानें। दूसरी परखनली में 2 मि.ली. छनित लेकर उसमें कुछ मात्रा कोबाल्ट नाइट्रेट अभिकर्मक की डालने पर।	पीला अवक्षेप आता है।	K^+ निश्चित है।
(ii)	उपर्युक्त बिन्दु (i) में से परखनली में लगभग 1 मि. ली. छनित लेकर इसमें 2 मि.ली. फार्मेल्डिहाइड (40%) डालकर कुछ मिनट रख दें तथा इसे उदासीन करते हुए NaOH का घोल तब तक डालें जब तक कि विलयन का रंग पीला न हो जाए। अब इसमें लगभग 1 मि.ली. कोबाल्ट नाइट्रेट अभिकर्मक डालने पर।	पीला अवक्षेप आता है।	K^+ निश्चित है।

(i)	**निश्चयात्मक परीक्षण–** परखनली में लगभग 2 ग्राम उर्वरक का चूर्ण लेकर उसमें लगभग 5 मि.ली. आसुत जल मिलायें। इसे अच्छी तरह हिलाकर छानें। 1 मि.ली. छनित परखनली में लेकर इसमें पोटेशियम पायरोएन्टीमोनेट डालकर अच्छी तरह हिलायें तथा कुछ मिनट के लिए इसे स्थिर रख दें।	परखनली के पेंदे तथा सतह पर श्वेत क्रिस्टलीय अवक्षेप जम जाते हैं।	Na^+ निश्चित है।
(i)	**प्रारम्भिक परीक्षण–** उर्वरक का विलयन + NH_4Cl मिलाकर गर्म करें तथा ठण्डा होने पर NH_4OH आधिक्य में मिलाकर गर्म करें। इसमें अमोनियम कार्बोनेट का विलयन अवक्षेपण पूर्ण होने पर मिलायें।	श्वेत अवक्षेप आता है।	Ca^{2+} उपस्थित है।
	निश्चयात्मक परीक्षण– अवक्षेप को गर्म जल से धोकर तनु CH_3COOH में घोलकर दो भागों में बांट लें। (अ) विलयन में अमोनियम ऑक्जलेट मिलाकर गर्म करने पर। (ब) विलयन में तनु H_2SO_4 + $KMnO_4$ का विलयन मिलाकर गर्म करने पर। (स) श्वेत अवक्षेप में ज्वाला परीक्षण करने पर।	 श्वेत अवक्षेप आता है। गुलाबी बैंगनी रंग आता है। ईट जैसा लाल रंग आता है।	 Ca^{2+} निश्चित है। Ca^{2+} निश्चित है। Ca^{2+} निश्चित है।

परिणाम (Result) -

दिए गए उर्वरक के नमूने सं. .....में एक ऋणायन तथा एक धनायन निम्नलिखित है।

ऋणायन .....

धनायन .....

सावधानियाँ (Precautions)

(i) बाधाकारी अमोनियम आयन को गर्म करके हटाया जा सकता है।

(ii) उपकरण, अभिकर्मक एवं आसुत जल एवं अभिकर्मक किसी प्रकार से प्रदूषित न हों।

नोटः– मूलकों के अन्य परीक्षण प्रयोगशाला में उपलब्ध अभिकर्मकों के आधार पर किये जा सकते है।

❑

प्रयोग–8

मृदा नमूने लेने के औजार एवं प्रयोगशाला में प्रयोग होने वाले उपकरण (Instruments & apprators used in labouratory for soil sampling & soil testing)

मृदा नमूना लेने के लिये आवश्यक उपकरण एवं सामग्री

(1) खुरपी, (2) फावड़ा, (3) ऑगर (auger), (4) पैमाना, (5) बाल्टी, (6) लेबल, (7) खरल और मूसल, (8) छलनी–2 मि.लि. या 0.2 मि. लि. नाप की, (9) पालीथीन या कपड़े या कागज के थैले तथा (10) गत्ते के डिब्बे।

उपकरणों का परिचय– मृदा नमूने लेने के लिये खुरपी, फावड़ा या कई प्रकार के ऑगर का प्रयोग किया जाता है। इस कार्य में प्रायः निम्न प्रकार के ऑगर काम में लाते हैं– (1) पोस्टल होल ऑगर (Post hole auger), (2) पेंचदार ऑगर (Screw auger), (3) मृदा प्रतिदर्शी बन्द नलिका (Close type soil sampling tube) तथा (4) मृदा प्रतिदर्शी नलिका (Open type sampling tube)। ऑगर स्टील या पीतल के बने होते है। इनमें से प्रत्येक के चार–हत्था (handle), दण्ड (beam), परखी (sampler) और धार (cutting edge) होते हैं। नम और गीली मृदा के सैम्पल लेने के लिये नलिका ऑगर, खुरपी या फावड़ा प्रयोग किये जाते हैं। पेचदार ऑगर कठोर सूखी मृदा से सैम्पल लेने से अधिक उपयुक्त होता है जबकि पोस्टल होल ऑगर गीली मृदा जैसे धान का खेत से सैम्पल लेने के लिए प्रयोग किया जाता है। मृदा प्रोफाइल के लक्ष्णों के अध्ययन के लिए मृदा प्रतिदर्शी नलिका (खुली या बंद) प्रयोग में लायी जाती है। यह अल्प नमी वाली भुरभुरी मृदा में अच्छा काम देती है, लेकिन शुश्क और अधिक नम मृदा में इनका उपयोग सन्तोषजनक नहीं होता।

प्रयोगशाला में विभिन्न प्रकार के विश्लेषणों को करने के लिये कुछ विलयनों, सूचकों एवं उपकरणों की आवश्यकता होती है। इस अध्याय में इन सभी से संबन्धित आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रयोगशाला में उपयोग होने वाले उपकरण–

रासायनिक तुला **(Chemical balance)**– रासायनिक तुला रसायन शास्त्री के लिए एक मूल उपकरण है। इसमें एक धातु की छड़ जिसे तुला दण्ड कहते हैं, अगेट की क्षुरधार की सहायता से एक ऊर्ध्वाधर छड़ पर टिकी रहती है। तुला दण्ड के बीच में शून्य का चिन्ह होता है तथा दोनों भुजायें दस बराबर भागों में विभाजित होती हैं। तुला दण्ड के दोनों सिरों पर भी दो क्षुरधार होते हैं जिसकी नोंक ऊपर की ओर होती है। इन्हीं क्षुपधारों पर दो रकाबें टिकी रहती हैं, जिन पर हुक लगे रहते हैं और इन हुकों पर पलडें लटकायें जाते हैं। प्रायः बाँयें पलडें पर वस्तु तथा दायें पलडें पर बाँट रखे जाते हैं। तुला दण्ड के दोनों किनारों पर दो ढिब्बरियाँ लगी होती है जिनकों आवश्कतानुसार आगे–पीछे घुमाकर तुला को सन्तुलित किया जा सकता है इन्हें समंजन पेंच कहते हैं। तुला के आधार के ठीक बीच में धातु का खोखला स्तम्भ होता है जिसके अन्दर एक धातु की छड़ होती है जिस पर तुला दण्ड टिकी रहती है। तुला दण्ड के मध्य बिन्दु में एक संकेतक होता है जिसका निचला सिरा आधार पर लगे पैमाने पर घूमता है तथा तुला दण्ड के क्षैतिज होने पर संकेतक का निचला सिरा पैमाने के शून्य पर रहता है। स्तम्भ के ऊपरी भाग से एक धागे की सहायता से एक साहुल सूत्र लटका रहता है जिसका नोंक ऊपर की ओर होती है। आधार के समतल होने पर लटके हुए टुकड़े की नोंक ठीक नीचे के टुकड़े की नोंक के ऊपर होती है। तुला का आधार लकड़ी का होता है जिसके नीचे तीन समतल करने वाले पेंच लगे होते हैं जिन्हें ऊपर–नीचे घुमाकर आधार को क्षितिज कर लिया जाता है।

नमी, धूल, हवा आदि से सुरक्षित रखने के लिये यह उपकरण एक बड़े शीशे के बक्स में बंद रहता है। यह बक्स दाँये, बायें तथा सामने से खोला जा सकता है। इस शीशे के बक्स में तुला दण्ड के समान्तर ऊपर एर राइडर लगा होता है जिसके अगले भाग में राइडर को लटकाकर इसे तुला दण्ड के ऊपर किसी भी स्थान पर रखा जा सकता है।

बाँट बक्स– यह लकड़ी का बना होता है इसमें ग्राम, मिलीग्राम के बाँट, राइडर तथा चिमटी रखे रहते हैं। इस बक्स में बाँटों का रखने का क्रम निम्न प्रकार होता है।

ग्राम	50, 2	20 2	20 1	10	5
मिलीग्राम		500, 50,	200, 20,	200, 20	100, 10

हाथ से छूने या इनके ऊपर धूल आ जाने पर इन बाँटों का भार गलत हो सकता है इसलिए बाँटों को प्रयोग करते समय चिमटी का प्रयोग आवश्यक है। बाँटों के ऊपर से धूल को मुलायम ब्रुश या साफ कपड़े से साफ कर लेना चाहिये। कभी–कभी नये बाँटों का भार भी अशुद्ध होता है इसलिये नये बाँटों का प्रामाणिक बाँटों से अंशाकन कर लेना चाहिये।

राइडर **(Rider)**– यह एल्युमिनियम तार का बना होता है जिसका भार 5 या 10 मिलीग्राम होता है, 5 मिलीग्राम का राइडर उस तुला पर प्रयोग किया जाता है जिसकी तुला दण्ड बाँयें से दायीं भुजा की ओर 10 बराबर भागों में विभाजित होती है। इस तुला में शून्य बीच में न होकर क्षुरधार के बाँये किनारे पर होता है।

प्रत्येक बड़ा भाग बराबर–बराबर छोटे 10 भागों में बंटा होता है। एक बड़ा भाग एक मिलीग्राम के बराबर होता है तथा प्रत्येक छोटा भाग 0.1 मिलीग्राम (0.0001 ग्राम) के बराबर होता है। 10 मिलीग्राम का राइडर उस तुला पर प्रयोग करते हैं जिसकी तुला दण्ड के मध्य शून्य होता है तथा शून्य के दोनों ओर की भुजायें (दायें एवं बायीं) बराबर–बराबर 10 बड़े भागों में विभाजित होती हैं। एक बड़ा भाग पुनः 5 छोटे भागों में विभाजित होता है। एक ब़ड़े भाग का भार एक मिलीग्राम तथा एक छोटे भाग का भार 0.2 मिलीग्राम (0.0002 ग्राम) होता है। यदि राइडर बाँट वाले (दायें) पलड़े की ओर स्थित हो तो इसका भार पलड़े में रखे बाँटों में भार के साथ जोड़ दिया जाता है यदि विपरीत दिशा में स्थित है तो इसका भार घटा दिया जाता है।

उदाहरण– एक राइडर बीच में अंकित शून्य वासी तुला दण्ड के 8 बड़े भाग के पश्चात् 3 छोटे भाग पर रखा जाता है तो राइडर द्वारा प्रदर्शित भार क्या होगा?

1 बड़ा भाग का भार 1 मि.ग्रा.

8 बड़ा भाग का भार 0.2 मि.ग्रा. या 0.0008 ग्राम

1 छोटे भाग का भार 0.2 मि.ग्रा.

3 छोटे भाग का भार 3 0.2 0.6 मि.ग्रा. या 0.0006

कुल भाग 0.008 0.0006 0.0086 ग्राम

तुला को प्रयोग करने के नियम तथा सावधानियाँ

1. तोलते समय संकेतक के सामने बैठना चाहिये।
2. तोलने से पहले तुला के पलड़ों तथा अन्य भागों को मुलायम ब्रुश से साफ करक लेना चाहिए।
3. तोलने से पहले तुला के धरातल को समतल करने वाले–वाले पेंच तथा साहुल सूत्र की सहायता से समतल तथा सन्तुलित कर लेना चाहिए।
4. तुला दण्ड को उठाकर यह देखना चाहिये कि संकेतक पैमाने के अंकित शून्य के दोनों ओर समान दूरी तक गति करता है या नहीं यदि नहीं तो समंजन पेंचों से ठीक कर लेना चाहिये।
5. बाँटों तथा राइडर को चिमटी से पकड़ना चाहिये हाथों से नहीं।
6. तोलते समय तुला के काँच के बक्स की खिड़कियाँ बंद रखनी चाहिये।
7. पलड़े में रखे ही रखे भार अपनी नोट बुक में नोट कर लेना चाहिये।
8. बाँट बायें पलड़े के मध्य में रखने चाहिये तथा राइडर को तुला दण्ड पर रखने के बाद राइडर वाहक को उपर उठा लेना चाहिये।
9. तुला के पलड़े में कभी गर्म वस्तु नहीं तोलनी चाहिये।
10. गीले पदार्थ, चिपकने वाले पदार्थ तथा किसी पदार्थ के पाउडर को कभी भी पलड़े पर सीधे रखकर नहीं तोलना चाहिये।
11. नमी शोषित करने वाले पदार्थ जैसे सोडियम हाइड्राक्साइड, अधिक वाष्प वाले पदार्थ जैसे एल्कोहल तथा संक्षारण (Corrosive) जैसे HCl, HNO_2, I_2 को सदैव काँच के डॉट लगे बर्तन में रखकर तोलना चाहिए।

ब्यूरेट **(Burette)**– यह एक समान व्यास वाली काँच की नली का बना होता है जिसमें ऊपर से नीचे की ओर 0 से 50 मि. लि. के निशान लगे होते हैं। प्रत्येक दो क्रमागत निशानों की दूरी 10 बराबर भागों में विभाजित होती है तथा प्रत्येक छोटा निशान 0. 1 मिली लीटरको प्रदर्शित करता है जो ब्यूरेट का अल्पतम माप होती है। ब्यूरेट के निचले भाग में रबड़ की नली और एक जेट लगा होता है। रबड़ की नली को पिंचकाक की सहायता से बंद कर देते हैं। पिंचकाक (Pinchock) को दबाने या स्टाप काक को घुमाने पर ब्यूरेट (Stop Cock Burette) में भरा हुआ द्रव जेट से बूँद–बूँद करके बाहर निकलता है। ब्यूरेट का प्रयोग करते संमय निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिये–

1. ब्यूरेट को प्रयोग करने से पहले उसे आसुत जल से धो लेना चाहिये।
2. स्टाप काक या पिंचकाक की जाँच कर लेनी चाहिये कि वह ठीक कार्य कर रही है या नहीं।
3. जिस विलयन को ब्यूरेट में भरना हो उस विलयन की थोड़ी मात्रा से ब्यूरेट को धो (Rinse) लेना चाहिये।
4. ब्यूरेट में विलयन भरने पर हवा का बुलबुला नहीं रहना चाहिये यदि है तो उसे निकालने के लिये पिंचकाक या स्टाप काक को दाब के साथ एक साथ खोल देना चाहिये।
5. पाठ्यांक लेते समय ब्यूरेट के पीछे एक सफेद कागज लगा लेना चाहिये तथा पाठ्यांक पढ़ते संय आँख के ब्यूरेट में भरे हुए द्रव के नतोदर तल पर स्पर्श रख्खा की सीध में रखना चाहिये।
6. रंगीन विलयनों मे ऊपर का तल पढ़ना चाहिये।
7. प्रारम्भिक तथा अन्तिम पाठ्यांक को प्रयोगत्मक नोट बुक में तुरन्त लिख लेना चाहिये।

8. फ्यूरेट का जैट कोनीकल फ्लास्क के विलयन में डूबना नहीं चाहिये तथा क्रियान्त बिन्दु के समीप ब्यूरेट से विलयन को बूँद–बूँद करके डालना चाहिए।

पिपेट **(Pipette)**– यह एक लम्बी काँच की नली होती है। एक सिरा जैट के आकार का होता है, जिसके निकास बिन्दु (Delivery point) कहते हैं। इन पिपेट में केवल एक ही चिन्ह लगा रहता है। बल्ब के ऊपर पिपेट का आयतन तथा ताप अंकित होता है। जैसे–20^0C, 10 ml इसका अर्थ है कि अंकित निशान तक 20^0C पर इसमें 10 मि.लि. द्रव आता है। ये पिपेट विभिन्न क्षमताओं की होती हैं (1, 2, 5, 10, 20, 25, 50, 100, मि. लि.) तथा इसे Transfer-pipette कहते हैं। अन्य प्रकार की अशांकित पिपेट (Graduated pipette) में बल्ब नहीं होता तथा इनमें निशान अंकित होते हैं ऐसी पिपेट को अंशांकित पिपेट कहते हैं। पिपेट को प्रयोग करते समय निम्न बातों को ध्यान में लेना चाहिये–

1. प्रयोग करने से पहले पिपेट को जल से साफ कर लेना चाहिये।
2. जिस विलयन को पिपेट से लेना है उसकी कुछ मात्रा पिपेट में लेकर उससे धो लेना चाहिए।
3. पिपेट में लगे निशान से कुछ ऊपर तक विलयन मुँह से खींचकर अंगुली से दबा लेना चाहिये, फिर अंगुली को ढीला करके विलयन को निकलने देना चाहिये।
4. पिपेट से कौनीकल फ्लास्क में द्रव स्थानान्तरित करते समय पिपेट के शेश द्रव को कभी भी फूँक की सहायता से नहीं निकालना चाहिये बल्कि जैट को कौनीकल फ्लास्क की दीवार से स्पर्श करा देना चाहिये।
5. विलयन को धीरे–धीरे पिपेट में चूसना (suck) चाहिये, तेजी से खींचने पर विलयन मुँह में जा सकता है।
6. सांद्र, अम्ल, विषैले पदार्थ तथा गर्म विलयन आदि को पिपेट से नहीं लेना चाहिये।

कौनीकल फ्लास्क **(Conical flask)**– यह शंकु के आकार का कांच का फ्लास्क होता है। इसमें अनुमापन करते हैं क्योंकि विलयनों के मिश्रण को मिलाते समय बाहर निकलने का भय नहीं रहता है। यह प्रायः विभिन्न आयतनों जैसे– 100, 150, 250, 500 मि.लि. के होते हैं। फ्लास्क को प्रयोग करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

1. प्रत्येक अनुमापन प्रारम्भ करने से पहले तथा बाद में आसुत जल से धो लेना चाहिये।
2. ब्यूरेट या पिपेट से लिये जाने वाले द्रव से इसे कभी नहीं धोना चाहिये।

मापन फ्लास्क **(Measuring flask)**– इसे आयतनात्मक फ्लास्क **(Volumetic flask)** भी कहते हैं। यह काँच का बना लम्बी गर्दन तथा चपटे पेंदे वाला फ्लास्क होता है। यह विभिन्न आयतनों जैसे– 25, 50, 100, 250, 500, 1000, 2000 मि.लि. का होता है। इसकी गर्दन पर एक चिन्ह लगा होता है तथा मुँह पर एक काँच की डाँट लगी रहती है जो कि धागे की सहायता से फ्लास्क की गर्दन में बंधी रहती है। इसको प्रयोग करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये–

1. प्रयोग करने से पहले इसे आसुत जल से धो लेना चाहिये।
2. फ्लास्क के मुँह पर आसुत जल से धुला हुआ फनल रखना चाहिये।
3. विलयन बनाने वाले पदार्थ को फलन में डालकर धीरे–धीरे आसुत जल से डालना चाहिये जब तक कि सम्पूर्ण पदार्थ पानी के साथ फ्लास्क में न चला जाये।
4. सम्पूर्ण पदार्थ के घुल जाने पर फ्लास्क में अंकित निशान के समीप तक आसुत जल भर देना चाहिये।
5. प्लास्क के अंकित निशान तक आयतन करने के लिये पिपेट से बूँद–बूँद करते आसुत जल फ्लास्क में डालना चाहिये।
6. आयतन पूरा हो जाने पर फ्लास्क में डाट लगाकर उसे ऊपर–नीचे करके हिलाना चाहिये जिससे विलयन समाँग हो जाये।
7. मापन फ्लास्क को गर्म नहीं करना चाहिये।

बीकर **(Beaker)**– इसकी आवश्यकता विलयन बनाने में, द्रव के उबालने में तथा बहुत–सी रासायनिक क्रियायें कराने में होती है। ये साधारणतया 50, 100, 250, 400, 800 तथा 1000 मि. लि. आयतन के होते हैं। इनका उपयोग अनुमापन तथा अवक्षेपण में भी होता है। बीकर की ऊपर सतह पर एक नुकीला भाग बाहर निकला होता है जिसे स्पाउट कहते हैं, इसके द्वारा ही बीकर के द्रव को बाहर गिराया जाता है।

परखनली **(Test tube)**– ये क्षारीय एवं अम्लीय मूलकों के परीक्षण में प्रयोग की जाती हैं। लगभग 15–20 मि.लि. वाली परखनली को ही प्रायः प्रयोगशाला में प्रयोग किया जाता है। जिन प्रतिक्रियाओं में बहुत अधिक उबालने की आवश्यकता पड़ती है उनमें 25–30 मि.लि. आयतन वाली परखनली प्रयोग की जाती है।

वाश बोतल **(Wash bottle)**– गोल पेंदी वाले 500 मि.लि क्षमता के एक फ्लास्क में जल की बारीक धार निकालने के लिये

प्रबन्ध होता है। इसके मुँह पर दो मुड़ी हुई नली एक कार्क में होकर लगी रहती हैं जिसमें एक के मुँह पर प्रधारक लगा होता है। जब बिना प्रधारक (jet) वाली मुड़ी नली में हवा फूँकी जाती है तो फ्लास्क में हवा का दाब बढ़ जाता है जिसके कारण पानी दूसरी नली के द्वारा प्रधारक में होकर पतली धार के रूप में वेग से बाहर निकलने लगता है। इसे आसुत जल रखने में प्रयोग किया जाता है।

फनल **(Funnel)**– यह अवक्षेप को छानने के काम आता है। यह 5½ से 7 से.मी. व्यास का होता है। इसकी नली का व्यास प्रायः 4 मि.मी. और लंबाई 8 से 15 से.मी. तक होती है।

ट्राईपाड स्टैंड **(Tripod stand)**– यह लोहे का तीन टाँगों वाला स्टैण्ड होता है। इस पर लोहे के तार की जाली रखकर बीकर को तथा क्ले पाइप ट्राइऐंगिल रखकर क्रुसीबिल के गर्म करते हैं।

मापन सिलिण्डर **(Measuring cyclinder)**– यह बेलनाकार काँच का पात्र होता है जिसमें पेंदे की ओर से ऊपर की ओर मि.ली. के निशान लगे होते हैं। द्रव उड़ेलने के लिये बीकर की भाँति इसके ऊपरी भाग में बाहरी सतह पर स्पाउट बना होता है। ये 10, 25, 50, 100, 250, 500, 1000, 2000 मि.लि. के होते हैं।

गोल एवं चपटे पेंदी के फ्लास्क **(Round and flat bottom flask)**– ये भी काँच के बने होते हैं। इनमें द्रव रखे तथा गर्म किये जाते हैं। ये विभिन्न प्रकार के सामान्य विलयन तैयार करने के काम में आते हैं। ये सामान्यतः 250, 500, 1000 तथा 2000 मि.लि के होते हैं।

वाच ग्लास **(Watch glass)**– यह काँच की बनी विभिन्न व्यास की गोलाकार प्लेट होती हैं जो बीकर को ढकने के काम आती हैं। इन्हें आसुत जल से साफ करके ही प्रयोग में लाना चाहिये। प्रयोग में लाते समय इसके नीचे पेंदे में बीकर का द्रव चिपकने की संभावना रहती है, अतःअलग करने से पहले उसे बीकर में ही पानी की धार से धो लेना चाहिये।

काँच की छड़ **(Glass rod)** एवं काँच की नली **(Glass tube)**– काँच की छड़ ठोस एवं काँच की नली खोखली समान व्यास की होती है। काँच की छड़ विलायक में विलेय को मिलाने के काम आती है। इसमें कभी–कभी निचले सिरे पर एक रबर का छल्ला भी लगा रहता है जिसे पुलिस मैन कहते हैं। यह बीकर की दीवारों से चिपके पदार्थ अलग करने के काम आता है। काँच की छड़ को बीकर में स्पाउट के विपरीत दिशा वाली दीवार के साथ रखना चाहिये, स्पाउट से सटा कर नहीं।

अभिकर्मक बोतल **(Reagent bottle)**– विभिन्न प्रकार के रासायनिक प्रयोग करने के लिये भिन्न–भिन्न प्रकार के रायासनिक पदार्थों जिन्हें अभिकर्मक कहते हैं, की आवश्यकता पड़ती है। ये अभिकर्मक जिन काँच की बोतलों में रखे जाते हैं उन्हें अभिकर्मक बोतल कहते हैं। ये बोतल शैल्फ में रखी जाती हैं। अभिकर्मक बोतल से अभिकर्मक निकाल कर तुरन्त डाट लगा देनी चाहिये। डाट को कभी भी मेज पर नहीं रखना चाहिये, अन्यथा उसमें बाह्य अशुद्धि पिचकने की संभावना रहती है। कभी–कभी अभिकर्मक बोतल प्रयोग करने के बाद तुरन्त ही शैल्फ में रख देना चाहिये जिससे कार्य करने में असुविधा न हो।

पोर्सिलेन डिश **(Porcelain dish)**– यह चायना क्ले की बनी होती हैं। इसमें अनुमापन किया जाता है तथा पदार्थ का वाष्पीककरण भी किया जाता है।

पोर्सिलेन टाइल **(Porcelain tile)**– इसे बाह्य सूचक की उपस्थिति में अनुमापन करने के प्रयोग में लाया जाता है। सूचक की बूँदें इसके ऊपर रखी जाती हैं। आन्तरिक सूचक प्रयोग करके अनुमापन करते समय इसे कॉनीकल फ्लास्क के नीचे रखा जाता है जिससे क्रियान्त बिन्दु से स्पष्ट हो जाता है इसे प्रयोग में लाने में तुरन्त बाद साफ कर देना चाहिये और आसुत जल से धोकर, सुखा कर रखना चाहिये।

टिनकोन **(Tin cone)**– यह टिन का बना बेलनाकार छिद्रयुक्त कोन होता है। यह फनल में रखे अवशेषयुक्त फिल्टर पेपर को सुखाने के काम आता है। इसे ट्राइपाड स्टैंड के ऊपर रखी तार जाली के ऐसवेस्टस भाग पर रखते हैं। फनल को इसके ऊपरी सिरे पर रखा जाता है। बर्नर को तार की जाली के नीचे रखकर जलाने से फनल में रख हुआ गीला फिल्टर पेपर अवशेष सहित सूख जाता है।

तार की जाली **(Wire gauge)**– यह लोहे के तारों की जाली होती है जिसके बीच में सफेद भाग एसबेस्टस लगे होने के कारण होता है। इसके प्रयोग से गर्म करते समय उपकरण नहीं टूटता है।

टाँग्स **(Clay pipe triangle)**– यह धातु की बनी होती है। इसका प्रयोग गर्म क्रूसीबिल पकड़ने के लिए होता है। इसे प्रयोग करने से पहले इसके सिरों को साफ कर लेना चाहिये। मेज पर रखते समय इसके सिरे ऊपर की ओर रखने चाहिये।

क्ले पाइप ट्राइएंगिल– लोहे के तारों के ऊपर क्ले पाइप लगे होते हैं। क्रूसीबिल को गर्म करते समय इसके ऊपर रखते हैं।

सिलिका क्रूसीबिल **(Silica crucible)**– यह सिलिका का बना होता है तथा 2500°C ताप तक गर्म करने पर भी नहीं टूटता

है। इसमें रखकर अवक्षेप को जलाते हैं।

डैसीकेटर– यह एक काँच का बर्तन होता है जिसमें शुश्क वातावरण बना रहता है। इसे वायु–रोधी रखा जाता है। इसमें गर्म क्रूसीबिल को रखकर तोलने से पहले ठंडा किया जाता है। इसमें रखे पदार्थ के भार मे नमी तथा कार्बन डाइ–ऑक्साइड के शोषण द्वारा परिवर्तन नहीं होता है। इसमें छेदों वाली एक पोर्सलीन प्लेट लगी होती है जिस पर क्रूसीबिल को क्ले पाइप ट्राइऐंगिल लगा कर रखा जाता है। निचले भाग में फ्यूज हुआ कैल्शियम क्लोराइड भरा रहता है जो नमी को शोषित करने का कार्य करता है। डैसीकेटर के ढक्कन के निचले किनारों पर ग्रीस की एक पतली पर्त होती है जो इसे वायुरोधी रखती है। खोलते समय इसे ऊपर न उठाकर किनारे की ओर खिसकाते हैं तथा इसी प्रकार बंद करते हैं। ढक्कन को मेज पर रखते समय ग्रीस वाली सतह ऊपर रखनी चाहिये। डेसीकेटर को जहाँ तक संभव हो सके बंद रखा चाहिये ताकि इसमें वायु से नमी का शोषण न हो सके।

